एमएईसी–105
(MAEC – 105)

आर्थिक विकास
(Economic Development)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी – 263139
फोन नं. 05946 – 261122, 261123
टॉल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946–264232, ई–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे,
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 एम0 के0 धडोलिया,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा, राजस्थान

प्रो0 एस0 पी0 तिवारी,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
डॉ0 आर0 एम0 एल0 अवध विश्वविद्यालय,
फैजाबाद उ0 प्र0

प्रो0 मधुबाला,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
इंदिरा गॉधी मुक्त विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रो0 आर0 सी0 मिश्र
निदेशक वाणिज्य एवं प्रबन्ध विद्याशाखा,
विशेष आमंत्रित सदस्य
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. विनोद कुमार श्रीवास्तव असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, डॉ. आर.एम.एल. अवध विश्वविश्वद्यालय, फैजाबाद, उ.प्र.	**1,2,3,4, 12,13,14,15**
डॉ. मंजुला उपाध्याय असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, ए.पी. सेन महाविद्यालय, लखनऊ, उ. प्र.	**5,6,8,9,10**
डॉ. सोनी सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, ए.पी.सेन महाविद्यालय लखनऊ, उ.प्र	**7,11**
डॉ. राजीव पाण्डे एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग एस.एम.पी.राजकीय महिला पी.जी. कालेज मेरठ, उ.प्र.	**16,17,18,19**
डॉ. अनामिका चौधरी एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, वाई.डी.पी.जी. कॉलेज लखीमपुर खीरी, उ.प्र.	**20,21,22,23**
डॉ. प्रीति आत्रेय असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय पी.जी. कॉलेज, सतीकुण्ड, कनखल, हरिद्वार उत्तराखण्ड	**24,25 ,26,27**
डॉ. साहब सिंह असिस्टेंट प्रोफेसर अर्थशास्त्र विभाग पी.सी. बागला पी.जी. कालेज हाथरस, उ.प्र.	**28,29,30**

संस्करणः 2017

आई.एस.बी.एन.: 978-93-84813-33-8

प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट): @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशकः कुल सचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139

email: studies@uou.ac.in

मुद्रकः

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

आर्थिक विकास
(Economic Development)

एमएईसी – 105 (MAEC – 105)

विषय–सूची

खण्ड– 1. आर्थिक विकास– अवधारणा, मापन एवं प्रवृत्तियाँ (Economic Development- Concept, Measurement and Trends)	पृष्ठ संख्या
इकाई– 1. आर्थिक वृद्धि एवं विकास की अवधारणा (Concept of Economic Growth and Development)	1–12
इकाई– 2. आर्थिक विकास का मापन (Measurement of Economic Development)	13–33
इकाई– 3. अल्पविकसित देश– आशय एवं विशेषताएँ (Underdeveloped Country- Meaning and Characteristics)	34–47
इकाई– 4. विकास के निर्धारक घटक एवं अवस्थाएँ (Determinant factors and Stages of Economic Development)	48–71
खण्ड– 2. आर्थिक विकास के प्रारूप 1 (The Theories of Economic Development-1)	पृष्ठ संख्या
इकाई– 5. प्रतिष्ठित विकास प्रारूप–एडम स्मिथ, रिकार्डो (The Classical Theory - Adam Smith, Ricardo)	72–83
इकाई– 6. मार्क्स का विकास प्रारूप (The Development Theory of Marx)	84–97
इकाई– 7. शुम्पीटर का विकास प्रारूप (The Development Theory of Schumpeter)	98–116
इकाई– 8. हैरोड–डोमर का विकास प्रारूप (The Development Theory of Harrod-Domar)	117–129
खण्ड– 3. आर्थिक विकास के प्रारूप 2 (The Theories of Economic Development-2)	पृष्ठ संख्या
इकाई– 9. सोलो का विकास प्रारूप (The Development Theory of Solow)	130–137
इकाई– 10. जे0ई0 मीड का विकास प्रारूप (The Development Theory of J.E. Meade's)	138–146
इकाई– 11. जॉन–रॉबिन्सन का विकास प्रारूप (The Development Theory of Joan-Robinson's)	147–164
खण्ड– 4. विकास की सन्तुलित एवं असन्तुलित व्यूह नीति (Strategies of Balance and Unbalance Growth)	पृष्ठ संख्या
इकाई– 12. हार्वे लीबिन्सटीन का आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त (Critical Minimum Effort Theory of Harvey Libenstein's)	165–180

इकाई– 13. नेल्सन का निम्न स्तर सन्तुलन पाश विश्लेषण 181–190
(Low-Level Equilibrium Trap Theory of Nelson's)
इकाई– 14. रोजेन्सटीन का बड़े धक्के का सिद्धान्त 191–199
(Big-Push Theory of Rosenstein)
इकाई– 15. सन्तुलित एवं असन्तुलित वृद्धि का सिद्धान्त 200–221
(Theory of Balance and Unbalance Growth)

खण्ड– 5. द्विदैतवाद विकास प्रारूप पृष्ठ संख्या
(The Theory of Dualistic)

इकाई– 16. सामाजिक एवं तकनीकी द्वैतवाद विश्लेषण 222–234
(Analysis of Social and Technical Dualism)
इकाई– 17. आर्थर लेविस का असीमित श्रमपूर्ति विश्लेषण 235–248
(Arthur Lewis' Theory of Unlimited supplies of Labour)
इकाई– 18. फाई एवं रेनिस विकास प्रारूप 249–262
(Determination of Price and Production under Perfect Competition)
इकाई– 19. एच0 मिन्ट एवं गुन्नार मिर्डल का अल्प विकास विश्लेषण 263–278
(Analysis of Low development Model of H. Mint's
and Gunnar Myrdal)

खण्ड– 6. संसाधन एवं विकास (Resources and Development) पृष्ठ संख्या

इकाई– 20. पूँजी निर्माण एवं आर्थिक विकास 279–290
(Capital Formation and Economic Development)
इकाई– 21. मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास 291–303
(Human Resources and Economic Development)
इकाई– 22. अधो संरचना एवं आर्थिक विकास 304–324
(Infrastructure and Economic Development)
इकाई– 23. पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं आर्थिक विकास 325–339
(Environment, Ecology and Economic Development)

खण्ड– 7. विकास के क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य पृष्ठ संख्या
(Regional Perspective of Development)

इकाई– 24. कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास 340–356
(Agricultural Sector and Economic Development)
इकाई– 25. औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास 357–373
(Industrial Sector and Economic Development)
इकाई– 26. सरकारी संस्थान, बाजार, और आर्थिक विकास 374–394
(Government Institute, Market and Economic Development)
इकाई– 27. गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप 395–406
(Indicators and Measurements of Poverty)

खण्ड– 8. भारत में नियोजन (Planning in India) पृष्ठ संख्या

इकाई– 28. नियोजन की तकनीकी का चुनाव तथा उपयुक्त तकनीकी 407–420
विनियोग कसौटी लागत और लाभ विश्लेषण
(The Planning for Choice of Technique and Appropriate
Technique, Investment Criteria, Cost and Benefit Analysis)
इकाई– 29. भारत में नियोजन तकनीकी, भारत के नियोजन मॉडल, 421–433
बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन
(Techniques of Planning in India, Planning Model in India,
Planning in the Market Economy)
इकाई– 30. महालनोबिस विकास प्रारूप 434–448
(Mahalanobis Development Model)

इकाई–1 आर्थिक वृद्धि एवं विकास की अवधारणा

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 आर्थिक वृद्धि एवं विकास का विश्लेषण

1.3.1 आर्थिक वृद्धि एवं विकास के बारे में ऐतिहासिक विवेचन

1.3.2 आर्थिक विकास की परिभाषाएं

1.3.3 आर्थिक विकास एवं वृद्धि का अन्तर

1.3.4 आर्थिक विकास की प्रकृति

1.3.4.1 स्थैतिक अर्थशास्त्र

1.3.4.2 गत्यात्मक अथवा प्रावैगिक अर्थशास्त्र

1.3.4.3 आर्थिक विकास की प्रकृति मूलतः गत्यात्मक है।

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक अध्ययन सामग्री

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास पाठयक्रम की यह प्रथम इकाई है, इस इकाई के अध्ययन के से आप आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि का आशय उनमें प्रमुख अंतर और आर्थिक विकास की प्रकृति को जान सकेगें।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे किः–

- आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि से हमारा क्या तात्पर्य है।
- विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा आर्थिक विकास एवं वृद्धि को किस रूप में परिभाषित किया गया है।
- आर्थिक विकास एवं आर्थिक वृद्धि में प्रमुख अन्तर क्या है।
- स्थैतिक अर्थशास्त्र क्या है।
- प्रावैगिक अर्थशास्त्र क्या है।
- स्थैतिक अर्थशास्त्र एवं प्रावैगिक अर्थशास्त्र में क्या अन्तर है।

1.3 आर्थिक वृद्धि एवं विकास का विश्लेषण

विकास का अर्थशास्त्र अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। यद्यपि आर्थिक विकास के अध्ययन ने वाणिज्यवादियों तथा एड्म स्मिथ से लेकर मार्क्स और केन्ज तक सभी अर्थशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया था, फिर भी, उनकी दिलचस्पी प्रमुख रूप से ऐसी समस्याओं में रही जिनकी प्रकृति विशेषतया स्थैतिक थी और जो अधिकतर सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के पश्चिम यूरोपीय ढांचे से संबंध रखती थी। वर्तमान शताब्दी के पांचवे दशक में और विशेष रूप से दूसरे विश्व युद्ध के बाद ही अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों की समस्याओं के विश्लेषण की ओर ध्यान देना शुरू किया। विकास के अर्थशास्त्र में उनकी दिलचस्पी राजनैतिक पुनरूत्थान की उस लहर के द्वारा और भी बढ़ी, जो दूसरे विश्व युद्ध के बाद एशिया तथा अफ्रीका के राष्ट्रों में फैल गई थी। इन देशों के नेता शीघ्रता से आर्थिक विकास को बढ़ावा देना चाहते थे और साथ ही विकसित राष्ट्र भी यह महसूस करने लगे थे कि ''किसी एक स्थान की दरिद्रता प्रत्येक सम्पन्न स्थानों की समृद्धि के लिए खतरा है।'' इन दोनों बातों से अर्थशास्त्रियों की रूचि इस विषय में और सजग हुई। इस सन्दर्भ में मायर तथा बाल्डविन ने कहा है कि 'राष्ट्रों के धन के अध्ययन की अपेक्षा राष्ट्रों की दरिद्रता के अध्ययन की अधिक आवश्यकता है।' इस क्रम में अल्पविकसित देशों की विशाल दरिद्रता को दूर करने में धनी राष्ट्रों की रूचि किसी मानवहितवादी उद्देश्य को लेकर नहीं जागृत हुई है बल्कि धनी विकसित देशों द्वारा इन गरीब राष्ट्रों को अन्य गरीब देशों के मुकाबले में अधिक सहायता देने का वचन देकर प्रत्येक दशा में अल्पविकसित देशों का समर्थन तथा वफादारी प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। आज के इस प्रगतिशील युग की मुख्य समस्या आर्थिक विकास की समस्या है। वर्तमान आर्थिक जगत् में, आर्थिक विकास का विचार एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है तथा अधिकांश

अर्थशास्त्रियों द्वारा किये जाने वाले चिन्तन का यह एक केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। आर्थिक विकास जैसा कि इस शब्द से स्पष्ट होता है, का अर्थ है– 'अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादकता के स्तर को बढ़ाना।' विस्तृत अर्थ में, आर्थिक विकास से अभिप्राय राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके, निर्धनता को दूर करना तथा सामान्य जीवन स्तर में सुधार करना है।

1.3.1 आर्थिक वृद्धि एवं विकास के बारे में ऐतिहासिक विवेचन

विभिन्न अर्थशास्त्रियों नें आर्थिक विकास की परिभाषा के लिए भिन्न–भिन्न आधारों को अपनाया है। अर्थशास्त्रियों के एक समूह नें आर्थिक विकास का अर्थ, कुल राष्ट्रीय वास्तविक आय में वृद्धि करना बताया है, तो दूसरी विचारधारा के लोगों ने प्रति–व्यक्ति वास्तविक आय में की जाने वाली वृद्धि को आर्थिक विकास की संज्ञा दी है।

प्रथम सम्प्रदाय में **प्रो0 साइमन कुजनेट्स, मायर एवं बाल्डविन** तथा ए0जे0 यंगसन, आदि को सम्मिलित किया जाता है।

द्वितीय सम्प्रदाय में प्रति व्यक्ति की आय में वृद्धि को, आर्थिक विकास मानने वाले अर्थशास्त्रियों में डा0 बैंजमीन, हिगीन्स, हार्वे लिवेस्टीन, डब्लू0 आर्थर लुईस, प्रो0 विलियमसन तथा जैकब बॉइनर आदि प्रमुख रूप से है।

हम आर्थिक विकास की कुछ प्रचलित परिभाषाओं की विवेचना निम्नवत प्रस्तुत कर रहे हैं:–

1.3.2 आर्थिक विकास की परिभाषाएं

विभिन्न विद्वानों ने आर्थिक विकास को निम्न प्रकार व्यक्त किया है:–

मायर एवं वाल्डविन के मतानुसार :–'आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।'

प्रो0 लुईस के शब्दों में :–'आर्थिक विकास का अर्थ, प्रति–व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि से लगाया जाता है।'

प्रो0 यंगसन के विचारानुसार :–'आर्थिक प्रगति से आशय किसी समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।'

प्रो0 विलियमसन के अनुसार :–'आर्थिक विकास अथवा वृद्धि से उस प्रक्रिया का बोध होता है जिसके द्वारा किसी देश अथवा प्रदेश के निवासी उपलब्ध साधनों का उपयोग, प्रति व्यक्ति वस्तुओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि के लिए करते है।'

प्रो0 डी0 ब्राइट सिंह की दृष्टि में :– 'आर्थिक वृद्धि से अभिप्राय, एक देश के समाज में होने वाले उस परिवर्तन से लगाया जाता है जो अल्प–विकसित स्तर से उच्च आर्थिक उपलब्धियों की ओर अग्रसर होता है।'

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि जहां मायर एवं वाल्डविन ने आर्थिक विकास में वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने की बात कही है वहीं विलियमसन तथा लुईस द्वारा प्रति व्यक्ति उत्पादन अथवा आय में वृद्धि का समर्थन किया गया है लेकिन उपर वर्णित सभी परिभाषाओं में तीन महत्वपूर्ण बातें समान रूप से परिलक्षित होती हैं :–

1. विकास की सतत प्रक्रिया – आर्थिक विकास एक सतत प्रक्रिया है। जिसका अर्थ, कुछ विशेष प्रकार की शक्तियों के कार्यशील रहने के रूप में, लगाया जाता है। इन शक्तियों के

एक अवधि तक निरन्तर कार्यशील रहने के कारण आर्थिक घटकों में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। यद्यपि इस प्रक्रिया के फलस्वरूप किसी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन तो होता है किन्तु इस प्रक्रिया का सामान्य परिणाम, राष्ट्रीय आय में वृद्धि होना है।

2. वास्तविक राष्ट्रीय आय – आर्थिक विकास का सम्बन्ध वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि से है। ध्यान रहे, वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि से अभिप्राय किसी राष्ट्र द्वारा एक निश्चित काल में उत्पादित समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के विशुद्ध मूल्य में होने वाली वृद्धि से लगाया जाता है, न कि मौद्रिक आय की वृद्धि से। चूंकि आर्थिक विकास को मापने के लिये राष्ट्रीय आय को ही आधार माना जाता है इसलिये किसी देश का आर्थिक विकास तभी माना जाएगा जब उस देश में 'वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहे। कुल राष्ट्रीय उत्पादन में से मूल्य ह्रास अथवा मूल्य स्तर में हुए परिवर्तनों को समायोजित करने पर विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन प्राप्त हो जाता है।

3. दीर्घकालीन अथवा निरन्तर वृद्धि – आर्थिक विकास का सम्बन्ध अल्पकाल से न होकर दीर्घकाल से होता है। दूसरे शब्दों में, विकास की यह प्रक्रिया एक या दो वर्षों में होने वाले अल्पकालीन परिवर्तनों से सम्बन्धित नहीं होती बल्कि 15 से 20 वर्षों के बीच दीर्घकालीन परिवर्तनों से सम्बन्धित होती है। इसलिये अगर किसी अर्थ व्यवस्था में किन्हीं अस्थायी कारणों से देश की आर्थिक स्थिति में सुधार हो जाता है, जैसे अच्छी फसल अथवा अप्रत्याशित निर्यात होना, तो इसे आर्थिक विकास नहीं समझना चाहिए, क्योंकि आर्थिक विकास विशेष घटकों से प्रभावित होने वाला विकास है।

1.3.3 आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में अन्तर

'' अल्पविकसित देशों की समस्यायें उपयोग में न लाये गये साधानों के विकास से सम्बन्ध रखती है, भले ही उनके उपभोग भली–भांति ज्ञात न हों, जबकि उन्नत देशों की समस्यायें वृद्धि से सम्बन्धित रहती है, जिनके बहुत सारे साधन पहले से ज्ञात और किसी सीमा तक विकसित रहते हैं। प्रायः आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में कोई अंतर नहीं किया जाता है किन्तु प्रो0 शुम्पीटर तथा श्रीमती उर्सला हिक्स ने इन दोनों शब्दों में भेद करने का प्रयास किया है। आर्थिक वृद्धि एक स्वाभाविक एवं सामान्य प्रक्रिया है जिसके लिए समाज को कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पडता है, इसके विपरीत आर्थिक विकास के लिये विशेष प्रयत्नों का किया जाना जरूरी है अर्थात आर्थिक विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तनों का होना आवश्यक है ताकि विद्यमान आर्थिक व्यवस्था के पूरे स्वरूप को परिवर्तित किया जा सके। प्रो0 शुम्पीटर के अनुसार 'विकास स्थिर अवस्था में होने वाला एक ऐसा असतत एवं स्वतः परिवर्तन है जो पहले से स्थापित संतुलन की अवस्था (अर्थात विद्यमान स्थिति) को हमेशा के लिये बदल देता है, जबकि इसके विपरीत 'वृद्धि' दीर्घकाल में घटित होने वाला एक क्रमिक तथा स्थिर गति वाला परिवर्तन है जो बचत और जनसंख्या की दर में होने वाली सामान्य वृद्धि का परिणाम होता है।''

इस प्रकार जो उन्नति धीरे–धीरे आर्थिक व सामाजिक तत्वों में होने वाले परितर्वतनों के कारण होती है। उसे आर्थिक वृद्धि कहते हैं, परन्तु जब अर्थव्यवस्था में उन्नति की प्रबल

इच्छा के तदन्तर, कुछ विशेष प्रयत्नों व क्रियाओं द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जाते हैं तो उसके फलस्वरूप होने वाली उन्नति को, आर्थिक विकास कहा जाता है। इस सन्दर्भ में यह बात ध्यान योग्य है कि उन्नति के यह दोनों स्वरूप दीर्घकालीन तथ्य हैं। प्रो0 शुम्पीटर ने आर्थिक विकास को आर्थिक वृद्धि की अपेक्षा अधिक उपयुक्त माना है।

इस सम्बन्ध में श्रीमती उर्सला हिक्स का कहना है कि आर्थिक वृद्धि शब्द का प्रयोग विकसित देशों के लिये किया जाता है क्योंकि इन देशों में उत्पादन के साधन पहले से ही ज्ञात एवं विकसित होते हैं। इसके विपरीत 'विकास' का सम्बन्ध अल्प–विकसित देशों से है जहां अशोषित व अर्द्ध शोषित साधनों के पूर्ण उपयोग व विकास की सम्भावनाएं विद्यमान होती हैं। इसी प्रकार प्रो0 बोन ने भी आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में अन्तर स्थापित किया है। उनके मतानुसार 'विकास के लिए विशेष निर्देशन, नियंत्रण, प्रयास व मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है और यह बात अल्प विकसित देशों के सम्बन्ध में ही

क्र0सं0	आर्थिक वृद्धि	आर्थिक विकास
1.	स्वाभाविक क्रमिक व स्थिर गति वाला परिवर्तन	प्रेरित एवं असंगत प्रकृति का परिवर्तन
2.	केवल उत्पादन में वृद्धि का होना	उत्पादन–वृद्धि+प्राविधिक एवं संस्थागत परिवर्तनों का होना।
3.	आर्थिक व संस्थागत घटकों में परिवर्तन होने पर स्वतः ही घटित होती रहती है	विकास के लिए संरचनात्मक परिवर्तनों का किया जाना आवश्यक है।
4.	वर्तमान साम्य की अवस्था में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं होता।	नई शक्तियों से नये मूल्यों का निर्माण किया जाता है तथा प्रचलित साम्य में सुधार लाये जाते हैं।
5.	आर्थिक उन्नति नियमित घटनाओं का परिणाम है।	आर्थिक विकास उन्नति इच्छा, विशेष निर्देशन व सृजनात्मक शक्तियों का परिणाम है।
6.	यह उन्नत देशों की समस्याओं का समाधान है।	यह अल्प विकसित देशों की समस्याओं को हल करनें का एक नारा है।
7.	आर्थिक वृद्धि स्थैतिक साम्य कीस्थिति है।	आर्थिक विकास गतिशील साम्य का एक रूप है।

ठीक बैठती है। इसके विपरीत आर्थिक वृद्धि का स्वभाव स्वेच्छानुसार होता है जो कि एक उन्नत स्वतंत्र उपक्रम वाली अर्थव्यवस्था का लक्षण है।' प्रो0 किण्डले बर्जर के मतानुसार 'आर्थिक वृद्धि का अर्थ केवल उत्पादन वृद्धि से है जबकि आर्थिक विकास का अर्थ है उत्पादन वृद्धि के साथ प्राविधिक एवं संस्थागत परिवर्तन का होना है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक वृद्धि की दशा में आर्थिक जीवन प्रत्येक वर्ष उन्हीं आर्थिक धाराओं से होकर इस प्रकार बहता चला जाता है जिस प्रकार एक प्राणी की धमनियों में रक्त का संचालन होता है। दूसरे शब्दों में आर्थिक वृद्धि के अंतर्गत ज्यादा नवीनता का सृजन नहीं होता है बल्कि जो कुछ भी उन्नति होती है वह

परम्परागत एवं नियमित घटनाओं का परिणाम होती है। इसके विपरीत आर्थिक विकास में नई शक्तियों को जन्म दिया जाता है और प्रचलित संतुलन में निरन्तर सुधार लाने के प्रयत्न किये जाते हैं आर्थिक वृद्धि एवं आर्थिक विकास में पाये जाने वाले प्रमुख अन्तरों की विवेचना निम्नवत है –

प्रो0 एलन बरेरी ने आर्थिक वृद्धि तथा प्रगति में अंतर करने का प्रयत्न किया है। उनके मतानुसार 'प्रगति' से अभिप्राय प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से है। जबकि 'आर्थिक वृद्धि' का अर्थ, जनसंख्या एवं कुल वास्तविक आय (राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय) दोनों में होने वाली बढ़ोत्तरी से लगाया जाता है। आर्थिक प्रगति, आर्थिक 'वृद्धि' के बिना भी सम्भव हो सकती है अर्थात जब (i) कुल आय के स्थिर रहने पर जनसंख्या में कमी हो जाये अथवा (i i) कुल आय में कमी होने पर जनसंख्या में अपेक्षाकृत और अधिक कमी हो जाये तो यह 'प्रगति' बिना 'वृद्धि' के मानी जायेगी। ठीक इसी प्रकार आर्थिक वृद्धि आर्थिक प्रगति के बिना भी संभव हो सकती है।

प्रो0 बरेरी महोदय द्वारा आर्थिक वृद्धि के निम्न स्वरूप बताये गये हैं–

प्रगतिशील वृद्धि :– जब कुल आय में वृद्धि जनसंख्या मे होने वाली वृद्धि से अधिक हो।

अधोगामी वृद्धिः–जब कुल आय में वृद्धि की अपेक्षा जनसंख्या मे होने वाली वृद्धि अधिक हो।

स्थिर उन्नति :–जब कुल आय में वृद्धि व जनसंख्या में होने वाली वृद्धि दोनों समान दर से बढ़ रही हों।

उपयुर्क्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यद्यपि आर्थिक वृद्धि तथा आर्थिक विकास में भेद करना सम्भव है किन्तु इस प्रकार का भेद व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी नहीं कहा जा सकता। **अतः 'विकास' एवं वृद्धि शब्द को पर्यायवाची मानते हुए इन्हें एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है।** प्रो0 पॉल ए बरन का भी यह मत है।

1.3.4 आर्थिक विकास की प्रकृति

आर्थिक विकास का अर्थ व परिभाषा जान लेने के बाद एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि आर्थिक विकास की प्रकृति क्या है ? चूंकि आर्थिक विकास का स्वभाव अर्थशास्त्र के स्थैतिक एवं गत्यात्मक स्वरूपों पर आधारित है इसलिये यह अधिक उपयुक्त होगा कि पहले संक्षेप में इन दोनों शब्दों का अर्थ स्पष्ट कर लिया जाये।

1.3.4.1 स्थैतिक अर्थशास्त्र

स्टैटिक (Static) शब्द का सामान्य अर्थ है 'स्थिर रहना' तथा डायनामिक (क्लदंउपब) शब्द का अर्थ है 'गतिमान' होना। इसी प्रकार भौतिक शास्त्र में भी स्थैतिक शब्द से अभिप्राय 'विश्राम की अवस्था' से होता है। इसके विपरीत अर्थशास्त्र में स्थैतिक शब्द का आशय गतिहीन अवस्था से नहीं होता बल्कि उस अवस्था से होता है जिसमें परिवर्तन तो हों परन्तु इन परिवर्तनों की गति अत्यन्त कम हो।

प्रो0 हैराड ने स्थैतिक शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी है– 'एक स्थैतिक संतुलन कर अर्थ, विश्राम की अवस्था से नहीं होता बल्कि उस अवस्था से होता है जिसमें कार्य निरन्तर रूप से दिन–प्रतिदिन अथवा वर्ष–प्रति वर्ष हो रहा हो परन्तु उसमें वृद्धि अथवा कमी न हो रही हो। इस सक्रिय अपरिवर्तनीय प्रक्रिया को 'स्थैतिक अर्थशास्त्र' कहा जाता है।'

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि स्थैतिक अवस्था कोई विश्राम या गतिहीनता की अवस्था नहीं है। इसमें क्षण प्रति क्षण परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन इतनी कम गति से होते हैं कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हो पाता। स्थैतिक अवस्था 'गति मे ंस्थिरता' की द्योतक है।

1.3.4.2 गत्यात्मक अथवा प्रावैगिक अर्थशास्त्र

परिवर्तन प्रकृति का निरन्तर नियत है। दिन के बाद रात, दुख के बाद सुख, धूप के बाद छांव तथा जन्म के बाद मृत्यु होना अवश्यम्भावी है। सत्यता तो यह है कि वास्तविक जीवन में पूर्ण स्थैतिक अवस्था कहीं देखने को नहीं मिलती है। परिवर्तनशीलता की इस प्रवृत्ति को ही गत्यात्मक अर्थशास्त्र कहते हैं।

प्रो0 हैरोड के अनुसार

'प्रावैगिक (अर्थशास्त्र) का सम्बन्ध विशेषतया निरन्तर परिवर्तनों के प्रभाव तथा निर्धारित किये जाने वाले मूल्यों मे परिवर्तन की दरों से होता है।'

आपको स्पष्ट करना है कि प्रो0 जे0बी0 क्लार्क ने गत्यात्मक अर्थशास्त्र के पांच प्रमुख लक्षणों की ओर संकेत किया है। जो कि निम्नवत हैः–

- जनसंख्या में वृद्धि
- पूंजी व पूंजी निर्माण में वृद्धि,
- उत्पादन विधियों में सुधार,
- औद्योगिक संगठनों के स्वरूपों में परिवर्तन
- उपभोक्ता की आवश्यकताओं में वृद्धि।

1.3.4.3 आर्थिक विकास की प्रकृति मूलतः गत्यात्मक है

स्थैतिक एवं गत्यात्मक अर्थशास्त्र के उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास मूलतः गत्यात्मक प्रकृति का है। जिस प्रकार गत्यात्मक अवस्था में पुराने साम्य टूट कर नये साम्य निर्मित होते रहते हैं ठीक उसी प्रकार विकास की पुरानी अवस्थाओं में परिवर्तन होने पर नई अवस्थाओं का निर्माण होता रहता है। आर्थिक विकास का उद्देश्य जहां एक ओर आर्थिक प्रगति की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन करना है वहीं दूसरी ओर दीर्घकाल में आर्थिक गति–विधियों का विश्लेषण करना भी है। ध्यान रहे आर्थिक विकास का मुख्य

उद्देश्य अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादकता के ऊंचे स्तर को प्राप्त करना होता है जिसके लिये 'विकास प्रक्रिया' अर्थव्यवस्था को प्रगति के एक निचले साम्य से ऊपर उठाकर किसी अन्य उच्चस्तरीय साम्य के धरातल पर लाकर खड़ा कर देती है और यह आवश्यक भी है, अन्यथा आर्थिक विकास एक महत्वहीन विचारधारा बनकर रह जायेगा।

यहां यह लिखना आवश्यक होगा कि प्रो0 शुम्पीटर द्वारा वर्णित 'आर्थिक वृद्धि की प्रकृति भी मूलरूप से गत्यात्मक ही है, परन्तु इसका झुकाव स्थैतिकता की ओर अधिक होता है। इसका कारण यह है कि आर्थिक वृद्धि के तद्न्तर होने वाले विकासमयी परिवर्तन बहुत धीमी गति से होते हैं, और इनमें किसी भी प्रकार की नवीनता का सृजन नहीं हो पाता है। आर्थिक विकास की गत्यात्मक प्रकृति की पुष्टि निम्न चित्र द्वारा भी की जा सकती है –

चित्र 1.1

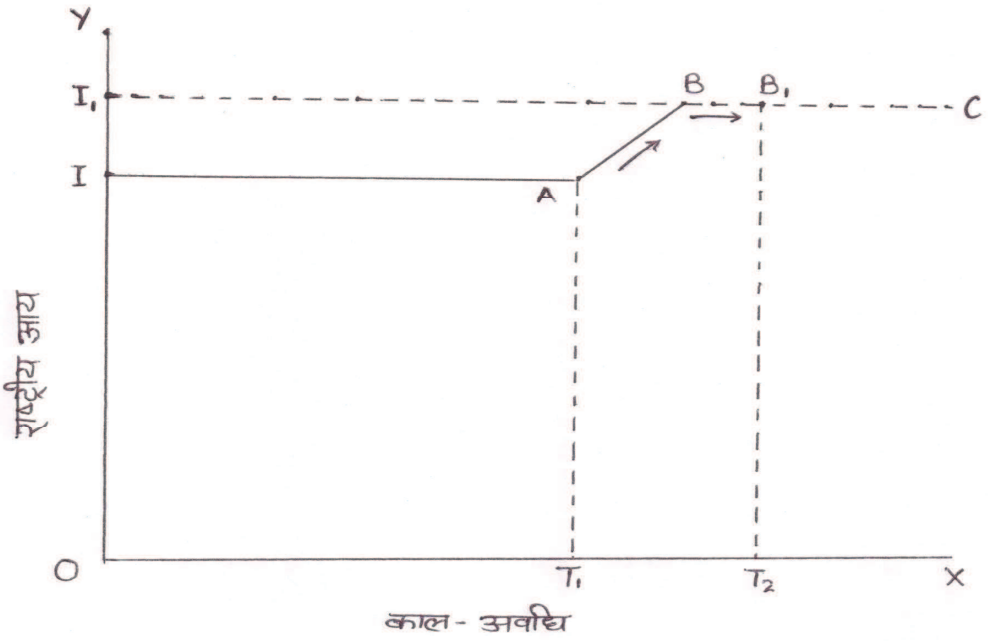

चित्र में OX रेखा पर समय और OY रेखा पर राष्ट्रीय आय को दिखाया गया है। हमारी मान्यता यह है कि अर्थ व्यवस्था अर्द्ध रोजगार की सन्तुलन स्थिति में चल रही है। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय OI पूर्ण रोजगार के स्तर से नीचे मानी गई है क्योंकि O से T1 अवधि तक राष्ट्रीय आय में कोई परिवर्तन नहीं होता (OI=AT1) अर्थात इसकी वृद्धि की दर शून्य ही बनी रहती है।

राष्ट्रीय आय की इस स्थैतिक स्थिति पर रहते हुये अर्थात अवधि के T1 बिन्दु पर सरकार द्वारा किसी प्रकार का सार्वजनिक विनियोग का कार्यक्रम प्रारम्भ करने से गुणक क्रियाशील हो उठता है। जिससे कई महीनों तक राष्ट्रीय आय में होने वाली निरन्तर वृद्धि अन्त में जाकर अवधि T 2 पर OI के स्तर पर पहुंच जाती है जो कि इसका स्थिर व नवीन सन्तुलन बिन्दु है। अवधि T1और T2 के बीच, राष्ट्रीय आय में I से I1 तक

जो वृद्धि हुई है वह धनात्मक अवश्य है परन्तु OI पर पहुंचने के बाद यह पुनः शून्य मानी जायेगी। इसका कारण यह है कि एक निश्चित साम्य बिन्दु पर पहुंचने के बाद विकास की प्रत्येक दर अगले पड़ाव (साम्य) की दृष्टि से स्थिर व शून्य ही होती है।

जब कोई अर्थव्यवस्था साम्य की एक स्थिति से दूसरी उच्च स्तरीय अथवा निम्न स्तरीय साम्य स्थिति की ओर अग्रसर होती है तो साम्य परिवर्तन की गति का अध्ययन करने के लिए 'गत्यात्मक आर्थिक विश्लेषण' का ही सहारा लेना पड़ता है। वास्तव में, चित्र का उद्देश्य इसी तथ्य को स्पष्ट करता है। उपर्युक्त चित्र में सपाट रेखा AB उस मार्ग को दर्शाती है जिस पर राष्ट्रीय आय, अवधि के T1 बिन्दु से T2 के बीच बढ़ती है अर्थात साम्य परिवर्तन होता है। अतः स्पष्ट है आर्थिक विकास की प्रक्रिया की सही जानकारी करने हेतु आर्थिक गत्यात्मक विश्लेषण का अध्ययन जरूरी है। दूसरे शब्दों में आर्थिक विकास की प्रकृति मूलतः गत्यात्मक ही है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. आर्थिक विकास .....सतत प्रक्रिया है। (एक, दो, तीन)
2. आर्थिक विकास का सम्बन्ध अल्पकाल से न होकर .....से होता है।
   (अति अल्पकाल, मध्यमकाल, दीर्घकाल)
3. श्रीमती उर्सला हिक्स ने आर्थिक वृद्धि शब्द का प्रयोग .....देशों लिए किया जाता है। (विकसित, अविकसित, विकासशील)
4. आर्थिक विकास का अर्थ प्रति व्यक्ति उत्पादन में ..... से लगाया जाता है। (समता, वृद्धि, कमी)
5. आर्थिक वृद्धि .....साम्य की स्थिति है।(स्थैतिक, प्रावैगिक, आवश्यक)

बहुविकल्पीय प्रश्न

6. आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।
   A. मायर एवं वाल्डविकन B. यंगसन
   C. उर्सला हिक्स D. शुम्पीटर
7. विकास एक प्रक्रिया होती है?
   A. सतत B. असतत
   C. राष्ट्रीय D. सभी गलत
8. आर्थिक विकास साम्य का एक रूप है?
   A. सृजनात्मक B. स्थैतिक
   C. उपरोक्त दोनों D. गतिशील
9. आर्थिक प्रगति से आशय किसी समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।
   A. यंगसन B. हार्वे लिवेंस्टीन

C. जैकब वाइनर D. हिंगीस

10. आर्थिक विकास का सम्बन्ध होता है?
A. अल्पकाल से B. मध्यम काल से
C. दीर्घकाल से D. उपरोक्त सभी

11. दीर्घकाल होता है?
A. एक वर्ष से कम B. 2 वर्ष से कम
C. 5 से 10 वर्ष D. 15 से 20 वर्षों के बीच

12. आर्थिक विकास का सम्बन्ध राष्ट्रीय आय की किस प्रकार की आय से है?
A. कुल राष्ट्रीय आय B. शुद्ध राष्ट्रीय आय
C. वास्तविक राष्ट्रीय आय D. उपर्युक्त में से कोई नहीं

13. आर्थिक संवृद्धि का अर्थ सामान्यतया लिया जाता है–
A. अधिक उत्पादन से B. तकनीकी परिवर्तन से
C. संस्थागत सुधारों से D. उपर्युक्त में से कोई नहीं

14. आर्थिक विकास की विशेषतायें हैं–
A. आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है
B. राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि
C. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में दीर्घकालीन वृद्धि
D. उपर्युक्त सभी

15. प्रायः अल्पविकसित देशों के लिए शब्द प्रयुक्त किया जाता है–
A. आर्थिक वृद्धि को B. आर्थिक विकास को
C. उपर्युक्त दोनों को D. उपर्युक्त में से कोई नहीं

16. प्रो0 जे0बी0 क्लार्क ने गत्यात्मक अर्थशास्त्र के पांच प्रमुख लक्षणों की ओर संकेत किया है उनमें से नहीं है।
A. जनसंख्या में वृद्धि B. पूंजी व पूंजी निर्माण में वृद्धि
C. उत्पादन विधियों में सुधार D. जनसंख्या में कमी

17. स्टैटिक (Statics) शब्द का सामान्य अर्थ है।
A. स्थिर रहना B. गतिशील रहना
C. उपर्युक्त दोनों D. उपर्युक्त में से कोई नहीं

18. आर्थिक विकास की प्रकृति मूलतः है।
A. स्थैतिक B. गत्यात्मक
C. उपर्युक्त दोनों D. उपर्युक्त सभी असत्य है।

1.4 सारांश

उर्पयुक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते है कि आर्थिक वृद्धि का संबंध देश की प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन में एक मात्रात्मक निरन्तर वृद्धि से है जो कि उसकी श्रम

शक्ति, उपभोग, पूंजी और व्यापार की मात्रा में प्रसार के साथ होती है। दूसरी ओर, आर्थिक विकास एक विस्तृत धारणा है। जो कि आर्थिक आवश्यकताओं, वस्तुओं, प्रेरणाओं और संस्थाओं में गुणात्मक परिवर्तनों से संबंधित है। यह प्रौद्योगिकी और संरचनात्मक परिवर्तनों जैसे वृद्धि के अंतर्निहित निर्धारकों का वर्णन करता है। विकास में वृद्धि और ह्रास दोनों सम्मिलित होते हैं। एक अर्थव्यवस्था वृद्धि कर सकती है परन्तु यह विकास नहीं कर सकती क्योंकि प्रौद्योगिकी और संरचनात्मक परिवर्तनों के अभाव के कारण गरीबी, बेरोजगारी और असमानताएं निरंतर विद्यमान रहती है। परन्तु प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि में अभाव के कारण, विशेषकर जब जनसंख्या तीव्रता से बढ़ रही है तो आर्थिक वृद्धि के बिना विकास के बारे में सोचना कठिन है।

1.5 शब्दावली

आर्थिक विकास– आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा दीर्घकाल में एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

राष्ट्रीय आय– किसी देश का श्रम व पूंजी उसके प्राकृतिक साधनों पर क्रियाशील होकर प्रतिवर्ष जिन भौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं का शुद्ध वास्तविक उत्पादन करते हैं उनका मौद्रिक मूल्य राष्ट्रीय आय कहलाता है।

वास्तविक आय– मौद्रिक आय की क्रय शक्ति को वास्तविक आय कहते हैं।

प्रति व्यक्ति आय– किसी देश की राष्ट्रीय आय को वहाँ की जनसंख्या से विभाजित करके प्रति व्यक्ति आय ज्ञात की जाती है।

स्थैतिक अर्थशास्त्र– जिसमें कार्य निरंतर रूप से दिन प्रतिदिन हो रहा है। परंतु उसमें वृद्धि अथवा कमी न हो रही हो। इस सक्रिय अपरिवर्तनयी प्रक्रिया को ही स्थैतिक अर्थशास्त्र कहते हैं।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. एक 2. दीर्घकाल 3. विकसित 4. वृद्धि 5. स्थैतिक

बहुविकल्पीय प्रश्न 6. A, 7. A, 8. A, 9. A 10. C, 11. D ,12. C, 13. A, 14.D, 15. B, 16. D, 17. A, 18. B

1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
3. एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
4. धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

1.8 सहायक अध्ययन सामग्री

1. U.Hicks, "Learning about Economic Development, " O.E.R. Feb. 1957.
2. A Maddision, Economic Progress and Policy in Development Countries, 1970.
4. C.P. Kindleberger and Herick, Economic Development, 2/e, 1965.
5. Simon Kuznets, 'Economic Growth and Income Inequality, "AER. March 1955.
6. Simon Kuznets, "Qualitative Aspects of Economic Growth of Nations: Distributions of Income by Size, "Economic Development and cultural Change, January 1963.

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक संवृद्धि की परिभाषा दीजिए। आर्थिक संवृद्धि की प्रकृति तथा महत्व का उल्लेख कीजिए।
2. आर्थिक विकास में आर्थिक संवृद्धि के अतिरिक्त कुछ और भी निहित है।''टिप्पणी कीजिए।
3. आर्थिक विकास एवं आर्थिक संवृद्धि की व्याख्या कीजिए।
4. आर्थिक विकास तथा आर्थिक वृद्धि में अंतर स्पष्ट कीजिए। क्या राष्ट्रीय आय आर्थिक विकास का संतोषजनक मापदण्ड है ?
5. क्या आपके विचार में आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकास में अंतर है ? आप इस अंतर को कैसे स्पष्ट करेंगे ? इस संदर्भ में श्रीमती उर्सला हिक्स तथा शुम्पीटर के विचारों का विवेचन कीजिए।
6. आर्थिक विकास आर्थिक शक्तियों के वृत्तीय प्रवाह की दिशाओं में आकस्मिक एवं अनैरन्तर्यपूर्ण परिवर्तन अथवा सन्तुलन स्थिति में झकझोर उत्पन्न करने वाली हलचल है जो वर्तमान सन्तुलन स्थिति को परिवर्तित और विस्थापित कर देती है।'' व्याख्या कीजिए ?

इकाई–2 आर्थिक विकास का मापन

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 आर्थिक विकास का मापन

2.3.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं आर्थिक विकास।

2.3.2 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के माप में कठिनाईया

2.3.3 प्रति व्यक्ति आय एवं आर्थिक विकास।

2.4 आर्थिक कल्याण एवं आर्थिक विकास।

2.5 मूलभूत आवश्यकतायें एवं आर्थिक वृद्धि।

2.6 मानव विकास सूचक एवं आर्थिक विकास।

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.11 सहायक अध्ययन सामग्री

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास को कैसे मापा जाय ? मापदण्ड के रूप में क्या आधार चुना जाय? इसके सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसको मापने के सम्बन्ध में अनेक मापदण्डों की चर्चा की है। वाणिकवादी अर्थशास्त्री किसी देश में सोने एवं चांदी की मात्रा को ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक मानते थे। एडमस्मिथ ने किसी भी देश के आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में उस देश की उत्पादन शक्ति, तकनीकी ज्ञान, श्रमिकों की दशा तथा विशिष्टीकरण को स्वीकार किया। जे0 एस0 मिल ने अर्थ व्यवस्था में सहकारिता के स्तर तथा कार्ल मार्क्स ने समाजवाद की स्थापना को ही आर्थिक विकास की चरम अवस्था माना। मायर एवं बाल्डबिन जैसे अर्थशास्त्री आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास को वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि को दीर्घकालीन प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं तो दूसरी और रोस्टोव जैसे अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि तथा हिगिन्स, बी0 के0 आर0 बी0 राव सब जैसे लोग उत्पादकता की वृद्धि को ही आर्थिक संवृद्धि का मापक मानते हैं।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि

- आर्थिक विकास का रूप कैसे होता है।
- कुल राष्ट्रीय उत्पाद क्या है।
- प्रति व्यक्ति आय से क्या तात्पर्य है।
- आर्थिक कल्याण से आपका क्या तात्पर्य।
- सामाजिक सूचकों का आर्थिक विकास में क्या योगदान है।

2.3 आर्थिक विकास का मापन

आर्थिक विकास' आज के इस प्रगतिशील युग का एक बहुचर्चित विषय है और प्रत्येक राष्ट्र विकास की इस दौड़ में दूसरों से आगे निकलने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। पर सवाल यह उठता है कि आर्थिक विकास की कसौटी अथवा मानदण्ड क्या हो? अर्थात किसी देश में आर्थिक विकास हो रहा है अथवा नहीं, इस बात का किस प्रकार पता लगाया जाए ? आर्थिक विकास की माप हेतु विकासवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्नलिखित मापदण्ड प्रस्तुत किए गए हैं।

2.3.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं आर्थिक विकास

कुछ अर्थशास्त्री सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि को ही आर्थिक विकास का सूचक मानते हैं। उनके अनुसार, 'आर्थिक विकास को समय की किसी दीर्घावधि में एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रूप में मापा जाए।' इस कथन को नीचे चित्र 2.1 से

स्पष्ट किया गया है। क्षैतिज अक्ष पर समय को लिया गया है जबकि अनुलंब अक्ष पर राष्ट्रीय आय में परिवर्तन समय के साथ दिखाया गया है। रेखा Ya देश A में राष्ट्रीय आय के स्तर को और Yb देश B में राष्ट्रीय आय के स्तर को दर्शाती है। समय T तक देश A में राष्ट्रीय आय में वृद्धि देश B में विकास परियोजनाएं शुरू होने से राष्ट्रीय आय की तीव्रता से वृद्धि होती है। जैसा कि चित्र 2.1 में E बिन्दु के बाद Yb > Ya से स्पष्ट हो रहा है। इस संदर्भ में प्रोफेसर मॉयर एवं बाल्डबिन ने ठीक ही कहा है कि ''आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थ व्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकाल में वृद्धि होती है।''

चित्र1

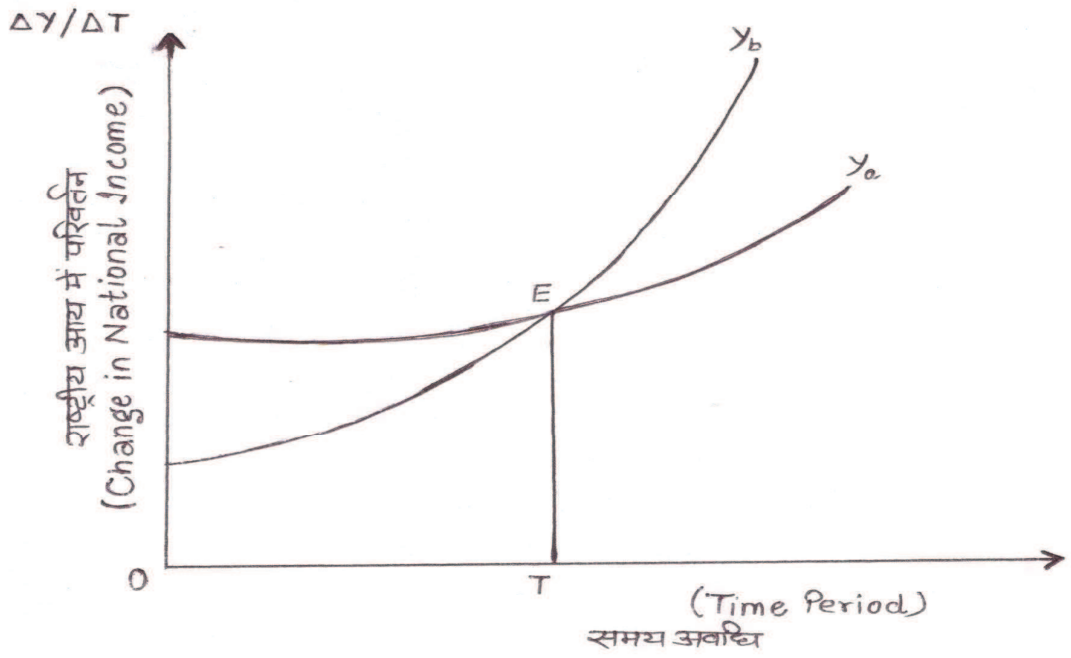

2.3.2 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के माप में कठिनाईया

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय का आगणन करना एक जटिल समस्या है जिसमें निम्नलिखित कठिनाइयां पाई जाती हैं।

1.राष्ट्र की परिभाषा – प्रथम कठिनाई 'राष्ट्र' की परिभाषा है। हर राष्ट्र की अपनी राजनीतिक सीमाएं होती है परन्तु राष्ट्रीय आय में राष्ट्र की सीमाओं से बाहर विदेशों में कमाई गई देशवासियों की आय भी सम्मिलित होती है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय के दृष्टिकोण से 'राष्ट्र' की परिभाषा राजनैतिक सीमाओं को पार कर जाती है। इस समस्या को सुलझाना कठिन है।

2. कुछ सेवाएं – राष्ट्रीय आय सदैव मुद्रा में ही मापी जाती है परन्तु बहुत सी वस्तुएं और सेवाएं ऐसी होती हैं जिनका मुद्रा में मूल्यांकन करना मुश्किल होता है, जैसे किसी व्यक्ति

द्वारा अपने शौक के लिए चित्र बनाना, मां का अपने बच्चों को पालना आदि। इसी प्रकार जब एक फर्म का मालिक अपनी महिला सेक्रेटरी से विवाह कर लेता है तो उसकी सेवाएं राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं होती जबकि विवाह से पहले वह राष्ट्रीय आय का भाग होती हैं। ऐसी सेवाएं राष्ट्रीय आय में सम्मिलित न होने से राष्ट्रीय आय कम हो जाती है।

3. दोहरी गणना – राष्ट्रीय आय की परिगणना करते समय सबसे बड़ी कठिनाई दोहरी गणना की होती है। इसमें एक वस्तु या सेवा को कई बार गिनने की आशंका बनी रहती है। यदि ऐसा हो तो राष्ट्रीय आय कई गुना बढ़ जाती है। इस कठिनाई से बचने के लिए केवल अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं को ही लिया जाता है जो आसान काम नहीं है।

4. अवैध क्रियाएं – राष्ट्रीय आय में अवैध क्रियाओं से प्राप्त आय सम्मिलित नहीं की जाती जैसे, जुए या चोरी से बनाई गई शराब से आय। ऐसी सेवाओं में वस्तुओं का मूल्य होता है और वे उपभोक्ता की आवश्यकताओं को भी पूरा करती है परन्तु इनको राष्ट्रीय आय में शामिल न करने से राष्ट्रीय आय कम रह जाती है।

5. अन्तरण भुगतान – राष्ट्रीय आय में अन्तरण भुगतानों को सम्मिलित करने की कठिनाई उत्पन्न होती है। पेन्शन, बेरोजगारी भत्ता तथा सार्वजनिक ऋणों पर ब्याज व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं पर इन्हें राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाए या न किया जाये, एक कठिन समस्या है। एक ओर तो ये प्राप्तियां व्यक्तिगत आय का भाग हैं, दूसरी ओर ये सरकारी व्यय हैं। यदि इन्हें दोनों ओर सम्मिलित किया जाए तो राष्ट्रीय आय में बहुत वृद्धि हो जाएगी। इस कठिनाई से बचने के लिए इन्हें राष्ट्रीय आय में से घटा दिया जाता है।

6. वास्तविक आय – मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय की परिगणना वास्तविक आय का न्यून आगणन करती है। इसमें किसी वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया में किए गए अवकाश का त्याग शामिल नहीं होता। दो व्यक्तियों द्वारा अर्जित की गई आय समान हो सकती है परन्तु उसमें से यदि एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक घंटे काम करता है तो यह कहना कुछ ठीक ही होगा कि पहले की वास्तविक आय कम बताई गई है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत को नहीं लेती।

7. सार्वजनिक सेवाएं – राष्ट्रीय आय की परिगणना में बहुत सी सार्वजनिक सेवाएं भी ली जाती हैं, जिनका ठीक–ठीक हिसाब लगाना कठिन होता है। पुलिस तथा सैनिक सेवाओं का आगणन कैसे किया जाए ? युद्ध के दिनों में तो सेना क्रियाशील होती है जबकि शान्ति में छावनियां में ही विश्राम करती है। इसी प्रकार सिंचाई तथा शक्ति परियोजनाओं से प्राप्त लाभों का मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय में योगादान का हिसाब लगाना भी एक कठिन समस्या है।

8. पूंजीगत लाभ या हनियां – जो सम्पत्ति मालिकों को उनकी पूंजी परिसम्पत्तियों के बाजार मूल्य में वृद्धि, कमी या मांग में परिवर्तनों से होती है वे सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी0 एन0 पी0) में शामिल नहीं की जाती है क्योंकि ऐसे परिवर्तन चालू आर्थिक क्रियाओं के कारण नहीं होता है। जब पूंजी या हानियां चालू प्रवाह या उत्पादकीय क्रियाओं के अप्रवाह के कारण होते हैं तो उन्हें जी0 एन0 पी0 में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार पूंजी लाभों या हानियों की राष्ट्रीय आय में आगणन करने की बहुत कठिनाई होती है।

9. माल सूची परिवर्तन – सभी माल सूची परिवर्तन चाहे ऋणात्मक हों या धनात्मक जी0 एन0 पी0 में शामिल किये जाते हैं। परन्तु समस्या यह है कि फर्में अपनी माल सूचियों को उनकी मूल्य लागतों के हिसाब से दर्ज करती हैं न कि उनकी प्रतिस्थापन लागत के हिसाब से। जब कीमतें बढ़ती है तो मूल्य सूचियों के अंकित मूल्य में लाभ होता है। इसके विपरीत कीमतें गिरने पर हानि होती है। अतः जी0 एन0 पी0 का सही हिसाब लगाने के लिए माल सूची समायोजन की आश्यकता होती है जो कि बहुत कठिन काम है।

10. मूल्य ह्रास – जब पूंजी मूल्य ह्रास को जी0 एन0 पी0 में से घटा दिया जाता है तो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (एन0 एन0 पी0) प्राप्त होती है। परन्तु मूल्य ह्रास की गणना की समस्या बहुत मुश्किल है। उदाहरणार्थ यदि कोई ऐसी पूंजी परिसम्पत्ति है जिसकी प्रत्याशित आयु बहुत अधिक जैसे 50 वर्ष है, तो उसकी चालू मूल्य ह्रास दर का हिसाब लगा सकना बहुत कठिन होगा और यदि परिसम्पत्तियों की कीमतों में प्रत्येक वर्ष परिवर्तन होता जाए, तो यह कठिनाई और बढ़ जाती है। माल सूचियों के विपरीत मूल्य ह्रास मूल्यांकन कर पाना बहुत कठिन और जटिल तरीका होता है।

11. हस्तान्तरण भुगतान – राष्ट्रीय आय के माप में हस्तान्तरण भुगतानों की समस्या भी पाई जाती है। व्यक्तियों को पेंशन, बेकारी भत्ता और सार्वजनिक ऋण पर ब्याज प्राप्त होता है। परन्तु इन्हें राष्ट्रीय आय में शामिल करने की कठिनाई उत्पन्न होती है। एक ओर तो यह अर्जन व्यक्तिगत आय का भाग है और दूसरी ओर यह सरकारी व्यय है।

2.3.3 प्रति व्यक्ति आय एवं आर्थिक विकास

दूसरी परिभाषा का सम्बन्ध लम्बी अवधि में **प्रति व्यक्ति वास्तविक आय** में वृद्धि से है। '' प्रति व्यक्ति वास्तविक आय या उत्पादन में वृद्धि'' के रूप में आर्थिक विकास की परिभाषा देने में अर्थशास्त्री एकमत हैं। **बुकैनन** तथा **एलिस** के अनुसार '' विकास का अर्थ पूंजी निवेश के उपयोग द्वारा अल्पविकसित क्षेत्रों की वास्तविक आय सम्भाव्यताओं का विकास करने के लिए ऐसे परिवर्तन लाना और ऐसे उत्पादक स्रोतों का बढ़ाना है, जो प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ाने की संभावना प्रकट करते है।'' इन परिभाषाओं का उद्देश्य इस बात पर बल देना है कि आर्थिक विकास के लिए वास्तविक आय में वृद्धि की दर जनसंख्या में वृद्धि की दर से अधिक होनी चाहिए। परन्तु फिर भी कठिनाईयों रह जाती हैं।

यहॉ यह भी संभव है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप जन साधारण के वास्तविक जीवन स्तर में सुधार न हो। यह संभव है कि जब प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ जाती है, तो प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा कम होती जा रही हो। हो सकता है कि लोग बचत की दर बढ़ा रहे हों, या फिर सरकार स्वयं इस बढ़ी हुई आय को सैनिक अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल कर रही हों। वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के बावजूद जनसाधारण की गरीबी का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि बढ़ी हुई आय बहुसंख्यक गरीबों के पास जाने के बजाए मुट्ठी भर अमीरों के हाथ में जा रही हो। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार की परिभाषा उन प्रश्नों को गौण बना देती है जो समाज के ढांचे, उनकी जनसंख्या के आकार एवं बनावट, उसकी संस्थाओं तथा संस्कृति

साधन–स्वरूप और समाज के सदस्यों में उत्पादन के समान वितरण से सम्बन्ध रखते हैं।
प्रति व्यक्ति आय आगणन की कठिनाइयां –

अल्प विकसित देशों में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के माप तथा उन्नत देशों की प्रति व्यक्ति आय से उनकी तुलना करने में भी बड़ी कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। जिनके कारण नीचे दिये जा रहे हैं।

1. अमौद्रिक क्षेत्र – अल्पविकसित देशों मे एक महत्वपूर्ण अमौद्रिक क्षेत्र होता है जिसके कारण राष्ट्रीय आय का हिसाब लगाना कठिन है। कृषि क्षेत्र में जो उत्पादन होता है, उसका बहुत– सा भाग या तो वस्तुओं में विनिमय कर लिया जाता है या फिर व्यक्तिगत उपभोग के लिए रख लिया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय कम बताई जाती है।

2.व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अभाव – ऐसे देशों में व्यावसायिक विशिष्टीकरण का अभाव होता है। जिससे वितरणात्मक हिस्सों के द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना करना कठिन हो जाता है। उपज के अतिरिक्त किसान ऐसी अनेक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जैसे अण्डे, दूध, वस्त्र आदि जिन्हें प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के अनुमान में कभी शामिल नहीं किया जाता।

3.अशिक्षा – अल्प विकसित देशों में अधिकतर लोग अशिक्षित होते हैं और हिसाब–किताब नहीं रखते, और यदि हिसाब किताब रखें भी तो अपनी सही आय बताने को तैयार नहीं होते। ऐसी स्थिति में मोटे तौर पर ही अनुमान लगाया जा सकता हैं जो कि दोषपूर्ण होता है।

4.गैर–बाजार लेन–देन –राष्ट्रीय आय के आगणन में केवल उन वस्तुओं और सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनका वाणिज्य में प्रयोग होता है। परन्तु अल्पविकसित देशों में गांवों में रहने वाले लोग प्राथमिक वस्तुओं से उपभोग–वस्तुओं का निर्माण करते हैं और बहुत से खर्चों से बच जाते हैं। वे अपनी झोपड़ियां, वस्त्र तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं स्वयं बना लेते हैं। इस प्रकार अल्पविकसित देशों में अपेक्षाकृत कम वस्तुओं का मार्केट के मार्ग से प्रयोग होता है और इसीलिये वे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के आगणन में भी शामिल नहीं होता है।

5.वास्तविक आय – मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय की गणना वास्तविक आय का न्यून अनुमान करती है। इसमें किसी वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत, प्रयत्न या उत्पादन की प्रक्रिया में किये गये अवकाश का त्याग शामिल नहीं होता। दो व्यक्तियों द्वारा अर्जित की गयी आय समान हो सकती है परन्तु यदि उनमें एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक घंटे काम करता है, तो यह कहना कुछ ठीक नहीं होगा कि पहले की वास्तविक आय कम बतायी गयी है।

6. कीमत परिवर्तन – कीमत स्तर में परिवर्तन के कारण जो परिवर्तन उत्पादन में होते हैं, उसका उचित माप राष्ट्रीय आय के आगणन में नहीं कर पाते। कीमत स्तर के परिवर्तन को मापने के लिए काम में लाये जाने वाले सूचकांक भी केवल मोटे तौर पर अंदाजे से बनाये जाते हैं। फिर भिन्न–भिन्न देशों में कीमत स्तर भी भिन्न होते हैं। प्रत्येक देश में

उपभोक्ताओं की इच्छाऐं और अधिमान भी भिन्न होते हैं। इसीलिये विभिन्न देशों के प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के आंकड़े प्रायः भ्रांतिजनक तथा अतुलनीय होते हैं।

7.भ्रमपूर्ण आंकड़े – अविश्वसनीय तथा भ्रमपूर्ण आंकड़ों के कारण अल्पविकसित देशों के प्रति व्यक्ति आय के हिसाब किताब में उसके कम या अधिक बताये जाने की संभावना रहती है। इन सब सीमाओं के बावजूद, विभिन्न देशों के आर्थिक प्रगति के स्तर के लिए सबसे अधिक व्यापक रूप से किया जाने वाला माप प्रति व्यक्ति आय ही है। फिर भी, अल्पविकास सूचकों के रूप में केवल प्रति व्यक्ति आय आगणनों का कोई मूल्य नहीं है।

2.4 आर्थिक कल्याण एवं आर्थिक विकास

विभिन्न देशों में यह प्रवृत्ति भी होती है कि आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से आर्थिक विकास की परिभाषा दी जाये। ऐसी प्रक्रिया को आर्थिक विकास माना जाये जिससे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है और उसके साथ साथ असमानताओं का अंतर कम होता है तथा समस्त जनसाधारण के अधिमान संतुष्ट होते हैं। इसके अनुसार आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों के वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग में वृद्धि होती है। ओकन और रिचर्डसन के शब्दों में ''आर्थिक विकास'' भौतिक समृद्धि में ऐसा अनवरत दीर्घकालीन सुधार है। जो कि वस्तुओं और सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह में प्रतिबिम्बित समझा जा सकता है।

इसकी सीमाए :– यह परिभाषा भी सीमाओं से मुक्त नहीं है। **प्रथम**, यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि का अर्थ ''आर्थिक कल्याण'' में सुधार ही हो। ऐसा संभव हैं कि वास्तविक राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने से अमीर अधिक अमीर हो रहे हों या गरीब और अधिक गरीब। इस प्रकार केवल आर्थिक कल्याण में वृद्धि से ही आर्थिक विकास नहीं होता, जब कि राष्ट्रीय आय का वितरण न्यायपूर्ण न माना जाये। **दूसरे,** आर्थिक कल्याण को मापते समय कुल उत्पादन की संरचना का ध्यान रखना पड़ता है जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है, और यह उत्पादन कैसे मूल्यांकित हो रहा है? बढ़ा हुआ कुल उत्पादन पूंजी पदार्थो से मिलकर बना हो सकता है और यह भी उपभोक्ता वस्तुओं के कम उत्पादन के कारण। **तीसरे,** वास्तविक कठिनाई इस उत्पादन के मूल्यांकन में होती है। उत्पादन तो मार्केट कीमतों पर मूल्यांकित होता है, जबकि आर्थिक कल्याण वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन या आय में वृद्धि से मापा जा सकता है। वास्तव में, आय के विभिन्न वितरण से कीमतें भिन्न होंगी और राष्ट्रीय उत्पादन का मूल्य तथा संरचना भी भिन्न होंगे। **चौथे,** कल्याण के दृष्टिकोण से हमें केवल यह नहीं देखना चाहिए कि क्या उत्पादित किया जाता है। बल्कि यह भी कि उसका उत्पादन कैसे होता है? वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन के बढ़ने से संभव है कि अर्थव्यवस्था में वास्तविक लागतों तथा पीड़ा और त्याग जैसी सामाजिक लागतों मे वृद्धि हुई हो। उदाहरणार्थ, उत्पादन में वृद्धि अधिक घंटे तथा श्रम–शक्ति की कार्यकारी अवस्थाओं में गिरावट के कारण हुई हो। **पांचवे,** हम प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि को भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि के बराबर नहीं मान सकते।

विकास की इष्टतम दर निश्चित करने के लिए हमें आय–वितरण, उत्पादन की संरचना, रूचियों, वास्तविक लागतों तथा ऐसे अन्य सभी विशिष्ट प्रयत्नों के सम्बन्ध में मूल्य–निर्णय करने पडेंगे, जो कि वास्तविक आय में कुल वृद्धि से सम्बन्ध रखते हैं।'' इसलिये मूल्य निर्णयों से बचने और सरलता के लिए अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति वास्तविक राष्ट्रीय आय को आर्थिक विकास का माप बनाकर प्रयोग करते हैं।

अंतिम, सबसे बड़ी कठिनाई व्यक्तियों के उपभोग को भार देने की है। वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग व्यक्तियों की रूचियों और अधिमानों पर निर्भर करता है। जो भिन्न–भिन्न होते हैं। इसीलिये व्यक्तियों का कल्याण सूचक बनाने में समान भार लेना सही नहीं है।

2.5 मूलभूत आवश्यकतायें एवं आर्थिक वृद्धि

आर्थिक विकास के माप के रूप में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय की कीमत से असंतुष्ट होकर, कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास को सामाजिक अथवा मूलभूत (आधारभूत) आवश्यकता सूचक के रूप में मापना प्रारम्भ किया है। जिसके अनेक कारण निम्नवत हैं :–

1950 तथा 1960 के दशकों में **GNP** में वृद्धि एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को आर्थिक विकास का सूचक माना जाता रहा। 1960 के विकास दशक के लिए संयुक्त राष्ट्र ने एक प्रस्ताव द्वारा अल्पविकसित देशों के लिए ळछच में 5 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य निश्चित किया। इस लक्ष्य दर को प्राप्त करने के लिए अर्थशास्त्रियों ने शहरीकरण के साथ तीव्र औद्योगिकरण का सुझाव दिया। उनका यह मत था कि ळछच की वृद्धि से प्राप्त लाभ अपने आप रोजगार और आय के सुअवसरों में वृद्धि के रूप में गरीबों तक **धीरे धीरे** पहुंच जायेंगे। इस प्रकार, विकास के इस माप के अनुसार गरीबी, बेरोजगारी और आय असमानताओं की समस्याओं को गौण महत्व दिया गया।

रोस्टोव द्वारा प्रतिपादित विकास के इस एक रेखीय वृद्धि की अवस्थाओं के पथ को नर्क्से के कम बचतों, छोटी मार्केटों तथा जन संख्या दबावों के कुचक्रों ने और शक्ति प्रदान की। यह समझा गया कि इन कुचक्रों को दूर करने के लिए प्राकृतिक शक्तियां मुक्त हो जायेंगी। जो अर्थ व्यवस्था में ऊंची वृद्धि लायेंगी। इसके लिए रोडान ने ''बड़ा धक्का'', नर्क्से ने संतुलित विकास, हर्षमैन ने असंतुलित विकास, तथा लीबन्स्टीन ने क्रान्तिक न्यूनतम प्रयत्न सिद्धान्त का सुझाव दिया। परन्तु अल्पविकसित देशों में विकास के लिए पूंजी, तकनीकी ज्ञान विदेशी विनिमय आदि के रूप में ''लुप्त अंशों'' को प्रदान करने के लिए अंर्तराष्ट्रीय सहायता पर अधिक बल दिया गया। विदेशी सहायता के तर्क के पीछे **''दोहरा अंतराल मॉडल''** तथा आयत स्थानापन्नता द्वारा औद्योगिकीकरण था ताकि अल्पविकसित देश धीरे–धीरे विदेशी सहायता का परित्याग कर दें।

डेविड मोरवैट्ज के अनुमान यह बताते हैं कि इस विकास कूटनीति के अपनाने से विकासशील देशों में 1950–75 के बीच **GNP** एवं प्रति व्यक्ति आय में 3.4 प्रतिशत

प्रति वर्ष औसत दर से वृद्धि हुई। परन्तु यह वृद्धि दर ऐसे देशों की गरीबी, बेरोजगारी तथा असमनताओं को दूर करनें में असफल रहीं।

आर्थिक विकास के सूचक के रूप में **GNP** के विरूद्ध अर्थशास्त्रियों के बीच आलोचनायें 1960 की दशाब्दी से बढ़ती जा रही थी। परन्तु सार्वजनिक तौर से प्रथम प्रहार प्रो0 सिराज ने 1969 में नई दिल्ली में आयोजित **Eleventh World Conference of the society for International Development** के अध्यक्षीय भाषण में किया। उसने समस्या को इस प्रकार प्रस्तुत किया, ''एक देश के विकास के बारे में पूछे जाने वाले प्रश्न हैं – गरीबी का क्या हो रहा है ? बेरोजगारी का क्या हो रहा है ? असमानता को क्या हो रहा है ? यदि यह तीनों ऊंचे स्तरों से कम हुए हैं तो बिना संशय के उस देश के लिए विकास की अवधि रही है। यदि इन मुख्य समस्याओं में से एक या दो अधिक बुरी अवस्था में हो जा रही हो, या तीनों ही निम्नता में हों तो परिणाम को विकास कहना आश्चर्यजनक होगा चाहे प्रति व्यक्ति आय दुगनी हुई हो।'' उस समय के विश्व बैंक के गर्वनर **रार्बट मैक्कनमारा** ने भी फरवरी 1970 में विकास शील देशों में GNP वृद्धि दर को आर्थिक विकास के सूचक की विफलता को इन शब्दों में स्वीकार किया– **''प्रथम विकास दशाब्दी में, GNP में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के विकास उद्देश्य को प्राप्त किया गया था। यह मुख्य उपलब्धि थी। परन्तु GNP में सापेक्षतया ऊंची वृद्धिदर विकास में संतोष जनक उन्नति न लाई। विकासशील विश्व में, दशाब्दी के अंत में, कुपोषण सामान्य है, शिशु मृत्यु दर ऊंची है, अशिक्षा विस्तृत है, बेरोजगारी स्थानिक रोग है जो और बढ़ जाता है, धन और आय का पुनर्वितरण अत्यन्त विषम है।''**

विकास की **GNP** प्रति व्यक्ति मापों से असंतुष्ट होकर, 1970 की दशाब्दी से आर्थिक विचारकों ने विकास प्रक्रिया की गुणवत्ता की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। जिसके अनुसार वे तीन महत्वपूर्ण विन्दुओं रोजगार को बढ़ाने, गरीबी को दूर करने तथा आय और धन की असमानताओं को कम करने के लिए मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं की कूटनीति पर बल देते हैं। इसके अनुसार, जनसाधारण को स्वास्थ्य, शिक्षा, जल, खुराक, कपड़े, आवास, काम आदि के रूप में मूलभूत भौतिक आवश्यकताएं और साथ ही सांस्कृतिक पहचान तथा जीवन और कार्य में उद्देश्य एवं सक्रिय भाग की भावना जैसी अभौतिक आवश्यकताएं प्रदान करना है। मुख्य उद्देश्य गरीबों को मूलभूत मानवीय आवश्यकताऐं प्रदान करके उनकी उत्पादकता बढ़ाना और गरीबी दूर करना है। यह तर्क दिया जाता है कि मूल भूत मानवीय आवश्यकताओं का प्रत्यक्ष प्रबन्ध करने से गरीबी पर थोड़े संसाधनों द्वारा और थोड़े समय में प्रभाव पड़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य मूल भूत आवश्यकताओं के रूप में मानव संसाधन विकास के उत्पादकता के उच्च स्तर प्राप्त होते हैं। ऐसा विशेषतौर से वहां होता है जहां ग्रामीण भूमिहीन अथवा शहरी गरीब पाये जाते हैं तथा जिनके पास दो हाथ और काम करने की इच्छा के सिवाय कोई भौतिक परिसम्पत्तियां नहीं होती हैं। इस कूटनीति के अंतर्गत मूलभूत न्यूनतम

आवश्यकताओं के अलावा, रोजगार के सुअवसरों, पिछड़े वर्गों के उत्थान तथा पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर बल देना और उचित कीमतों एवं दक्ष वितरण प्रणाली द्वारा आवश्यक वस्तुओं को गरीब वर्गों के लिए जुटाना है।

सामाजिक सूचकः—अब हम सामाजिक आर्थिक विकास के सूचकों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं जो कि निम्नवत हैं :—

अर्थशास्त्री सामाजिक सूचकों में तरह—तरह की मदों को शामिल कर लेते हैं। इसमें से कुछ आगतें हैं जैसे पौष्टिकता मापदण्ड या अस्पताल के बिस्तरों की संख्या या जनसंख्या के प्रतिव्यक्ति डॉक्टर, जबकि दूसरी कुछ मदें इन्हीं के अनुरूप निर्गतें हो सकती हैं, जैसे नवजात शिशुओं की मृत्यु दर के अनुसार स्वास्थ्य में सुधार, रोग दर, आदि। सामाजिक सूचकों को प्रायः विकास के लिए मूल आवश्यकताओं के संदर्भ में लिया जाता है। मूल आवश्यकताएं, गरीबों की मूल मानवीय आवश्यकताओं को उपलब्ध करा कर गरीबी उन्मूलन पर केन्द्रित होती है। स्वास्थ्य, शिक्षा, खाद्य, जल, स्वच्छता, तथा आवास जैसी प्रत्यक्ष सुविधाएं थोड़े से मौद्रिक संसाधनों तथा अल्पावधि में ही गरीबी पर प्रभाव डालती है। जबकि GNP प्रति व्यक्ति आय की कूटनीति उत्पादकता बढ़ाने तथा गरीबों की आय बढ़ाने के लिए दीर्घावधि में स्वतः ही कार्य करती है। मूल आवश्यकताओं की पूर्ति उच्च स्तर पर उत्पादकता तथा आय बढ़ाती है, जिन्हें शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं जैसे मानव विकास के साथ साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

प्रो0 हिक्स और स्ट्रीटन मूलभूत आवश्यकताओं के लिए छः सामाजिक सूचकों पर विचार करते हैं :—

मूल आवश्यकता		सूचक
1.	स्वास्थ्य	जन्म के समय जीवन की प्रत्याशा।
2.	शिक्षा	प्राथमिक शिक्षा विद्यालयों में जनसंख्या के प्रतिशत के अनुसार दाखिले द्वारा साक्षरता की दर।
3.	खाद्य	प्रति व्यक्ति कैलोरी आपूर्ति।
4.	जल आपूर्ति	शिशु मृत्यु दर तथा पीने योग्य पानी तक कितने प्रतिशत जनसंख्या की पहुंच।
5.	स्वच्छता	शिशु मृत्यु दर तथा स्वच्छता प्राप्त जनसंख्या का प्रतिशत।
6.	आवास	कोई नहीं।

सामाजिक सूचकों की विशेषता यह है कि वे लक्ष्यों से जुड़े और वे लक्ष्य हैं मानव विकास। आर्थिक विकास इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन है। सामाजिक सूचकों से पता चलता है कि कैसे विभिन्न देश वैकल्पिक उपयोगों के बीच अपने ळछच का आवंटन करते हैं। कुछ शिक्षा पर अधिक तथा अस्पतालों पर कम खर्च करना पसंद करते

हैं। इसके साथ साथ इनसे बहुत सी मूल आवश्यकताओं की उपस्थिति, अनुपस्थिति अथवा कमी के बारे में जानकारी मिलती है।

उर्पयुक्त सूचकों में प्रतिव्यक्ति कैलोरी आपूर्ति को छोड़कर शेष सूचक निर्गत सूचक हैं। निःसन्देह नवजात शिशुओं की मृत्युदर, स्वच्छता तथा साफ पेय जल सुविधाओं दोनों की सूचक है क्योंकि नवजात शिशु पानी से होने वाले रोगों का शीघ्र शिकार हो सकते हैं। नवजात शिशु मृत्युदर भोजन की पौष्टिकता से भी संबंधित है। इस प्रकार शिशुओं की मृत्युदर 6 में से 4 मूल आवश्यकताओं को मापती है।

कुछ सामाजिक सूचकों से संबंधित विकास का एक सामान्य सूचक बनाने में कुछ समस्यायें उत्पन्न होती हैं जो कि निम्नवत है–

प्रथम, ऐसे सूचक में शामिल किए जाने वाली मदों की संख्या और किस्मों के बारे में अर्थशास्त्रियों में एक मत नहीं है। उदाहरणार्थ, हेगन और संयुक्त राष्ट्र की सामाजिक विकास के लिए अन्वेषण संस्था 11 से 18 मदों का प्रयोग करते हैं। जिनमें से बहुत कम समान हैं। दूसरी ओर डी0 मौरिस तुलनात्मक अध्ययन के लिए विश्व के 23 विकसित और विकासशील देशों से संबंधित ''जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक'' बनाने के लिए केवल तीन मदों अर्थात जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्युदर और साक्षरता दर को लेता है।

दूसरे, विभिन्न मदों को भार देने की समस्या उत्पन्न होती है जो देश के सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक ढांचे पर निर्भर करती है। यह व्यक्तिपरक बन जाती है। मौरिस तीनों सूचकों को समान भार प्रदान करता है जो विभिन्न देशों के तुलनात्मक विश्लेषण के लिए सूचक का महत्व कम कर देता है। यदि प्रत्येक देश अपने सामाजिक सूचकों की सूची का चुनाव करता है और उनको भार प्रदान करता है तो उनकी अन्तर्राष्ट्रीय तुलनाएं उतनी ही गलत होंगी जितने की **GNP** के आंकड़े होते है।

तीसरे, सामाजिक सूचक वर्तमान कल्याण से सम्बन्धित होते हैं न कि भविष्य के कल्याण से।

चौथे, अधिकतर सूचक आगत हैं न कि निर्गत जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य आदि।

अन्तिम, उनमें मूल्य–निर्णय पाए जाते हैं। अतः मूल निर्णयों से बचने और सुगमता के लिए अर्थशास्त्री तथा यू0 एन0 के संगठन **GNP** एवं प्रति व्यक्ति आय को आर्थिक विकास के माप के रूप में प्रयोग करते हैं।

मूलभूत आवश्यकताएं बनाम आर्थिक वृद्धि

क्या आर्थिक वृद्धि और मूलभूत आश्यकताओं की कूटनीति के बीच कोई विवाद है ? जैसा कि पहले कहा गया है, मूलभूत आवश्यकताएं लक्ष्यों से संबंधित हैं और आर्थिक वृद्धि इन लक्ष्यों को पाने का साधन। अतः आर्थिक वृद्धि तथा मूलभूत आवश्यकताओं में कोई विरोध नहीं है। गोल्डस्टीन ने शिशु मृत्युदर के माध्यम से आर्थिक वृद्धि तथा मूलभूत आवश्यकताओं के बीच गहरा संबंध पाया है। वह आर्थिक विकास को कुशलता का नाम देता है। उसके अनुसार, शिशुओं की मृत्यु दर को 5 प्रतिशत से कम रखने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए GDP का स्तर आवश्यक है। जो देश अपने GDP का एक बड़ा

हिस्सा अथवा प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च करते हैं, वे अधिक कुशल हैं, क्योंकि इस प्रकार वे शिशु मृत्युदर को घटाने में सफल हो जाते हैं। गोल्ड स्टीन ने पाया कि कुछ विकासशील देशों ने अपने थोड़े से संसाधनों को शिक्षा तथा स्वास्थ्य की मूल आवश्यकताओं को पूर्ण करने में लगाया। अपने विभिन्न वर्गों के अध्ययन में उसने स्कूलों में दाखिले तथा महिलाओं में स्वास्थ्य के साथ–साथ शिक्षा की प्राप्ति को लिया। उसने पाया कि कुछ विकासशील देशों ने बहुत थोड़े संसाधनों को शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यताओं को पूरा करने के लिए लगाया। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जो विकासशील देश प्राथमिक स्कूली शिक्षा तथा महिला शिक्षा पर अधिक ध्यान देते हैं, वे इन मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कम खर्च करके भी अधिक विकास कर सकते हैं।

फाई, रैनिस तथा स्टूअर्ट के अनुसार विकासशील देशों में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पर खर्च करने से उत्पादक निवेश में कमी नहीं होती। उन्होंने नौ देशों का सैम्पल लिया। उनके अध्ययन से पता चलता है कि ताईवान, दक्षिण कोरिया, फिलीपीन्स, उरूग्वे तथा थाईलैण्ड ने मूलभूत आवश्यकताओं का अच्छा प्रबन्ध किया तथा उनके निवेश अनुपात भी औसत से अधिक थे। जबकि कोलम्बिया, क्यूबा, जमैका तथा श्रीलंका ने अच्छी मूलभूत आवश्यकताओं के साथ–साथ औसत निवेश अनुपात रखें। उन्होंने नौ विभिन्न देशों के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में किए गए कार्य को औसत से अधिक तथा औसत से कम आर्थिक वृद्धि के साथ भी संबद्ध किया। इनमे से ताइवान, दक्षिण कोरिया तथा इंडोनेशिया ऐसे हैं जिन्होंने मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ–साथ औसत से अधिक आर्थिक वृद्धि की। ब्राजील ने मात्र न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया तथा औसत से अधिक आर्थिक वृद्धि भी की। जबकि दूसरी ओर सोमाली, श्रीलंका, क्यूबा तथा मिस्र की आर्थिक वृद्धि दर औसत से कम रही। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मूलभूत आवश्यकताओं के अधिक प्रावधान करने से आर्थिक वृद्धि भी होती है। नॉरमन हिक्स ने भी अपने अध्ययन में यह दर्शाया है कि कई विकासशील देशों की आर्थिक वृद्धि की दर मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति द्वारा बढ़ी है।

आईए अब, दीर्घकाल में GNP प्रति व्यक्ति GNP मूलभूत आवश्यकताओं तथा कल्याण धारणाओं की आर्थिक विकास पर प्रभावों की तुलना करें। चित्र 1.2 में तीन पर्थ A_1, A_2 तथा A_3 दिखाएं गए हैं। इसमें समय को क्षैतिज अक्ष पर रखा गया है तथा विकास की दर को अनुलंब अक्ष पर गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग द्वारा मापा गया है। पथ A1 का संबंध GNP/प्रति व्यक्ति GNP कूटनीति से है। स्पष्ट है कि आरंभ में गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग समय T_1 तक घटता है क्योंकि तेजी से उद्योगीकरण तथा शहरीकरण से गरीबी, बेरोजगारी तथा असमानता में वृद्धि होती है। लेकिन जब GNP प्रति व्यक्ति GNP में वृद्धि के लाभ गरीबों तक 'रिस कर' पहुंचते हैं तो उनके रोजगार तथा आय में वृद्धि होती है तथा समय T_1 के बाद प्रति व्यक्ति उपभोग में भी वृद्धि होनी आरंभ हो जाती है।

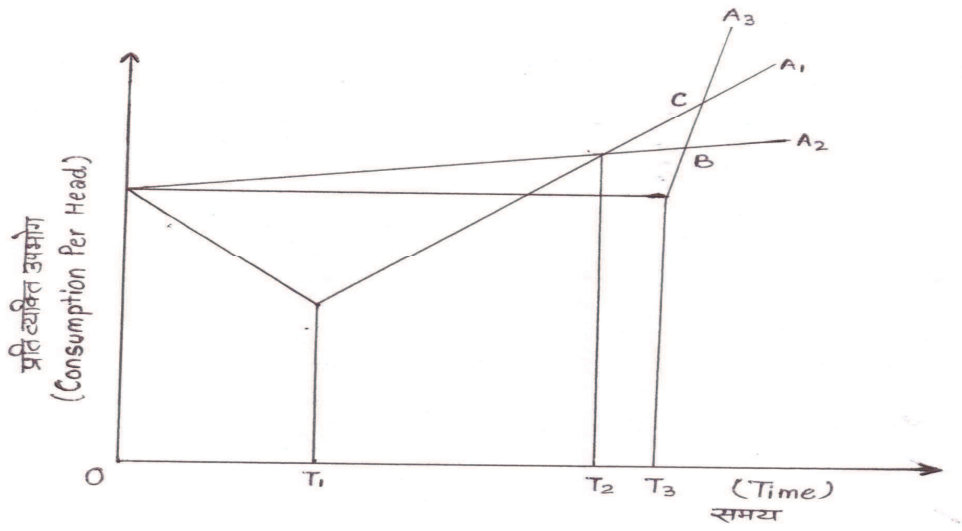

चित्र 2.2

पथ A_2 का संबंध कल्याण धारणा से है जो गरीबों में प्रति व्यक्ति उपभोग की धीमी वृद्धि को दर्शाता है। यह पथ समय T_2 से पथ A_1 से पीछे रहता है।

पथ A3 मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति से संबंधित है। आरम्भ में गरीबों में उपभोग के मूल न्यूनतम वर्तमान स्तर को प्राप्त करने को उच्च प्राथमिकता दी जाती है जो समय T_3 तक कल्याण तथा GNP प्रति व्यक्ति GNP के उपभोग स्तरों से कम हो सकता है। जब एक दीर्घ अवधि में गरीबों की मूलभूत आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं तथा उनकी उत्पादकता तथा आय के स्तरों में वृद्धि हो जाती है तो समय T_3 से आगे आर्थिक वृद्धि तेजी से होने लगती है। पथ A_3 पहले पथ A_2 को B बिन्दु पर पीछे छोड़ देता है तथा बाद में C बिन्दु पर पथ A_1 को। इस प्रकार मूलभूत आवश्यकताओं की कूटनीति GNP प्रति व्यक्ति GNP और कल्याण की आर्थिक विकास की कूटनीति से बेहतर है।

2.6 मानव विकास सूचक एवं आर्थिक विकास

अर्थशास्त्रियों ने एक, दो अथवा अधिक संकेतकों को लेकर मानव विकास के सम्मिश्र सूचकों के निर्माण के लिए मूल आवश्यकताओं के सामाजिक सूचकों को मापने का प्रयास किया है। अब मौरिस द्वारा विकसित जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा विकसित मानव विकास सूचक (HDI) का अध्ययन करेंगे।

1.जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक

मौरिस डी0 मौरिस ने 1979 में 23 विकसित तथा विकासशील देशों के जीवन की सम्मिश्र भौतिक गुणवत्ता का तुलनात्मक अध्ययन किया। उसने शिशु मृत्युदर, एक वर्ष की आयु में जीवन सम्भाव्यता तथा 15 वर्ष की आयु में मूल शिक्षा जैसे तीन सूचक घटकों को, लोगों

की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने के कार्य के मूल्यांकन के लिए जोड़ा। इस सूचक से बहुत से सूचकों, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, पोषण तथा स्वच्छता आदि का पता चलता है। प्रत्येक सूचक के तीनों घटकों को शून्य से 100 तक के पैमाने पर रखा गया है जिसमें शून्य को मन्दतम तथा 100 को सर्वोत्तम प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। PQLI सूचक की गणना तीनों घटकों को समान भार देते हुए औसत निकाल कर की जाती है तथा सूचक को भी शून्य से 100 के पैमाने पर रखा गया है।

मौरिस के अनुसार तीनों सूचकों में से प्रत्येक सूचक परिणाम को मापता है न कि आगतों को, जैसे आय। प्रत्येक सूचक आवंटन प्रभावों के प्रति संवेदनशील है अर्थात इन सूचकों में वृद्धि अथवा सुधार से लोगों को उसी अनुपात में मिलने वाले लाभ का पता चलता है। परन्तु कोई भी सूचक विकास के किसी स्तर विशेष पर निर्भर नहीं है। प्रत्येक सूचक की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की जा सकती है। सन् 1950 में गेबन की शिशु मृत्युदर 229 प्रति हजार को मन्दत्तम मानते हुए मौरिस ने इसे शून्य पर स्थिर कर दिया, तथा इसकी उच्चतम सीमा को सन् 2000 तक 7 प्रति हजार का लक्ष्य बनाया गया। इसी प्रकार, वियतनाम में एक वर्ष की आयु पर जीवन संभव्यता सन् 1950 में 38 वर्ष ली। इसे मौरिस ने जीवन संभव्यता सूचक पर शून्य का स्थान दिया। उसकी उच्चतम सीमा पुरूषों में तथा महिलाओं को मिलाकर सन् 2000 तक 77 वर्ष रखी गई। अंत में, 15 वर्ष की आयु में शिक्षा की दर को शिक्षा सूचक बनाया गया। मौरिस ने इसके सहसंबंध निम्न अनुसार प्रस्तुत किए हैं :–

(N = 150)	शिशु मृत्युदर	जीवन संभव्यता
एक वर्ष की आयु में जीवन की संभव्यता	0.919	0.897

एक वर्ष की आयु में जीवन संभव्यता तथा शिशु मृत्युदर के बीच सहसंबंध का गुणांक उच्च डिग्री तथा ऋणात्मक है। इस प्रकार का सहसंबंध शिक्षा तथा शिशु मृत्युदर के बीच है अर्थात शिक्षा के साथ शिशु मृत्युदर में गिरावट आती है। शिक्षा तथा जीवन संभव्यता के बीच गुणांक ऊंची डिग्री का धनात्मक सह–संबंध दर्शाता है अर्थात शिक्षा के साथ–साथ जीवन संभव्यता में भी वृद्धि होती है। मौरिस के अनुसार एक वर्ष की आयु में जीवन संभाव्यता तथा शिशु मृत्युता जीवन की भौतिक गुणवत्ता के बहुत अच्छे सूचक हैं और यही बात शिक्षा तथा जीवन संभाव्यता के बारे में कही गई है। वास्तव में शिक्षा सूचक विकास की संभाव्यता को व्यक्त करता है :–

देश	(PQLI)			औसत वार्षिक GNP प्रति
	1950	1960	1970	व्यक्ति वृद्धि दर %
भारत	14	30	40	1.8
श्रीलंका	65	75	80	1.9
इटली	80	87	92	5.0
संयुक्त राज्य अमेरिका	89	91	93	2.4

उपर्युक्त तालिका से पता चलता है कि भारत जिसे मौरिस ''बास्केट केस'' कहता है, अपनी GNP प्रति व्यक्ति 1.8 की धीमी वृद्धि के बावजूद 1950 से 1970 तक की दो दशकों की अवधि में इसके PQLI में 14 से 40 तक की धीमी, परन्तु कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। उसी अवधि के दौरान श्रीलंका का PQLI भारत से कहीं अधिक था, हालांकि इसकी औसत GNP प्रति व्यक्ति वृद्धि दर (1.9%) लगभग भारत में बराबर रही। अमेरिका तथा इटली दोनों विकसित देशों का PQLI काफी ऊंचा था। परन्तु इटली की प्रति व्यक्ति GNP दर (5%) अमेरिका (2.4%) से लगभग दुगुनी थी। इस संदर्भ में मौरिस ने देखा की प्रति व्यक्ति GNP दर तथा PQLI के बीच कोई स्वतः तालमेल नहीं है। वास्तव में, सामाजिक संबंधों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति, पोषण संबंधी दर्जा, लोगों का स्वास्थ्य, शिक्षा तथा पारिवारिक वातावरण, किसी समाज के PQLI को निर्धारित करते हैं। इसके अतिरिक्त उच्च PQLI को बनाने तथा बनाए रखने में सहायक संस्थागत प्रबंध के निर्माण में बहुत समय लग जाता है।

इसकी सीमाएं :–मोरिस ने यह स्वीकार किया है कि PQLI मूल आवश्यकताओं को केवल एक सीमा तक ही माप सकता है। यह GNP का परिपूरक है न कि विस्थापक। यह आर्थिक वृद्धि को मापने का काम भी नहीं करता है। इसके अतिरिक्त यह सामाजिक और आर्थिक संगठन के बदलते हुए ढांचे को भी नहीं दर्शाता। इसी प्रकार यह कुल कल्याण को भी नहीं मापता है। फिर भी, यह जीवन की गुणवत्ताओं को मापता है जो गरीबों के लिए बहुत जरूरी है।

मौरिस द्वारा PQLI के प्रयुक्त तीन चरों को मनगढ़ंत भार देने के कारण मौरिस की आलोचना हुई। प्रो0 मायर के अनुसार PQLI द्वारा लिए गए गैर–आय वाले घटक महत्वपूर्ण हैं परन्तु उतने ही महत्वपूर्ण समग्र गरीबी सूचकांक को प्राप्त करने के लिए समूहन के वितरण, संवेदनशील तरीके, आय तथा उपभोग के आंकड़े भी होते हैं।

इन सीमाओं के बावजूद PQLI अल्पविकसित देशो के विशेष क्षेत्रों का पता लगाने तथा सामाजिक नीतियों की असफलता अथवा उपेक्षा के शिकार समाज के विभिन्न वर्गों की जानकारी प्राप्त करने में काम आ सकता है। यह उस सूचक की ओर इंगित करता है जहां तुरंत कार्यवाही की आवश्यकता है। सरकार ऐसी नीतियां अपना सकती है जिससे PQLI में भी शीघ्र वृद्धि हो तथा आर्थिक विकास भी बढ़े। 1990 में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) अपनी वार्षिक मानव विकास रिपोर्ट को मानव विकास सूचक (HDI)के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। HDI तीन सामाजिक सूचकों का एक मिश्रित सूचक है। जीवन संभाव्यता, व्यस्क शिक्षा तथा स्कूली वर्ष। इसमें वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP का भी ध्यान रखा जाता है। अतः HDI तीन आधारभूत पहलुओं में उपलब्धियों का एक मिश्रित सूचक है। जिसमें एक लम्बा व स्वस्थ जीवन, ज्ञान तथा उत्कृष्ट जीवन स्तर सम्मिलित है। किसी देश के HDI का मूल्य निकालने के लिए तीन सूचकों को लिया जाता है।

1.दीर्घायु –इसे जन्म के समय जीवन की संभाव्यता द्वारा मापा जाता है। जो कि 25 वर्ष से 85 वर्ष के बीच होती है।

2.शैक्षिक योग्यताओं की प्राप्ति– जिसे व्यस्क शिक्षा (दो तिहाई भार) तथा प्राथमिक, माध्यमिक व क्षेत्रीय विद्यालयों में उपस्थित अनुपातों (एक तिहाई भार) के मिश्रण के रूप में मापा जाता है। उदाहरणार्थ, व्यस्क शिक्षा : 0% से 100% तथा दाखिलों का मिश्रित अनुपात : 0 % से 100%।

3.जीवन स्तर– जिसे क्रय शक्ति समता (purcashing power parity) पर आधारित वास्तविक प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (GDP) द्वारा मापा जाता है।

HDI जीवन की संभाव्यता सूचक, शैक्षिक प्राप्तियां सूचक तथा समायोजित वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP सूचक का सरल औसत सूचक है। इसकी गणना इन तीनों संकेतकों के योग को 3 से विभाजित कर निकाली जाती है। इसमें प्रत्येक चर का न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्य स्थिर है, जिसे घटाकर शून्य (0) तथा एक (1) के बीच पैमाने पर रखा गया है तथा प्रत्येक देश इस पैमाने के किसी न किसी बिन्दु पर आता है।

प्रत्येक देश का HDI मूल्य यह दर्शाता है कि उसे अपने कुछ परिभाषित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कितना प्रयास करना है : 85 वर्ष के औसत जीवन की अवधि, सभी के लिए शिक्षा की उपलब्धि तथा उत्कृष्ट जीवन स्तर के आधार पर HDI एक दूसरे के संबंध में विभिन्न देशों के क्रम (rank) तय करता है। किसी भी देश का HDI क्रम विश्व आवंटन के बीच ही तय होता है। उदाहरणार्थ, यह क्रम प्रत्येक विकसित तथा विकासशील देशों से संबंधित अपने HDI मूल्य पर आधारित है। जिसके लिए उस देश द्वारा HDI न्यूनतम मूल्य शून्य (0) से HDI अधिकतम मूल्य एक (1) तक प्रयास किए गए। ऐसे देश जिनका HDI मूल्य 0.5 से कम है उन्हें निम्नस्तर के मानव विकास तथा 0.5 से 0.8 मूल्य वाले देशों को मध्यम तथा 0.8 से ऊपर HDI मूल्य वाले देश उच्च स्तर में गिने जाते हैं। HDI में देशों को उनके प्रति व्यक्ति GDP के आधार पर भी क्रमबद्ध किया जाता है।

मानव विकास रिपोर्ट 1996 में 174 विकसित एवं विकासशील देशों से सम्बन्धित वर्ष 1993 की वास्तविक प्रति व्यक्ति ळक्च के क्रम में HDI मूल्य तथा HDI क्रम प्रस्तुत किए गए हैं। जिन 174 देशों के HDI की गणना की गई थी उनमें से 57 उच्च विकास वर्ग (0.8 से 0.95) में थे। 69 मध्यम वर्ग (0.5 से 0.79) में तथा 48 निम्न वर्ग (0.48 से 0.2) में थे। कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान HDI में उच्च वर्ग के 26 विकसित देशों में सबसे आगे थे। उस वर्ग में सबसे अन्तिम क्रम 57 पर रूसी संघ था। 26 विकासशील देशों में हांगकांग, साइप्रस, बारबाडोस प्रथम तीन क्रम में थे। मध्यम वर्ग में विघटित सोवियत संघ के अधिकांश देशों सहित 16 विकसित तथा 53 विकासशील देश थे। इस वर्ग में ब्राजील सबसे आगे 58वें क्रम पर रहा। श्रीलंका 89वें क्रम पर तथा चीन 108वें क्रम पर रहा। निम्न वर्ग में 48 विकासशील देश थे जिनमें सबसे ऊपर कैमरून, केन्या तथा

घाना थे। पाकिस्तान का भ्क्प् क्रम 134 तथा भारत का 135 था जबकि बांग्लादेश 143 तथा नेपाल 151वें क्रम पर रहे, जैसा कि तालिका 2.1 में दर्शाया गया है।

तालिका 2.1 चुने हुए देशों का मानव विकास सूचक, 1993

वास्तविक GDP*

देश HDI	मूल्य HDI	HDI क्रम (Rank)	वास्तविक GDP प्रति व्यक्ति क्रम (PPP)	प्रति व्यक्ति क्रम घटा HDI क्रम
उच्च मानव विकास, विकसित देश				
कनाडा	0.951	1	7	6
संयुक्त राज्य अमेरिका	0.940	2	2	0
जापान	0.938	3	9	6
सोवियत संघ	0.804	57	65	8
विकासशील देश				
हांगकांग	0.909	22	6	−16
साइप्रस	0.909	23	30	7
बारबाडोस	0.906	25	36	11
कोस्टारिका	0.884	31	54	23
मलेशिया	0.826	53	45	−9
मॉरिशस	0.825	54	33	−21
2. मध्यम मानव विकास				
ब्राजील	0.796	58	58	0
श्रीलंका	0.689	89	96	8
मिश्र	0.611	106	76	−30
चीन	0.609	108	110	3
वियतनाम	0.540	121	147	27
3. निम्न मानव विकास				
कैमरून	0.482	127	114	−12
केन्या	0.473	128	136	9
घाना	0.467	129	124	−4
पाकिस्तान	0.442	134	118	−15
भारत	0.436	135	141	7
नेपाल	0.332	151	149	−2
भूटान	0.307	159	157	−2

एक धनात्मक आंकड़ा यह बताता है कि वास्तविक GDP प्रति व्यक्ति क्रम से HDI क्रम ऊचा है। ऋणात्मक आंकड़ा इसके विपरीत बताता है।

HDI क्रम वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP से विशेष रूप से भिन्न हैं। ऐसे देश जिनका GDP क्रम HDI क्रम से ऊंचा है उनकी उच्च आय के लोगों का अधिक साम्यता से आवंटित करने की पर्याप्त क्षमता ;च्वजमदजपंसद्ध है। ऐसे 21 देश थे जिनका GDP क्रम उनके HDI क्रम से 20 स्थान ऊंचा था। इनमें मॉरिशस (–21) तथा मिश्र (–30) पर थे। ऐसे देश जिनका HDI क्रम उनके GDP क्रम से अधिक है, यह दर्शाते हैं कि उन्होंने अपनी आय को प्रभावी ढंग से अपने लोगों का जीवन स्तर सुधारने में प्रयोग किया है। ऐसे 16 देश थे जिनका भ्क्ष् क्रम उनके ळक्च् क्रम से ऊंचा था। इसमें से कोस्टारिका (23) तथा वियतनाम (27) थे। इस प्रकार HDI यह दर्शाता है कि कई देशों के प्रति व्यक्ति **GDP** स्तर समान हो सकते हैं परन्तु उनकी मानव विकास उपलब्धियां भिन्न हो सकती है या फिर HDI समान हो सकते हैं परन्तु उनकी मानव विकास उपलब्धियां भिन्न हो सकती है या फिर HDI समान हो सकते हैं परन्तु GDP प्रति व्यक्ति स्तर भिन्न हो सकते हैं

HDI हमें विकास की प्रगति के बारे में बताता है। मानव विकास रिपोर्ट में कहा गया है कि निम्न मानव विकास वाले देशों को मानव विकास की उच्च श्रेणी तक पहुंचने में 200 से भी अधिक वर्ष लग सकते हैं। चीन इस स्तर तक 25 वर्षों में पहुंच जाएगा, जबकि भारत को अभी 100 वर्ष लगेंगे। परन्तु ये सब तो मात्र कच्चे अनुमान हैं।

इसकी सीमाएं :–HDI की भी अपनी सीमाएं हैं। **प्रथम,** केवल तीन सूचक ही मानव विकास के सूचक नहीं हैं। शिशु मृत्युदर, पोषण आदि अन्य सूचक भी हो सकते हैं। **द्वितीय,** HDI निरपेक्ष (absolute) की बजाय सापेक्ष भ्क्ष् मानव विकास को मापता है। यदि सभी देश समान भारित दर से अपने भ्क्ष् मूल्य को सुधार लें तो निम्न मानव विकास वाले देशों के सुधार का पता नहीं चल पाएगा। **तृतीय,** किसी देश का HDI वहां पाई जाने वाली ऊंची असमानता को दूर करने के लक्ष्य से भटक सकता है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. ..... अर्थशास्त्री किसी देश में सोने एवं चांदी की मात्रा को ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक मानते थे।(वाणिकवादी, समाजवादी, भाग्यावादी)
2. राष्ट्रीय आय सदैव .....मापी जाती है। (मुद्रा में, कीमत में, पूर्ति में)
3. सभी माल सूची परिवर्तन चाहे ऋणात्मक हों या धनात्मक .....शामिल किये जाते हैं। (जी0एन0पी0, जी0डी0पी0, एन0एन0पी0)
4. जब पूंजी मूल्य ह्रास को .....में से घटा दिया जाता है तो एन0एन0पी0 प्राप्त होती है। (जी0एन0पी0, जी0डी0पी0, एन0एन0पी0)

5. .....देशों में एक महत्वपूर्ण अमौद्रिक क्षेत्र होता है। (अल्पविकसित, विकसित, सभी)
6. अल्पविकसित देशों में अधिकतर लो ..... होते हैं। (अशिक्षित, शिक्षित, कुशल)
7. राष्ट्रीय आय के दृष्टिकोण से राष्ट्र की परिभाषा .....सीमाओं को पार कर जाती है। (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक)
8. राष्ट्रीय आय में .....क्रियाओं से प्राप्त आय सम्मिलित नहीं की जाती। (वैध, अवैध, हानियों)

बहुविकल्पीय प्रश्न

9. जी0एन0पी0 में क्या सम्मलित नहीं होता–
   A. मूल्य ह्रास B. चालू वर्ष का अंतिम उत्पादन
   C. हस्तांतरण भुगतान D. उपर्युक्त में से कोई नहीं
10. जी0एन0पी0 में सम्मलित होता है।
   A. मध्यवर्ती उत्पादन B. अन्तिम उत्पादन
   C. उपर्युक्त दोनों D. उपर्युक्त में से कोई नहीं
11. 'बड़े धक्के' विकास सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया।
   A. लुईस ने B. लीविंसटीन ने
   C. रोडान ने D. सभी ने
12. 'संतुलित विकास' का सिद्धांत किसने दिया
   A. नर्क्से ने B. डोमर ने
   C. रोस्टोव ने D. सभी ने
13. क्रांतिक न्यूनतम प्रयास सिद्धांत का सुझाव किसने दिया?
   A. हर्शमैन B. रोस्टोव
   C. लेबेंसटीन D. मार्शल
14. विकसित तथा विकासशील देशों के जीवन की सम्मिश्र भौतिक गुणवत्ता का तुलनात्मक अध्ययन किसने किया?
   A. मौरिस डी मौरिस B. हारिस डी हारिस
   C. एल्सर्वथ D. उपर्युक्त सभी
15. हर्षमैन ने कौन सा सिद्धांत दिया?
   A. संतुलित विकास B. बड़ा धक्का
   C. छोटा धक्का D. असंतुलित विकास

2.7 सारांश

आर्थिक विकास का उपयुक्त मापदण्ड क्या हो ? यह समस्या आज भी अपने में विवादग्रस्त बनी हुई है। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक न होगा कि आर्थिक विकास के अभिसूचक

के रूप में मुख्य विवाद 'राष्ट्रीय आय' व 'प्रति व्यक्ति आय' के बीच है। चूंकि इन दोनों मापदण्डों के अपने–अपने गुण व दोष हैं इसलिए सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के लिए किसी एक ही मापदण्ड का चुनाव करना न तो सम्भव है और न उचित ही है। हमारी राय में विकसित देशों के आर्थिक विकास का एक अभिसूचक राष्ट्रीय आय में वृद्धि माना जाना चाहिये और अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास की कसौटी हेतु प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि को स्वीकार किया जा सकता है। वैसे अधिकांश अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति आय मापदण्ड का अधिक समर्थन करते हैं।

2.8 शब्दावली

- **सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)-** एक अर्थव्यवस्था में अंतिम रूप से उत्पादत की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं का समस्त मौद्रिक मुल्य को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है।
- **आर्थिक कल्याण–** आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे मुद्रा के माप दण्ड से प्रत्यक अथवा परोक्ष रूप से सम्बन्धित किया जा सकता है।
- **सकल घरेलू उत्पाद (GDP):-** एक वर्ष की अवधि में जितनी वस्तुओं एवं सेवाओं का किसी देश में उत्पादन होता है उसका बाजार कीमतों पर मौद्रिक मूल्य सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहलाता है।
- **मानवीय पूंजी निर्माण–** भारतीय पूंजी निर्माण का सम्बन्ध उस विनियोग से है जो धन के उत्पादकों के रूप में लोगों की योग्यताओं एवं क्षमताओं में सुधार करने के उद्देश्य से किया जाता है।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. वाणिज्यकवादी 2. मुद्रा में 3 जी0एन0पी0, 4. जी0एन0पी0 5. अल्पविकसित

6. अशिक्षित 7. राजनैतिक 8. अवैध

बहुविकल्पीय प्रश्न

9. C, 10. B, 11.C, 12. A 13. C , 14. A, 15. D

2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

3. एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
4. धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

2.11 सहायक अध्ययन सामग्री

1. Measuring the Conditions of the World's Poor : The Physical Quality of Life Index 1979.
2. Norman L. Hicks and Paul P. Streeten, "Indicators of Development : The Search for a Basic Needs Yardstick," World Development. Vol. 7 1979.
3. N.S. Buchanan and E. Ellis, Approaches of Economic Development,.
4. C.H. Fei. G. Ranis and F. Stewart, basic Needs : A Framework for Analysis, 1979
5. Everett E. Hagen A farmeswork forAnalysing Economic and Policical Development in Rebert E Asher (ed) Development of Emerging countries Donald H. Niewiaroski - the level of Living of Nations.
6. Irma Adelman Society, Politics and Economic Development.
7. Morris D. Morris Measuring the condition of the world's poor. The Physical quality of Lite Index.
8. F. H. Harbimsan and others - Quantitative Analysis of Modernisation and development

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक संवृद्धि को परिभाषित कीजिए। इसका मापन कैसे किया जा सकता है?
2. आर्थिक विकास के अभिसूचक स्पष्ट कीजिए। आर्थिक और सामाजिक अभिसूचकों में अंतर कीजिए।
3. आर्थिक विकास को परिभाषित कीजिए। आर्थिक विकास के विभिन्न मापों का विवेचन कीजिए। इनमें से आप किसको सर्वाधिक उपयुक्त समझते हैं। और क्यों ?
4. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि कहां तक आर्थिक विकास का संतोषजनक माप प्रस्तुत करती है।
5. प्रति व्यक्ति आय द्वारा मापी गई आर्थिक संवृद्धि से समाज के कल्याण में वृद्धि नहीं होती है।' व्याख्या कीजिए।

इकाई 3 अल्पविकसित देश आशय एवं विशेषताएं

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 अल्पविकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्था

3.4 अल्पविकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषतायें

3.5 विकसित तथा अल्पविकसित देश में अन्तर

3.6 भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 सहायक अध्ययन सामग्री

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मोटे तौर पर विश्व के देशों को दो भागों में बांटा जाता है – विकसित तथा अल्पविकसित अथवा धनी तथा निर्धन राष्ट्र। निर्धन देशों को कई नामों से पुकारा जाता है जैस निर्धन, पिछड़े, अल्प विकसित, अविकसित और विकासशील देश। वैसे तो यह सभी शब्द पर्यायवाची है परन्तु इनके प्रयोग में मतभेद रहा है। उदाहरण के तौर पर मायर एवं बाल्डविन और बारबरा वार्ड ने 'अल्प–विकसित' के बजाय 'निर्धन' शब्द को वारीयता दी है क्योंकि उनके मतानुसार अल्प विकसित शब्द अल्प विकास के अत्यधिक असमान स्वरों (स्तरों) को एक साथ जोड़ देता है। अल्पविकसित देशों के लिए 'पिछड़ा' शब्द भी उपयुक्त नहीं है क्योंकि पिछड़ा और निर्धन, यह दोनों शब्द इन देशों के लोगों की भावना एवं आत्म गौरव को ठेस पहुंचाते हैं। **प्रो0 गुन्नार मिर्डल** ने इसी कारण एक अधिक गतिशील एवं व्यापक शब्द 'अल्प विकसित' का समर्थन किया है हमारी राय में यह अधिक उपयुक्त हैं क्योंकि यह शब्द विकास की दो चरम सीमाओं–अविकसित और विकसित – के मध्य में स्थित होने के कारण इन देशों को अगले छोर पर पहुंचने के लिये प्रेरित करता है।

यहॉ आपको यह बताना आवश्यक है कि हाल के वर्षों में ऐसे देशों के लिये तुलनात्मक रूप में एक अधिक सम्मानजनक शब्द **'विकासशील देश'** का प्रयोग होने लगा है। भले ही यह शब्द कर्णप्रिय है परन्तु सही अर्थों में यह शब्द एक अवरूद्ध अर्थव्यवस्था के बजाय विकास की ओर पलायन करती हुई अर्थ व्यवस्था का प्रतीक है। उदाहरणार्थ, एक अल्प विकसित देश मे जन्म व मृत्युदर दोनों ऊंची होती हैं जबकि विकासशील देश में ऊचीं जन्म दर के बावजूद मृत्युदर घटने लगती है। हाल ही में इन देशों के लिये एक नया शब्द **'तीसरा विश्व'** प्रयुक्त होने लगा है। बहरहाल इस विवाद को यहीं विराम देते हुए हम इन सभी शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में करेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि :–

- अल्पविकसित अर्थव्यवस्था किसे कहते है।
- विकासशील अर्थव्यवस्था से संबंधित विभिन्न परिभाषायें क्या हैं।
- अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की विशेषतायें क्या हैं।
- अल्पविकसित तथा विकसित अर्थव्यवस्था में प्रमुख अन्तर क्या है।
- क्या भारतीय अर्थव्यवस्था विकासशील अर्थव्यवस्था है।

3.3 अल्पविकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्था

अल्प विकास या अल्प विकसित देश को परिभाषित करना काफी कठिन है। **प्रो0 सिंगर** का भी मत है कि 'एक अल्प विकसित देश 'जिराफ' की भांति है जिसका वर्णन करना कठिन है। लेकिन जब हम इसे देखते हैं तो समझ जाते हैं।' वैसे अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के अनेक मापदण्ड प्रस्तुत किये गए हैं जैसे निर्धनता, अज्ञानता, निम्न प्रति व्यक्ति आय,

राष्ट्रीय आय का असमान वितरण, जनसंख्या भूमि अनुपात, प्रशासनिक अयोग्यता, सामाजिक बाधायें इत्यादि।

प्रो0 डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 सिंगर – का मत है कि अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को परिभाषित करने का कोई भी प्रयास, समय को बर्बाद करना है। फिर भी किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह आवश्यक होगा कि कुछ प्रचलित परिभाषाओं का अध्ययन कर लिया जाए।

संयुक्त राष्ट्र संघ – की एक विज्ञप्ति के अनुसार ''अल्प विकसित देश वह है जिसकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा पश्चिम यूरोपीय देशों की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की तुलना में कम है।''

प्रो0 मेकलियोड – के मतानुसार ''एक अल्प विकसित देश अथवा क्षेत्र वह है जिसमें उत्पत्ति के अन्य साधनों की तुलना में उद्यम एवं पूंजी का अपेक्षाकृत कम अनुपात है परन्तु जहां विकास सम्भाव्यतायें विद्यमान हैं और अतिरिक्त पूंजी को लाभजनक कार्यों में विनियोजित किया जा सकता है।''

प्रो0 जे0 आर0 हिक्स – के शब्दों में ''एक अल्प विकसित देश वह देश है जिसमें प्रौद्योगिकीय और मौद्रिक साधनों की मात्रा, उत्पादन एवं बचत की वास्तविक मात्रा की भांति कम होती है, जिसके फलस्वरूप प्रति श्रमिक को औसत पुरस्कार उस राशि से बहुत कम मिलता है जो प्राविधिक विकास की अवस्था में उसे प्राप्त हो पाता है।''

यह परिभाषा केवल प्रावधिक घटक पर ध्यान देने के कारण एकांगी मानी जाती है। प्राविधिक घटक के अलावा कुछ अन्य महत्वपूर्ण आर्थिक, प्राकृतिक, सामाजिक घटकों को दृष्टि में नहीं रखा गया है।

प्रो0 ऑस्कर लैंज – की दृष्टि में 'एक अल्प–विकसित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें पूंजीगत वस्तुओं की उपलब्ध मात्रा देश की कुल श्रम शक्ति को आधुनिक तकनीक के आधार पर उपयोग करने के लिये पर्याप्त नहीं है।''

ऑस्कर लैंज एवं नर्कसे के विचार मेकलियोड की भांति ही त्रुटिपूर्ण है। आर्थिक विकास के लिए पूंजी एक आवश्यक शर्त है परन्तु एक मात्र नहीं। परिभाषा में अन्य आवश्यक तत्वों की ओर संकेत नहीं किया गया है।

जैकब वाईनर – के अनुसार 'अल्प विकसित देश वह देश है जिसमें अधिक पूंजी अथवा अधिक श्रम–शक्ति अथवा अधिक उपलब्ध साधनों अथवा इन सबको उपयोग करने की पर्याप्त संभावनायें हों, जिससे कि वर्तमान जनसंख्या के रहन सहन के स्तर को ऊंचा उठाया जा सके, और यदि प्रति व्यक्ति आय पहले से ही काफी अधिक है तो रहन सहन क स्तर को कम किये बिना, अधिक जनसंख्या का निर्वाह किया जा सके।

यूजीन स्टैले – के विचारानुसार 'अल्प विकसित देश वह देश है जहां जनसाधारण में दरिद्रता व्याप्त है जो अत्यन्त स्थायी व पुरातन है, जो किसी अस्थायी दुर्भाग्य का परिणाम नहीं है, बल्कि उत्पादन के घिसे पिटे परम्परागत तरीकों और अनुपयुक्त सामाजिक व्यवस्था के कारण हैं। जिसका अभिप्राय यह है कि दरिद्रता केवल प्राकृतिक साधनों की कमी के

कारण नहीं होती है और इसे अन्य देशों में श्रेष्ठता के आधार पर परखे हुए तरीकों द्वारा सम्भवतः कम किया जा सकता है।'

भारतीय योजना आयोग – के अनुसार 'एक अल्प विकसित देश वह देश है जहां पर एक ओर अप्रयुक्त मानवीय शक्ति और दूसरी ओर अवशोषित प्राकृतिक साधनों का कम या अधिक मात्रा में सह अस्तित्व का पाया जाना है।'

सामान्यतया एक अल्प विकसित देश वह है जहां जनसंख्या की वृद्धि की दर अपेक्षाकृत अधिक हो, पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक साधन उपलब्ध हों, परन्तु उनका पूर्णरूपेण विदोहन न हो पाने के कारण उत्पादकता व आय का स्तर नीचा हो। सरल शब्दों में, वह देश अल्प विकसित देश माना जाएगा जिसका आर्थिक विकास सम्भव तो हो, किन्तु अपूर्ण हो।

3.4 अल्पविकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषतायें

एक विकासशील या अल्प विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश में कौन सी आधार भूत विशेषताएं पायी जाती हैं, इस सम्बन्ध में सर्वमान्य विशेषताएं बताना कठिन है। इसका कारण यह है कि भिन्न भिन्न विकासशील या अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं में भिन्न भिन्न विशेषताएं पायी जाती हैं। मानर एवं बाल्डबिन ने अपनी पुस्तक "Economic Development" में अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के छः आधारभूत लक्षण बताये हैं :–

1. प्राथमिक उत्पादन की प्रधानता
2. जनसंख्या दबाव,
3. अल्प विकसित प्राकृतिक साधन,
4. जनसंख्या का आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा होना
5. पूंजी का अभाव
6. विदेशी व्यापार की उन्मुखता।

हार्वे लिबिन्सटीन ने अल्प विकसित देशों की चार विशेषताएं बतायी हैं।

1. आर्थिक, 2. जनसंख्या सम्बन्धी, 3. प्राविधिक तथा 4. सांस्कृतिक एवं राजनीतिक। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हमने एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को छः भागों में बांटा है। 1. आर्थिक विशेषताएं, 2. जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएं, 3. तकनीकी विशेषताएं, 4. सामाजिक विशेषताएं, 5. राजनीतिक विशेषताएं एवं 6. अन्य विशेषताएं।

I. आर्थिक विशेषताएं

1.कृषि की प्रधानता – अल्प विकसित देशों की सबसे प्रमुख विशेषता अधिकांश जनता का कृषि में लगे रहना है। यहां कृषि से अर्थ कृषि, बागवानी, जंगल कटाई, पशुपालन व मछली पालन आदि से है। भारत, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान, आदि देशों को अल्प विकसित माना जाता है, क्योंकि भारत की 51.2 प्रतिशत जनसंख्या, इण्डोनेशिया की 57 प्रतिशत जनसंख्या एवं पाकिस्तान की 56 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यों में लगी है, जबकि विकसित देश फ्रांस, कनाड़ा, अमरीका एवं ब्रिटेन की कुल जनसंख्या का प्रतिशत बहुत कम है, जैसे फ्रांस की 5 प्रतिशत, कनाड़ा की 3 प्रतिशत, अमरीका की 1 प्रतिशत व ब्रिटेन की 2 प्रतिशत। यही कारण है कि अल्प विकसित देशों की राष्ट्रीय आय, निर्यात व्यापार व उद्योग कृषि पर आधारित होते हैं।

2. प्राकृतिक साधनों का अल्प उपयोग – अल्प विकसित देशों में प्राकृतिक साधनों के प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के बाद भी उनका उपयोग या तो होता ही नही है और यदि होता भी है तो बहुत ही कम मात्रा में। कभी–कभी तो अल्प विकसित देशों को इस बात का पता ही नहीं होता कि उनके देश में प्राकृतिक साधन उपलब्ध है।

3. प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर – इन देशों में प्रति व्यक्ति आय का स्तर निम्न होता है। World Development Report, 2009 के अनुसार भारत की प्रति व्यक्ति आय 950 डॉलर है, जबकि भारत की तुलना में प्रति व्यक्ति आय अमेरिका में 46040 डॉलर, जापान में 37670 डॉलर तथा यू0 के0 में 42740 डालर है।

4. पूंजी निर्माण का निम्न स्तर – यहां पूजी निर्माण का स्तर निम्न है। अल्प विकसित देशों में घरेलू निवेश की दर राष्ट्रीय आय की 5 से 10 प्रतिशत तक होती है, जबक विकसित देशों में यह 20 से 25 प्रतिशत तक की होती है। वर्तमान में भारत में पूंजी निर्माण की दर 39.1 प्रतिशत है।

5. सम्पत्ति एवं आय वितरण में असमानता – अल्प विकसित देशों में राष्ट्रीय सम्पत्ति एवं आय का बहुत बड़ा भाग कुछ ही व्यक्तियों के अधिकार में होता है, जबकि जनसंख्या के बड़े भाग को सम्पत्ति एवं आय का छोटा सा हिस्सा मिल पाता है।

6. औद्योगिक पिछड़ापन – अल्प विकसित देश औद्योगिक विकास की दृष्टि से पिछड़े हुए होते हैं। इसका अर्थ यह है कि यहां आधारभूत उद्योगों का अभाव होता है। यहां कुछ उद्योग जो उपभोक्ता वस्तु या कृषि वस्तु बनाते हैं उनका ही विकास हो पाता है। औद्योगिक पिछड़ेपन की पुष्टि इस अनुमान से हो जाती है कि 74 प्रतिशत जनसंख्या वाले देश विश्व औद्योगिक उत्पादन में केवल 20 प्रतिशत का ही योगदान देते हैं शेष 80 प्रतिशत उत्पादन विकसित देशों में ही होता है।

7. अल्प रोजगार व बेरोजगारी – इन अल्प विकसित देशों में अल्प रोजगार के साथ–साथ बेरोजगारी भी होती है। जिन लोगों को काम मिला हुआ होता भी है उनको भी पूरे समय के लिए काम नहीं मिलता है। इन देशों में कुछ लोग सदा ही बेरोजगार बने रहते हैं। उनके लिए समाज के पास कोई कार्य नहीं होता है। इसका मुख्य कारण औद्योगीकरण की कमी एवं पूजी निवेश का अभाव है।

8. बैंकिंग सुविधाओं का अभाव – अल्प विकसित देशों में बैंकिंग सुविधाओं का अभाव रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो बैंकिग सुविधाएं ही कम होती हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि अल्प विकसित देशों में यह प्रतिशत 60 तक होता है।

9.आर्थिक दुष्चक्र –अल्प विकसित देशों में आर्थिक दुष्चक्रों की प्रधानता रहती है। वहां पूंजी की कमी से उत्पादन कम होता है। इससे वास्तविक आय कम होती है। अतः वस्तुओं की मांग कम रहती है। इन सबका परिणाम यह होता है कि साधनों का उचित विकास नहीं हो पाता है इस प्रकार यह कुचक्र चलता रहता है और इससे अर्थव्यवथा निरन्तर प्रभावित होती रहती है।

10. विदेशी व्यापार में अस्थिरता – अल्प विकसित देशों के कच्चे माल का निर्यात व पक्के माल का आयात किया जाता है। कच्चे माल की वस्तुओं के मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में

स्थिर नहीं रहते हैं। इससे विदेशी मुद्रा अर्जन में घटा बढ़ी होती रहती है जिससे देश की अर्थव्यवस्था भी स्थिर नहीं रहती है।

11. ऊंची जन्म व मृत्यु दरें – अल्प विकसित देशों में जन्म दर व मृत्यु दर अपेक्षाकृत ऊंची रहती है। एक अनुमान के अनुसार विकसित देशों में जन्म दर व मृत्यु दर क्रमशः 15 से 20 प्रति हजार व 9 से 10 प्रति हजार होती है, जबकि अल्प विकसित देशों मे यह दरें क्रमशः 30 से 40 प्रति हजार व 15 से 30 प्रति हजार तक होती है। अल्प विकसित देशों में ऊंची जन्म दर के कारण हैं – सामाजिक धारणा एवं विश्वास, पारिवारिक मान्यता, बाल विवाह, विवाह की अनिवार्यता, भाग्यवादिता, मनोरंजन सुविधाओं का अभाव, निम्न आय व निम्न जीवन–स्तर, निरोधक सुविधाओं का अभाव आदि। इसी प्रकार यहां ऊंची मृत्युदर के कारण हैं – अकाल व महामारी, लोक स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव, स्त्री शिक्षा का अभाव, पौष्टिक आहार का अभाव आदि। भारत में वर्तमान में जन्म दर 23.1 व मृत्युदर 7.4 प्रति हजार है।

12. ग्रामीण जनसंख्या की अधिकता – अल्प विकसित देशों में अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है जिसका मुख्य व्यवसाय कृषि होता है। भारत की 65 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में व शेष शहरों में रहती है।

13. जनसंख्या का आधिक्य – अल्प विकसित देशों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है, जबकि विकसित देशों में उतना नहीं होता है। साथ ही अल्प विकसित देशों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती है। अतः यहां जनसंख्या का आकार व घनत्व अधिक होता है।

14.आश्रितों की अधिकता – अल्प विकसित देशों में एक परिवार में आश्रितों की मात्रा अधिक होती है। इसका अर्थ यह है कि इन देशों में कमाने वाले कम होते हैं, जबकि खाने वाले अधिक। इसका कारण यह है कि यहां बच्चों व बूढ़ों की संख्या विकसित देशों की तुलना में अधिक होती है।

15.अकुशल जनशक्ति की अधिकता – अल्प विकसित देशों में अकुशल जनशक्ति की अधिकता रहती है। इसके कारण शिक्षा व प्रशिक्षण का अभाव, प्रति व्यक्ति निम्न आय, संयुक्त परिवार प्रणाली, रूढ़िवादिता, भाग्यवादिता, आत्मसन्तोष की भावना आदि है।

16.निम्न प्रत्याशित आयु – विकसित देशों की तुलना में अल्प विकसित देशों की प्रत्याशित आयु (Life expectancy) कम होती है। विकसित देशों में प्रत्याशित आयु औसतन 74 से 82 वर्ष होती है, जैसे जापान में 81 वर्ष, स्विटजरलैण्ड में 80 स्वीडन में 79 वर्ष, अमरीका में 77 वर्ष, ब्रिटेन में 77 वर्ष फ्रांस में 79 वर्ष। अल्प विकसित देशों में यह 40 से 60 वर्ष ही है। भारत में प्रत्याशित आयु 63.5 वर्ष है।

II.तकनीकी विशेषताएं

17.पुरानी उत्पादन विधि – अल्प विकसित देशों में वही पुरानी उत्पादन विधि ही पायी जाती है जिसे उन्नत देश छोड़ चुके हैं। उदाहरण के लिए अल्प विकसित देशों में कृषि उत्पादन पुराने तरीके से ही होता है, जबकि उन्नत देश ट्रैक्टर व आधुनिक मशीनों का प्रयोग करते हैं। कृषि के क्षेत्र में ही नहीं, लगभग सभी क्षेत्रों में अल्प विकसित देशों में पुरानी उत्पादन विधि ही पायी जाती है।

18.तकनीकी शिक्षा का अभाव – अल्प विकसित देशों मे तकनीकी शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव होता है तथा उनके द्वारा अनुसंधान व शोध कार्यों पर बहुत कम व्यय कियाजाता है। इसके कारण अशिक्षा, श्रम की गतिशीलता का अभाव, परम्परावादी दृष्टिकोण तथा औद्योगिकरण की कमी है।

19.अपर्याप्त संचार एवं आवागमन सुविधाएं – अल्प विकसित देशों में संचार एवं आवागमन के साधन अपर्याप्त होते हैं जिससे व्यापार सीमित मात्रा में ही होता है तथा श्रमिकों में गतिशीलता की कमी पायी जाती है।

20.कुशल श्रमिकों का अभाव – श्रमिकों की कुशलता बढ़ाने के लिए अल्प विकसित देशों में प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव रहता है। इससे देश में कुशल श्रमिक कम मात्रा में ही मिल पाते हैं।

III.सामाजिक विशेषताएं

21. साक्षरता की कमी – अल्प विकसित देशों में साक्षरता की कमी पायी जाती है। दूसरे शब्दों में, इन देशों में व्यापक निरक्षरता होती है। जिसका प्रतिशत 70 या इससे भी ऊपर होता है। विकसित देशों में निरक्षरता का प्रतिशत 5 से भी कम होता है। इस निरक्षरता के कारण ही यहां के निवासी रूढ़िवादी, अन्धविश्वासी एवं भाग्यवादी होते हैं जो नवीन परिवर्तनों का धर्म के नाम पर विरोध करते हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता की दर 64.3 प्रतिशत है।

22.जातिवाद – इन देशों में वर्ग भेद व जातिवाद की भावना व्याप्त होती है। जिसके परिणामस्वरूप यहां के व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति भिन्न भिन्न होती है तथा प्रत्येक जाति की अपनी परम्पराएं एवं रीति रिवाज होती हैं।

23.रीति रिवाज की प्रधानता – अल्प विकसित देशों में रीति रिवाज की प्रधानता होती है जिनको प्रत्येक व्यक्ति आंखें मूंदकर मानता है और समय समय पर उन्हीं रिवाजों के अनुसार कार्य करता है जिसका परिणाम यह होता है कि फिजूलखर्ची को बढ़ावा मिलता है जिससे निवासी निर्धन व ऋणग्रस्त बने रहते हैं।

24.स्त्रियों को निम्न स्थान – अल्प विकसित देशों में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नही होती है, उनका समाज में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं होता है। उन्हें कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं होती है। उनमें साक्षरता भी कम होती है। वे अपना पेट भरने के लिए पुरूषों पर निर्भर रहती हैं।

IV.राजनीतिक विशेषताएं

25. अधिकारों के प्रति ज्ञान न होना – अल्प विकसित देशों में जनता अपने अधिकारों के प्रति ज्ञानवान नहीं होती है। अतः उसमें अधिकारों के प्रति जागरूकता नहीं पायी जाती है। इसका कारण यह है कि यहां के लोग अपनी दरिद्रता को ईश्वरीय देन मानते हैं।

26. दुर्बल राष्ट्र – अल्प विकसित देश विकसित देशों के मुकाबले दुर्बल होते हैं और ऐसे देशों पर सदा ही विदेशी राष्ट्रों का आधिपत्य किसी न किसी रूप में बना रहता है।

27.आधुनिक सेना का अभाव – ऐसे देशों के पास आधुनिक अस्त्रों से लैस सेना का अभाव होता है।

28. प्रशासनिक अकुशलता – इन राष्ट्रों में प्रशासनिक कुशलता एवं ईमानदारी का अभाव होता है। राजनीतिक नेता भी इस सम्बन्ध में कोई अच्छा उदाहरण प्रस्तुत नहीं करते हैं। अतः यहॉ कालाबाजारी, भ्रष्टाचार व बेईमानी विस्तृत रूप में पायी जाती है।

V.अन्य विशेषताएं

29. दोषपूर्ण वित्तीय संगठन – अल्प विकसित देशों में वित्तीय संगठन दोषपूर्ण होता है। इन देशों में परोक्ष कर अधिक लगाये जाते हैं। मुद्रा बाजार असंगठित होता है। बैंकिंग व्यवस्था प्रभावशाली नहीं होती है। सरकारी आय के साधन भी सीमित होते हैं।

30. स्थिर व्यावसायिक ढांचा – इन देशों में व्यावसायिक ढांचा स्थिर रहता है। इसका अर्थ यह है कि इन देशों ने व्यवसायिक ढांचा एक जैसा रहता है, उसमें परिवर्तन नहीं होता है।

3.5 विकसित तथा अल्प विकसित देश में अंतर

डॉ0 स्टीफैन ने इस दृष्टि से एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को **'अनार्थिक संस्कृति'** का नाम दिया है। उनका मत है कि 'परम्परागत सामाजिक मनोवृत्ति मानवी साधनों के पूर्ण उपयोग को कुंठित करती है जिसके फलस्वरूप एक रूढ़िवादी मानव समाज भौतिक पर्यावरण में बदलाव लाने और उपभोग में अतिरिक्त वृद्धि के प्रति उदासीन हो जाता है।'

क्रम सं0	विकास के अंग	विकसित देश	अल्प–विकसित देश
1.	आर्थिक स्थिति	उच्च प्रति व्यक्ति GNP, औसत 25000 डॉलर।	निम्न प्रति–व्यक्तिGNP,औसतन 1100 डॉलर।
2.	कृषि	जसंख्या का लगभग 2:5 प्रतिशत कृषि कार्य में संलग्न।	जनसंख्या का औसतन 50–65 प्रतिशत कृषि में लगा होना।
3	उद्योग	बृहत स्तरीय उत्पादन व्यवस्था	लघु–स्तरीय उत्पादन ढांचा।
4	प्राविधिक स्तर	उन्नत प्राविधिक–स्तर विशेष कर पूंजी प्रधान तकनीकी का प्रयोग किया जाना।	तकनीकी द्वैतवाद, मुख्यतया श्रम प्रधान तकनीकी का प्रयोग किया जाना।
5	जनसंख्या	सन्तुलित जनसंख्या कार्यशील जनसंख्या का अधिकप्रतिशत	जन्म–दर ऊंची व मृत्युदर का कम होना अकार्यशील जनसंख्या का अधिक प्रतिशत।
6	रोजगार	लगभग पूर्ण रोजगार।	व्यापक बेरोजगारी। संरचनात्मक एवं अदृश्य बेरोजगारी
7	बचत निवेश	राष्ट्रीय आय के अनुपात में बचत तथा निवेश का उच्च स्तर।	राष्ट्रीय आय के अनुपात में बचत तथा निवेश का नीचा स्तर।
8	प्राकृतिक साधन	पर्याप्त प्राकृतिक साधन और उनका पूर्ण शोषण किया जाना।	पर्याप्त प्राकृतिक साधन, परन्तु पूर्ण विदोहन सम्भव न होना।
9	निर्यात	निर्यात पर कम निर्भरता।	निर्यात पर अधिक निर्भरता।
10	पूंजीनिर्माण	प्रति व्यक्ति ऊंचा पूंजी अनुपात	प्रति व्यक्ति कम पूंजी अनुपात।

यद्यपि उपरोक्त विवरण से विकसित और अल्प विकसित या विकासशील अर्थव्यस्था में अंतर स्वतः स्पष्ट तथा विद्यार्थियों की सुविधा हेतु हमने विभिन्न विकास अंगों के रूप में इन दोनों प्रकार की अर्थ व्यवस्थाओं में अंतर का एक संक्षिप्त–सार प्रस्तुत किया है।

3.6 भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप

क्या भारत एक अल्प विकसित अर्थ व्यवस्था है ? अल्प विकसित देशों की सामान्य विशेषताओं के संदर्भ में अब हम भारत की आर्थिक स्थिति का अवलोकन करेंगे। भारत में प्रति व्यक्ति आय ;ळछच्द्ध 460 डॉलर है जबकि विकसित देशों का औसत लगभग 27500 डॉलर है। जन संख्या की वृद्धि–दर घटने के बावजूद हमारा देश निरन्तर जनाधिक्य की ओर बढ़ रहा है। पहले की तरह कृषि आज भी आजीविका का प्रमुख आधार है। पिछड़ा प्राविधिक स्तर, धीमा पूंजी– निर्माण और निम्न – उत्पादकता हमारे अल्प विकसित का प्रमाण हैं। आज सबसे बड़ी समस्या देश में चारो ंओर फैली व्यापक बेरोजगारी की है। आजीविका का अभाव, आर्थिक विकास के बजाए पिछड़ेपन का प्रतीक है। देश में लगभग 26 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे हैं जिसमें से 10 प्रतिशत जनसंख्या अति निर्धन है। भारत संसार के सर्वाधिक ऋणी देशों में से एक है। **'विश्व बैंक रिपोर्ट'** के अनुसार विदेशी ऋणों के मामले में भारत का स्थान 1970 में पहला, 1980 में छठा, 1990 में तीसरा, 1995 में छठा और 1999 में 10वां था। जरा सोचिए, हम किस विकास की बात कर रहे है ? हां! विकास अवश्य हुआ है, पर केवल देश को दिशा–निर्देश देने वाले भ्रष्ट कर्णधारों का।

भारत के अल्प विकास का एक पुख्ता प्रमाण और भी है। **'विश्व बैंक'** प्रतिवर्ष संसार के 133 प्रमुख देशों का प्रति व्यक्ति ळछच के आधार पर उनके विकास की अवस्था का निर्धारण करता है। आय स्तर के आधार पर सभी देश तीन वर्गों में बांटे गये हैं – निम्न आय देश, मध्यम आय देश और उच्च आय देश। **रिपोर्ट 2002** के अनुसार , भारत निम्न आय देशों में शामिल था और विकासक्रम में उसका 96वां स्थान था। अर्थात कुल 133 देशों में से 95 देश उससे अधिक धनी थे और केवल 37 देश उससे गरीब थे। विडम्बना तो यह है कि वर्ष 1995 में भारत का स्थान 113वां, 1990 में 111वां और 1983 में 123वां था। स्पष्ट है कि भारत तीन दशक पहले भी निम्न आय देश था और आज भी एक स्थायी सदस्य के रूप में उसी लक्ष्मण रेखा पर टिका हुआ है। जबकि उसकी बिरादरी के कई देश निम्न आय स्तर को लांघ कर मध्य आय क्रम में शामिल हो चुके हैं।

वर्ष 2000 में भारत की 26 प्रतिशत जनसंख्या **निर्धनता रेखा** से नीचे थी। **अंतर्राष्ट्रीय निर्धनता रेखा** के अर्थ में, वर्ष 1999 में भारत की ;पद्ध 44 प्रतिशत जनसंख्या की प्रतिदिन आय 1 डॉलर से कम थी और ;पपद्ध 86 प्रतिशत जनसंख्या की आय 2 डॉलर से कम थी। **'क्रय शक्ति समता'** के अर्थ में, वर्ष 2000 में भारत की प्रति व्यक्ति ळछप् 2390 डॉलर है जबकि विकासशील देशों का औसत 3890 डॉलर और उच्च आय देशों का औसत 27450 डॉलर है। भारत में वर्ष 1999 में **'शिशु मृत्युदर'** 90 प्रति हजार थी। जबकि विकासशील देशों का औसत 85 और विकसित देशों का औसत 6 प्रति हजार था। **मातृ मृत्युदर** भारत में 440 प्रति लाख है। जबकि चीन में 95, श्रीलंका में 30, मलेशिया में 34,

जापान में 18 और कनाड़ा में 6 है। भारत में वर्ष 1999 में **वयस्क निरक्षरता** 44 प्रतिशत थी जबकि चीन में 17, इथोपिया में 63, पाकिस्तान में 55 और विकसित देशों में शून्य प्रतिशत है।

मानव तथा लिंग विकास के सम्बन्ध में भारत की वैश्विक स्थिति इस प्रकार है। भारत का वर्ष 2001 में मानव विकास सूचकांक 0.571 था जबकि नार्वे का 0.939, चीन का 0.718 और बांग्लादेश का 0.470 था। भारत का लिंग विकास सूचकांक 0.533 था जबकि नार्वे का 0.937, चीन का 0.715 और बांग्लादेश का 0.309 था। वास्तव में, यह कुछ ऐसे मानदण्ड हैं जो भारत के अल्प विकसित देश की ओर संकेत करते हैं।

परन्तु इस तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। पिछले कुछ वर्षों से भारत विकास की स्थैतिक अवस्था से निकल कर प्रावैगिक अवस्था में प्रवेश कर चुका हैं। विकास प्रवृत्तियां जन्म ले रही हैं। एक तरफ उद्योगों में विविधिता आई है तो दूसरी ओर कृषि में हरित क्रान्ति का आभास होने लगा है। बढ़ती हुई बचतें तथा निवेश वृद्धि, पूंजी निर्माण का संकेत है। खाद्यानों में आत्मनिर्भरता, प्राविधिक विकास, बृहत औद्योगिक क्षमता, सड़कों व रेलों के बिछाये गये जाल, अधः संरचना का विकास, अणु परीक्षण–1997 एवं 2002 के सफल उपग्रह प्रक्षेपण हमारे आर्थिक विकास एवं प्रगति के सक्षम प्रमाण हैं। 1990–2000 के दशक में भारत के GDP की विकास दर 6 प्रतिशत रही है। जो पूरे विश्व में केवल कुछ गिने चुने देश ही हासिल कर पाये हैं। इसी दशक में ळक्च का **विश्व औसत** 2.6 प्रतिशत, विकासशील देशों का 3.6 प्रतिशत और उच्च आय देशों का औसत 2.5 प्रतिशत रहा है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारत अल्प विकास की सीमाओं को लांघकर एक अग्रणी विकासशील देश के रूप में अगले उच्चतम पढ़ाव के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थनों की पूर्ति कीजिएं

1. वर्ष 2000 में भारत की .....प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा से नीचे भी। (26, 27, 28)
2. भारत में वर्ष 1999 में शिुश मृत्यु दर .....प्रति हजार थी। (90, 80, 100)
3. भारत में वर्ष .....में वयस्क निरक्षरता 44 प्रतिशत थी। (1999, 2000, 2001)
4. एक अल्पविकसित देश जिराफ की भाँति है जिसका .....करना कठिन है। (वर्णन, विस्तार, स्थिरता)
5. वर्तमान समय में भारत की पूंजी निर्माण की दर .....प्रतिशत है। (39.1, 40, 38. 2)
6. .....देशों में बैंकिंग सुविधाओं का अभाव रहता है। (अल्पविकसित, विकसित, सभी देशों में)
7. अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का घनत्व.....होता है। (कम, अधिक, शून्य)
8. .....देशों में अकुशल जनशंक्ति की अधिकता रहती है। (विकसित, पूर्ण विकसित, अल्पविकसित)
9. भारत में प्रत्याशिु आयु ..... वर्ष है। (63.5, 62.5, 60.5)

10. अल्पविकिसित देशों के पास .....अस्त्रों से लैसा सेना का अभाव होता है। (परम्परागत, गैर, आधुनिक)
11. भारत का वर्ष .....में मान व विकास सूचकांक 0.571 था।(2000, 2001, 1999)

बहुविकल्पयी प्रश्न

12. हार्वे लिंविसटीन ने अल्पकविकसित देशों की विशेषताएं होती हैं।
    A. चार B. पांच
    C. छः D. उपर्युक्त सभी
13. मायर एवं बाल्डविन ने अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के कितने लक्षण बताये हैं।
    A. चार B. पांच
    C. छः D. आठ
14. भारत में वर्तमान में जन्म दर व मृत्यु दर प्रति हजार कितनी है।
    A. 33.1 व 7.4 B. 23.1.22
    C. 23.1 व 7.4 D.

    12. A, 13. C, 14. C
15. भारत किस प्रकार का देशहै।
    A. विकसित B. अल्पविकसित
    C. उपुर्यक्त दोनों D. उपर्युक्त सभी
16. 1999–2000 के दशक में भारत के G.D.P. के विकास की दर रही है।
    A. 6 प्रतिशत B. 8 प्रतिशत
    C. 3 प्रतिशत D. 9 प्रतिशत
17. आर्थिक दुष्चक्रों की प्रधानता रहती है।
    A. अल्पविकसित देशों में B. विकसित देशों में
    C. उपर्युक्त दोनों गलत D. पूर्ण विकसित देशों में
18. अल्पविकसित देशों में स्त्रियों को किस प्रकार का स्थान प्राप्त होता है।
    A. उच्च स्थान B. मध्यम स्थान
    C. निम्न स्थान पर D. उपर्युक्त सभी
19. अल्पविकसित देशों में प्रधानता होती है।
    A. रीति–रिवाजों की B. आधुनिक मशीनों की
    C. आधुनिक अस्त्रों से D. उपर्युक्त सभी
20. अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का घनत्व होता है–
    A. कम B. अधिक
    C. शून्य D. उपर्युक्त सभी

21. वर्ष 2000 में भारत की जनसंख्या निर्धनता से नीचे थी।
    A. 26 % B. 27&
    C. 28% D. 26.5%
22. भारत में प्रत्याशित आयु है।
    A. 62.5 वर्ष B. 63.5 वर्ष
    C. 60.5 वर्ष D. 61.5 वर्ष
23. कृषि प्रधान देश होते हैं–
    A. विकसित B. विकासशील
    C. केवल A D. उपर्युक्त सभी

3.7 सारांश

अल्प विकसित देश साधनों में पूर्ण रूप से हीन होते हैं, यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वे तकनीकी और सामाजिक तथा आर्थिक संगठन में उपयुक्त परिवर्तनों द्वारा अपने प्राकृतिक साधनों की दुर्लभता को पार करने में सफल नहीं हो सके हैं। जैसा कि बौर और यामे ने कहा है, ''यह सुझाव अति सरलीकरण होगा कि सामान्य रूप से अल्पविकसित देश प्राकृतिक साधनों के विषय में **भाग्यहीन** रहे है और अल्प साधन युक्त हैं – विशेष रूप से खनिजों और उपजाऊ भूमि के सम्बन्ध में आधुनिक इस्टैन्डर्ड को देखा जाये तो सभी विकसित देश शुरू में अल्प विकसित थे और इतिहास की अपेक्षाकृत थोड़ी और वर्तमान अवधि में ही उनका विकास हुआ है।'' सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि भूमि, खनिज, जल, वन या शक्ति साधनों में अल्प विकसित देश त्रुटि युक्त नहीं होता। उदाहरण के लिए भारत में 9 करोड एकड़ कृषि योग्य बंजर भूमि है और इसकी जलशक्ति संभाव्यता 410 लाख किलोवाट ऑकी गयी है, जबकि इसका मुश्किल से 10: भाग ही अभी तक उपयोग में लाया जा सका है। अफ्रीका में विश्व की जल शक्ति संभाव्यता का 44: है परन्तु वह 0.1: से अधिका का उपयोग नहीं करता। अल्प विकसित देश खनिज धन में समृद्ध है। अफ्रीका में तांबे, बाक्साइड, टीन और स्वर्ण के महत्वपूर्ण भंण्डार हैं। एशिया पेट्रोलियम, लोहे, बॉक्साइड, मैगानीज, अभ्रक और टीन में समृद्ध है। लेटिन अमेरिका में पेट्रोलियम, लोहे, जस्ता और तांबे के असीम भण्डार हैं। अफ्रीका और दक्षिणी अमेरीका की वन सम्पत्ति की खोज और अनुसंधान नहीं हो सका है। इस प्रकार अल्प विकसित देशों के पास साधन तो होते हैं परन्तु विविध बाधाओं जैसे कि उनकी अपनी दुर्गमता, तकनीकी ज्ञान की कमी, पूंजी अप्राप्यता और मार्केट की छोटी सीमा, के कारण या तो उनका उपयोग ही नहीं हो पाता या फिर अल्प अथवा दुरूपयोग होता है।

3.8 शब्दावली

- **विकसित अर्थव्यवस्था–** जो आर्थिक सामाजिक दृष्टि से उन्नत हैं जिनका कुल उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति आय, उपभोग, बचत व निनियोग का स्तर ऊंचा है तथा जनसंख्या वृद्धि निम्न स्तर की है, विकसित अर्थव्यवस्था कहलाती हैं

- **अल्पविकसित अर्थव्यवस्था–** अल्पविकसित अर्थ–व्यवस्था वह है जिनमें मानवीय शक्ति का अल्प उपयोग या अनुपयोग एक ओर से प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग न होने की स्थिति दूसरी ओर साथ–साथ पायी जाती है।
- **निर्धनता–** जब समाज का एक वर्ग अपने जीवन, स्वास्थ्य एवं कार्य कुशलता के लिए आवश्यक न्यूनतम उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करने में अपने को अस्मर्थ पाता है तो इस स्थिति को निर्धनता कहते हैं।
- **कालाधन–** जिस धन के हिसाब–किताब का खुलासा न करके अघोषित रखा जाता है तथा उस पर कर की अदायगी नहीं की जाती है उसे कालाधन कहते हैं।
- **बेरोजगारी–** एक व्यक्ति को उस समय ही बेरोजगार कहा जायेगा। जब उसके पास कोई रोजगार साधन नहीं है परंतु वह रोजगार प्राप्त करना चाहता है।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थनों की पूर्ति कीजिएं

1. 26, 2. 90, 3. 1999, 4. वर्णन 5. 39.1 7. अधिक 8. अल्पविकसित, 9. 63.5

10. आधुनिक 11. 2001

बहुविकल्पयी प्रश्न

15. B, 16. A, 17. A, 18. C, 19. A, 20. B 21. A, 22.B, 23.B

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

3.11 सहायक अध्ययन सामग्री

- I Viner, "The Economic of Development" in The Economic of Undevelopment, (ed) A.N. Aggarwal and S.P. Singh,.
- United Nations Mearures for the Economic Development of Underdeveloped Countries.
- World Bank Development Report 1999-2000 pp. 232-233 Report 1983.
- H. I. Keenleyside in Dynamics of Development, (ed) G.Hambidge,
- Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

3.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''एक अल्प विकसित देश एक जिराफ कि भॉति है जिसका वर्णन करना कठिन है लेकिन जब हम उसे देखते है तो समझ जाते है।'' (सिंगर) समझाइए।
2. अल्प विकसित अर्थव्यवस्था की परिभाषा दीजिए और इसकी आधारभूत विशेषताओं का वर्णन कीजिए ?
3. अल्प विकसित अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं क्या हैं ? इन देशों के आर्थिक विकास की बाधाएं क्या है ?
4. क्या भारत एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था है ? व्याख्या कीजिए।
5. आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास में भेद कीजिए।
6. 'अल्प विकसित देश विश्व अर्थव्यवस्था की गन्दी बस्तियां हैं।' इस कथन का विवेचन कीजिए तथा अल्प विकसित देशों के विशिष्ट लक्षणों पर प्रकाश डालिए ?
7. उन मानदण्डों की विवेचना कीजिए जिनके आधार पर एक देश अल्प विकसित क्षेत्र माना जा सकता है।

इकाई–4 विकास के निर्धारक घटक एवं अवस्थाएं

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले कारक

4.4 आर्थिक कारक एवं आर्थिक विकास

4.5 अनार्थिक कारक एवं अनार्थिक विकास

4.6 आर्थिक विकास की अवस्थाएं

4.7 आर्थिक विकास की अवस्थाओं की आलोचना

4.8 भारत की विकास अवस्था

4.9 सारांश

4.10 शब्दावली

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.13 सहायक अध्ययन सामग्री

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

विश्व के समस्त देशों में आर्थिक वृद्धि हुई है परन्तु उनकी वृद्धि दरें एक दूसरे से भिन्न रहती हैं। वृद्धि दरों में असमानताएं उनकी विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, तकनीकी एवं अन्य स्थितियों के कारण पाई जाती है। यहीं स्थितियां आर्थिक वृद्धि के कारक हैं। परन्तु इन कारकों का निश्चित रूप से उल्लेख करना भी एक समस्या है क्योंकि विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने अपने ढंग से इनको बताया है। किंडलबर्जर और हैरिक ने भूमि और प्राकृतिक साधन, भौतिक पूंजी, श्रम और मानव पूंजी, संगठन प्रौद्योगिकी, पैमाने की बचतें और मण्डी का विस्तार, तथा संरचनात्मक परिवर्तन को आर्थिक वृद्धि के कारक माने हैं। रिचर्ड गिल ने जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक साधन, पूंजी संचय, उत्पादन के पैमाने में वृद्धि एवं विशिष्टिीकरण और तकनीकी प्रगति को आर्थिक वृद्धि के आधारभूत कारक बतलाए हैं। साथ ही लुइस ने आर्थिक वृद्धि के केवल तीन कारक ही महत्वपूर्ण कहे हैं, ये हैं : बचत करने का प्रयत्न, ज्ञान की वृद्धि या उसका उत्पादन में प्रयोग और प्रति व्यक्ति पूंजी अथवा अन्य साधनों की मात्रा में वृद्धि करना। परन्तु नर्क्से इन कारकों को अर्थिक वृद्धि के लिए पर्याप्त नहीं समझता। उसके अनुसार, ''आर्थिक वृद्धि बहुत हद तक मानवीय गुणों, सामाजिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक संयोगों से संबंध रखती है। वृद्धि के लिए पूंजी अनावश्यक तो है परन्तु उसके लिए केवल पूंजी का होना ही पर्याप्त नहीं है।'' अतः राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताएं आर्थिक वृद्धि के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण हैं जितनी कि आर्थिक आवश्यकताएं।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि :–

- आर्थिक विकास का निर्धारण कैसे होता है।
- आर्थिक विकास के आर्थिक तत्व क्या है।
- आर्थिक विकास के अनार्थिक तत्व कौन–2 से है।
- आर्थिक विकास की अवस्थाएं कौन–2 से है।
- आर्थिक विकास को सामाजिक कारक कैसे प्रभावित करते है।

4.3 आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले कारक

प्रत्येक देश के आर्थिक विकास की पृष्ठभूमि में कुछ ऐसे तत्व विद्यमान होते हैं जिन पर उस देश का आर्थिक विकास निर्भर करता है। आमतौर से इन तत्वों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है–(अ) प्रधान चालक तत्व एवं अनुपूरक तत्व (ब) आर्थिक एवं गैर आर्थिक तत्व।प्रधान चालक अथवा प्राथमिक तत्व वे तत्व होते हैं जो उस देश के आर्थिक

विकास के कार्य को प्रारम्भ करते हैं। विकास की नींव वास्तव में इन्हीं तत्वों पर रखी जाती है। प्रधान चालक तत्वों के माध्यम से जब विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है तो कुछ अन्य तत्व इनको तीव्रता प्रदान करते हैं। वास्तव में इन्हें ही अनुपूरक अथवा गौण अथवा सहायक तत्व कहा जाता है। इस प्रकार प्राथमिक तत्व विकास की आधारशिला हैं जबकि अनुपूरक तत्व, आर्थिक विकास को गति प्रदान करते हैं और इसे बनाये रखने में सहायक सिद्ध होते हैं।

प्रधान चालक तत्वों में प्राकृतिक साधन मानवीय साधन, कौशल निर्माण तथा सामाजिक, सांस्कृतिक व संस्थागत तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। इसके विपरीत अनुपूरक तत्वों में 1. जनसंख्या वृद्धि, 2. प्राविधिक विकास की दर, और 3. पूंजी निर्माण की दर मुख्य हैं। प्रधान चालक और अनुपूरक तत्वों के सापेक्षिक महत्व, वर्गीकरण व स्वरूपों के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में काफी मतभेद पाया जाता है। कुछ लोग प्रधान चालक तत्वों को महत्व प्रदान करते हैं। तो कुछ लोग सहायक तत्वों को।

प्रो0 हैरोड एवं डोमर ने आर्थिक विकास के चार सहायक तत्व माने हैं – 1. जनसंख्या वृद्धि की दर, 2. औद्योगिक विकास की दर, 3. पूंजी उत्पाद अनुपात, 4. बचत व आय का अनुपात।

श्रीमती जॉन राबिन्सन का मत है कि ''आर्थिक विकास एक स्वतः प्रारम्भ होने वाली प्रक्रिया है इसलिये प्राथमिक तत्वों के विपरीत, अनुपूरक तत्वों को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए क्योंकि विकास को अन्तिम रूप देने का उत्तरदायित्व इन्हीं तत्वों पर होता है।'' उनकी दृष्टि में जनसंख्या एवं उत्पादन की दर का अनुपात और पूंजी निर्माण की दर, दो सहायक तत्व आर्थिक विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

प्रो0 शुम्पीटर ने 'नव प्रवर्तन' को आर्थिक विकास का आवश्यक तत्व माना है। नव प्रवर्तन से उनका अभिप्राय – 1. उत्पादन की विकसित तकनीकी का सूत्रपात, 2. नई वस्तुओं का उत्पादन,3.नये बाजारों का उपलब्ध होना, 4. उद्योगों में संगठन के नूतन स्वरूप तथा नये साधनों में प्रयोग आदि से है।

प्रो0 डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 रोस्टोव – ने आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण गतिशील तत्वों – पूंजी संचयन एवं श्रम–शक्ति की ओर संकेत किया है। उनका कहना है कि इन दो तत्वों को निम्नलिखत छः प्रवृत्तियां प्रभावित करती हैं – 1. आधारभूत विज्ञान को विकसित करने की प्रवृत्ति, 2. आर्थिक उद्देश्यों में विज्ञान को लागू करने की प्रवृत्ति, 3. नवीन प्रवर्तनों की खोज व उन्हें लागू करने की प्रवृत्ति, 4. भौतिक प्रगति करने की प्रवृत्ति, 5. उपभोग वृत्ति तथा 6. सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा।

प्रो0 रिचार्ड टी0 गिल – के अनुसार आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व निम्नलिखितहैं–1.जनसंख्या वृद्धि,2. प्राकृतिक साधन, 3. पूंजी संचय, 4. उत्पादन में विशिष्टीकरण, 5. तकनीकी प्रगति।

प्रो0 मायर एवं बाल्डविन का मत है कि यद्यपि आर्थिक विकास को बनाये रखने के लिये वांछित निर्धारक आर्थिक तत्वों की एक लम्बी सूची तैयार की जा सकती है, परन्तु

वास्तविक रूप से इन्हें निम्न चार शीर्षकों में रखना अधिक उचित होगा :– 1. तकनीकी प्रगति एवं पूंजी संचय,

2.प्राकृतिक साधन, 3. जनसंख्या, 4. साधनों का लचीलापन।

4.3.1 आर्थिक एवं गैर आर्थिक तत्व

उपरोक्त वर्गीकरण के अलावा, निर्धारक तत्वों को आर्थिक एवं गैर आर्थिक आधार पर भी वर्गीकृत किया गया है। आर्थिक तथा गैर आर्थिक तत्वों की सूची इस प्रकार है :–

आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व

आर्थिक तत्व	गैर आर्थिक तत्व
1. प्राकृतिक साधन	1. सामाजिक एवं संस्थागत तत्व
2. मानवीय साधन	2. स्थित एवं कुशल प्रशासन
3. पूंजी संचय अथवा पूंजी निर्माण	3. अन्तर्राष्ट्रीय दशायें
4. उद्यमशीलता	
5. तकनीकी प्रगति एवं नव प्रवर्तन	
6. विदेशी पूंजी	

4.4 आर्थिक कारक एवं आर्थिक विकास

किसी देश की आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले आर्थिक तत्व निम्नलिखित कहे जा सकते हैं :–

1.प्राकृतिक साधन

प्राकृतिक साधनों से हमारा अभिप्राय उन सभी भौतिक अथवा नैसर्गिक साधनों से है जो प्रकृति की ओर से एक देश को उपहार स्वरूप प्राप्त होते हैं। किसी देश में उपलब्ध होने वाली भूमि, खनिज पदार्थ, जल सम्पदा, वन सम्पत्ति, वर्षा एवं जलवायु, भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक बन्दरगाह उस देश के प्राकृतिक साधन माने जायेंगे। यह प्राकृतिक साधन देश के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। आमतौर से यह बात स्वीकार की जा चुकी है कि अन्य बातों के समान रहने पर जिस देश के प्राकृतिक साधन जितने अधिक होंगे, उस देश का आर्थिक विकास उतना ही शीघ्र एवं अधिक होगा। आर्थिक विकास की दृष्टि से प्राकृतिक साधनों के महत्व को स्पष्ट करते हुए **रिचार्ड डी गिल** ने लिखा है :–

'जनसंख्या एवं श्रम की पूर्ति की भांति प्राकृतिक साधन भी एक देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। उपजाऊ भूमि और जल के अभाव में कृषि का विधिवत विकास नहीं हो पाता। लोहा, कोयला व अन्य खनिज सम्पदा के न होने पर तीव्र औद्योगीकरण का स्वप्न अधूरा ही बना रहता है। जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण आर्थिक क्रियाओं के विस्तार में अवरोध उत्पन्न होते हैं। वास्तव में प्राकृतिक साधनों का किसी देश के आर्थिक विकास को सीमित करने अथवा प्रोत्साहित करने में एक निर्णायक स्थान होता है।''

प्राकृतिक साधनों के बारे में दो बातों को दृष्टि में रखना आवश्यक है प्रथम, प्रकृति–दत्त

साधन सदैव के लिये सीमित व निश्चित होते हैं, मानवीय प्रयत्नों से उन्हें खोजा तो जा सकता है परन्तु उनका नव निर्माण नहीं किया जा सकता। **गिल महोदय** का भी कहना है कि '' जनसंख्या बढ़ सकती है, उपकरणों, मशीनों तथा फैक्ट्ररियों का निर्माण किया जा सकता है। किन्तु हमें प्रकृति द्वारा दिये गए प्राकृतिक उपहार (साधन) सदैव के लिए सीमित एवं निश्चित होते हैं।''

द्वितीय, यह सोच लेना एक भयंकर भूल होगी कि जिस देश में जितने अधिक प्राकृतिक साधन होंगे, उस देश का विकास उतना ही अधिक होगा। **आर्थिक विकास के लिये प्राकृतिक साधनों की केवल बाहुल्यता ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनका उचित ढंग से विदोहन किया जाना अधिक आवश्यक है।**

उदाहरण के लिए स्विटजरलैंड तथा जापान के प्राकृतिक साधन कम होते हुए भी आज वे विश्व के सर्वाधिक विकसित राष्ट्र माने जाते हैं। भारत के सम्बन्ध में कहा जाने वाला यह वाक्य आज भी इस दृष्टि से अडिग है कि – ''भारत एक धनी देश है जहां निर्धन वास करते हैं।''

2.मानवीय साधन

मानवीय साधनों से हमारा अभिप्राय किसी देश में निवास करने वाली जनसंख्या से है। श्रम, प्राचीन काल से ही उत्पादन का एक महत्वपूर्ण एवं सक्रिय साधन माना जाता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **एडम स्मिथ** का कहना था कि ''प्रत्येक देश का वार्षिक श्रम वह कोष है जो मूल रूप से जीवन की अनिवार्यताओं व सुविधाओं की पूर्ति करता है।'' मानवीय श्रम ही वह शक्ति है जिस पर देश का आर्थिक विकास निर्भर करता है।'' प्रायः यह कहा जाता है कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास की पूर्व आवश्यकता है लेकिन तीव्र गति से होने वाली जनसंख्या का बढ़ना तभी तक श्रेष्ठकर माना जायेगा जब तक कि उनका प्रति–व्यक्ति उत्पादन पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़ने पाये। दूसरे शब्दों में देश की जनसंख्या व उसका आकार, वृद्धि दर, संरचना, विभिन्न व्यवसायों में वितरण व कार्यक्षमता आदि का उस देश के आर्थिक विकास पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है।यहॉ आपको स्पष्ट रूप से यह बताना है कि किसी देश की वास्तविक सम्पत्ति उस देश की भूमि या पानी में नहीं, वनों या खानों में नहीं, पक्षियों या पशुओं के झुण्डों में नहीं, और न ही डालरों के ढेर में आंकी जाती है बल्कि उस देश के स्वस्थ, सम्पन्न व सुखी पुरूषों, स्त्रियों एवं बच्चों में निहित है।''

अतः आवश्यकता इस बात की है कि आर्थिक विकास के लिये मानवीय शक्ति का सही ढंग से उपयोग करने हेतु 1. जनाधिक्य पर नियंत्रण लगाया जाये, 2. श्रम शक्ति में उत्पादकता एवं गतिशीलता बढ़ाते हुए उसके दृष्टिकोण में परितर्वन किया जाये ताकि उसमें श्रम–गौरव की भावना आ सके तथा 3. मानवीय पूंजी निर्माण पर बल दिया जाये। **मेयर्स** के अनुसार मानवीय पूंजी निर्माण से हमारा आशय 'देश की जनसंख्या उसके आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप है और उसके निवासी विवेकशील, चरित्रवान, स्वस्थ, परिश्रमी, शिक्षित व कार्यदक्ष हैं तो निःसन्देह अन्य बातों के समान रहने पर, उस देश का

आर्थिक विकास अधिक होता है। **प्रो0 रिचार्ड टी0 गिल** का कहना है कि :–

''आर्थिक विकास एक यांत्रिक प्रक्रिया मात्र ही नहीं, वरन् अन्तिम रूप से यह एक मानवीय उपक्रम है। अन्य मानवीय उपक्रमों की भांति इसका परिणाम, सही अर्थों में, इसको संचालित करने वाले जन समुदायों की कुशलता, गुणों व प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है।''

इसमें कोई संदेह नहीं कि जहां विकसित देशों के आर्थिक विकास में जनसंख्या व उसकी क्रमिक वृद्धि का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है, वहां अल्प विकसित देशों के अवरूद्ध आर्थिक विकास का एक मात्र कारण जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने विश्व के अधिकांश पिछड़े हुए देशों के लिए एक गम्भीर समस्या उत्पन्न कर दी है। अवांछित रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमि तथा यंत्रों पर दबाव बढ़ने लगता है, प्रति व्यक्ति आय, बचतों तथा पूंजी निर्माण की दरों में कमी आती है, उत्पादकता मे ह्रास होता है, प्रति व्यक्ति पूंजीगत साधनों का अभाव होने लगता है, बेरोजगारी बढ़ती है एवं जीवन स्तर में कमी आने लगती है और इस प्रकार आर्थिक विकास के अंतर्गत प्राप्त उपलब्धियां स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं।

3.पूंजी संचय

प्रो0 कुजनेट्स के शब्दों में, ''पूंजी व पूंजी का संचय आर्थिक विकास की एक अनिवार्य आवश्यकता है।'' जब तक देश में पर्याप्त मात्रा में पूंजी व पूंजी निर्माण नहीं होगा तब तक आर्थिक विकास का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता है। **प्रो0 नर्कसे** का कहना है कि ''पूंजी निर्माण आर्थिक विकास की एक पूर्व आवश्यकता है।'' देश के आर्थिक विकास के लिये एक बड़ी मात्रा में पूंजी व पूंजीगत वस्तुओं जैसे भवन, कल–कारखाने, मशीनें, यन्त्र व उपकरण, बांध, नहरें, रेलें, सड़कें, कच्चा माल व ईंधन की आवश्यकता होती है। जिस देश के पास यह साधन जितने अधिक होंगे, अन्य बातें समान रहने पर उसका आर्थिक विकास उतना ही अधिक होगा। आज विकसित कहे जाने वाले राष्ट्रों की प्रगति का मुख्य कारण, इन देशों में पूंजी निर्माण की ऊंची दर का पाया जाना है जबकि अल्प विकसित देशों में पूंजी निर्माण की धीमी दर के कारण उनका आर्थिक विकास आज भी अवरूद्ध अवस्था में पड़ा हुआ है। सत्यता तो यह है कि पूंजी का संचय, वर्तमान समय में, अमीर–गरीब के बीच पाये जाने वाले अन्तर का कारण व प्रतीक है, यह निर्धन देशों को धनवान बनाने की एक कला है और विश्व के पिछड़े हुए देशों के विगत इतिहास के विपरीत, आज के इस औद्योगिक युग का सूत्रपात करने वाले कारकों में से एक प्रमुख कारक है।

4.तकनीकी प्रगति एवं नव–प्रवर्तन

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो0. शुम्पीटर का कहना है कि विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक तकनीकी प्रगति एवं नव–प्रवर्तनों को अपनाया जाना है। तकनीकी ज्ञान की प्रगति को ऐसे नये ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके कारण या तो वर्तमान वस्तुएं कम लागत पर उत्पन्न की जा सकें अथवा जिनके फलस्वरूप नई वस्तुओं का उत्पादन सम्भव किया जा सके।'' तकनीकी ज्ञान उत्पादन की विधियों में मौलिक परिवर्तन लाकर आर्थिक विकास के कार्य को गति प्रदान करता है।विकसित देशों की विकास वृद्धि

की दर, बुनियादी रूप से उनके द्वारा की गई तकनीकी व नव प्रवर्तनों की खोज पर आधारित रहती है। इसके विपरीत अल्प विकसित देशों में तकनीकी ज्ञान के अभाव में उत्पादन की पुरानी व अवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है जिसके फलस्वरूप इनका आर्थिक विकास आज भी पिछड़ी हुई अवस्था में है।

प्रो0 रिचार्ड टी0 गिल का कहना है कि ''आर्थिक विकास अपने लिये महत्वपूर्ण पौष्टिकता वस्तुतः, नये विचारों, तकनीकी आविष्कारों व उत्पादन विधियों के स्रोतों से प्राप्त करता है, जिनके अभाव में, अन्य साधन कितने ही विकसित क्यों न हों, आर्थिक विकास का प्राप्त करना असम्भव ही बना रहता है।'' ध्यान रहे, तकनीकी प्रगति, नवीन प्रवर्तनों के अपनाए जाने पर ही निर्भर करती है। एक देश में तकनीकी प्रगति के लिये प्रो0 गिल ने चार तत्वों का होना आवश्यक बताया है – 1. विज्ञान की प्रगति या वैज्ञानिक अभिरूचि 2 समाज में शिक्षा का ऊंचा स्तर, 3. नव प्रवर्तनों को व्यावहारिक रूप देना तथा 4. उद्यमशीलता।

5.उद्यमशीलता

नये आविष्कार, तकनीकी ज्ञान व नई खोजों का आर्थिक विकास की दृष्टि से तब तक कोई महत्व नहीं जब तक कि उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान न कर दिया जाये – और यह काम समाज के साहसी वर्ग को करना होता है। प्रो0 गिल का कहना है कि ''तकनीकी ज्ञान आर्थिक दृष्टि से तभी उपयोगी हो सकता है जब उसे नव प्रवर्तन के रूप में प्रयोग किया जाये और जिसकी पहल समाज के साहसी वर्ग द्वारा की जाती है।'' वास्तव में, किसी देश का आर्थिक विकास विशेष रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि उस देश में किस प्रकार के साहसी हैं ? वे नये आविष्कारों व विकसित तकनीकों का किस सीमा तक प्रयोग करते हैं ? और उनके उत्पादन के क्षेत्र में विकास और सुधार करने की कितनी प्रबल इच्छा है ? आर्थिक विकास तकनीकी प्रगति व नव प्रवर्तनों पर निर्भर करता है, नव प्रवर्तनों के लिए उद्यमशीलता की आवश्यकता होती है, उद्यमशीलता के लिए जोखिम उठानी पड़ती है और जोखिम सफलता का दूसरा नाम है।

श्री याले ब्राजन के अनुसार, ' न तो आविष्कार की योग्यता और न केवल आविष्कार ही आर्थिक विकास को संभव बनाते हैं बल्कि यह तो, उन्हें कार्यरूप में परिणित करने की प्रबल इच्छा व जोखिम उठाने की क्षमता पर निर्भर करता है।'' **प्रो0 शुम्पीटर** ने अपने आर्थिक विकास के सिद्धान्त में नव प्रवर्तनों के रूप में साहसियों को केन्द्रीय स्थान देते हुए इन्हें आर्थिक विकास की संचालन शक्ति माना है। वास्तव में, आर्थिक विकास वैदिक काल से ही उद्यमशीलता के साथ सम्बन्धित रहा है और उद्यमकर्ता को उन व्यक्तियों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो 'नये दृष्टिकोणों'' व 'नये संयोगों' का सृजन करते हैं। **प्रो0 बोल्डिंग** का मत है कि आर्थिक प्रगति को विभिन्न समस्याओं में से मुख्य समस्या समाज के एक वर्ग विशेष को 'नव प्रवर्तकों' का रूप देने की होती है।

विकसित देशों की आर्थिक प्रगति का मुख्य कारण, इन देशों में साहसियों का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना ही रहा है। जबकि इसके विपरीत पिछड़े हुए देशों में **'शर्मीली पूंजी',** उद्यमशीलता का अभाव व जोखिम उठाने की क्षमता न होने के कारण, इन देशों का

आर्थिक विकास संभव नहीं हो सका। आजकल अल्प विकसित देशों में नव प्रवर्तकों की भूमिका सरकार द्वारा अदा की जाती है। इसका कारण यह है कि एक तो निजी उद्यमकर्ताओं का अभाव और दूसरा विकास कार्यों पर, उत्पादन की नई तकनीकों के अंतर्गत विशाल धनराशि को विनियोग करना पड़ता है जो कि व्यक्तिगत प्रयत्नों से संभव नहीं हो पाता।

6.विदेशी पूंजी

अल्प विकसित देश के आर्थिक विकास का एक अन्य निर्धारक तत्व विदेशी पूंजी है। विदेशी पूंजी के प्रयोग के अभाव में कोई भी अल्प विकसित देश आर्थिक विकास नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि अल्प विकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय के कम होने के कारण घरेलू बचत की दर काफी कम होती है। लोगों का जीवन स्तर इतना नीचा होता है कि उनके द्वारा बचत करना संभव नहीं हो पाता। फलतः घरेलू बचत की इस कमी को विदेशी पूंजी के आयात द्वारा पूरा किया जा सकता है। विदेशी पूंजी के आयात का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि यह अपने साथ तकनीकी ज्ञान व पूंजीगत उपकरणों को भी लाती है। जिनका पिछड़े हुए देशों में सर्वथा अभाव होता है। इस प्रकार पूंजी व विकसित तकनीकी के उपलब्ध हो जाने पर अल्प विकसित देशों में तकनीकी स्तर को ऊंचा करके प्रति व्यक्ति उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। संक्षेप में, अल्प विकसित देशों में विदेशी पूंजी का प्रयोग विकास परियोजना योजनाओं को चालू करना ; कच्ची सामग्री, मशीनें व उपकरणों का आयात करने ; उत्पादन स्तर को बनाये रखने ; तथा आवश्यक वस्तुओं का आयात करके मुद्रा–स्फीति का सामना करने में सहायक सिद्ध होती है।

4.5 अनार्थिक कारक एवं आर्थिक विकास

आर्थिक विकास के गैर आर्थिक तत्व इस प्रकार है :–

1.सामाजिक तथा संस्थागत तत्व

मायर एवं बाल्डविन के अनुसार 'आर्थिक विकास के मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आवश्यकताओं का होना उसी प्रकार जरूरी है जिस प्रकार आर्थिक आवश्यकताओं का' इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय विनियोग नीति पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक प्रवृत्तियों का संयुक्त प्रभाव पड़ता है। किसी देश का आर्थिक विकास मूल रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि लोगों में नूतन मूल्यों व संस्थाओं को अपनाने की कितनी प्रबल इच्छा है। वास्तव में गैर आर्थिक तत्वों के रूप में यह सामाजिक, मनौवैज्ञानिक व संस्थागत तत्व, आर्थिक विकास की उत्प्रेरक शक्तियां हैं। प्रो0 रागनर नर्कसे का कहना है कि 'आर्थिक विकास का मानवीय मूल्यों, सामाजिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक दशाओं तथा ऐतिहासिक घटनाओं से एक घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ – की प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार ''एक उपयुक्त वातावरण की अनुपस्थिति में आर्थिक प्रगति असम्भव है। आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि लोगों में प्रगति की प्रबल इच्छा हो, वे उसके लिये हर सम्भव त्याग करने को तत्पर हों, वे अपने आपको नये विचारों के अनुकूल ढालने के लिए जागरूक हों और उनकी सामाजिक,

आर्थिक, राजनीतिक व वैधानिक संस्थायें इन इच्छाओं को कार्यरूप में परिणित करने में सहायक हों।' प्रो0 पाल अलबर्ट का कहना है कि आर्थिक विकास के लिये समाज व अर्थव्यवस्था की संरचना, वांछित परिवर्तनों की सम्भावनाओं की दृष्टि से खुली होनी चाहिए।

अल्प विकसित देशों के आर्थिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण, वास्तव में ये सामाजिक व संस्थागत तत्व ही रहे हैं। इन देशों में जाति–प्रथा, छूआ छूत, संयुक्त परिवार प्रणाली, उत्तराधिकार के नियम, भू–धारण की दोषपूर्ण व्यवस्था, भूमि व सम्पत्ति के प्रति मोह, अन्ध विश्वास, रूढ़िवादिता, धार्मिक पाखण्ड, परिवर्तन के प्रति विरक्ति और उसका विरोध, सामाजिक अपव्यय तथा झूठी शान शौकत जैसे तत्वों ने आर्थिक विकास के मार्ग पर सदैव बाधायें उत्पन्न की हैं। इन देशों का आर्थिक विकास तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक कि इन सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक संस्थाओं का नये सिरे से नव निर्माण न कर दिया जाये। अतः इस दृष्टि से आवश्यक है कि लोगों की रूढ़िवादी धारणाओं को परिवर्तित किया जाए, उनमें भौतिक दृष्टिकोण पैदा किया जाए और शिक्षा का विस्तार किया जाए ताकि ये लोग अपने आपको नये विचारों के अनुकूल ढाल सकें।

2.स्थिर तथा कुशल प्रशासन

किसी देश का आर्थिक विकास बहुत एक सीमा तक उस देश के स्थिर व कुशल प्रशासन पर भी निर्भर करता है। यदि देश में शान्ति और सुरक्षा पायी जाती है तथा न्याय की उचित व्यवस्था है तो लोगों में काम करने तथा बचत करने की इच्छा पैदा होगी और फलस्वरूप आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलेगा। इसके विपरीत यदि देश में राजनैतिक अस्थिरता है अर्थात् सरकारें बार–बार बदलती रहती हैं तथा आन्तरिक क्षेत्र में अशान्ति का वातावरण व्याप्त है तो इससे विनियोग सम्बन्धी निर्णयों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। पूंजी का विनियोग देश मे कम होगा, जोखिम उठाने के लिये लोग तैयार नहीं होंगे तथा विदेशी पूंजी देश में आने के लिए तैयार नहीं हो पायेगी और फलस्वरूप देश का आर्थिक विकास पिछड़ जायेगा। इतना ही नहीं, सरकार की स्वयं विकास के प्रति रूचि का होना भी जरूरी है, अन्यथा उसके अभाव में आर्थिक विकास का श्रीगणेश भी नहीं हो सकेगा।

सरकार की कुशल प्रशासन व्यवस्था और उसके कर्मचारियों में निपुणता, ईमानदारी एवं उत्तरदायित्व की भावना आर्थिक विकास की पहली शर्त है। प्रशासनिक व्यवस्था के सुचारू व सुदृढ़ होने पर जन सहयोग बढ़ता है विकास कार्यक्रम सफल होते हैं और नीतियों का निर्धारण व उनका निष्पादन सरलता के साथ सम्भव हो जाता है। **प्रो0 डब्लू आर्थर लुइस** का मत है कि ''कोई भी देश राजकीय सहयोग व उसका सक्रिय प्रोत्साहन पाये बिना, आज तक आर्थिक विकास नहीं कर सका है। यह कथन अपने में आज भी सत्य है और भविष्य के लिये भी सत्य है और अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिये तो यह विशेष रूप से कटु सत्य माना जाएगा।''

3.अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां

आर्थिक विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का अनुकूलन होना भी आवश्यक है। विश्व मंच पर राजनैतिक शान्ति बने रहने पर ही विकास व नव निर्माण कार्य संभव हो

सकते हैं। अशान्ति और युद्धों की धधकती ज्वाला में विकासात्मक नहीं, वरन् विध्वंसात्मक प्रवृत्तियां जन्म लेती हैं। राजनैतिक शान्ति के अलावा विश्व के देशों में सद्भावना, सहयोग व वित्तीय सहायता का उपलब्ध होना भी अत्यावश्यक है। अल्प विकसित देशों में पूंजी व पूंजीगत सामान, भारी मशीनें तथा तकनीकी ज्ञान का सर्वथा अभाव होता है। इन सभी आवश्यकताओं की आपूर्ति विकसित राष्ट्रों द्वारा जब तक नहीं की जायेगी, तब तक इन देशों का आर्थिक विकास अवरूद्ध बना रहेगा। विकसित देश अनुदान, ऋण, प्रत्यक्ष विनियोग और तकनीकी सहायता आदि के रूप में इन देशों को आर्थिक सहयोग दे सकते हैं। संक्षेप में **राजनीतिक स्थिरता, विकसित देशों की नीति, पड़ोसी देशों का रूख, विदेशी व्यापार की सम्भावनाओं और विदेशी पूंजी का अन्तर्प्रवाह** आदि तत्व आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में प्रभावित करते है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि किसी देश का आर्थिक विकास अनेक तत्वों पर निर्भर करता है। वस्तुतः यह कहना कि कौन सा तत्व अधिक महत्वपूर्ण है, अत्यन्त कठिन है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में इन सभी निर्धारक तत्वों का अपना एक विशेष स्थान है इसलिये उनके सापेक्षिक योगदान एवं महत्व के बारे में कुछ भी कहना न तो सम्भव ही है और न ही तर्कपूर्ण।

4.6 आर्थिक विकास की अवस्थाएं

आर्थिक विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार मानव के विकास का आदिम इतिहास इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि मनुष्य जन्म के समय शिशु, शिशु से किशोर, किशोर से तरूण और फिर जवानी की दहलीज पार करते हुए वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होता है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक देश को अपने पिछड़ेपन से विकास की चरम सीमा तक पहुंचने के लिए अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है। क्रमिक विकास की यह व्यवस्था, अपने में ही इतनी अधिक सार्वभौमिक है कि वर्तमान समय में विकसित कहे जाने वाले देशों जैसे अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस व जापान आदि को भी सम्पन्नता की मन्जिल पर पहुंचने के लिये अनेक पड़ावों को पार करना पड़ा है। हां ! यह सम्भव हो सकता है कि कोई देश अपने सक्रिय प्रयत्नों के फलस्वरूप विकास की प्रत्येक अवस्था में पड़े रहने की अवधि को कम कर लें, परन्तु यह नामुमकिन है कि उसने विकास की प्रत्येक अवस्था की परिधि को छुआ न हो।

प्रो0 रिचार्ड टी0 गिल का कहना है कि 'अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं की खोज, इंग्लैण्ड की महान औद्योगिक क्रांति के काल से ही प्रारम्भ की जा चुकी है। आर्थिक विकास की अवस्थाओं के इस दृष्टिकोण ने, जो कि सैद्धान्तिक की बजाय वर्णात्मक अधिक है, विकास प्रक्रिया को अनेक अवस्थाओं में वर्गीकृत करने का प्रयास किया है जिसमें से सभी देशों को अपने स्वाभाविक आर्थिक उद्गम व विकास के लिए होकर गुजरना पड़ेगा है।''

अवस्थाएं सम्बन्धी मतभेद

अनेक अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास के ऐतिहासिक क्रम को भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में

विभाजित करने का प्रयत्न किया है। चूंकि इन सभी अर्थशास्त्रियों द्वारा वर्णित अवस्थाओं के दृष्टिकोण, आधार व काल अलग अलग रहे हैं। इसलिए उनके विचारों में मतभेद का पाया जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। विकास की अवस्थाओं का मार्ग दर्शन करने वालों में प्रो0 लिस्ट, हिल्डेब्रांड, बकर, एशले, बूचर, शमोलर, कोलिन क्लॉक, कार्लमार्क्स तथा रोस्टोव आदि प्रमुख हैं। नीचे हम इन्हीं के विचारों का अध्ययन करेंगे –

4.6.1 प्रो0 फ्रेडरिक लिस्ट की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

प्रसिद्ध जर्मन राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट ने 1844 में आर्थिक व्यवस्था के क्रमिक विकास की निम्न पांच अवस्थाओं का उल्लेख किया था–
1. जंगली अवस्था 2. चरागाह अवस्था 3. कृषि अवस्था, 4. उद्योग अवस्था, 5. उन्नत अवस्था।

प्रो0 लिस्ट का मत था कि प्रत्येक देश को उन्नत अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु यह तभी संभव हो सकता है जबकि 1. देश सर्वप्रथम कृषि में उन्नति करे और फिर बाद में उद्योगों के विकास पर बल दिया जाए, 2. प्रारम्भिक अवस्था में राष्ट्रीय उद्योगों को संरक्षण प्रदान किया जाए तथा 3. जब देश उन्नत अवस्था को प्राप्त कर ले तब स्वतंत्र व्यापार नीति को अपनाते हुए विदेशी व्यापार सम्बन्धी सभी प्रतिबन्धों को हटा देना चाहिए।

4.6.2 प्रो0 हिल्डेब्रांड की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

सन् 1864 में जर्मन अर्थशास्त्री हिल्डेब्रांड ने विकास की तीन अवस्थायें बताई थीं जो कि इस प्रकार हैं–1. वस्तु विनिमय अवस्था 2. मुद्रा अवस्था और 3. साख अवस्था

4.6.3 कोलिन क्लार्क की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

कोलिन क्लार्क द्वारा आर्थिक विकास की निम्न अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। जिसका समर्थन बौर एवं यामी ने भी किया है –

1.कृषि उद्योग अवस्था – इस अवस्था में पिछड़े हुए देशों में कृषि सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्योग व राष्ट्रीय आय का प्रमुख साधन होता है।

2.निर्माणकारी उद्योग अवस्था – अर्थ व्यवस्था का जैसे–जैसे विकास होता जाता है, कृषि की अपेक्षा निर्माणकारी उद्योगों का महत्व बढ़ने लगता है।

3.सेवा उद्योग अवस्था – अर्थ व्यवस्था का और अधिक विकास होने पर सेवा उद्योगों जैसे संचार व परिवहन, बीमा, शिक्षा आदि का भी विकास अधिक होने लगता है।

4.6.4 कार्ल मार्क्स की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

कार्ल मार्क्स ने वर्ग संघर्ष को विकास की अवस्थाओं का आधार माना है। उन्होंने 1948 में अपने 'Communist Manifesto' में स्पष्टतया लिखा है कि ''आज के विद्यमान समाजों का इतिहास एक संघर्ष का इतिहास है। आजाद एवं गुलाम, देशभक्त एवं गद्दार, जमींदार एव निसहाय मजदूर, शोषक एवं शोषित सभी एक दूसरे के विरोध में उठ खड़े हुए हैं और भले ही खुलम खुल्ला न सही चोरी छिपे एक दूसरे पर हावी होने के लिए प्रयत्नशील हैं। ..... इस लड़ाई का अन्त या तो समाज के क्रांतिकारी पुननिर्माण के रूप में होगा अथवा

स्पर्धा करने वाले वर्गों के अन्त के रूप में होगा।'' कार्ल मार्क्स के अनुसार विकास की प्रमुख चार अवस्थायें हैं – 1. सामन्तवाद 2. पूंजीवाद 3. समाजवाद, 4. साम्यवाद। मार्क्स के अनुसार अर्थ व्यवस्थाओं के विकास की प्रथम अवस्था श्रमिकों के शोषण से प्रारम्भ होती है और अन्तिम अवस्था शोषण की समाप्ति के साथ ही साथ परिपूर्ण हो जाती है।

4.6.5 प्रो0 बकर की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

प्रो0 बकर के अनुसार 1. गृह अर्थ व्यवस्था, 2. शहरी अर्थ व्यवस्था तथा 3. राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था, आर्थिक विकास की तीन अवस्थाएं हैं।

4.6.6 प्रो0 एशले की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

प्रो0 एशले के अनुसार विकास की विभिन्न अवस्थाएं इस प्रकार हैं –

- गृह व्यवस्था,
- गिल्ड व्यवस्था,
- घरेलू व्यवस्था तथा
- फैक्ट्री व्यवस्था।

4.6.7 प्रो0 रोस्टोव की आर्थिक विकास की अवस्थाएं

आर्थिक विकास की अवस्थाओं का वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण ढंग से विश्लेषण करने का श्रेय प्रसिद्ध अमेरिकन अर्थशास्त्री प्रो0 रोस्टोव को दिया जाता है। रोस्टोव ने अपनी पुस्तक 'The Stages of Economic Growth' में आर्थिक विकास की अवस्थाओं को निम्न पांच भागों में विभक्त किया है :–

- परम्परागत समाज,
- उत्कर्ष या आत्म स्फूर्ति की पूर्व दशायें,
- आत्म स्फूर्ति की अवस्था,
- परिपक्वता की अवस्था तथा
- अत्यधिक उपभोग की अवस्था।

1. परम्परागत समाज की अवस्था

प्रो0 रोस्टोव के अनुसार ''परम्परागत समाज से तात्पर्य, एक ऐसे समाज से है जिसकी संरचना का विकास न्यूटन के पूर्व के विज्ञान और तकनीक तथा भौतिक जगत के प्रति न्यूटन से पूर्व के दृष्टिकोणों पर आधारित, सीमित उत्पादन फलनों की सीमाओं के अंतर्गत होता है।'' विकास की यह अवस्था अत्यन्त पिछड़ी हुई होती है, उत्पादन बढ़ता है लेकिन अत्यन्त धीमी गति से, और विकास की उत्प्रेरणाओं का सर्वथा अभाव होता है। परम्परागत समाज की आधारभूत विशेषता वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव तथा उत्पादन फलन का सीमित होना है। सीमित उत्पादन फलन का अर्थ है आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक का या तो उपलब्ध न होना अथवा उसका व्यवस्थित एवं नियमित रूप में प्रयोग न किया जाना, जिसके फलस्वरूप ऐसे समाज में प्रति व्यक्ति उत्पादकता का स्तर नीचा बना रहता था। ये समाज अपनी भौतिक प्रगति को वैज्ञानिक रूप से समझने में असमर्थ थे।

परम्परागत समाज की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

- आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग के प्रति सीमित दृष्टिकोण पाया जाता है।
- यह अर्थ व्यवस्था अधिकांश रूप से अविकसित होती है।
- औद्योगीकरण का अभाव होता है तथा अर्थ व्यवस्था मुख्यतया कृषि पर आश्रित होती है।
- उत्पादन कार्य परम्परागत तरीकों से किया जाता है जिसके फलस्वरूप उत्पादकता का स्तर नीचा बना रहता है।
- जन्म व मृत्युदर के ऊंची होने के बावजूद जनाधिक्य की कोई समस्या नहीं होती।
- राज्य की आर्थिक क्रियायें अत्यन्त सीमित होती हैं।
- इस प्रकार के समाज में राजनीतिक सत्ता भूस्वामियों के हाथ में केन्द्रित होती है।
- ऐसे समाजों का सामाजिक ढांचा उत्तराधिकारवादी होता है। जिसमें परिवार तथा जाति सम्बन्ध प्रमुख भूमिका निभाते हैं।
- कृषि राज्य की आय का प्रमुख स्रोत होता है।
- कृषिगत आय तथा बचतों का अधिकांश भाग अनुत्पादक कार्यों (जैसे युद्ध, खर्चीली शादियों तथा अन्त्येष्टियों, मंदिरों व स्मारकों के निर्माण आदि) पर व्यय किया जाता है जिससे पूंजी निर्माण की दर नीची बनी रहती है।
- स्मरण रहे, परम्परागत समाज स्थैतिक समाज नहीं होता बल्कि उत्पादन स्तर, व्यापार के प्रतिरूप, जनसंख्या तथा आय में परिवर्तन लाने की पर्याप्त सम्भावनाएं उपस्थित होती हैं।

2. आत्म स्फूर्ति की पूर्व दशाएं

आर्थिक विकास की यह अवस्था संक्रमण काल है जिसमें सतत वृद्धि की पूर्व दशाओं का निर्माण होता है। इस अवस्था में समाज में धीरे धीरे परिवर्तन होने आरम्भ हो जाते हैं और समाज परम्परागत अवस्था से निकलकर एक वैज्ञानिक समाज का रूप लेते हुए आत्म स्फूर्ति की अवस्था में प्रवेश करने की तैयारी करने लगता है। यही कारण है कि इस काल को आत्म स्फूर्ति के विकास की पूर्व दशाओं का काल कहते हैं। इस अवस्था में आर्थिक सुधार के विचार जन्म लेते हैं और सामाजिक, भौगोलिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता को लाने हेतु परम्परागत दृढ़ता टूटने लगती है। उत्पादन की नई रीतियां अपनायी जाती हैं। पर कुल मिलाकर प्रगति की दौड़ मन्द बनी रहती है। **फिर भी आत्म स्फूर्ति की पृष्ठ भूमि तैयार करने में इस अवस्था का अपना एक विशेष महत्व है।**

रोस्टोव ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है, ''लोगों में यह विचार फैलने लगता है कि आर्थिक विकास सम्भव है और यह किसी भी अन्य लक्ष्य चाहे वह राष्ट्रीय सम्मान हो, निजी लाभ, सामान्य कल्याण का प्रश्न हो या फिर बच्चों के सुरक्षित भविष्य का उद्देश्य हो, के

लिये एक आवश्यक शर्त है। शिक्षा का विस्तार होता है और उसका स्वरूप आधुनिक अवस्थाओं के अनुरूप होने लगता है। निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में नये उद्यमी वर्ग का अद्भव होता है जो बचतों को गतिशील करके लाभ हेतु जोखिम उठाने के लिए तैयार हो जाता है। निवेश बढ़ता है और पूंजी बाजार तथा बैंकों का विस्तार होता है। यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों का विकास होता है जिससे आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार का क्षेत्र विस्तृत होने लगता है। थोड़े बहुत रूप में निर्माणकारी उद्योग भी प्रकट होते हैं जो नई तकनीकों का प्रयोग करते हैं।'' इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1. कृषि क्षेत्र में प्राविधिक क्रान्ति लाने के प्रयत्न किये जाते हैं।
2. सामाजिक व संस्थागत तत्वों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है।
3. कृषि का सापेक्षिक महत्व कम होने लगता है और उसके साथ ही साथ शहरी क्षेत्र में औद्योगिक कार्यशील जनसंख्या का अनुपात बढ़ने लगता है।
4. आयातों विशेषतया पूंजीगत आयतों का विस्तार होता है और इसका वित्त प्रबन्धन प्राथमिक वस्तुओं तथा प्राकृतिक साधनों के निर्यात द्वारा किया जाता है।
5. विदेशी पूंजी को आमंत्रित किया जाता हैं।
6. बैंकिंग व्यवस्था, परिवहन व संचार, शिक्षा प्रणाली और श्रम शक्ति के वर्तमान स्तर में विकास व सुधार होने लगता है।
7. शासन में भू स्वामियों का महत्व घटने लगता है और उसके स्थान पर एक राष्ट्रवादी व सक्षम सरकार की स्थापना हो जाती है।

आवश्यक शर्ते – रोस्टोव के अनुसार आर्थिक विकास के लिये आवश्यक दशाओं को पैदा करने के लिये कुछ आवश्यक शर्तों को पूरा होना जरूरी है। 1. राष्ट्रीय आय का लगभग 5 से 10 प्रतिशत या इससे अधिक भाग विनियोजित होना चाहिए। 2. कृषि उत्पादकता में वृद्धि होनी चाहिए ताकि बढ़ती हुई सामान्य तथा शहरी जनसंख्या को आवश्यक खाद्य पूर्ति प्राप्त हो सके। 3. यातायात एवं सामाजिक सेवाओं के विकास पर कुल विनियोग का काफी बड़ा भाग व्यय होना चाहिए अर्थात सामाजिक उपरिव्यय पूंजी का निर्माण होना चाहिए। 4. आधुनिक उद्योगों का विकास तथा विविधीकरण होना चाहिए। 5. सामाजिक मूल्यों तथा दृष्टिकोण में आवश्यकतानुकूल परिवर्तन होने चाहिए।

स्मरण रहे, विकास की प्रथम अवस्था निष्क्रिय अवस्था है। जबकि दूसरी अवस्था इसमें सक्रियता लाती है, जिसके फलस्वरूप अर्थ व्यवस्था को आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलने लगती है और देश विकास की तीसरी अवस्था यानि आत्म स्फूर्ति की अवस्था में प्रवेश कर जाता है।

3. आत्म स्फूर्ति की अवस्था

'आत्म स्फूर्ति' या उत्कर्ष अर्थात 'छलांग लेने' की यह अवस्था विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है। प्रो0 रोस्टोव के अनुसार 'आत्म स्फूर्ति, अविकसित अवस्था और विकास की चरम सीमा के बीच एक मध्यान्तर की अवस्था है। यह वह अन्तराल है जब पुरानी बाधाओं तथा प्रतिरोधों पर पूरी तरह से काबू पा लिया जाता है। विकास की

प्रेरक शक्तियां जो अब तक निष्क्रिय बनी हुई थीं, सक्रिय हो उठती हैं और विस्तृत होकर समाज पर हावी होने लगती हैं। विकास समाज की एक सामान्य दिनचर्या का रूप ले लेता है और संचयी विकास उसकी आदतों तथा उसके संस्थानिक ढांचे का अभिन्न अंग बन जाता है।

आत्म स्फूर्ति की अवस्था को प्रो0 किन्डलबर्जर ने अधिक स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है कि ''यह प्रगति की एक ऐसी अवस्था है जिसमें विकास की रूकावटें दूर हो जाती हैं। विकास की दर को चक्रीय वृद्धि नियम के अनुसार बढ़ाने हेतु विनियोजन की दर 5 प्रतिशत से बढ़कर 10 प्रतिशत से भी अधिक हो जाती है। अर्थ व्यवस्था कुछ मामलों में आत्म निर्भर होने लगती है।

प्रो0 रोस्टोव के अनुसार आत्म स्फूर्ति की अवधि छोटी होती है और यह लगभग दो दशकों तक रहती है। रोस्टोव ने कुछ देशों के आत्म स्फूर्ति काल का भी उल्लेख किया है –

प्रमुख देशों का आत्म स्फूर्ति काल

देश	आत्म स्फूर्ति	देश	आत्म स्फूर्ति
ग्रेट ब्रिटेन	1738–1802	रूस	1890–1914
फ्रांस	1830–1860	कनाडा	1996–1914
बेल्जियम	1833–1860		
अमेरिका	1843–1860	टर्की	1937
जर्मनी	1850–1837	भारत	1952
स्वीडन	1868–1890	चीन	1952
जापान	1878–1900		

प्रमुख विशेषताएं :–

1. अर्थ व्यवस्था, आत्मनिर्भर व स्वयं संचालित हो चुकी होती है।
2. आर्थिक विकास की बाधाओं पर काबू पा लिया जाता है और आर्थिक प्रगति की उत्प्रेरक शक्तियों का भरपूर विस्तार होता है।
3. गरीबी का दुश्चक्र पूरी तरह से तोड़ दिया जाता है और विकास एक सामान्य दशा बन जाती है।
4. आधार भूत उद्योगों की स्थापना के कारण औद्योगिक उत्पादन तेजी के साथ बढ़ने लगता है।
5. प्राविधिक विकास एवं नव प्रवर्तन अर्थ व्यवस्था की एक स्थायी विशेषता बन जाती है और संचयी विकास संभव होने लगता है।
6. कृषि क्षेत्र में संलग्न जनसंख्या का प्रतिशत 75 से घटकर 40 के करीब रह जाता है।
7. निवेश की दर, कुल राष्ट्रीय आय के 5 प्रतिशत से बढ़कर 10 प्रतिशत या इससे भी अधिक हो जाती है, जो कि जनसंख्या की वृद्धि की दर से अवश्य ही अधिक होती है। फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हो जाती है।

8. साख व्यवस्था का फैलाव, पूंजी निर्माण में वृद्धि, आयात के स्वरूप में परिवर्तन, निर्यात की नई व अधिक सम्भावनाओं का विकास होता है।

4. परिपक्वता की अवस्था

आत्म स्फूर्ति अर्थात छलांग स्तर की अवस्था प्राप्त कर लेने के बाद, अर्थ अवस्था परिपक्वता की अवस्था की ओर अग्रसर होने लगती है। रोस्टोव के अनुसार 'इस अवस्था की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं कि जब समाज में अपने अधिकांश साधनों मे तत्काली अर्थात आधुनिक तकनीक को प्रभावपूर्ण ढंग से अपना लिया हो।' दूसरे शब्दों में 'परिपक्वता वह अवस्था है जिसमें कोई अर्थ व्यवस्था उन भौतिक उद्योगों से आगे बढ़ने की क्षमता रखती है। जिन्होंने उसकी आत्म स्फूर्ति को सम्भव बनाया है और आधुनिक प्रौद्योगिकी को पूर्ण कुशलता के साथ अपने अधिकांश साधन क्षेत्रों पर लागू करने की सामर्थ्य रखती है।' इस अवस्था में विनियोग की दर 10 से 20 प्रतिशत के बीच रहती है और उत्पादन वृद्धि,जनसंख्या वृद्धि से अधिक होती है। हां ! अर्थ व्यवस्था अप्रत्याशित झटके सहन कर सकती है। रोस्टोव ने कुछ देशों के परिपक्वता की अवस्था में प्रवेश करने की तिथियां भी दी हैं। जैसे इंगलैंड 1850, अमेरिका 1900, जर्मनी 1910, फ्रांस 1910, स्वीडन 1930, जापान 1940, रूस 1950 तथा कनाड़ा 1950 आदि ।

प्रो0 रोस्टोव का कहना है कि ''यह अवस्था एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है और एक समाज स्वयं स्फूर्ति के आरम्भ होने के 60 वर्ष बाद परिपक्वता की अवस्था प्राप्त कर पाता है, परन्तु फिर भी स्पष्टतया, इस अवधि के लिये कोई निश्चित रूप से भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है।'' जब कोई देश परिपक्वता की अवस्था में आता है तो उसमें तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं –

- **कार्यकारी शक्ति की संरचना में परिवर्तन** – देश की अर्थ व्यवस्था में कृषि का सापेक्षिक महत्व कम हो जाता है जिसके फलस्वरूप कृषि कार्यों में संलग्न जनसंख्या का अनुपात भी घट जाता है। लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहने के बजाय शहरों में रहना अधिक पसंद करने लगते हैं। शहरी जनसंख्या में प्रदर्शित तथा सफेदपोश श्रमिकों (क्लर्कों) का अनुपात साधारण श्रमिकों की तुलना में अधिक हो जाता है। श्रम शक्ति में जागरूकता और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने के लिए श्रमिक संगठित हो जाते हैं।
- **उद्यम की प्रकृति में परिवर्तन** – उद्यम की प्रकृति इस प्रकार बदलती है कि कठोर तथा परिश्रमी मालिकों का स्थान सभ्य तथा विनम्र प्रबन्धकों के हाथ मे आ जाता है।
- **नूतन आवश्यकताओं की भूख** – तीव्र औद्योगीकरण के चमत्कारों से समाज एक तरफ पर्याप्त रूप से लाभान्वित होता है तो दूसरी तरफ उनसे ऊब भी जाता है। फलतः और भी अधिक नूतनताओं की मांग की जाती है जो पुनः परिवर्तन ला सकें।

5. अत्यधिक उपभोग की अवस्था

परिपक्वता की अवस्था प्राप्त होने के बाद अर्थ व्यवस्था, अत्यधिक उपभोग की अवस्था में प्रवेश करती है। अवस्था परिवर्तन का यह काल अधिक लम्बा नहीं होता है। इस अवस्था में अग्रगामी क्षेत्र अधिकतर ''टिकाऊ उपभोगीय वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करने

लगते हैं जिससे उपभोग का स्तर काफी ऊंचा उठ जाता है। मोटर कारों और घरेलू जीवन से सम्बद्ध अन्य उपकरणों का प्रयोग काफी मात्रा में होने लगता है। समाज का ध्यान उत्पादन से हटकर उपभोग अर्थात लोगों के भौतिक कल्याण की ओर केन्द्रित हो जाता है।'' दूसरे शब्दों में, इस काल में पूर्ति की अपेक्षा मांग, उत्पादन की अपेक्षा उपभोग और आर्थिक विकास की अपेक्षा समाज के भौतिक कल्याण का महत्व अधिक बढ़ जाता है।

प्रमुख विशेषताएं – इस अवस्था की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. इस अवस्था में उपभोग का स्तर उच्चतम होता है।
2. औद्योगिक जनसंख्या में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो जाती है।
3. टिकाऊ उपभोक्ता सामानों जैसे बिजली का सामान, रेफ्रिजिरेटर, वातानुकूलन यंत्र व मोटरों आदि का उत्पादन व उपभोग बड़े पैमाने पर किया जाने लगता है।
4. लगभग देश में पूर्ण रोजगार की स्थिति स्थापित हो जाती है।
5. इन परिवर्तनों के बाद समाज आधुनिक तकनीक में और विस्तृत परिवर्तन स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं होता है क्योंकि यह विकास की चरम अवस्था होती है।

परिपक्वता की अवस्था प्राप्त हो जाने के पश्चात एक अर्थव्यवस्था अपनी उत्पादन शक्तियां निम्नलिखित तीन दिशाओं में से किसी भी दिशा में लगा सकती है– **प्रथम**, ब्राह्य प्रभाव व शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करना अर्थात अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शक्ति का विस्तार करना। **द्वितीय**, सामाजिक सुरक्षा, श्रम कल्याण तथा आय के समान वितरण के द्वारा कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना। इस प्रकार रोस्टोव के अनुसार कल्याणकारी राज्य की स्थापना इस बात का प्रतीक है कि समाज परिपक्वता की अवस्था को पार कर चुका है। **तृतीय**, व्यक्तिगत उपभोग को बढ़ावा व प्राथमिकता देना, और इस दृष्टि से राष्ट्रीय साधनों को बड़ी मात्रा में टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर लगाया जाना। उल्लेखनीय यह है कि इस सम्बन्ध में विभिन्न देशों द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों अर्थात दिशाओं में कोई एकरूपता देखने को नहीं मिलती। कोई देश उपरोक्त मार्गों में से किस मार्ग को अपनाएगा, यह निर्णय उस देश की सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक दशाओं पर अधिक निर्भर करता है। उदाहरण के तौर पर रूस ने अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति के विस्तार को चुना है तो अमेरिका द्वारा व्यक्तिगत उपभोग को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाता है। इसके विपरीत इंगलैण्ड तथा जापान कल्याणकारी राज्य की ओर अधिक चिंतनशील है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका 1920 में अत्यधिक उपभोग की अवस्था में प्रवेश करने वाला पहला देश था। उसके बाद यह गौरव ग्रेट ब्रिटेन को 1930 में प्राप्त हुआ, तथा 1950 में जापान व पश्चिमी यूरोप के कुछ देशों द्वारा यह अवस्था प्राप्त की गयी। साम्यवादी देश रूस 1953–55 के आस पास अर्थात स्टालिन के संसार से विदा होने के बाद ही इस अवस्था को प्राप्त कर सका था।

प्रो0 किन्डलबर्जर का कहना है कि विकास की यह अवस्थाएं एक प्रकार से की शक्ल की भांति है। जैसा कि रेखाचित्र से स्पष्ट होता है। इसमें विकास का कार्य पहले बहुत धीरे से प्रारम्भ होता है, फिर क्रमशः जोर पकड़ता है और इसके बाद काफी तेजी के साथ बढ़ता

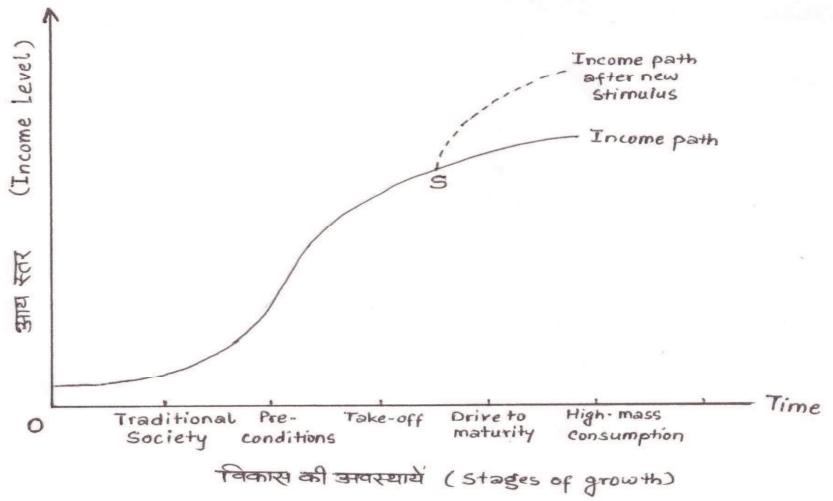

चित्र 4.1

रहता है और अन्त में एक निश्चित सीमा पर आकर विकास पथ शिथिल होने लगता है। बर्जर महोदय का कहना है कि वास्तव में रोस्टोव की विकास प्रक्रिया शैश रूप में मनुष्य के शरीर के विकास की भांति है जो शिशु से किशोर अवस्था तक एक गति से चलती है और फिर यौवन अवस्था की ओर तेजी के साथ अग्रसर होती है। लेकिन यह कहना कठिन है कि एक अवस्था में कितनी देर तक चलती रहेगी और शैश बिन्दु पर पहुंचने के बाद उसे कौन सी नई शक्ति किस ओर नया मोड देगी।

4.7 आर्थिक विकास की अवस्थाओं की आलोचना

इनमें कोई सन्देह नहीं कि रोस्टोव द्वारा आर्थिक विकास की अवस्थाओं का विश्लेषण अत्यन्त क्रमबद्ध व तर्कपूर्ण ढंग से किया गया है। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों, विशेषकर **मायर एवं बाल्डविन, साइमन कुजनेट्स, केर्यनक्रास, गरशेनक्रान, डरूमौण्ड, स्ट्रीटन, प्रो0 सैन और हबाकुक** ने रोस्टोव के दृष्टिकोण को त्रुटिपूर्ण माना है। प्रो0 बैंजमीन हिगीन्ज, रोस्टोव महोदय के समर्थक माने जाते हैं और उन्होनें इस विश्लेषण को सही और औचित्यपूर्ण ठहराया है। रोस्टोव के दृष्टिकोण की निम्न आधार पर आलोचना की गई है –

1.इतिहासको निश्चित अवस्थाओं में बांटना सम्भव नहीं – प्रो0 मायर का कहना है कि इतिहास को निश्चित अवस्थाओं में न तो बांटना संभव है और न ही यह जरूरी है कि सभी देश एक ही प्रकार की अवस्थाओं में से होकर गुजरे। उनके शब्दों में ''यह कहना कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था सदैव विकास के एक ही मार्ग को अपनाती है और उसका एक जैसा भूत और भविष्य होता है, अवस्थाओं के क्रम को आवश्यकता से अधिक सरलीकरण करना है।'' प्रो0 हबाकुक ने ऐतिहासिक दलील देते हुए कहा है कि अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैंड तथा आस्ट्रेलिया परम्परागत समाज की अवस्था में से बिना गुजरे ही पूर्व दशाओं की

अवस्था में प्रवेश कर गये थे।

2. अवस्थाओं का क्रम भिन्न हो सकता है – गरशेनक्रान के अनुसार ''प्रत्येक देश आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता अवश्य है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि एक देश रोस्टोव द्वारा वर्णित अवस्थाओं में से ही होकर गुजरे। अवस्थाओं का क्रम अनियमित हो सकता है।

3. अवस्थाओं में परस्पर–निर्भरता – कुजनेट्स तथा केयरनक्रास का कहना है कि रोस्टोव द्वारा वर्णित आर्थिक विकास की अवस्थाएं एक दूसरे से भिन्न न होकर परस्पर व्यापी है। उदाहरणार्थ एक अवस्था की विशेषताएं दूसरी अवस्था में भी देखने को मिलती है। न्यूजीलैण्ड, डेनमार्क आदि देशों में आत्म स्फूर्ति की अवस्था में भी कृषि का अत्यधिक विकास हुआ है जबकि रोस्टोव ने कृषिगत विकास को परम्परागत समाज की अवस्था में रखा है।

4. अवस्था का पता लगाने में कठिनाई – कुछ लोगों का कहना है कि कौन सा देश विकास की किस अवस्था में है इसकी जांच करने हेतु पर्याप्त सांख्यिकीय सूचनाओं का उपलब्ध होना संभव नहीं है। दूसरा इस बात का कैसे पता लगाया जाए कि किसी देश में अमुक अवस्था का काल पूरा हो चुका है और एक के बाद दूसरी अवस्था कब प्रारम्भ होगी।

5. आत्म पोषित विकास भ्रमोत्पादक विचार है – कुजनेट्स के अनुसार आत्म पोषित या आत्म निर्भर विकास का विचार भ्रमोत्पादक है। **प्रथम,** विशेषताओं की दृष्टि से यह आत्म स्फूर्ति की अवस्था के ही समान है क्योंकि दोनों अवस्थाओं के बीच की विभाजन रेखा स्पष्ट नहीं है। **दूसरा,** 'कोई भी विकास शुद्ध रूप में आत्म निर्भर अथवा आत्म सीमित नहीं हो सकता क्योंकि उसके स्वयं को सीमित करने वाले कुछ प्रभाव सदैव बने रहते हैं। विकास तो एक निरन्तर संघर्ष है जिसे आत्म निर्भर कहना बहुत कठिन है।'

6. अत्यधिक उपभोग अवस्था काल क्रम के अनुसार नहीं – आलोचकों का कहना है कि विश्व के कुछ देश जैसे आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि परिपक्वता की अवस्था में प्रवेश किये बिना ही अत्यधिक उपभोग की अवस्था प्राप्त कर चुके हैं जो कि रोस्टोव के अवस्था कालक्रम के विरूद्ध है।

4.8 भारत की विकास अवस्था

भारत किस अवस्था में है ?निःसन्देह भारत विकास की प्रथम दो अवस्थाओं को पार कर चुका है लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या भारत वास्तव में आत्म स्फूर्ति की अवस्था प्राप्त कर चुका है और परिपक्वता की अवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है ? इस सम्बन्ध में कोई अंतिम निर्णय तब तक नहीं दिया जा सकता है जब तक कि इस सम्बन्ध में पाये जाने वाले विभिन्न विचारों का अध्ययन न कर लिया जाये।

भारत आत्म स्फूर्ति की अवस्था प्राप्त कर चुका है !

प्रथम मत – स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त पंच वर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, भूमि सुधार, शिक्षा का प्रसार, निर्माणकारी व सेवा उद्योगों की स्थापना, बचत

व पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, निजी क्षेत्र के विपरीत सार्वजनिक क्षेत्र में विनियोग व्यय का बढ़ता हुआ प्रतिशत, विदेशी पूंजी का उपयोग और ग्रामीण क्षेत्र में शहरों की ओर तेजी के साथ प्रवास करती हुई जनसंख्या आदि तथ्य इस बात के प्रमाण हैं कि भारत विकास की प्रथम दो अवस्थाओं को लांघ चुका है।

जहां तक आत्म स्फूर्ति की अवस्था का सम्बन्ध हे प्रो0 रोस्टोव के अनुसार इसकी पहली शर्त यह है कि बचत और विनियोग का अनुपात राष्ट्रीय आय के 10 प्रतिशत पर ला दिया जाए और इसे दो या दो से अधिक दशकों तक कायम रखा जाए। भारत में 1960–61 की कीमतों पर राष्ट्रीय आय से निवेश का अनुपात 1950–51 में 5.5 प्रतिशत से बढ़कर 1964–65 में 14.4 प्रतिशत हो गया था और घरेलू बचतों का अनुपात 5.5 प्रतिशत से बढ़कर 10.5 प्रतिशत हो गया था, जो कि इस बात का प्रमाण है कि भारत जिसने रोस्टोव के अनुसार 1952 में आत्म स्फूर्ति में प्रवेश किया, 1962–65 में इस अवस्था को लांघ चुका था।

आत्म स्फूर्ति की दूसरी शर्त अग्रगामी क्षेत्रों का विधिवत् विकास होना है। इस दृष्टि से देश में 1964–65 तक औद्योगिक क्षेत्र, कृषि क्षेत्र व तृतीयक क्षेत्र काफी विकसित हो चुके थे। उदाहरण के तौर पर कृषि उत्पादन सूचकांक 1950–51 में 45.6 था जो 1964–65 में बढ़कर 158.4 हो चुका था। इसी प्रकर औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 73.5 से बढ़कर 186.9 हो गया था।

आत्म स्फूर्ति की तीसरी शर्त के अनुसार भारत के योजनाबद्ध विकास ने देश में एक ऐसा ढांचा तैयार कर दिया है जो आधुनिक क्षेत्र के विस्तार का आधार बन सकता है। संस्थानिक व सामाजिक परिवर्तनों के साथ–साथ आधुनिक प्रौद्योगिकी का अपनाया जाना और प्रशासकीय दक्षता व कर्तव्यपरायणता का बढ़ता हुआ स्तर इस बात का प्रमाण है कि भारतीय अर्थ व्यवस्था आत्म स्फूर्ति का अधिकांश शर्तो को पूरा करती है।

आत्म स्फूर्ति की अवस्था अभी नहीं !

विपरीत मत– विपरीत मत रखने वाले विचारकों के अनुसार आत्म स्फूर्ति की उपरोक्त तीनों शर्तों की उपस्थिति मात्र से यह निष्कर्ष निकाल लेना कि भारत तीसरी योजना में आत्म स्फूर्ति कर चुका था, पूर्णतया सही नहीं है। प्रो0 रोस्टोव के अनुसार भारत की आत्म स्फूर्ति का काल 1952 है। लेकिन सच तो यह है कि **दूसरी योजना के अंतिम चरण तक देश, आत्म स्फूति की पूर्व आवश्यकताओं के निर्माण कार्य में लगा हुआ था।** इस आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि भारत ने अकालिक आत्म स्फूर्ति का प्रयास किया। उदाहरण के तौर पर 1950 से 1960 तक के काल के बीच शुद्ध राष्ट्रीय आय 3.8 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ी है किन्तु प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि 1.8 प्रतिशत वार्षिक रही जबकि जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि की दर 2.5 प्रतिशत रही है। बचत व विनियोग की दर 7.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 11 प्रतिशत तक ही की जा सकी जो कि आत्म स्फूति की आवश्यकता से काफी कम है। इतना ही नहीं, तीसरी योजना के अंतिम वर्ष (1965–1966) में राष्ट्रीय आय 5.6 प्रतिशत घट गयी और यह 1960–61 के स्तर पर आ गयी। घरेलू बचतों की दर 1965–1966 में

10.5 प्रतिशत से घटकर 1966–67 में 8.2 प्रतिशत और 1967–68 में 8 प्रतिशत रह गयी थी। अस्थिर विकास दर, कृषि का अधिक महत्व, स्फीतिक दबाव, अपार निर्धनता और बढ़ती हुई बेरोजगारी इस बात का संकेत है कि भारत आत्म स्फूति की अवस्था प्राप्त नहीं कर सका।

आत्म स्फूर्ति की अवस्था आगे क्यों टलती गयी ?

यहॉ आपको बताना यह आवश्यक है कि ध्यान रहे, हमारे अब तक के सम्पूर्ण नियोजन में कृषि उद्योग के विकास का एक प्रमुख आधार रहा है। प्रथम दो योजनाओं में कृषि क्षेत्र में प्रगति अवश्य हुई है परन्तु तीसरी और चौथी योजना में कृषि उत्पादन का लक्ष्य पूरा नहीं किया जा सका। एक तरफ खाद्यान्नों के मूल्य बढ़े और दूसरी ओर आयातों पर निर्भरता में वृद्धि होती गयी। इसी प्रकार औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य 70 प्रतिशत वृद्धि का था जबकि योजना काल में केवल 40 प्रतिशत वृद्धि ही हो सकी। इस काल में बचत व विनियोग वृद्धि की दर आशा के अनुकूल नहीं रही। देश में होने वाली भयंकर मूल्य वृद्धि ने बचत व विनियोग दर, आयात निर्यात, प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों आदि को बुरी तरह से प्रभावित किया है। सन् 1966–68 के दौरान **प्रतिसार की ठंडी लहर ने अर्थ व्यवस्था को एक और झटका दिया, जिसका कम्पन आज भी औद्योगिक क्षेत्र में देखने को मिलता है।** इसके अतिरिक्त प्राकृतिक प्रकोप व आकस्मिक युद्धों नें भी अर्थ व्यवस्था पर अनावश्यक भार बढ़ा दिया है। इस काल में कुशल श्रम शक्ति का निर्माण नहीं किया जा सका और न ही जनता में विकास व प्रगति के प्रति उत्साह व जागरूकता आदि देखने को मिली। योजनाऐं केवल इसलिए चलती रहीं क्योकि योजनाओं को चलाना था।

यद्यपि तीसरी योजना बचत तथा निवेश वृद्धि के निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने में असमर्थ रही थी। किन्तु रोस्टोव द्वारा प्रस्तुत शब्दावली को स्वीकार करने पर चूंकि शुद्ध निवेश का प्रतिशत 10 से ऊपर हो चुका था, अतः उस आधार पर यह निष्कर्ष निकला जा सकता था कि भारत तीसरी योजना के दौरान आत्म स्फूर्ति को प्राप्त कर चुका था।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. हैरोड डोमर ने आर्थिक के .....सहायक तत्व माने हैं। (चार, छः, सात)
2. फ्रेडरिक लिस्ट ने आर्थिक व्यवस्था के क्रमिक विकास की ..... अवस्थाओं का उल्लेख किया है। (चार, छः, पांच)
3. रोस्टोव के अनुसार भारत की आत्मस्फूर्ति का काल .....है।
   (1953, 1952, 1956)
4. उद्यमशीलता के लिए जोखिम उठानी पड़ती है और जोखिम सफलता का ..... नाम है।(प्रथम, दूसरा, तीसरा)
5. .....विकास की प्रथम दो अवस्थाओं को लांघ चुका है।
   (ब्रिटेन, अमेरिका,भारत)

बहुविकल्पीय प्रश्न

6. हैरोड–डोमर के चार आर्थिक विकास के तत्वों में से नहीं है–
   A. जनसंख्या की वृद्धि पर B. औद्योगिक विकास की दर पर
   C. पूंजी उत्पाद अनुपात D. नये बाजारों का उपलब्ध होना
7. नव प्रवर्तन का सिद्धांत किसने दिया।
   A. शुम्पीटर B. मार्शल
   C. आर.टी. गिल D. उपरोक्त सभी
8. ''पूंजी निर्माण आर्थिक विकास की एक पूर्व आवश्यकता है'' किसने कहा?
   A. लिविंस्टीन B. शुम्पीटर
   C. पीगू D. नक्से
9. भारत विकास की अवस्थाओं को पार कर चुका है?
   A. प्रथम तीन B. एक से पांच
   C. प्रथम दो D. प्रथम पांच
10. रोस्टोव के अनुसार भारत की आत्मस्फूर्ति का काल है?
   A. 1953 B. 1952
   C. 1996 D. 1956
11. आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले कारक हैं?
   A. आर्थिक B. गैर आर्थिक
   C. उपर्युक्त दोनों D. कोई नहीं
12. "Communist Mainfesto' रचना है।
   A. कार्ल मार्क्स B. रोविंस
   C. फ्रेडरिक लिस्ट D. उपरोक्त में से कोई नहीं
13. प्रो0 एशले की आर्थिक विकास की अवस्थाओं में से नहीं है।
   A. गृह व्यवस्था B. गिल्ड व्यवस्था
   C. शिल्ड व्यवस्था D. फैक्ट्री व्यवस्था
14. कार्ल मार्क्स के अनुसार आर्थिक विकास की कितनी प्रमुख आवश्यकताएं हैं
   A. चार B. पांच
   C. तीन D. दो
15. प्रो0 बकर की आर्थिक विकास की अवस्थाओं में से नहीं है।
   A. गृह अर्थव्यवस्था B. शहरी अर्थव्यवस्था
   C. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था D. परम्परागत समाज
16. आर्थिक विकास के निर्धारक आर्थिक तत्वों में से नहीं है।
   A. अर्न्तराष्ट्रीय दशाएं B. प्राकृतिक साधन

C. मानवीय साधन D. विदेशी पूंजी

17. जर्मन अर्थशास्त्री हिल्डेब्रांड ने विकास की तीन अवस्थाएं किस सन् में दी?

A. 1984 B. 1865

C. 1866 D. 1867

4.9 सारांश

उपयुक्त प्रस्तुत विवेचन के अनुसार आर्थिक एवं आर्थिकेतर तत्व वृद्धि की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं। वे एक दूसरे पर भी निर्भर करते हैं। आर्थिक तत्व आथिकेतर तत्व द्वारा प्रभावित होते हैं और उनको प्रभावित भी करते हैं। परन्तु कुछ अर्थशास्त्रिों जैसे वाइनर तथा मिर्डल के अनुसार आर्थिक एवं गैर आर्थिक तत्वों में भेद निरर्थक, भ्रमपूर्ण तथा असंगत है। इसीलिये इसको त्याग देना चाहिए। परन्तु हम इन अर्थशास्त्रियों के विचार से सहमत नहीं है क्योंकि यह सर्वमान्य है कि आर्थिक तथा आर्थिकेतर तत्वों का आधुनिक आर्थिक वृद्धि पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पडा है।

आलोचनाओं के बावजूद आर्थिक विकास की इस समस्या का विधिवत ढंग से विश्लेषण करने का श्रेय प्रो0 रोस्टोव को ही दिया जाता है। **कुजनेटस** का मत है कि भले उसकी अवस्थाओं में कहीं कहीं भ्रम व दो बारगी के अंकुर नजर आते हैं तथापि इसका दृष्टिकोण आर्थिक विकास की प्रक्रिया को समझने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकता है।

4.10 शब्दावली

प्राकृतिक साधन–प्राकृतिक साधनों से हमारा आशय उस प्रकृति प्रदत्त भौतिक साधनों से हैं जिन्हें मनुष्य अपने प्रयत्नों से उत्पन्न नहीं कर सकता जैसे– भूमि, जल, समुद्री साधन, जलवायु, वर्षा आदि।

मानवीय संसाधन या श्रम– मानवीय संसाधन से आशय किसी देश की जनसंख्या और उसकी शिक्षा, कुशलता, दूरदर्शिता तथा उत्पादकता से होता है।

पूंजी निर्माण– पूंजी निर्माण होने का अर्थ है प्रति वर्ष पूंजीगत वस्तुओं के स्टॉक में वृद्धि होना।

तकनीकी प्रगति– तकनीकी प्रगति एक बहुमुखी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत नई तकनीक, नई मशीनें तथा कुशलता इत्यादि बातें सम्मलित की जाती हैं।

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. चार, 2. पांच 3. 1952, 4. दूसरा, 5. भारत

बहुविकल्पीय प्रश्न

6. D, 7. A, 8. D, 9. C ,10. B, 11. C, 12. A, 13. C, 14. A ,15. D 16. A, 17. A

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
3. एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
4. धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

4.13 सहायक अध्ययन सामग्री

- I Viner, "The Economic of Development" in The Economic of Undevelopment, (ed) A.N. Aggarwal and S.P. Singh,.
- United Nations Mearures for the Economic Development of Underdeveloped Countries.
- World Bank Development Report 1999-2000 pp. 232-233 Report 1983.
- H. I. Keenleyside in Dynamics of Development, (ed) G.Hambidge,
- Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिक आर्थिक वृद्धि क्या है? इसको प्रभावित करने वाले मुख्य तत्वों की विवेचना कीजिए।
2. किसी देश की आर्थिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए।
3. आर्थिक विकास में सामाजिक एवं संस्थात्मक परिवर्तनों के महत्व को समझाइए। वे अल्पविकसित देशों में विकास को कहां तक अवरूद्ध कर रहे हैं।
4. आर्थिक विकास में गैर आर्थिक तत्व क्या हैं ? आर्थिक विकास की प्रक्रिया को वे किस प्रकार सहायता अथवा बाधा पहुंचाते हैं ?
5. स्वयं स्फूर्ति अवस्था से आप क्या समझते हैं ? किसी देश के स्वयं स्फूर्ति अवस्था पर पहुंचने के लिये आवश्यक शर्तें बतलाइए ?
7. रोस्टोव की आर्थिक संवृद्धि की अवस्थाओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। भारत की वर्तमान विकास की अवस्था का वर्णन कीजिए।

इकाई 5– प्रतिष्ठित विकास प्रारूप–एडम स्मिथ, रिकार्ड़ो

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 एडम स्मिथ का विकास प्रारुप
    5.3.1 मुक्त साहस एवं प्रतिस्पर्द्धा
    5.3.2 श्रम विभाजन
    5.3.3 विकास प्रक्रिया
    5.3.4 विकास का क्रम
    5.3.5 स्थिर अवस्था
5.4 रिकार्ड़ो का विकास प्रारुप
    5.4.1 विकास प्रारुप की मान्यताएं
    5.4.2 विकास के दूत
    5.4.3 पूँजी संचय की प्रकिया
    5.4.4 पूँजी संचय के अन्य साधन
    5.4.5 स्थिर अवस्था
5.5 विकास प्रारुप की गणितीय व्याख्या
5.6 प्रतिष्ठित विकास प्रारूप की आलोचनाएं
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के प्रारुप से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि आर्थिक विकास क्या है ? आर्थिक विकास का मापन की विधियॉ कौन–2 सी है। अल्पविकसित देशों की विशेषताएँ और विकास के निर्धारक घटक क्या–क्या है।

इस इकाई में प्रतिष्ठित विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है कि प्रमुख प्रतिष्ठित विकास प्रारुप कौन–2 से है, इसके अर्न्तगत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है।इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में एडम स्मिथ एवं रिकार्ड़ो के विकास प्रारुप के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप प्रतिष्ठित विकास प्रारुप के महत्व को समझा सकेगें, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके विभिन्न प्रारुपों का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- बता सकेंगे कि प्रतिष्ठित विकास प्रारूप कितने प्रकार का होता है।
- एडम स्मिथ का विकास प्रारुप को समझ सकेंगे।
- रिकार्ड़ो के विकास प्रारुप को जान सकेगें।
- प्रतिष्ठित विकास प्रारूप का गणितीय विवेचन कर सकेंगे।

5.3 एडम स्मिथ का विकास प्रारुप

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा अर्थव्यवस्था का अत्यन्त सरल रूप में क्रमबद्ध ढंग से विवेचन किया गया है। उनका प्रमुख ध्येय आर्थिक नीति निर्धारएा के लिए ऐसे मार्ग का निर्धारण करना जिनसे राष्ट्रों की सम्पत्ति को बढाया जा सके।

प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री एडम स्मिथ डेविड रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचारों में बहुत सीमा तक समानता पाई जाती है। इनके सम्मिलित विचारों को ही आर्थिक विकास का प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहा जाता है। आर्थिक विकास के ये प्रतिष्ठित सिद्धान्त को विकास का प्रारम्भिक सिद्धान्त भी कह सकते है।

एडम स्मिथ प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अगुवा माने जाते है। उनका 1776 में प्रकाशित होने वाला महान ग्रन्थ "An Enquiry in to the nature and Causes of wealth of

notions" स्वयं में ही आर्थिक विकास के महत्व का एक स्पष्टीकरण है। एडम स्मिथ के प्रगति के सिद्धान्त की प्रमुख विचारधाराएँ निम्न प्रकार वर्गीकृत की जा सकती है :–

5.3.1 मुक्त साहस एवं प्रतिस्पर्द्धा

एडम स्मिथ के विचार में आर्थिक विकास के लिए मुक्त साहस एवं मुक्त प्रतिस्पर्द्धा अत्यन्त आवश्यक है। इनके द्वारा (प्रकृति) निर्धारित न्याय पूर्ण वैधानिक पद्धति ही विकास करने का सर्वोच्च साधन है। न्यायपूर्ण वैधानिक पद्धति का अर्थ उस व्यवस्था से लिया गया है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के अपने हितों का अन्य सदस्यों के दबाव से मुक्त रहकर अनुसरण करने के अधिकार को संरक्षण प्राप्त होता है। अर्थव्यवस्था को अदृश्य हाथों द्वारा यदि संचालित होने के लिए मुक्त छोड़ दिया जाय तो समन्वित एवं लाभकारी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना हो सकती है। अदृश्य हाथों से स्मिथ का तात्पर्य मुक्त प्रतिस्पर्द्धा में उदय हुई शक्तियों से है जो अर्थ–वयवस्था में आवश्यक समायोजन स्थापित करती रहती है।

5.3.2. श्रम विभाजन :– श्रम विभाजन द्वारा श्रम की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण द्वारा श्रमिकों की निपुणता में वृद्धि होती है। वस्तुओं के उत्पादन में लगने वाले समय में कमी होती है तथा अच्छी मशीनों एवं प्रसाधनों का अविष्कार होता है। उत्पादकता में वृद्धि होती है।

परन्तु श्रम–विभाजन द्वारा उत्पादकता बढ़ाने की प्रक्रिया की तीन परिसीमाएँ हैः–

A) श्रम विभाजन का प्रारम्भ मानव की एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु प्राप्त करने की इच्छा पर होती है।

B) श्रम विभाजन के प्रारम्भ अथवा विस्तार के लिए पूँजी सचंयन होना आवश्यक है। पूँजी संचयन के लिए बचत होना और बचत अथवा पूँजी मितव्ययता से बढ़ती है तथा फिजूलखर्ची एवं दूराचरण से घटती है।

C) तीसरी सीमा बाजार का आकार होती है। यदि बाजार संकुचित है और उत्पादको को अपने उत्पादन

के अतिरेक (Surplus) के विनिमय के अवसर सीमित हो तो व्यक्ति एक रोजगार में रहकर आवश्यकता से अधिक उत्पादन नही करेगा। इस प्रकार संकुचित बाजार में श्रम विभाजन के लाभ प्राप्त नहीं होगें।

5.3.3 विकास प्रक्रिया :– पूँजी संचयन की व्यवस्था होने से श्रम विभाजन का उदय होता है जिससे उत्पादकता के स्तर में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरुप राष्ट्रीय आय एवं जनसंख्या में वृद्धि होती है। आर्थिक विकास की यह प्रक्रिया धीरे$_2$ चलती है और अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में फैल जाती है एक क्षेत्र का विकास दूसरे क्षेत्रों के विकास को प्रभावित करता है और अन्ततः अर्थ व्यवस्था के समस्त क्षेत्र विकसित हो जाते है।

5.3.3.1 मजदूरी का निर्धारण :– मजदूरी का निर्धारण श्रमिको एवं पूँजी पतियों की सौदा करने की क्षमता पर निर्भर करता है।

5.3.3..2 लाभ निर्धारण :– विकास की प्रक्रिया में लाभ एवं मजदूरी उस समय तक घटते बढ़ते रहते है जब तक कि जनसंख्या में आवश्यकतानुसार पर्याप्त वृद्धि होती है। अन्ततः

अर्थव्यवस्था स्थिर अवस्था में पहुँच जाती है जहाँ पूँजी संचयन एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया दोनों ही रूक जाते है।

5.3.3.3 लगान का निर्धारण :– भूमि पर एकाधिकार का प्रतिफल लगान होता है।

5.3.3.4 विकास के दूत ;।हमदजे वह ळतवूजीद्ध :– एडम स्मिथ के अनुसार कृषक उत्पादन तथा व्यापारी आर्थिक उन्नति तथा विकास के दूत है।

5.3.4 विकास का क्रम :– विकास की प्रक्रिया में सर्वप्रथम कृषि का विकास होता है। कृषि के बाद निर्माण प्रक्रिया का अन्त में वाणिज्य का विकास होता है।

यद्यपि स्मिथ ने अपने विचार आर्थिक विकास के सिद्धान्त के रुप में प्रकट नही किये परन्तु उनके विचार का प्रभाव बाद में आर्थिक विकास के सिद्धान्त पर पड़ता है। पूँजी संचयन का महत्व, स्थिर अर्थव्यवस्था का विचार तथा विकास प्रक्रिया में सहकारी हस्तक्षेप के तिरस्कार को बाद के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने भी मान्यता प्रदान की है।

स्थिर अवस्था :– परन्तु यह प्रगतिशील अवस्था सदैव नही चलती रहती है। प्राकृतिक साधनों की कमी विकास को रोकती है। जब अर्थव्यवस्था अपने साधनों का पूर्ण विकास कर लेती है ऐसी समृद्ध अवस्था में श्रमिकों में रोजगार के लिए प्रतिस्पर्धा मजदूरी कम करके निर्वाह स्तर पर ला देती है और व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा लाभों को कम कर देती है।

जब एक बार लाभ घटते है तो घटते ही चले जाते है **जिससे निवेश – निवेश भी घट जाता है–पूँजी संचय भी रूक जाता है– जनसंख्या स्थिर हो जाती है–लाभ न्यूनतम होने लगते – मजदूरी जीवन निर्वाह स्तर पर पहुँच जाती है– प्रति व्यक्ति आय स्थिर हो जाती है और – अर्थव्यवस्था गतिहीनता की अवस्था में पहुँच जाती है।** जिसे एडम स्मिथ ने स्थिर अवस्था का नाम दिया।

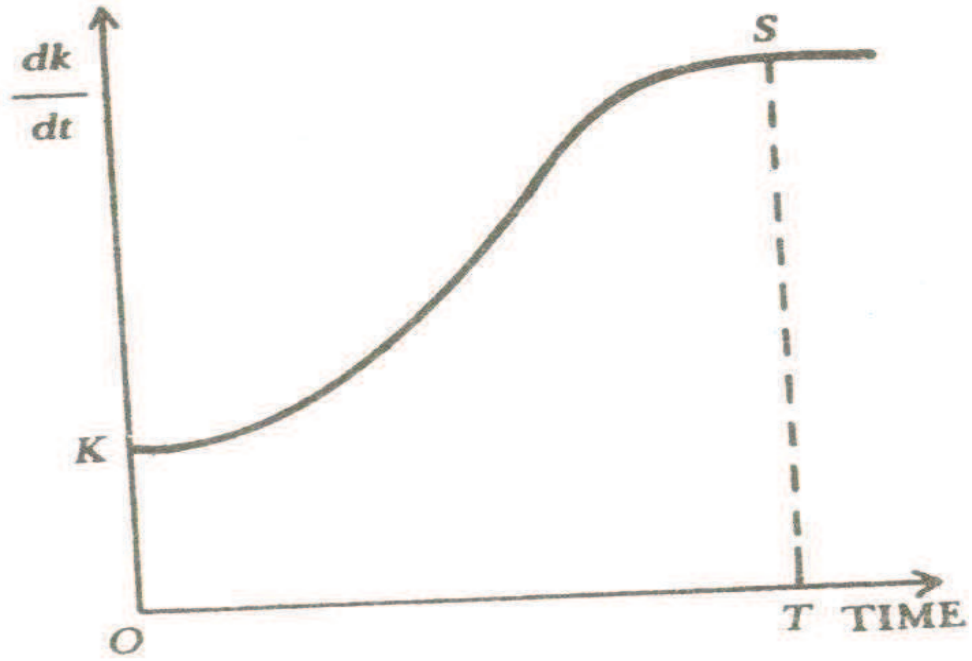

चित्र से स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था T समय में K से S तक बढ़ती है T के बाद अर्थव्यवस्था S से सम्बद्ध स्थिर अवस्था को प्राप्त होती है जहाँ आगे वृद्धि नहीं होती मजदूरी जितना बढ़ती है कि लाभ शून्य हो जाता है। पूँजी संचय रूक जाता है तथा जनसंख्या अपरिवर्तित रहती है।

एडम स्मिथ ने स्थिर अवस्था को को दूर करने के उपाय नहीं बतायें।एडम स्मिथ का स्थिर अवस्था का विचार अल्प विकास से बिल्कुल ही अलग है। स्मिथ के अनुसार, स्थिर अवस्था में अर्थव्यवस्था समृद्धि के उच्चतम बिन्दु पर होती है,जहॉ सभी संसाधनों का पर्यावरण अनुकूल समुचित विदोहन किया जाता है,जबकि अल्प विकास अर्थव्यवस्था में स्थिर अवस्था में अर्थव्यवस्था समृद्धि के उच्चतम बिन्दु से पूर्व में ही गतिरोध की अवस्था में पहुॅच जाती है।

5.4 रिकार्ड़ो का विकास प्रारुप

डेविड रिकार्डो के विकास सम्बन्धी विचार उनकी पुस्तक "The Principles of political Economy and Taxation" (1917) में जगह पर अव्यवस्थित रुप में व्यक्त किये गये। इनका विश्लेषण एक चक्करदार मार्ग है। यह सीमान्त और अतिरेक नियमों पर आधारित है। शुम्पीटर ने कहाँ रिकार्डो ने कोई सिद्धान्त नही प्रतिपादित किया केवल स्मिथ द्वारा छोड़ी गयी कड़ियों को अपेक्षाकृत एक अधिक कठोर रूप से जोड़ने का प्रयास अवश्य किया। इसी तरह का विचार मायर एवं वाल्डविन आदि का था।

5.4.1 विकास प्रारुप की मान्यताएं

1. अनाज के उत्पादन में समस्त भूमि का प्रयोग होता है और कृषि में कार्यशील शक्तियाँ उद्योग में वितरण निर्धारित करने का काम करती है।

2. भूमि पर घटाते प्रतिफल का नियम क्रियाशील है।
3. भूमि की पूर्ति स्थिर है।
4. अनाज की माँग पूर्णतया अलोचशील है।
5. पूँजी और श्रम परिवर्तनशील आगत (Inputs) है।
6. समस्त पूँजी समरूप है।
7. पूँजी में केवल चल पूँजी ही शामिल है।
8. तकनीकी ज्ञान की स्थिति दी हुई है।
9. सभी श्रमिकों को निर्वाह मजदूरी दी हुई है।
10. श्रम की पूर्ति कीमत स्तर पर दी हुई है।
11. श्रम की माँग पूँजी संचय पर निर्भर करती है। श्रम की माँग और श्रम की पूर्ति कीमत दोनों ही श्रम की सीमान्त उत्पादकता से स्वतन्त्र होती है।
12. पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।

13. पूँजी संचय लाभ से उत्पन्न होती है।

5.4.2 विकास के दूत

इन मान्यताओं के आधार पर रिकार्डो ने कहा कि अर्थव्यस्था का विकास तीन वर्गो के परस्पर सम्बन्धों पर आधारित है। वे है। 1) भूमिपति 2) पूँजीपति तथा 3) श्रमिक जिनमें भूमि की समस्त उपज बाँटी जाती है। इन तीन वर्गो मं कुल राष्ट्रीय उत्पादन क्रमशः लगान, लाभ और मजदूरी के रूप में बाँट दी जाती है।

5.4.3 पूँजी संचय की प्रकिया

रिकार्डो पूँजी संचय लाभ से होता है यह जितना बढेगा पूँजी निर्माण के काम आत है। पूँजी संचय दो घटकों पर निर्भर करेगा। प्रथम बचत करने की क्षमता और द्वितीय बचत करने की इच्छा जैसा कि रिकार्डो ने कहा दो रोटियों में से मैं एक बचा सकता हूँ और चार में से तीन यह बचत (अतिरेक) भूमिपति तथा पूँजीपति ही करते है। जो लाभ की दर पर निर्भर करता है।

लाभ दर :– लाभ की दर = लाभ/मजदूरी अर्थात जब तक लाभ की दर धनात्मक रहेगी, पूँजी संचय होता रहेगा। वास्तव मं लाभ मजदूरी पर निर्भर करता है, मजदूरी अनाज की कीमत पर अनाज की कीमत सीमान्त भूमि की उर्वरकता पर। इस प्रकार लाभ तथा मजदूरी में विपरीत सम्बन्ध है। कृषि में सुधार से उर्वरकता बढ़ती है इससे उपज बढेगी कीमत कम होगी निर्वाह मजदूरी कम होगी परन्तु लाभ बढेगा पूँजी संचय अधिक होगा इससे श्रम की माँग बढ़ेगी मजदूरी अधिक होगी लाभ घटेगा।

मजदूरी में वृद्वि :– रिकार्डो यह बाततें है कि पूँजी संचय विभिन्न परिस्थितियों में लाभ को ही कम करेगा। मजदूरी बढ़ेगी तो मजदूर निर्वाह की वस्तुओं की माँग बढ़ेगी जिससे मूल्य बढ़ेगा। मजदूर उपभोग की वस्तुऐं प्रमुख रुप से कृषि वस्तुऐं होती है। ज्यों$_2$ जनसंख्या बढ़ेगी उपज की माँग बढ़ेगी उपजाऊ काश्त में वृद्धि होगी मजदूरी की माँग बढ़ेगी मजदूरी बढ़ेगी अनाज की कीमत बढ़ेगी। लाभ कम हो जायेगा। लगान बढ़ जायेगा जो अनाज कीमत में हुई वृद्धि खपा लेगा। ये दोनों विराधी प्रवृत्तियाँ अनत में पूँजी संचय कम कर देती है।

अन्य उद्योगों में भी लाभों की कमी :– रिकार्डो के अनुसार "किसानों के लाभ अन्य सब व्यापारियों के लाभों को नियमित करते है।" क्योंकि हर क्षेत्र के लिए आगत (Input) कृषि क्षेत्र से आता है।

5.4.4 पूँजी संचय के अन्य साधन

रिकार्डो के अनुसार "आर्थिक विकास उत्पादन तथा उपभोग के अन्तर पर निर्भर करता है इसलिए वह उत्पादन के बढ़ाने और अनुत्पादक उपभोग में कमी करने पर जोर देता है।

कर :– कर सरकार के हाथ में पूँजी संचय का साधन है रिकार्डो के अनुसार करों को केवल दिखावटी उपभोग को कम करने के लिए ही लगाना आवश्यक होता है अन्यथा इनसे निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

बचत :– बचत पूँजी संचय के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। यह लाभ की दरों को बढ़ाकर, वस्तुओं के मूल्य कम करने व्यय तथा उत्पादन से की जाती है।

मुक्त व्यापार :– रिकार्डो मुक्त व्यापार के पक्ष में है। देश की आर्थिक उन्नति के लिए मुक्त व्यापार महत्वपूर्ण तत्व है।

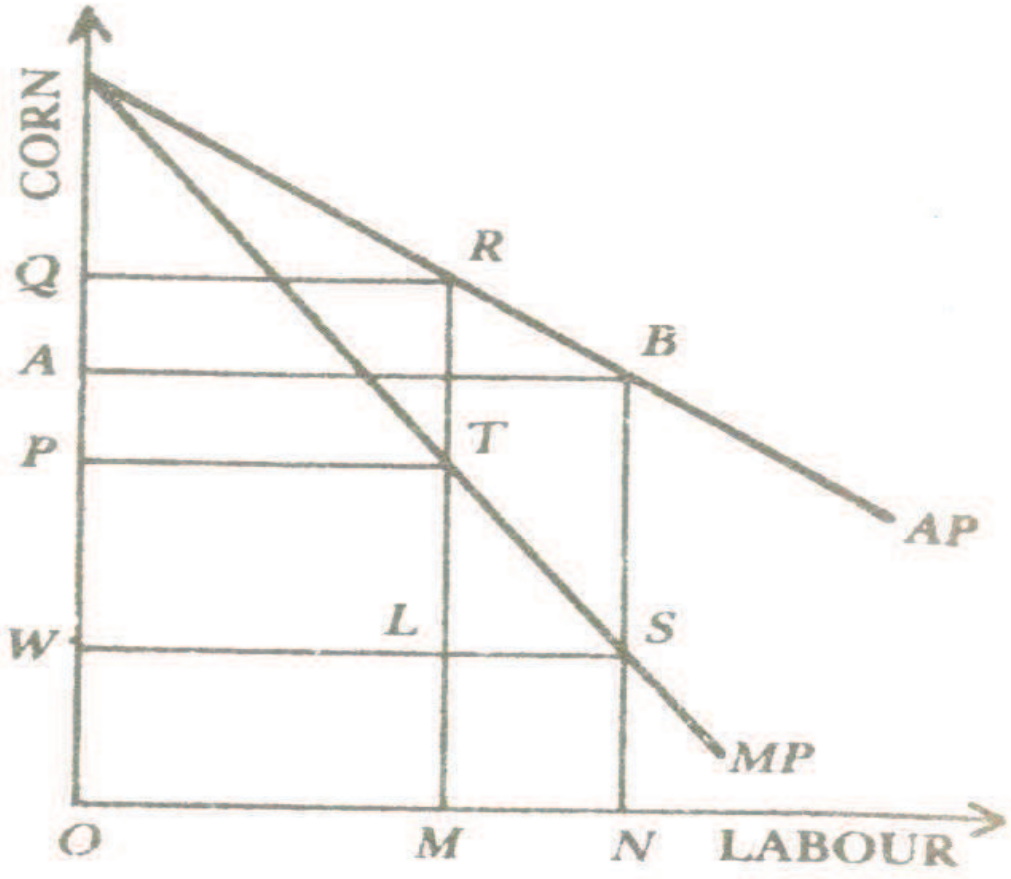

रिकार्डो के मॉडल को रेखाचित्र में व्यक्त किया गया है अनाज की मात्रा अनुलम्ब अक्ष कृषि में लगाई गई श्रम की मात्रा को क्षैतिज अक्ष पर मापते है। श्रम के औसत उत्पादन को AP वक्र द्वारा सीमान्त उत्पादन को MP वक्र श्रम की व्ड मात्रा से OQRM अनाज का कुल उत्पादन होता है आयताकार क्षेत्र PQRT लगान को व्यक्त करता है जो AP तथा MP का अन्तर है। निर्वाह मजदूरी दर OW पर श्रम की पूर्ति वक्र WL लोचदार है कुल मजदूरी बिल OMLW है कुल लाभ WPTL है जो कुल उत्पादन (OQRM)- मजदूरी लगान (OQRT+OWLM) से प्राप्त होता है।

आर्थिक विकास होने पर कुल उत्पादन बढ़ता है अनाज की माँग एवं कीमत बढ़ती है भूमि पर बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होने से लगान बढ़ता जता है और लाभ कम होता है। अतः में बढ़ी श्रम की मात्रा तथा लगान लाभ समाप्त कर देते है। चित्र में यह स्थिति ON श्रम लगाने पर कुल उत्पादन OABN है जिसमें OWSN मजदूरी कोष तथा WABS लगान है तथा लाभ शून्य है।

5.4.5 स्थिर अवस्था

जिस अवस्था में लाभ शून्य होता है = पूँजी संचय रूक जाता है = जनसंख्या स्थिर होती है = मजदूरी निर्वाह स्तर पर होती है = लगान ऊँचा होता है आर्थिक विकास रूक जाता है। इस अवस्था को रिकार्डो ने स्थिर अवस्था का नाम दिया है

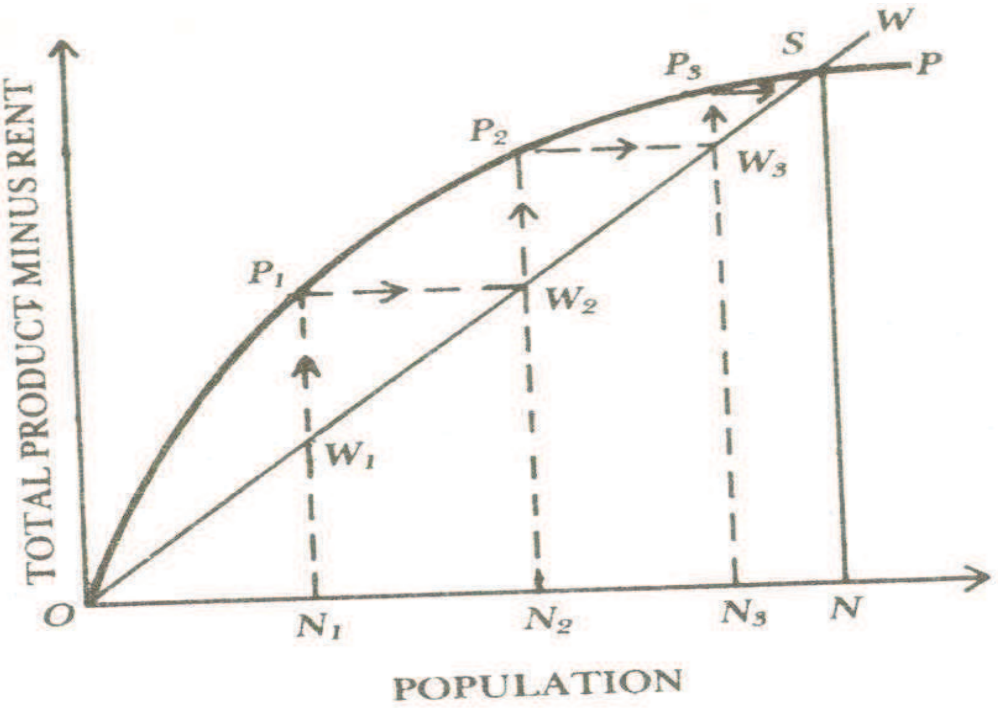

रिकार्डो ने चित्र में स्थिर अवस्था की गति को बताया है जो उसकी वितरण की धारणा को स्पष्ट करता है। जनसंख्या क्षैतिज अक्ष पर और कुल उत्पादन घटा लगान को अनुलम्ब अक्ष पर वक्र OP जनसंख्या फलन है जो TP- त्मदज को जनसंख्या फलन प्रदर्शित करता है। जनसंख्या बढ़ने के साथ$_2$ OP वक्र घटते प्रतिफल का नियम लागू होने से चपटा होता जाता है। किरण OW Real Wage मापती है। जनसंख्या और OW रेखा का अन्तर कुल मजदूरी बिल मापता है। इस प्रकार ON_1,ON_2 तथा ON_3 जनसंख्या स्तरों पर W_1N_1, W_2N_2 और W_3N_2 क्रमश कुल मजदूरी बिल है। तथा W_1N_1 मजदूरी बिल पर लाभ P_1W_1 है जो कुल उत्पादन घटाया मजदूरी बिल से प्राप्त होता है P_1W_1 से निवेश बढ़ता है श्रम की माँग ON_2 हो जाती है तो मजदूरी बिल W_2N_2 अब

लाभ घटकर P_2W_2 हो जाता है अब निवेश बढ़ने पर श्रम की माँग ON_2 पर बढ़ने से मजदूरी बिल बढ़ता है लाभ घटकर P_2W_3 हो जाता है इस प्रकार अर्थव्यवस्था जब तक S बिन्दु पर नही पहुँच जाती और स्थिर अवस्था प्रारम्भ हो जाती है लाभ बिल्कुल समाप्त हो जाते है और समस्त उत्पादन लगान मजदूरी में वितरित हो जाता है।

5.5 विकास प्रारुप की गणितीय व्याख्या

बैजमीन हिगीन्ज ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विकास मॉडल की विभिन्न कड़ियों को समीकरणो के माध्यम से भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है

1.उत्पादन फलन (Production Function) कुल उत्पादन भूमि, श्रम व पूँजी की उपलब्ध मात्रा और इन साधनों के उपयोग के अनुपात व तकनीक के स्तर पर निर्भर करता है अर्थात

$$O = F (L,K,Q,T) \ldots\ldots (i)$$

जहाँ O= कुल उत्पादन] F = फलन अथवा निर्भर करता है, L = श्रम शक्ति की मात्रा, झ उपलब्ध भूमि की मात्रा, Q = पूँजी का स्टाक, T = प्रयुक्त तकनीक का स्तर ।

2.पूँजी संचय से प्राविधिक प्रगति को बढ़ावा मिलता है (Capital accumulation promotes technological progress) पूँजी संचय के बढ़ने के साथ प्राविधिक प्रगति का स्तर बढ़ता है अर्थात दोनों परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित है अर्थात्

$$T= T (I) \ldots\ldots (ii)$$

यहाँ T = प्राविधिक प्रगति, I = विनियोग

3.निवेश लाभ की मात्रा पर निर्भर करता है (Investment depends on profits) देश में निवेश की मात्रा पूँजी पति को प्राप्त होने वाले लाभ की मात्रा पर निर्भर करती है। लाभ जितने अधिक होगे विनियोग भी उतने ही अधिक होते चले जायेगें यहाँ निवेश से अभिप्रायः पूँजी में वास्तविक शुद्ध वृद्धि (net addition to the stock of capital) से है अर्थात्

$$I=DQ=I(R) \ldots\ldots (iii)$$

4.लाभ श्रम की पूर्ति और तकनीकी स्तर पर निर्भर करता है

$$R=R(T,L) \ldots\ldots (iv)$$

यहाँ R = लाभ, T = तकनीकी का स्तर, L = श्रम शक्ति का आकार

5.The size of the labor force depends on the size of wage fund

$$L=L(W) \ldots\ldots (v)$$

यहाँ L = श्रम शक्ति की मात्रा, W = मजदूरी कोष

6.The wage fund depends on the level of investments

$$W = W (I) \ldots\ldots (vi)$$

यहाँ W = मजदूरी कोष, I = विनियोग की मात्रा

7.Total output equals to profits plus wages

$$O=R+W \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (vii)$$

यहाँ O = कुल उत्पादन, R = कुल लाभ, W = मजदूरी कोष

5.6 प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचनाएं

1. अवास्तविक विकास प्रक्रिया :– प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा विकास प्रक्रिया को स्थैतिक माना है अर्थात जिससे सन्तुलन के आस पास ही परिवर्तन होता है तथा एक रूपता युक्त नियमित निरन्तर प्रगति होती है, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक विकास एकरुप व निरन्तर न होकर रूक – रूक का झटकों में होती है।

2.अवास्तविक मान्यताएँ :– प्रतिष्ठित विकास सिद्धान्त माल्थस के जनसंख्या एवं उत्पत्ति ह्रास नियम पर आधारित है, जबकि ये दोनों ही सिद्धान्त दोषपूर्ण है।

3.सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व को न समझ पाना एक बड़ी भूल है।

4.मध्यम वर्ग की उपेक्षा इनके द्वारा की गई और बचतों का सम्पूर्ण श्रेय पूँजी पतियों व भूमिपतियों को प्रदान किया जबकि पूँजी संचय के लिए बचतों में माध्यम वर्ग के वेतनभोगी वर्ग का बड़ा योगदान रहता है।

5.सरकारी हस्तक्षेप की इनके द्वारा उपेक्षा की गई जबकि 1936 के बाद निर्बाधावादी नीति का परित्याग कर दिया गया और सरकारी हस्तक्षेप नीति को अर्थव्यवस्था के विकास में लागू किया जाने लगा है।

6.इस विचारधारा के प्रारूप में परिवर्तित उत्पादन तकनीकों व उन्नत प्रौद्योगिकी को कम महत्व दिया गया जो उचित नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.The Principles of Political economy and Taxation पुस्तक किसने लिखीः–
अ.एडम स्मिथ **ब.** रिकार्ड़ो **स.**माल्थस **द.**जे. बी.से।

2. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री है– **अ.**एडम स्मिथ **ब.** रिकार्ड़ो **स.**माल्थस **द.** सभी।

3. रिकार्डो ने स्थैतिक या स्थिर दशा को किस रुप में माना है :–
अ. निराशा का **ब.** खुशी का **स.** उदासीनता का **द.** कोई नहीं।

4. एडम स्मिथ की गतिहीन अर्थव्यवस्था की विचार किस आधुनिक विकास प्रारुप में मिलता है– **अ.** हैरोड **ब.** मीड **स.**महालनोबिस **द.**जॉन रॉबिन्सन।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. एडम स्मिथ का विकास प्रारुप क्या है?
2. रिकार्ड़ो के विकास प्रारुप की प्रमुख मान्यतॉए क्या है?
3. रिकार्ड़ो के विकास प्रारुप की मुख्य बातें क्या है?
4. आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित प्रारुप की प्रमुख आलोचना कीजिए।

5.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत आर्थिक विकास से सम्बन्धित विचारों में बहुत सीमा तक समानता पाई जाती है। इनके सम्मिलित विचारों को ही आर्थिक विकास का प्रतिष्ठित सिद्धान्त कहा जाता है। आर्थिक विकास के इस प्रतिष्ठित सिद्धान्त को विकास का प्रारम्भिक सिद्धान्त भी कह सकते है।

5.8 शब्दावली

- **प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री**–एडम स्मिथ और उनके अनुयायी जैसे– रिकार्ड़ो ,जे. एस. मिल आदि।
- **विकास दूत–**(1) भूमिपति (2) पूँजीपति तथा(3) श्रमिक जिनमें भूमि की समस्त उपज बाँटी जाती है।
- **स्थिर अवस्था**– अर्थव्यवस्था एक ऐसी स्थिति जहॉ लाभ शून्य तक गिर जाए और पूँजी–संचय बिल्कुल रुक जाएगा।

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–1. ब. रिकार्ड़ो। **2. द.** सभी। **3. ब.** खुशी का । **4. अ.** हैरोड ।
लघु उत्तरीय प्रश्न– 1.देखिए 5.3। **2.**देखिए 5.4.1। **3.** देखिए 5.4। **4.** देखिए 5.6।

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
3. एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
4. धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

5.11 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

1- Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007

2- Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010
3. अग्रवाल ए0एन0, (2006) ''इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)'' आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
4. अहलूवालिया, आई0जे0 (1985), ''इन्डस्ट्रियल ग्रोथ इन इंडिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली'।
5. अहलूवालिया, आई0जे0 एवं लिटिल, आई0एम0डी0 (2002),''इण्डियास इकोनॉमिक रिफार्म एण्ड डेवलपमेन्ट'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली'।

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित प्रारुप की विवेचना कीजिए तथा इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित प्रारुप की गणितीय विवेचना कीजिए?
3. एडम स्मिथ और रिकार्ड़ो के आर्थिक विकास के प्रारुप की विवेचना कीजिए?

इकाई 6– मार्क्स का विकास प्रारूप

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप

6.3.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

6.3.2 उत्पादन की विधि एवं उसके प्रभाव

6.3.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप की विशेषताएं

6.3.4 अतिरेक मूल्य का सिद्वांत

6.3.5 पूँजीवादी संकट

6.4 संवृद्वि के चरण

6.5 गणितीय रुप मेंमार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप

6.6 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप की आलोचना

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के प्रारुप से सम्बन्धित यह छठी इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि आर्थिक विकास क्या है ? आर्थिक विकास का मापन की विधियॉ कौन–2 सी है। अल्पविकसित देशों की विशेषताएँ और विकास के निर्धारक घटक क्या–क्या है।

इस इकाई में कार्ल मार्क्स विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है, इसके अर्न्तगत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है।इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में कार्ल मार्क्स विकास प्रारुप के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कार्ल मार्क्स विकास प्रारुप के महत्व को समझा सकेगें, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके योगदान का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- बता सकेंगे कि कार्ल मार्क्स का विकास प्रारुप क्या होता है।
- अतिरेक मूल्य का सिद्वांत को समझ सकेंगे।
- कार्ल मार्क्स के विकास प्रारुप की प्रमुख विशेषताएं को जान सकेगें।

6.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप (Marxian Model of Economic Development)

कार्ल मार्क्स उन प्रभावशाली विचारकों में से एक है जिसने स्वंय जो कुछ लिखा उससे कही अधिक उनके विचार को द्वारा लिखा गया है। मार्क्स को पूँजी के पतन एवं साम्यवाद के उदय का देवता कहा जाता है। मार्क्स ने समस्त विषयो से सम्बन्धित अपने विचार सम्मिलित रूप से अपनी पुस्तक कें ब्वपजंस में दिये। यहाँ पर हम मार्क्स के उन्ही विचारों का विश्लेषण करेगें जो आर्थिक विकास प्रक्रिया से सम्बद्ध है। इनका अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अर्न्तगत करते है।

6.3.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

मार्क्स ने यह विचार प्रस्तुत किया कि मानव की चेतना से उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं होता बल्कि उसके सामाजिक अस्तित्व से उसकी चेतना का निर्धारण होता है। "It is not the consciousness of men that determines their existence, but on the

country their social existence determines their consciousness" मार्क्स के अनुसार ऐतिहासिक घटनाँए समाज के विभिन्न वर्गो के बीच लगातार आर्थिक संघर्ष का परिणाम है और इस संघर्ष का मुख्य कारण 'उत्पादन की विधि' और उत्पादन के सम्बन्धों के बीच विरोध का पाया जाना है। मार्क्स के अपने शब्दों में "सामाजिक परिवर्तनों का कारण उत्पादन एवं विनिमय की रीतियों में निहित है। संसार की समस्त राजनीतिक क्रियाँए एवं घटनाये जैसे युद्ध आन्दोलन उपद्रव आदि आर्थिक कारणों से उत्पनन होता है। मार्क्स द्वारा आर्थिक कारणों को समाज का सर्वोपरि तत्व माना गया है जो अन्य सभी तत्वों को नियन्त्रित करता है।

6.3.2 उत्पादन की विधि एवं उसके प्रभाव

उत्पादन सम्बन्धों द्वारा समाज की वर्ग संरचना (Class Structure) का प्रकार निर्धारित होता है। मार्क्स के अनुसार यह वर्ग संरचना सभी समाजो (केवल समाजवाद के अर्न्तगत स्थापित वर्गहीन समाज को छोड़कर) में दो वर्गो से बनती है प्रबल एवं निर्देश देने वाला वर्ग और मजदूर वर्ग जो पीडित वर्ग होता है। जैसे उत्पादन सम्बन्ध परिपक्व एवं कठोर होते जाते है और उत्पादन शक्तियों का विकास होता जाता है, प्रबल एवं पीड़ित वर्ग में गम्भीर एवं गहन संघर्ष होता जाता है इससे वर्तमान जायदा सम्बन्धों में कुछ सुधार होता है और पीड़ित वर्ग को कुछ लाभ होता जाता है इससे नवीन उत्पादन शक्तियों का विस्तार जिससे नवीन उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना होती है इससे अधिसंरचना द्रुतिगति से बदल जाती है। मार्क्स के अनुसार समस्त इतिहास में इस चक्र का अनुसरण होता रहता है।

6.3.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप की विशेषताएं (Capitalistic of Marxian Model of Economic Development)

मार्क्स के पूँजीवादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है :–

(1) उत्पादन के साधन (Factors of Production): - मार्क्स ने श्रम को उत्पत्ति का सर्वोपरि साधन माना इन्होने पूँजी तथा साहस को भी मान्यता दी। पूँजी के अधिक प्रयोग से तकनीकी प्रगति सम्भव है जिससे लाभ बढ़ेगा फिर यही अधिक विनियोग उत्प्रेरणाओं को जन्म देगा।

(2) निवेश (Investment):- निवेश पर और यह लाभ अतिरेक मूल्य पर निर्भर करता है। एक तरफ निवेश वृद्धि से लाभ बढेगा तो दूसरी तरफ अतिरेक मूल्य बढ़ने लगता है।

(3) संवृद्धि और गिरावट (Growth and Downfall): - लाभों के बढ़ने की इस रीति से जहाँ पूँजीपति अधिक समृद्धि वही श्रमिको का निरन्तर शोषण से उनकी गरीबी और भी व्यापक होने लगती है। मार्क्स के शब्दों में "पूँजीपति एक बड़ी चमकादड़ (vampire) है जो दूसरे के खून पर जिन्दा रहता है और जितना अधिक खून चूसता है उतना ही और अधिक खून चूसने के लिए उतावला होता जाता है।"

अन्त में यह पूँजीपति छोटे–2 पूँजीपतियों (उत्पादको) का अन्त करके प्रतिस्पर्धात्मक पूँजीवाद के स्थान पर एकाधिकारात्मक पूँजीवाद (Monopolistic Capitalism) की स्थापना करते है। मार्क्स का कहना है कि पूँजीवाद अपनी कब्र स्वयं खोदता है।

(3)चक्रीय उच्चावचन :– मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में चक्रीय उच्चावचन (आर्थिक संकट) अवश्यम्भावी है यह तीन कारणो से है।

i-लाभों के गिरने की प्रवृत्ति :– लाभ अतिरेक बढ़ने के लिए पूँजीपति श्रम बचत उपाय अपनाते है जिससे उत्पादन की मात्रा तथा उत्पादन लागत दोनों शुरू में ही बढ़ते है परन्तु बढ़ी मात्रा की माँग कम होती है क्योकि जनसंख्या का अधिकत्म भाग श्रमिक है जो मजदूरी जीवन निर्वाह के स्तर के बराबर पाता है जिससे लाभ की मात्रा गिरने लगती है।

ii. असंन्तुलन उत्पादन वृद्वि (Unbalanced production Growth): - उत्पादन प्रक्रिया में असन्तुलन के कारण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न हो जाता है। मार्क्स ने जे0 बी0 से के प्रसिद्ध नियम "पूर्ति अपनी माँग स्वंय पैदा कर लेती है" को स्वीकार नहीं किया।

iii-अल्पोपभोग (Under Consumption) :- मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था में जिन दो वर्गो को बताया प्रथम पूँजीपति जिनकी संख्या कम तथा उपभोग प्रवृत्ति न्यून दूसरा श्रमिक वर्ग जो उच्च उपभोग प्रवृत्ति होने के बावजूद कम मजदूरी के कारण उपभोग कम करता है इससे राष्ट्रीय उत्पादन से कम होता है और आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाता है।

6.3.4 अतिरेक मूल्य का सिद्वांत (Theory of Surplus Value)

मार्क्स का अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त पूँजीवाद के अर्न्तगत होने वाली आर्थिक विकास प्रक्रिया का आधार है मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद अर्थव्यवस्था में जनसंख्या दो वर्गो में विभक्त रहती है पूँजीपति जो उत्पादन के समस्त साधनों (प्रसाधन एवं प्राकृतिक साधन) पर अधिकार रखता है तथा श्रमिक वर्ग जो अपनी श्रम शक्ति को बेचकर अपना जीवन निर्वाह करता है। मार्क्स के अनुसार पूँजीपति श्रम को उसकी उत्पादन क्षमता से कम मूल्य देता है। उदाहरणार्थ यदि श्रमिक 10 घण्टे कार्य करता है और पूँजीपति केवल 6 घण्टे के श्रम के बराबर मजदूरी दी जाती है। इन 4 घण्टों के श्रम के मूल्य को पूँजीपति लाभ लगान और ब्याज के रूप में हड़प लेता है। मार्क्स ने इस अदत्त ;न्दचंपकद्ध राशि को ही 'अतिरेक मूल्य' का नाम दिया।

पूँजीपति का प्रमुख उद्देश्य इस अतिरेक मूल्य को अधिकतम करना इसके लिए वह (1) श्रमिको से अधिक घण्टे कार्य लेना (2) मशीनों के प्रयोग को बढ़ाना (3) कम मजदूरी देना (4) श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करना। सम्मिलित है।

वह इससे सफल भी हो जाता है क्योंकि उसके पास बड़ी मात्रा में सुरक्षित औद्योगिक सेना (Industrial reserve army or surplus man power) उपलब्ध है जिसका नाजायज फायदा वह श्रमिको के शोषण के रुप में उठाता है।

पूँजी की मात्रा भी लाभों को निर्धारित करती है। जैसाकि मार्क्स का कहना है, "पूँजी वह मृत श्रम है, जो एक मांसखोर जन्तु की भाँति जीवित श्रम का खून चूसकर ही जीवित रहती है और वह जितना अधिक श्रम को चूसती है उतना ही अधिक जीवित रहती है।" लाभ की उत्पत्ति को समझाने तथा मजदूरी एवं लाभ के सम्बन्ध का विश्लेषण करने के लिए मार्क्स ने पूँजी को स्थिर पूँजी तथा परिवर्ती पूँजी में विभक्त किया है। स्टाँकों या कच्चे माल या उपकरण में निवेश पूँजी को जो श्रम की उत्पादकता बढ़ाने में प्रत्यक्ष रूप से सहायक होती है, मार्क्स स्थिर पूँजी (c) कहते है। मजदूरी या प्रत्यक्ष निर्वाह के रूप में श्रम शक्ति को खरीदने में लगी पूँजी को वह परिवर्ती पूँजी (v) कहता है। परिवर्ती पूँजी ही अतिरेक मूल्य का प्रमुख स्रोत है, जबकि मशीनों का मूल्य धीरे–धीरे वस्तु में चला जाता है। अतिरेक मूल्य को (s) द्वारा दिखाया गया है। इस प्रकार वस्तु का कुल मूल्य = स्थिर पूँजी (c) + परिवर्ती पूँजी (v) अतिरेक मूल्य (s), या (c + v) + s स्थिर पूँजी का परिवर्ती पूँजी से अनुपात बध्अ पूँजी की संगठित संरचना कहा गया है। अतिरेक मूल्य की दर (शोषोण की कोटि) को`ध्अ के रुप में परिभाषित किया गया है अर्थात अतिरेक मूल्य का परिवर्ती पूँजी से अथवा लाभों का मजदूरी से अनुपात की दर और पूँजी की संगठित संरचना का एक दूसरे के साथ उलटा तकनीकी प्रगति का प्रभाव सामान्य रुप से स्थिर पूँजी से परिवर्ती पूँजी का अनुपात बढ़ाने की दशा में पूँजी की संगठित संरचना को बदलने के लिए होती है। इसलिए प्रौद्योगिकीय प्रगति की प्रवृति लाभ की दर (r) को घटाने की होती है क्योंकि c/v बढ़ती है, भले ही अतिरेक मूल्य की दर में कोई कमी न हो।

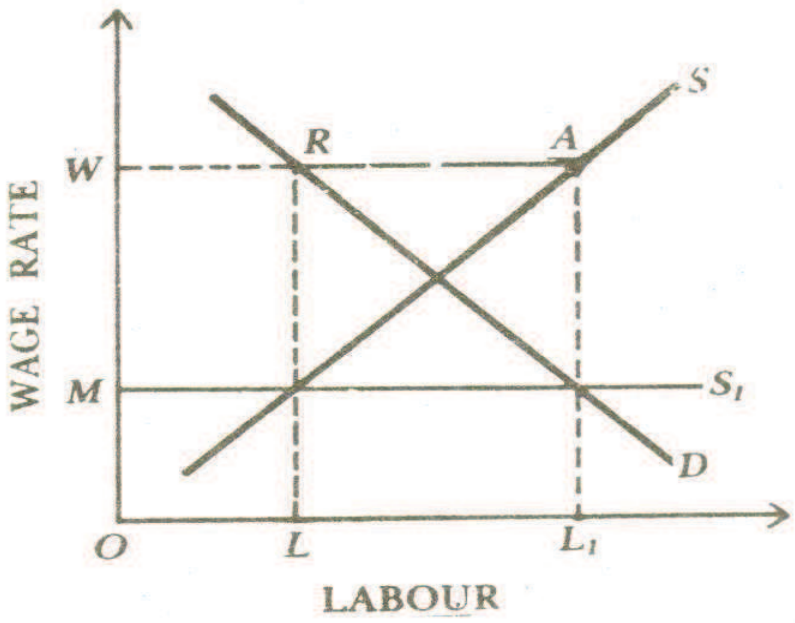

चित्र 1

मार्क्स के अनुसार परन्तु सक्रिय श्रम सेना के अनुपात में यह रक्षित सेना जितनी अधिक होगी, उतना ही अधिक इकट्ठा अतिरेक जनसंख्या का समूह होगा जिसकी विपत्ति श्रम की यन्त्रणा के उलट अनुपात में होगी। पूँजीपति संचय का यह निरपेक्ष सामान्य नियम है। औद्योगिक रक्षित सेना जितनी अधिक बड़ी होती है, रोजगार पर लगे श्रमिकों की स्थिति उतनी अधिक खराब होती है, पूँजीपति असन्तुष्ट तथा झगड़ालू श्रमिकों को हटा सकता है क्योंकि उनके स्थान पर वह भी ला सकते है और अधिकाधिक अतिरेक मूल्य का निवेश कर सकते है। यह पूँजीवाद के अन्तर्गत जनसाधारण की बढ़ती विपत्ति का नियम है। इसे चित्र में दिखाया गया है जहाँ श्रम शक्ति क्षैतिज अक्ष पर और मजदूरी दर अनुलम्ब अक्ष पर लिए गए है। D श्रम का मांग वक्र है तथा S श्रम का पूर्ति वक्र OW मजदूरी दर पर औद्योगिक रक्षित सेना में RA (= L L_1) के के बराबर वृद्धि होती है क्योंकि श्रम की पूर्ति श्रम की मांग से अधिक है। जब औद्योगिक रक्षित सेना बढ़ती है तो पूँजीपति श्रम बचतकारी मशीनें लगाना प्रारंभ कर देते है तथा मजदूरी दर को कम करके न्यूनतम निर्वाह स्तर व्ड पर ले आते है ताकि वे अधिक अतिरेक मूल्य प्राप्त कर सकें।

परन्तु जब पूँजीपति श्रमिकों के स्थान पर मशीनों को स्थानापन्न करता है तो वह सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी का वध करता है। अतिरेक मूल्य लगातार घटता चला जाता है। मार्क्स का विश्वास है कि प्रौद्योगिकीय प्रगति से पूँजी की संगठित संरचना (c/v) बढ़ने लगती है। क्योंकि लाभों की दर का पूँजी की संगठित संरचना के साथ उलट सम्बन्ध है, इसलिए संचय के साथ लाभों की दर घटने लगती है। मार्क्स ने लाभों की घटती दर की इस प्रवृत्ति की व्याख्या निम्नलिखित समीकरण के द्वारा की है।

$$\mathbf{r = s/c+ v = s/v / c/v+ 1}$$

लाभों की दर **(r)** पूँजी की संगठित संरचना **(c/v)** के साथ विपरित बदलती है और अतिरेक मूल्य की दर (शोषण की दर **s/v)** के साथ सीधा बदलती है, इसलिए लाभों की दर **(r)** अतिरेक मूल्य की दर **s/v** के साथ बढ़ती और पूँजी की संगठित संरचना c/v के साथ गिरती है। हम मार्क्स के लाभों की घटती दर के नियम की व्याख्या करते है। मार्क्स यह मानकर चलता है कि ज्यों ज्यों उद्यमी अधिक पूँजी लगाते है श्रम की पूर्ति को स्थिर रखते है। चित्र में पूँजी की मात्रा को क्षैतिज अक्ष पर जबकि कुल उत्पादन को अनुलम्ब अक्ष पर दर्शाया गया है। कुल उत्पादन वक्र **OP** को प्रारंभिक बिन्दु से खीचा गया है जिसकी ढाल यह बताती है कि कुल उत्पादन बिन्दु । तक बढ़ती हुई दर से है और उसके पश्चात उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है। दूसरे शब्दों में, अधिक पूँजी लगाने से तथा श्रम की पूर्ति स्थिर रख कर, घटता प्रतिफल नियम लागू होने लग जाता है। कुल मजदूरी **OT** के बराबर स्थिर मानी गई है ओर इसी कारण रेखा TW क्षैतिज अक्ष के समानान्तर खींची गई है जो कि यह बताती है कि अधिक पूँजी लगाने से श्रम की मात्रा स्थिर रहती है।

बिन्दु **T** से एक रेखा TT_1 खींची गई है जो कि कुल उत्पादन वक्र **OP** को बिन्दु । पर स्पर्श करती है जबकि बिन्दु **A** से एक लम्ब AK_1 खीचा गया है जो रेखा **TW** का S_1 पर काटता है। इसी प्रकार, बिन्दु **T** से एक अन्य रेखा TT_2 खींची गई है जो कुल उत्पादन वक्र को बिन्दु **B** पर नीचे से काटती है और बिन्दु **B** से लम्ब BK_2 खींचा गया है जो रेखा **TW** को S_2 पर काटता है।

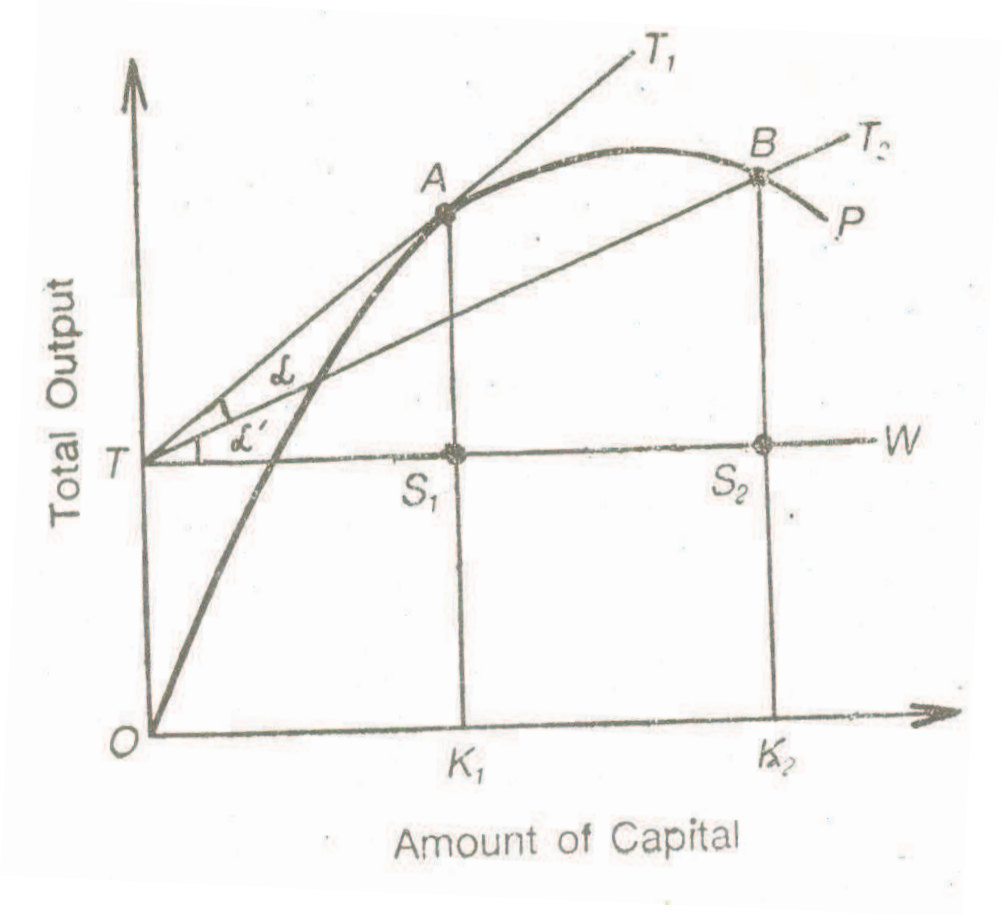

चित्र 2

जब पूँजी की मात्रा OK_1 मशीनों पर लगाई जाती है तब कुल उत्पादन AK_1 के बराबर होता है और उद्यमियों को कुल लाभ AS_1 के बराबर प्राप्त होता है जबकि लाभ की दर $\tan \alpha = AS_1 / TS_1$ है। यदि उद्यमी लाभ को बढ़ाने की आशा से OK_1 से अधिक मात्रा पूँजी पर व्यय करते है तब लाभ की दर कम हो जाती है। स्पष्ट है कि OK_2 पूँजी लगाने से लाभ की दर $\tan \alpha' = BS_2 / TS_2$ रह जाती है जो कि पहली लाभ दर AS_1 / TS_1 की अपेक्षा कम है। अतः अधिक पूँजी को मशीनों पर लगाने से लाभ की दर कम हो जाती है।

इस प्रकार श्रम शोषण की उतनी ही कोटि के साथ, अतिरेक मूल्य की उतनी दर, अपने लाभों को घटती दर में प्रकट करती है क्योंकि "जैसे– जैसे तकनीकी प्रगति सजीव श्रम के स्थान पर एकत्रित श्रम को स्थानापन्न करती जाएगी, वैसे–वैसे अतिरेक मूल्य की दी हुई दर द्वारा प्रदान की गई लाभों की दर घटती जाएगी, अर्थात यदि सजीव श्रम की शोषण दर में तद्नुरूप वृद्धि नहीं होती तो लाभों की दर घटती जाएगी।"

6.3.5 पूँजीवादी संकट

लाभों की घटती दर की इस प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए पूँजीपति मजदूरी घटाकर, कार्यकारी दिन को लम्बा करके और त्वरण इत्यादि के द्वारा शोषण की कोटी बढ़ाते है। परन्तु क्योंकि प्रत्येक पूँजीपति नई श्रम बचत तथा लागत घटाने की युक्तियों का प्रचलन करने में लगा रहता है, इसलिए कुल उत्पादन से श्रम का (अतः अतिरेक मूल्य का) अनुपात और भी कम हो जात है। लाभों की दर भी और घट जाती है। तब उत्पादन लाभदायक नहीं रह जाता। ज्यों ज्यों मनुष्यों का स्थान मशीनें लेती है, त्यों त्यों उपभोग कम होता जाता है और औद्योगिक रक्षित सेना बढ़ जाती है। दिवाले निकलते है। प्रत्येक पूँजीपति मार्किट में वस्तुओं के ढेर बेचने का प्रयत्न करता है और इस प्रक्रिया में छोटी फर्मे गायब हो जाती है। पुँजीवादी संकट प्रारम्भ हो जाता है। मार्क्स ने बताया है कि समस्त आर्थिक संकट का कारण जन साधारण की दरिद्रता तथा सीमित क्रय शक्ति है। वस्तुओं के अति उत्पादन, मार्किट खोजने में अत्यधिक कठिनाइयों, कीमतों में कमी और उत्पादन की तीव्र कटौती के रूप में आर्थिक संकट प्रकट होते है। संकट के समय में बेरोजगारी बहुत बढ़ जाती है, श्रमिकों की मजदूरी और घटा दी जाती है, ऋण की सुविधाएँ समाप्त हो जाती है और छोटे पूँजीपति तबाह हो जाते है।

ऐसा सदैव नहीं होता रहता। जल्दी ही पुनः प्रवर्तन प्रारम्भ हो जात है। कीमतों का निम्न स्तर, मजदूरी में कटौती, सट्टा संकटों की समाप्ति तथा पूँजी का नाश लाभों की दर को बढ़ाने लगते है जिसके परिणामस्वरूप नए निवेश होते है जैसाकि मार्क्स ने लिखा है, "संकट सदा ही बड़े नए निवेशों का प्रारम्भ बिन्दु होता है। इसलिए समस्त समाज के दृष्टिकोण से संकट थोड़ा बहुत, अगले प्रस्थापिता चक्र का नया भौतिक आधार है" परन्तु इसका वही विध्वंसात्मक परिणाम निकलता है। श्रम के लिए प्रतियोगिता अधिक मजदूरी श्रम बचतकारी मशीनें अतिरेक मूल्य में कमी लाभ की दरों में कमी और अधिक प्रतियोगिता तथा पतन। संकट से मन्दी और उसके बाद पुनरुत्थान तथा तेजी और फिर संकट का यह चक्र पूँजीवादी उत्पादेन के विकास का साक्षी है।

संकट की प्रत्येक अवधि में अधिक शक्तिशाली पूँजीपति कमजोर पूँजीपतियों का अधिकार छीन लेते है और इसके साथ ही मजदूर वर्ग का क्रोध बढ़ता है। और तब अनत में पूँजीवाद का प्रलय का दिन आ पहुँचता है जिसे सबसे अच्छे ढ़ंग से मार्क्स के ही शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है, रूपानतरण की इस प्रक्रिया के लाभों को हड़पने और उन पर एकाधिकार जमाने वाले पूँजीपतियों की निरन्तर घटती संख्या के साथ–साथ जनसाधारण

की विपत्ति, दमन, दास्ता, अपमान तथा शोषण बढ़ते जाते है। परन्तु इसके साथ ही मजदूर वर्ग का विद्रोह भी बढ़ता है, जोकि ऐसा वर्ग है जिसकी संख्या बढ़ती रहती है और जोकि स्वंय पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया के ही ढाँचे द्वारा अधिक अनुशासित, संयुक्त तथा संगठित होता है। पूँजी का एकाधिकार उत्पादन की विधि के लिए बन्धन बन जाता है। उत्पादन के साधनों कर केन्द्रीकरण तथा श्रम का समाजीकरण अन्त में ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते है, जहाँ वे अपने पूँजीवादी आवरण के अनुरूप नहीं रहते। पूँजीवाद का पर्दाफाश हो जाता है। पूँजीवादी निजी सम्पत्ति के नाश के अशुभ सूचक घण्टे बज उठते है। अधिकार छीनने वालों के अपने ही अधिकार छिन जाते है। पूँजीवादी संचय की यह ऐतिहासिक प्रवृत्ति है। दरिद्रता समाप्त हो जाएगी। राज्य नष्ट हो जाएगा और प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार योगदान देगा तथा अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ग्रहण करेगा। पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद आ जाएगा।

6.4 संवृद्वि के चरण (Stages of Growth)

मार्क्स द्वारा आर्थिक विकास कि अवस्थाओं की जो परिकल्पना की गयी है वे निम्न है–

मौलिक अवस्था	**आदिम अवस्था**	**(Primitive Communication)**
दूसरी अवस्था	**दास समाज**	**(Slave Society)**
तीसरी अवस्था	**सामन्तवादी समाज**	**(Feudal Society)**
चौथी अवस्था	**पूँजीवाद**	**(Capitalism)**
पाँचवी अवस्था	**साम्राज्यवाद**	**(Imperialism)**
छठी अवस्था	**समाजवाद**	**(Socialism)**
अन्तिम	**साम्यवाद**	**(Communism)**

6.5 गणितीय रुप मेंमार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप (Equation Form of Marxian Growth Model)

मार्क्स के मॉडल का समीकरण रुप इस प्रकार है।

(1) मार्क्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की भाँति कुल उत्पादन को भूमि, श्रम पूँजी और इन साधनों के उपयोग के अनुपात व तकनीक के स्तर का परिणाम माना है। अर्थात :–

$$O = F (L, K, Q, T) \quad \text{.....(i)}$$

(2) प्राविधिक प्रगति विनियोग पर निर्भर करती है अर्थात :–

$$T = T (I) \quad \text{.....(ii)}$$

(3) निवेश लाभ दर पर निर्भर करता है अर्थात :–

$$I = I (R^1) \quad \text{.....(iii)}$$

जहाँ I = निवेश, R^1 = पूँजी पर प्रतिफल की दर

जहाँ प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने निवेश को लाभ के बराबर अर्थात पूँजीपति की आय के बराबर माना वही मार्क्स ने निवेश को पूँजी की प्रतिफल की दर पर निर्भर करता है बताया।

(4) लाभ की दर वास्तव में लाभ पूँजी लागत का अनुपात है

$$R^1 = O\text{-}W / W+Q^1 = R/ W+ Q^1 \text{ .....(iv)}$$

O = उत्पादन की मात्रा, Q = पूँजीगत वस्तुएँ, W = चल पूँजी, O - W = लाभ की मात्रा

(5) मजदूरी निवेश के स्तर पर निर्भर करती है अर्थात

$$W = W (I)\text{.....(v)}$$

(6) रोजगार का स्तर निवेश की मात्रा पर निर्भर करता है अर्थात

$$L = L (I/Q)\text{.....(vi)}$$

(7) उपभोग मजदूरी कोष पर निर्भर करता है अर्थात

$$C= C(W) \text{ .....(vii)}$$

(8) लाभ, तकनीक के स्वरूप और व्यय के स्तर पर निर्भर करता है अर्थात

$$R = R (T, C)\text{.....(viii)}$$

(9) उत्पादन की मात्रा लाभ और व्यय के स्तर पर निर्भर करता है अर्थात

$$O = R+ W \text{ .....(ix)}$$

(10) अतः कुल उत्पादन, उपभोग और विनियोग के बराबर होगा अर्थात

$$O = C+ I\text{.....(x)}$$

(11) अन्त में यह माना जा सकता है कि चल पूँजी की लागत का पूँजी के कुल स्ट्राँक से एक निश्चित सम्बन्ध (अनुपात) है जिसे यदि U(User Cost) से प्रदर्शित किया जाए और यह मानते हुए कि 'U' का मूल्य दिया हुआ है तो समीकरण इस प्रकार होगा।

इसमें तीन समानताएँ (and the three ideates)

$$O = R + W$$
$$O = C + I$$
$$O = U.Q$$

प्रतिष्ठित तथा मार्क्स के विकास माँडल में समानताये समी0 न0 (i) (ii) तथा (v) है। समी0 (vi) देखने में समान है परन्तु प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का 'L' से अभिप्राय श्रम शक्ति की कुल मात्रा से जबकि मार्क्स ने इसे रोजगार प्राप्त श्रम शक्ति माना है। समी0 न0 (iii) में मार्क्स के अनुसार विनियोग लाभ के स्तर पर नहीं लाभ की दर पर निर्भर करता है।

दोनों विकास माँडल तकनीकी प्रगति को लाभ में वृद्धि करने के लिए आवश्यक तत्व मानते है।

6.6 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप की आलोचना (Criticism of Karl Marx's Growth Model)

मार्क्स के विकास सम्बन्धी विचारों की आलोचना अग्रलिखित आधारों पर की जाती है।

(1) झूठा पैगम्बर **(False Prophet)**

(i) भृत्ति – मार्क्स का यह विचार कि पूँजी वादी अर्थ व्यवस्थाओं में भृत्ति की दर जीवन निर्वाह स्तर के बराबर रखी जाती है सत्य सिद्ध नहीं हुआ वास्तविक भृत्ति आर्थिक विकास के साथ बढ़ा।

(ii) समाजवाद का विकास मार्क्स के बताए गये ढंग के अनुसार नही हुआ।

(iii) पूँजीवाद के शीध्र पतन की धारणा गलत सिद्ध हुई।

(iv) मार्क्सवाद का अनुकरण उन्ही देशों ने किया जो पूँजीवादी देशों से बहुत पीछे थे।

(2) अतिरेक मूल्य अवास्तविक धारणा – पूँजीपति श्रमिकों से अतिरेक मूल्य के रूप में सम्पूर्ण लाभ हडप लेता है एक विरोधाभास लिए हुए है जैसा मार्क्स ने स्वीकार किया है कि पूँजीपति श्रम बचत उपाय कभी स्वीकार नहीं करता। यही नही मार्क्स ने निरपेक्ष अवास्तविक मूल्यों पर जोर दिया जबकि व्यवहार में हमारा सम्बन्ध वास्तविक कीमतो से होता है।

(3) गिरती हुई लाभ दर – मार्क्स के अनुसार जैसे विकास होता है वैसे ही वैसे पूँजी की प्रासंरिक ;व्तहंदपबद्ध संरचना में वृद्धि होती है जो लाभ की दर को घटा देगी। परन्तु वह भूल गये तकनीकी नव प्रवर्तनों से पूँजी की बचत होती है। जिससे पूँजी उत्पाद अनुपातों में कमी उत्पादकता में वृद्धि के साथ मजदूरी तथा लाभ दोनों बढ़ता है।

(4) तकनीकी प्रगति से रोजगार को बढ़ावा – तकनीकी प्रगति होने पर शुरू में बेरोजगारी होगी परन्तु दीर्घकाल में कुल माँग तथा आय स्तर को बढ़ाकर अपेक्षाकृत अधिक रोजगार उत्पन्न होगा।

(5) बैजमीन हिगीन्ज के अनुसार मार्क्स का यह कथन कि समाजवाद सर्वप्रथम उन देशों में आयेगा जहाँ पूँजीवाद चरम सीमा पर होगा सर्वथा गलत सिद्ध हुआ।

(6) सम्पूर्ण चक्रीय सिद्धान्त – मार्क्स की यह मान्यता गलत सिद्ध हुई कि पूँजी संचय से उपभोक्ता वस्तुओ की माँग और लाभों में कमी आती है। आर्थिक विकास तेज होने से कुल आय बढ़ाने के साथ मजदूरी बढ़ती है जिससे वस्तुओ की माँग बढ़ेगी।

(7) मार्क्स पूँजीवाद के लचीलेपन को समझने में असफल रहें।

(8) राज्य के योगदान की उपेक्षा करते है।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

- **मार्क्स के अनुसार वस्तु के मूल्य का आधार है:**

अ.श्रम **ब.** भूमि **स.** पूँजी **द.**खनिज संम्पदा।

- Das Capital पुस्तक के लेखक हैः

अ.एडम स्मिथ **ब.** रिकार्ड़ो **स.**माल्थस **द.** मार्क्स।

3.मार्क्स का अतिरेक मूल्य हैः

अ. प्रयोग मूल्य **ब.** प्रयोग मूल्य एवं विनिमय मूल्य का अन्तर
स. विनिमय मूल्य **द.** कोई नहीं।

लघु उत्तरीय प्रश्न

5. मार्क्सवाद क्या है?
6. मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या किस प्रकार की है?
7. मार्क्स का अतिरेक मूल्य का सिद्वांत क्या है?
8. मार्क्स के विकास प्रारुप की मुख्य विशेषताएं क्या है?
9. मार्क्स ने पूँजीवाद के पतन के क्या कारण बताइए है?

6.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि मार्क्स ने समस्त विषयों से सम्बन्धित अपने विचार सम्मिलित रूप से अपनी पुस्तक कें ब्वपजंस में दिये। मार्क्स ने यह विचार प्रस्तुत किया कि मानव की चेतना से उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं होता बल्कि उसके सामाजिक अस्तित्व से उसकी चेतना का निर्धारण होता है।मार्क्स के अनुसार यह वर्ग संरचना सभी समाजो में दो वर्गो से बनती है प्रबल एवं र्निदेश देने वाला वर्ग और मजदूर वर्ग जो पीडित वर्ग होता है। जैसे उत्पादन सम्बन्ध परिपक्व एवं कठोर होते जाते है और उत्पादन शक्तियों का विकास होता जाता है, प्रबल एवं पीड़ित वर्ग में गम्भीर एवं गहन संघर्ष होता जाता है इससे वर्तमान जायदा सम्बन्धों में कुछ सुधार होता है और पीड़ित वर्ग को कुछ लाभ होता जाता है इससे नवीन उत्पादन शक्तियों का विस्तार जिससे नवीन उत्पादन सम्बन्धों की स्थापना होती है इससे अधिसंरचना द्रुतिगति से बदल जाती है। प्रबल एवं र्निदेश देने वाला वर्ग का प्रमुख उद्देश्य अतिरेक मूल्य को अधिकतम करना इसके लिए वह (1) श्रमिको से अधिक घण्टे कार्य लेना (2) मशीनों के प्रयोग को बढ़ाना (3) कम मजदूरी देना (4) श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करना। जो अतिरिक्त श्रमिकों के कारण होता है, पूँजीपति असन्तुष्ट तथा झगड़ालू श्रमिकों को हटा सकता है क्योंकि उनके स्थान पर वह नये श्रमिकों भी ला सकते है और अधिकाधिक अतिरेक मूल्य का निवेश कर सकते है। इस प्रकार श्रम शोषण की उतनी ही कोटि के साथ, अतिरेक मूल्य की उतनी दर, अपने लाभों को घटती दर में प्रकट करती है क्योंकि "जैसे– जैसे तकनीकी प्रगति सजीव श्रम के स्थान पर एकत्रित श्रम को स्थानापन्न करती जाएगी, वैसे–वैसे अतिरेक मूल्य की दी हुई दर द्वारा प्रदान की गई लाभों की दर घटती जाएगी, अर्थात यदि सजीव श्रम की शोषण दर में तद्नुरूप वृद्धि नहीं होती तो लाभों की दर घटती जाएगी।" मार्क्स ने बताया है कि समस्त आर्थिक संकट का कारण जन साधारण की दरिद्रता तथा सीमित क्रय शक्ति है। वस्तुओं के अति उत्पादन, मार्किट खोजने में अत्यधिक कठिनाइयों, कीमतों में कमी और उत्पादन की तीव्र कटौती के रूप में आर्थिक संकट प्रकट होते है। संकट के समय में

बेरोजगारी बहुत बढ़ जाती है, श्रमिकों की मजदूरी और घटा दी जाती है, ऋण की सुविधाएँ समाप्त हो जाती है और छोटे पूँजीपति तबाह हो जाते है।ऐसा सदैव नहीं होता रहता। "संकट सदा ही बड़े नए निवेशों का प्रारम्भ बिन्दु होता है। इसलिए समस्त समाज के दृष्टिकोण से संकट थोड़ा बहुत, अगले प्रस्थापिता चक्र का नया भौतिक आधार है" परन्तु इसका वही विध्वंसात्मक परिणाम निकलता है। श्रम के लिए प्रतियोगिता अधिक मजदूरी श्रम बचतकारी मशीनें अतिरेक मूल्य में कमी लाभ की दरों में कमी और अधिक प्रतियोगिता तथा पतन। संकट से मन्दी और उसके बाद पुनरुत्थान तथा तेजी और फिर संकट का यह चक्र पूँजीवादी उत्पादेन के विकास का साक्षी है। उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण तथा श्रम का समाजीकरण अन्त में ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते है, जहाँ वे अपने पूँजीवादी आवरण के अनुरूप नहीं रहते। पूँजीवाद का पर्दाफाश हो जाता है। पूँजीवादी निजी सम्पत्ति के नाश के अशुभ सूचक घण्टे बज उठते है। अधिकार छीनने वालों के अपने ही अधिकार छिन जाते है। पूँजीवादी संचय की यह ऐतिहासिक प्रवृत्ति है। दरिद्रता समाप्त हो जाएगी। राज्य नष्ट हो जाएगा और प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार योगदान देगा तथा अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ग्रहण करेगा। पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद आ जाएगा।

6.8 शब्दावली

- **प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री**–एडम स्मिथ और उनके अनुयायी जैसे– रिकार्डो ,जे. एस. मिल आदि।
- **अतिरेक मूल्य** – अतिरेक मूल्य, श्रमिक के श्रम द्वारा बनायी गयी वस्तुओं के मूल्य तथा श्रमिक के मजदूरी के अन्तर के बराबर होता है।

$$v = d - e$$

यहॉ v= अतिरेक मूल्य, **d=**वस्तुओं की कीमत जो पूँजीपति को प्राप्त होती है,**e=मजदूरी।**

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–1.अ.श्रम। **2. द.** मार्क्स।**3. ब.** प्रयोग मूल्य एवं विनिमय मूल्य का अन्तर।

लघु उत्तरीय प्रश्न– 1.देखिए 6.3। **2.**देखिए 6.3.1। **3.** देखिए 6.3.4। **4.** देखिए 6.3.3। **10.**देखिए 6.3.5।

6.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
3. एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।

4. धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

6.11 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

1. अग्रवाल ए0एन0, (2006) ''इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)'' आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. अहलूवालिया, आई0जे0 (1985), ''इन्डस्ट्रियल ग्रोथ इन इंडिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली'।
3. अहलूवालिया, आई0जे0 एवं लिटिल, आई0एम0डी0 (2002),''इण्डियास इकोनॉमिक रिफार्म एण्ड डेवलपमेन्ट'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली'।
4- Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
5- Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मार्क्स के विकास प्रारुप की विवेचना कीजिए तथा इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. ''मार्क्स के विकास प्रारुप पश्चिमी पूँजीवाद के उदभव एवं विकास को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।'' व्याख्या कीजिए?
3. मार्क्स के विकास प्रारुप गणितीय व्याख्या की विवेचना कीजिए?
4. कार्ल मार्क्स के विकास प्रारुप का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए?

इकाई 7 शुम्पीटर का विकास प्रारूप

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 शुम्पीटर के विकास प्रारूप
7.3.1 शुम्पीटर के विकास प्रारूप का इतिहास
7.3.2 शुम्पीटर के विकास प्रारूप की मान्यतायें
7.4. शुम्पीटर का विकास प्रारूप की विवेचना
7.4.1 आर्थिक विकास से अर्थ
7.4.2 आर्थिक जीवन का चक्रीय उच्चावचन
7.4.3 आर्थिक विकास एक असतत् प्रक्रिया
7.4.4 नवप्रवर्तनों की भूमिका
7.4.5 उपक्रमी की भूमिका तथा प्रोत्साहन श्रोत
7.4.6 पूंजी लाभ एंव ब्याज
7.4.7 पूंजीवाद विकास की चक्रीय प्रक्रिया
7.4.8 पूंजीवाद के नाश की प्रक्रिया
7.5 शुम्पीटर का मॉडल तथा अल्पविकसित देश
7.6 शुम्पीटर के विकास मॉडल का अर्थव्यवस्था में महत्व
7.7 शुम्पीटर के मॉडल का बेंजामिन हिगिन्स द्वारा प्रस्तुत समीकरणों की सहायता से स्पष्टीकरण
7.8 शुम्पीटर के विकास प्रारूप की आलोचना (सीमाये)
7.9 सारांश
7.10 शब्दावली
7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.12 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ
7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने मार्क्स के विकास प्रारूप के विषय में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त की है। इस इकाई में हम आर्थिक विकास के प्रारूप–1 से संबंधित शुम्पीटर के विकास प्रारूप का अध्ययन करेंगें।

परम्परावादी विचार–धारा तथा कार्ल मार्क्स का विचार विकास सिद्वान्त को निराशावादिता की ओर ले जाता है। यदि एक ओर हासमान नियम तथा जनसंख्या की वृद्धि स्थिर अवस्था पर पहुंचाती है तो दूसरी तरफ अर्न्तर्निहित विरोधाभाषों के कारण पूंजीवाद का विकास एक स्थिति पर आने के बाद ठप्प हो जाता है। शुम्पीटर का विश्लेषण इन निराशावादी चिन्ताओं से मुक्त हैं। इस प्रकार शुम्पीटर मॉडल के अध्ययन से आप समझ सकेंगें कि इसमें सहज रूप से एक आशावादी झलक मिलती है। शुम्पीटर ने अपने विकास प्रारूप में नवप्रवर्तन को महत्वपूर्ण माना है। प्रस्तुत मॉडल के अध्ययन से आप विकास के शुम्पीटर मॉडल को भॅली–भॉति समझ सकेंगें।

7.2 उद्देश्य

1. प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह समझ सकेगें कि –
    1. अर्थिक विकास का क्या अर्थ है।
    2. शुम्पीटर का विकास प्रारूप किस पर आधारित है।
    3. शुम्पीटर के विकास प्रारूप के प्रमुख तत्व क्या है।
    4. चक्रीय उच्चावचन से क्या अर्थ है। यह आप ठीक प्रकार से बता सकेंगें ।
    5. आर्थिक विकास की असतत् प्रक्रिया का क्या अर्थ है।
    6. नवप्रवर्तनों की क्या भूमिका है। इससे अर्थव्यवस्था के संबंध में अध्ययन कर सकेंगें।
    7. पूॅजी, लाभ एंव ब्याज का क्या महत्व है।
    8. पूंजीवादी विकास की चक्रीय प्रक्रिया क्या है।
    9. पूंजीवादी के विनाश की क्या प्रक्रिया है।
    10. शुम्पीटर के विकास मॉडल की क्या सीमायें है।

7.3 शुम्पीटर के विकास प्रारूप

शुम्पीटर ऑस्ट्रेलिया के मोराविया प्रान्त (जो आजकल जैकोस्लोवेकिया में है)उम पैदा हुये थे उन्होने रूस ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, कोलाम्बिया व अमेरिका के हावर्ड विश्वविद्यालयों में पढ़ाया उनके विकास के सिद्वान्तों को हम तीन पुस्तको से लेते है। :–

(1) The Theory of economic development - 1912
(2) Business cycles (2 Volumes, 1939)
(3) Capitalism, socialism and democracy

बेन्जामिन हिगिन्स के अनुसार शुम्पीटर 20वीं सदी में विकास मॉडल देने वाले प्रथम अर्थशास्त्री थे। आर्थिक विकास के ऐतिहासिक क्रम में शुम्पीटर का महत्वपूर्ण स्थान हैं। परम्परावादी विचार–धारा तथा कार्ल मार्क्स का विचार विकास सिद्वान्त को निराशावादिता की ओर ले जाता है। यदि एक ओर हासमान नियम तथा जनसंख्या की वृद्धि स्थिर अवस्था पर पहुंचाती है तो दूसरी तरफ अर्न्तर्निहित विरोधाभाषों के कारण पूंजीवाद का विकास एक स्थिति पर आने के बाद ठप्प हो जाता है। शुम्पीटर का विष्लेषण इन निराशावादी चिन्ताओं से मुक्त हैं। इस प्रकार शुम्पीटर मॉडल के अध्ययन से समझ सकेंगें कि इसमें सहज रूप से एक आशावादी झलक मिलती है।

शुम्पीटर के अनुसार – ''आर्थिक विकास वृत्तीय प्रवाह में होने वाला एक आकास्मिक तथा असतत् परिवर्तन हैं। अर्थात् संतुलन की एक ऐसी हलचल है जो पूर्व स्थापित साम्य की स्थिति को सदा के लिए बदल देती है।''

7.3.1 शुम्पीटर के विकास प्रारूप का इतिहास

जोसेफ एलोइ शुम्पीटर (Josepn Alois Schumpiter) ने पहली बार 1911 में जर्मनी भाषा में प्रकाशित The Throry of Economic Development में अपना सिन्द्वात प्रस्तुत किया। इसका अग्रेंजी संस्करण 1934 में प्रकाशित हुआ। बाद में Business cycles (1939) और Capitalism, Socialism and democracy (1942) में इस सिद्धान्त को परिष्कृत एंव परिवर्धित किया गया। इन्होने विकास के सम्बन्ध में पूर्ण विचार प्रस्तुत किये है।

शुम्पीटर के विकास प्रारूप का आर्थिक जगत में महत्वपूर्ण स्थान है। शुम्पीटर के मॉडल में प्रतिष्ठित मॉडलो से भिन्नता हैं परन्तु यह प्रतिष्ठित माडलों से ज्यादा प्रभावपूर्ण है।

इन्होने साहसी को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

7.3.2 शुम्पीटर के विकास प्रारूप की मान्यताएं

शुम्पीटर का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1. शुम्पीटर ने ऐसी अर्थव्यवस्था की परिकल्पना की है जहां पूर्ण प्रतियोगिता हैं जो स्थिर साम्य की

अवस्था है।

2.स्थिरावस्था साम्य जहां, जहां न तो अधिक लाभ की स्थिति है और न तो हानि की स्थिति हैं न बचत है न निवेश है और न ही बेरोजगारी की स्थिति है। इन सारी चीजो को शुम्पीटर ने एक आर्थिक चक्र से बताया है। जो कृमिक रूप से चलता रहता है। चक्रीय प्रकिया में एक समान उत्पादन होता रहता है।

3. शुम्पीटर के अनुसार अर्थ व्यवस्था का विकास नवप्रवर्तनों पर निर्भर करता है। और नवप्रर्वतन का कार्य उद्यमी के ऊपर निर्भर करता है।

4 शुम्पीटर ने आर्थिक विकास को एक असतत् चलने वाली प्रकिया माना है।

7.4 शुम्पीटर का विकास प्रारूप की विवेचना

1. आर्थिक विकास का अर्थ

2. आर्थिक जीवन का चक्रीय उच्चावचन
3. आर्थिक विकास एक असतत् प्रक्रिया
4. नवप्रवर्तनों की भूमिका
5. उपक्रमी की भूमिका तथा प्रोत्साहन श्रोत
6. पूंजी लाभ एंव ब्याज
7. पूंजीवादी विकास की चक्रीय प्रक्रिया
8. पूंजीवाद के नाश की प्रक्रिया

7.4.1आर्थिक विकास से अर्थ

आपकों शुम्पीटर के विकास प्रारूप का अध्ययन करने के लिए आर्थिक विकास के अर्थ को जानना आवश्यक शुम्पीटर के अनुसार आर्थिक विकास से हमारा अभिप्राय आर्थिक जीवन में घटित होने वाले केवल उन्ही परिवर्तनों से हैं जिनको उपर से लादा नहीं जाता हैं। बल्कि वे स्वयंभूत प्रेरणाओं से भीतर से ही प्रकट होते है।

7.4.2 आर्थिक जीवन का चक्रीय उच्चावचन

शुम्पीटर आर्थिक विकास की प्रक्रिया की ब्याख्या चक्रीय प्रवाह (Circular flow) से प्रारम्भ करते है। जो बिना विनाश के निरंतर चलती रहती हैं। अर्थात जो प्रति वर्ण एक ही तरह से उसी प्रकार अपनी पुनरावृत्ति करता रहता है। जिस प्रकार जीवों में रक्त का संचरण होता है। इस वृत्तीय प्रवाह में प्रत्येक वर्ष उसी ढंग से वहीं वस्तुये उत्पादित होती है। आर्थिक प्रणाली में कहीं प्रत्येक पूर्ति के समान मांग प्रतीक्षा करती हैं तथा प्रत्येक मांग के लिए समान पूर्ति/दूसरे शब्दों में, समस्त आर्थिक कियाएं एक समय समस्त अर्थव्यवस्था में पुनरावृत्ति करती है।

शुम्पीटर के लिए – वृत्तीय प्रवाह एक सरिता है। जो कि श्रम शक्ति और भूमि पर निरन्तर प्रवाह हो रहे झरनों की संतुष्टि में रूपान्तरण किया जाये। उनके अनुसार विकास वृत्तीय प्रवाह की दिषाओं में आकस्मिक तथा अनिरन्तर परिर्वतन संतुलन की फलन है जो पहले की विद्यमान संतुलन स्थिति को सदा के लिए परिवर्तित तथा विस्थापित कर देती है।

शुम्पीटर के अनुसार – 'अर्थव्यवस्था स्थिर संतुलन में रहती है तथा स्थिर संतुलन में अर्थव्यवस्था पूर्ण प्रतियोगिता मूलक संतुलन में रहती है। अर्थात् निम्नलिखित स्थितियां पायी जाती है।'

1- उत्पादन की मांग उत्पादन की पूर्ति, D=S
2- कीमत = औसत लागत, P=AC
3- लाभ = शून्य, P=O
4- ब्याज की दर =लगभग शून्य, Ri=Just O
5. बेरोजगारी = नही के बराबर,

D = Demand, S= Suppy, P= Profit
R= Rate of interest, N= unemployed

7.4.3 आर्थिक विकास एक असतत् प्रक्रिया

(Economic development is a discontinuous process)

ऊपर के अध्ययन से आप समझ गए होंगें कि आर्थिक विकास एक चक्रिय प्रक्रिया है । शुम्पीटर ने आर्थिक विकास को वृत्तीय प्रवाह का असतत् विचलन माना है। उनका विकास प्रारूप यह है कि – आर्थिक विकास इस वृत्तीय प्रवाह में होने वाला एक आकास्मिक तथा असत्त परिवर्तन है अर्थात् सन्तुलन की एक ऐसी हलचल है जो पूर्व स्थापित साम्य की स्थिति को सदा के लिए बदल देती है। तो वृत्तीय प्रवाह में बाधा या विचलन किस रूप में होता है शुम्पीटर के अनुसार यह बाधा या विचलन नव प्रवर्तनों के रूप में आती है।

अभ्यास 1

रिक्त स्थान भरें–

i. शुम्पीटर ने जर्मनी भाषा में प्रकाशित ..... में अपना मॉडल प्रस्तुत किया।

ii. कार्ल मार्क्स का विचार ..... की ओर ले जाता है।

iii. शुम्पीटर के विकास सिद्वान्त में ..... की झलक मिलती है।

iv. शुम्पीटर का विकास प्रारूप ..... आधारित है।

v. शुम्पीटर के अनुसार वित्तिय प्रवाह एक .....है।

vi. आर्थिक विकास के कार्य को ..... के साथ करना होता है।

vii. किसी नवीन वस्तु का उत्पादन करना ..... है।

सत्य असत्य बताइए–

i. आर्थिक विकास के सतत प्रक्रिया है। (सत्य /असत्य)

ii. शुम्पीटर के अनुसार अर्थव्यवस्था का विकास नवप्रवर्तन पर निर्भर करता है। (सत्य /असत्य)

iii. The Throry of Economic Development का अंग्रेजी संस्करण 1936 में प्रकाशित हुआ। (सत्य /असत्य)

7.4.4 नवप्रवर्तनों की भूमिका

अब आप यह समझ चुके हैं कि शुम्पीटर ने अपने मॉडल में आर्थिक विकास को अससत् प्रक्रिया माना है, अब हम नवप्रवर्तनों की भूमिका का अध्ययन करेंगें–

7.4.4 .1 नव प्रवर्तनों के रूप

शुम्पीटर के अनुसार नवप्रवर्तन निम्न प्रकार हो सकता है।

1. किसी नवीन वस्तु का उत्पादन करना ।
2. उत्पादन की किसी नवीन प्रविधि का प्रचलन होना नये बाजारों की खोज होना।
3. कच्चे माल के लिए नये पूर्ति श्रोतों का पता लगाना ।
4. एकाधिकार स्थापित करने की तरह किसी उद्योग के नये संगठन को कार्यान्वित करना ।

7.4.4.2 नवप्रवर्तनों के कार्य (Role of Innovator)

शुम्पीटर के अनुसार आर्थिक विकास का कार्य स्वतः नहीं होता बल्कि इस कार्य को विशेष प्रयास व जोखिम के साथ शुरू करना होता है। यह कार्य नवप्रवर्तक अर्थात् उद्यमी करता है। पूंजीपति नहीं। पूंजीपति केवल पूंजी प्रदान करता है जबकि उद्यमी उसके प्रयोग का निदेशन करता है। शुम्पीटर का कहना है कि साहसी के सम्बन्ध में स्वामित्व नहीं बल्कि नेतृत्व अधिक महत्वपूर्ण होता है।

अतः साधारण प्रबन्धकीय योग्यता वाले व्यक्ति में जोखिम उठाने व अनिश्चतता वहन करने की योग्यता नहीं होती। यह कार्य उद्यमी द्वारा किया जाता हैं इस प्रकार उद्यमी शुम्पीटर के विकास सिद्वान्त की केन्द्रीय शक्ति है। साहसी विकास का मुख्य प्रेरक श्रोत हैं। वह नवीनताओं का सृजनकर्ता है उत्पादन की तकनीक में क्रान्ति का अधिष्ठाता है और बाजारों के विस्तार का श्रेय भी उसे ही दिया जाता है। ''साहसी अथवा उद्यमी की तुलना युद्व की व्यूह रचना करने वाले उस निडर व कुशाग्र बुद्वि वाले कमाण्डर से की जा सकती है, जो लड़ाकू फौज में प्रतिक्षण साहस, रणकौशल व उत्साह की भावना भरता रहता है।

शुम्पीटर के शब्दों में– ''स्थिर अर्थव्यवस्था में साहसी बहाव के साथ तैरता हैं, गतिशील अर्थव्यवस्था में उसे बहाव के विपरीत तैरना होता है। साहसी विकास मंच का नेता है अन्य उसके अनुगामी होते है। वह स्वाभिमानी तथा विवकेशील होता है। उसमें जूझने की प्रवृत्ति होती है। वह जीतने का संकल्प रखता है। और उसमें अपने आपको जीतने दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने की प्रबल इच्छा होती है। वह केवल लाभ के लिए ही जोखिम नहीं उठाता बल्कि सफलता प्राप्त करना भी उसका एक लक्ष्य होता है।

अभ्यास 2

रिक्त स्थान भरें–

i. आर्थिक विकास का कार्य .....करता है।

ii. शुम्पीटर का कहना है कि साहसी के संबंध में स्वामित्व नही बल्कि..... अधिक महत्वपूर्ण होता है।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

i. आर्थिक विकास का कार्य स्वतः नही होता बल्कि इस कार्य को विशेष प्रयास और जोखिम के साथ करना होता है–

1. पूंजीपति 2. उद्यमी 3.श्रमिक 4.एकाधिकारी

ii. शुम्पीटर मॉडल की मान्यताओं में नीहित है–

1.अर्थव्यवस्था पूर्ण प्रतियोगी है। 2.स्थिरावस्था साम्य है।

3.आर्थिक विकास नवप्रर्वतन पर निर्भर है। 4.उपर्युक्त सभी।

7.4.5 उद्यमी की भूमिका, तथा प्रेरित करने वाले तत्व

अब तक के अध्ययन से आप उद्यमी के भूमिका तथा कार्यों से परिचित हो गए है... अब आप उद्यमी की भूमिका को प्रेरित करने वाले तत्व के विषय में अध्ययन करेंगें। उद्यमी को मुख्य रूप से तीन बातें प्रेरित करती है :–

1. नवीन वाणिज्य साम्राज्य की स्थापना करने की लालसा।
2. अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने की इच्छा
3. अपनी शक्ति तथा प्रवीणता के प्रयोग करने की प्रसन्नता।

उद्यगी को अपना आर्थिक कार्य करने के लिए दो चीजों की आवश्यकता है।

प्रथम – नई वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान की उपलब्धता।

द्वितीय – ऋण के रूप में उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण की शक्ति अर्थात बैंक साख की सुविधा।

शुम्पीटर की धारणा थी की समाज में तकनीकी ज्ञान का एक ऐसा भंडार विद्यमान रहता है। जिसे अभी तक खोला नहीं गया है। और इसका प्रयोग पहले उद्यमी द्वारा किया जाता है। इस तरह, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विकास की दर समाज में तकनीकी ज्ञान भण्डार में परिवर्तन का फलन है। तकनीकी परिर्वतन की दर उद्यमियों के सक्रिय होने के स्तर पर निर्भर करती है और यह सक्रियता स्तर नये उद्यमियों के प्रकट होने तथा षाखा निर्माण की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है।

7.4.6 पूंजी, लाभ एंव व्याज –(Capital Profit and interest)

शुम्पीटर के अनुसार पूंजी केवल वह स्तर है जिसके द्वारा उद्यमी जिन वस्तुओं को चाहता है। उनको अपने नियंत्रण में रखता है। अन्य शब्दों में पूंजी उत्पादन के साधनों को नये प्रयोगो की ओर ले जाने अर्थात् उत्पादन को नया मोड़ देने का साधन हैं। उनके अनुसार लाभ लागतों का अन्तर है।

शुम्पीटर के अनुसार – प्रतियोगी संतुलन में प्रत्येक वस्तु की कीमत उसकी उत्पादन लागत के बराबर होती है। अतः लाभ नहीं उत्पन्न होते। नवप्रर्वतन से होने वाले गत्यात्मक परिवर्तनों के कारण लाभ उत्पन्न होते है। वे उतनी देर तक बने रहते है। जब तक कि नवप्रर्वतन सामान्य नहीं हो जाते। पूंजी और लाभ की तरह शुम्पीटर ब्याज को भी विकास की देन मानता है।

यह वर्तमान उपभोग का भविष्य के उपभोग पर अधिमान हैं। परन्तु लाभ की तरह यह विकास की सफलताओं का प्रतिफल नहीं है अर्थात् यह विकास की सफलताओं का प्रतिफल नहीं है बल्कि यह विकास पर रूकावट की तरह है। यह उद्यमीय लाभ पर एक कर की तरह हैं।

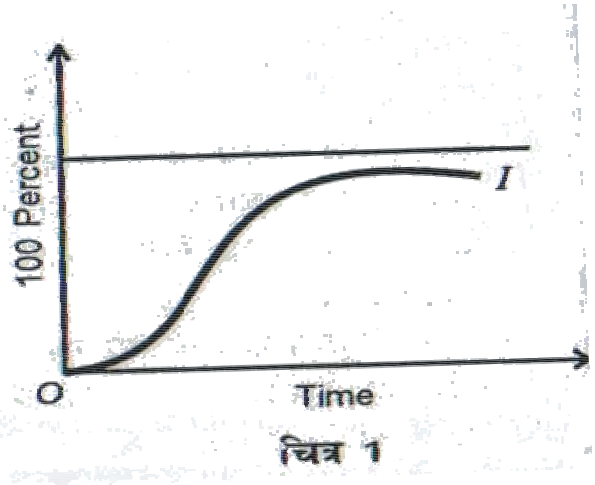

चित्र 1

वृत्तीय प्रवाह को तोड़ना – शुम्पीटर का मॉडल वृत्तीय प्रवाह को एक नवप्रवर्तन से भंग करने से प्रारम्भ होता है। जो एक उद्यमी लाभ कमाने के लिए

एक नई वस्तु के रूप में करता है। शुम्पीटर की धारणा के अनुसार चूकि एक पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों के नये व अच्छे संयोग की सम्भवनायें सदा विद्यमान रहती है। अतः साहसी इन लाभ सम्भावनाओं का फायदा उठाने के लिए नये प्रयोग अर्थात् नवप्रवर्तन करते है जिनके लिए बैंको से ऋण लिया जाता है। चूंकि नवप्रवर्तनों में निवेष में जोखिम होती है। अतः उन्हे ऋण पर ब्याज देना होगा। नवप्रवर्तन जब एक बार सफल हो जाता है। और लाभ देने लगता है तब अधिक संख्या में अन्य उद्यमी उसका अनुकरण करने लगते है। एक क्षेत्र में नवप्रवर्तन सम्बन्ध क्षेत्रों में नवप्रवर्तनों को प्रोत्साहन दे सकता है। मोटरकार उद्यमी प्रारम्भ होने के परिणाम स्वरूप सड़कों रबर टायरों तथा पेट्रोल इत्यादि के उत्पादन में नये निवेषों की लहर फैला सकता है। परन्तु एक नव प्रवर्तन कभी शत–प्रतिशत नहीं होता है। नवप्रवर्तन का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण –

रेखाचित्र में एक विषेष नवप्रवर्तन अपना रही फर्मों के प्रतिषत को अनुलम्ब अक्ष पर तथा समय को क्षतिज अक्ष पर प्रदार्षित किया गया है। वक्र प्रदार्षित करता है कि प्रारम्भ में फर्मे एक नवप्रवर्तन को धीरे–धीरे अपनाती है। षीघ्र नवप्रवर्तन अपना जोर पकड़ता है। परन्तु शत–प्रतिशत फर्मे इसे नहीं अपना पाती है।

7.4.7 पूंजीवादी विकास की चकीय प्रकिया

शुम्पीटर का विचार था कि नवप्रवर्तन हेतु जब बैंको से ऋण लिया जाता है। तो साख का विस्तार होता है। नवप्रवर्तन हेतु किये गये निवेष में वृद्धि से मौद्रिक आय और कीमतें बढ़ने लगती है। जो आगे चलकर समस्त अर्थ समस्याओं के संचयी विस्तार की दषाये उत्पन्न कर देती है। शुम्पीटर ने इस आर्थिक चेतना को उद्यमी ने नवप्रवर्तन की प्राथमिक लहर की संज्ञा दी है। बढ़ती हुई कीमतें लाभ को बढ़ाती है इससे उत्साहित होकर उद्यमी बैंको से ऋण लेकर निवेश को बढ़ाते है इससे उत्पादन का और अधिक विस्तार होता है लाभ की प्रवृत्तिया जहां से फर्म को प्रोत्साहन देती हे वहां आय व लाभ की सम्भावना नये विनियोगी को जम्न देने लगती है। फलस्वरूप बैंको से अधिक मात्रा में ऋण लिये जाते है। इससे साख– स्फीति की द्वितीयक लहर प्रेरित होती है। जो नवप्रवर्तन की प्राथमिक लहर पर अध्यारोपित हो जाती है। शुम्पीटर ने इसे समृद्वि की आवश्यक दर कहा है। कुछ समय पष्चात नई वस्तुयें बाजार में आना षुरू हो जाती है जो पुरानी वस्तुओं को विस्थापित करती है। और दिवालियापन पुनः समायोजन तथा खपत की प्रकिया शुरू होती है। बाजार में नई वस्तुओं तथा फर्म के प्रवेश से उत्पादन इकाईयों में परस्पर प्रतिस्पर्धा होती है। शुम्पीटर ने इसे सृजनात्मक विनाश की प्रकिया का प्रथम चरण कहा है। पुरानी वस्तुओं की मांग घट

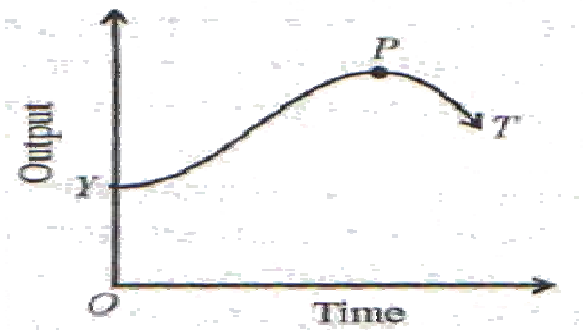

चित्र 2

जाती है। उनकी कीमते घट जाती है। लाभ के कम होने से पुरानी फर्मे जमा उद्यमी घटाती है और कुछ का तो दीवाला भी निकल जाता है। इस तरह नई फर्मो के सामने पुरानी फर्में बाजार में ठहर नहीं पाती। जब नवप्रवर्तक लाभों में से बैंक ऋण वापस करना शुरू कर देते है तो मुद्रा की मात्रा घट जाती है। और कीमते गिरने लगती है। लाभ कम हो जाते है अनिश्चितता तथा जोखिम बढ़ जाती हैं नवप्रवर्तक की प्ररेणा घटती है। और अन्त में समाप्त हो जाती है। असंतुलन एवं असामान्य की प्रक्रिया के फलस्वरूप बैंक अपना रूपया वापस लेने लगते है। जिससे मुद्रा विस्फीति की दषा उत्पन्न होती है। प्रवर्तन कियाओं से षिथिलता आती है। फलस्वरूप कीमतों व मौद्रिक आय में ह्रास होना शुरू हो जाता है। शुम्पीटर ने इस समस्या को प्रतिसार अवस्था कहा है। इस अवस्था के पश्चात नये सिरे से तथा नये ढ़ंग से नवप्रवर्तन किये जाते है। इससे नई तेजी प्रारम्भ हो जाती है। शुम्पीटर ने इसे पुनरूत्थान की अवस्था कहा है। इस तरह विकास की यह पूरी प्रक्रिया अपने को पूर्व की भॉति दोहराती है। और अंततः देष की आर्थिक प्रणाली पुनः साम्य की स्थिति प्राप्त कर लेती है मन्दी के बाद का यह संतुलन बिन्दु पुराने संतुलन बिन्दु से ऊॅचा होता है। शुम्पीटर के अनुसार – इस चक्रों की निष्चित अवधि नहीं होती और इन चक्रो को गम–खुषी के चक्र कहतें है।

शुम्पीटर के विकास प्रकिया का चित्र द्वारा प्रदर्शन– X **अक्ष पर समय तथा अनुलम्ब**(Y) अक्ष पर राष्ट्रीय उत्पादन दर्शाया गया है।

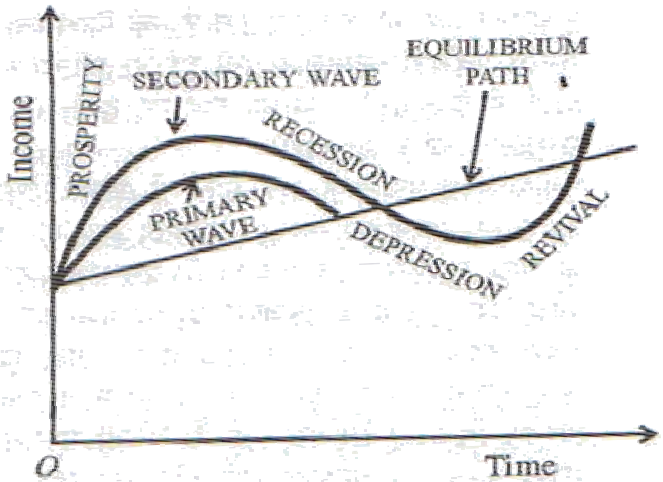

चित्र 3

वक्र YPT दीर्घकालीन चक्रीय उतार–चढावो को दर्शाता है जब एक नवप्रर्वतन होता है तो अर्थव्यवस्था वाई से ऊपर की ओर गति करती है। और वस्तुओं का उत्पादन बिन्दु P तक बढ़ता जाता है। कुछ समय पष्चात् जब यह नवप्रवर्तन समाप्त होना प्रारम्भ होता है। और नया नव प्रवर्तन इसका स्थान लेना शुरू कर देता है तो अर्थव्यवस्था P से खिसकर T पर आ जाती है। इस प्रकार सृजनात्मक विकास की प्रक्रिया के कारण अर्थव्यवस्था का नया संतुलन बिन्दु T पूर्व बिन्दु Y से ऊपर है। जो अर्थव्यवस्था के विकास को प्रदर्षित करता है। शुम्पीटर के आर्थिक विकास की समस्त चक्रीय प्रक्रिया को चित्र 03 में दिखाया गया है।

जहां नवप्रवर्तन की द्वितीयक लहर को प्राथमिक लहर पर अध्यारोपित किया गया है। अति आशावादिता और सट्टे से समृद्वि की अवस्था में विकास तीव्र गति से होता है। जब सुस्ती

प्रारम्भ होती है तो व्यापार चक्र संतुलन से नीचे मंदी की अवस्था में चलता है। अन्ततः एक अन्य नवप्रवर्तन आता है।

7.4.8 पूंजीवाद के विनाश की प्रकिया

शुम्पीटर के विश्लेषण में उद्यमी ही प्रमुख व्यक्ति है। वह आकास्मिक तथा असतत ढ़ग से आर्थिक विकास करते है। ''चक्रीय उतार–चढ़ाव पूंजीवाद के अन्तर्गत आर्थिक विकास की कीमत है। ''जो उसके गत्यात्मक समय मार्ग की स्थायी विषेषता है। दीर्घकाल में निरंतर प्रोद्योगिकीय प्रगति का परिणाम होगा कि कुल तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन में असीम वृद्धि हो जायेगी क्योंकि ऐतिहासिकता से प्रौद्योगिकीय प्रगति के घटते प्रतिफल नही होते। जब तक प्रौद्योगिकीय प्रगति होती रहेगी तब तक लाभों दर की धनात्मक रहेगी इसलिए न तो निवेश योग्य कोणों के श्रोत ही सूख सकते है। और न ही निवेष के अवसर ही समाप्त हो सकते है। परन्तु पुंजीवाद पद्वति के इस गुणगान का यह कदायि अर्थ नही है कि पुंजीवाद पद्वति को रहने दिया जाये, यह पद्वति मानव जाति के कन्धे से गरीबी का बोझ दूर नही कर सकती। इसलिए पूंजीवादी समाज में प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर कोई ऊंची सीमा नहीं होती है। फिर भी पूंजीवाद की आर्थिक सफलता का परिणाम अंत में उसकी तबाही होगी। पूंजीवाद के भविष्य पर अंतिम टिप्पणी देते हुये शुम्पीटर न लिखा था– ''क्या पूंजीवाद क्या रहेगा? नहीं, मै समझता हूँ कि वह बच नहीं पायेगा। उनके अनुसार– पूंजीवाद की सफलता ही , इन सामाजिक संस्थाओं की जड़ खोदती है। और उसकी रक्षा करती है, और अनिवार्य रूप से ऐसी परिस्थितिया उत्पन्न करती है, जिसमें पूंजीवाद नहीं जी सकता, और प्रबलता से समाजवाद के स्पष्ट वारिस होने का संकेत करता हैं'' कार्ल मार्क्स की ही भांति शुम्पीटर भी इस धारणा के समर्थक थे कि पूंजीवाद का अन्त सुनिष्चित है। अन्य शब्दों को पूंजीवाद व्यवस्था अपने विनाश की दशाये स्वयं उत्पन्न करती है।

शुम्पीटर ने पूंजीवाद के पतन के लिए तीन प्रमुख कारणों को उत्तरदायी बताया है।

2. उद्यमीय कार्य का ह्रास
3. बुर्जुआ परिवार का विखराव
4. पूंजीवादी समाज के संस्थानिक ढांचे का विघटन –

1. उद्यमी कार्य का महत्व समाप्त होना – प्रारम्भ में उद्यमी चक्रीय प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न करके विकास क्रम को चालू करता है लेकिन धीरे–धीरे चक्र एक प्रकार से दैनिक कार्य हो जाता है। बड़े–बड़े उद्योगों में यह उनकी कार्य प्रणाली का ही एक आवश्यक अंग हो जाता है और इस प्रकार के उद्यमियों को अलग से कोई विशिष्ट महत्व नहीं रह जाता है।

शुम्पीटर के शब्दों में – उद्यमियों के लिए कुछ भी करने को नहीं रह जाता लाभ गिरने लगता है। ब्याज शून्य हो जाता है उद्योग और व्यापार का प्रबन्ध एक सामान्य प्रशासन का रूप ले लेता है। और प्रबन्धक अन्ततोगत्वा नौकरशाही (मैनेजर) का रूप धारण कर लेते है।

2. बुर्जुआ परिवार का बिखरना – धीरे–धीरे बुर्जुआ परिवार बिखरने लगता है। तर्क और बुद्धिमान पारिवारिक जीवन में प्रवेश कर जाते है। परिवार का भी लाभ, लागत के अनुसार लोग विचार करते है। फलस्वरूप घर का विचार ध्वस्त हो जाता है। और इसमें संग्रह की प्रवृति नष्ट हो जाती है जो कि पूंजीवाद की प्रेरक शक्ति है।

3.पूंजीवादी समाज के संस्थानिक ढांचे का विघटन :– उद्यमी के न केवल आर्थिक तथा समाजिक कार्य समाप्त हो जाते है वरन् धन के एकत्रीकरण तथा बड़े–बड़े औद्योगिक संस्याओं के स्थापित हो जाने से निजी सम्पति तथा प्रसंविदा की स्वंतन्त्रता आदि महत्वहीन होने हो जाती है जो पूंजीवादी की प्रमुख संस्थायें है।

शुम्पीटर का कहना है– ''कि पूंजीवाद की मौत का घंटा बजाने के लिए उपर्युक्त षक्तिया ही काफी नहीं है पूंजीवाद एक ऐसे असंतुष्ट बुद्धिजीवी वर्ग को जन्म देता है। जो बेरोजगार हैं तथा जिसके पास विचार स्वतंन्त्रता जीवन के प्रति साहसी रहा है (नवप्रवर्तन) ये बुद्धिजीवी वर्तमान सामाजिक ढांचे के प्रति असंतोष को संगठित करके उसे नेतृत्व प्रदान करता है। जो पूंजीवाद की धारणा का विरोध करते है चूँकि बुद्धिजीवी स्वतः के संगठन द्वारा पूंजीवाद को समाप्त नहीं कर सकता अतः वह श्रमिको को संगठित करके इसका सहारा लेता है। धीरे–धीरे पूंजीवाद रूपी किला रक्षाहीन हो जाता है।

7.5 शुम्पीटर का सिद्धान्त तथा अल्प विकसित देश

अल्पविकसित देशों के साथ भी शुम्पीटर के सिद्धान्त की व्यवहार्थता सीमित है :–

1. **भिन्न सामाजिक आर्थिक व्यवस्था** :– शुम्पीटर का सिद्धान्त उस विशेष सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप है जो 18वीं तथा 19वीं, 21 षताब्दयों में अमेरिका तथा पष्चिमी यूरोप में वर्तमान थी। उस अवधि में वृद्धि की कुछ प्रत्याशंसाए पहले से विद्यमान थीं। परन्तु अल्पविकसित देषों में सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों बिल्कुल भिन्न होती है और सामाजिक एवं आर्थिक उपरिसुविधाओं के रूप में विकास की प्रत्याशंसाएं नहीं होती है। इस प्रकार उद्यमी के लिए प्रेरणा नहीं होती है।
2. **उद्यमता का अभाव** :– शुम्पीटर का विकास वर्ग के अस्तिव पर निर्भर करता है परन्तु अल्पविकसित देषों के आर्थिक विकास की बाधाओं में से एक यह हैं कि उनमें समुचित उद्यमता का अभाव होता है। ऐसे देशों में तकनीकी ज्ञान और लाभ की संभावनायें कम होने के कारण नये प्लांट एंव उपकरण में निवेश की प्रेरणा नहीं पाई जाती है। इसके अतिरिक्त पर्याप्त विद्युत, यातायात, प्रषिक्षित सेवावर्ग की कमी उद्यमी कार्य को हतोत्सहित करतीं है।
3. **सामाजवादी देशों पर लागू नहीं** – शुम्पीटर का विश्लेषण अधिकांश अल्पविकसित देशों पर व्यवहार्य नहीं है जिनकी प्रवृत्ति समाजवाद की और है। उदाहर के लिए सामजिक सुरक्षा के तरीकों का प्रवर्तन तथा उंचे आरोही आयकर उद्यमी वर्ग के विकास के षत्रु है क्यांकि वे लाभों को कम करते है।
4. **मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं पर लागू नहीं** – शुम्पीटर का नवप्रवर्तन निजी उद्यमी हैं जो आज की मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं के उपयुक्त नहीं है। अल्पविकसित देषों में सरकार

सबसे बड़ा उद्यमी होता है। विकास के लिए प्रमुख प्रेरणा सार्वजनिक तथा अर्द्ध सार्वजनिक क्षेत्रों से मिलती है। इस प्रकार शुम्पीटर का नवप्रवर्तक अल्पविकसित देशों में सीमित कार्य ही कर सकता है।

5. **नवप्रर्वतन नहीं बल्कि संस्थानिक परिर्वतन चाहिये–** विकास प्रक्रिया को षुरू करने और उसे आत्म निर्भर बनाने के लिए केवल नवप्रर्वतन ही नहीं बल्कि संगठनात्मक ढॉचों व्यापार प्रथओं कुषल श्रम तथा उचित मूल्यों, वृत्तियों और प्रेरणाओं जैसे अनके साधनों का संयोग आवष्यक होता है।
6. **नवप्रर्वतन नहीं उनका परिपाचन चाहिए :–** हैनरी बालिच के अनुसार – अल्पविकसित देषों में आर्थिक प्रक्रिया नवप्रर्वतन पर नहीं बल्कि वर्तमान नवप्रर्वतन की खपत पर आधारित होती है। क्योंकि अल्पविकसित देषों में उद्यमी नवप्रवर्तन करने की स्थिति में नहीं होते बल्कि वो उन्नत देषों में होने वाले नवप्रर्वतनों को अपनाते है।
7. **उपभोग की अवहेलना –** शुम्पीटर की प्रक्रिया उत्पादन की ओर झुकी है जबकि विकास प्रक्रिया उपयोग की ओर झुकी होती है। यह मूल्यांकन कल्याणकारी राज्य के प्रति वर्तमान समय के रूझान में लागू किया जाता है जिसमें मांग तथा उपभोग प्रमुख काम करते है। इसलिए शुम्पीटर का सिद्धान्त अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं होता है।
8. **बचतों की अवहेलना –** शुम्पीटर का बैंक ऋण पर एकमात्र बल निवेश में वास्तविक बचतों के भाग की अवहेलना कर देता है। यह आर्थिक विकास में घाटे के वित्त प्रबन्ध बजट की बचतों, सार्वजनिक ऋण तथा अन्य राजकोषीय तरीकों के महत्व को क्षति पहुंचाता है।
9. **बाहरी प्रभावों की अवहेलना करता है –** शुम्पीटर के अनुसार विकास उन प्रवर्तनों का परिणाम है जो अर्थव्यवस्था के अपने भीतर से उत्पन्न होते है। परन्तु अल्पविकसित देशों में परिवर्तन, अर्थव्यवस्था के भीतर से नही उत्पन्न होते बल्कि वे आयातित विचारों, औद्योगिकी तथा पूंजी का परिणाम होते है। अल्पविकसित देषों में पिछड़ी हुई प्रौद्योगिकी निम्न बचत संभाव्यता और पुरानी सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक संस्थाएं अर्थव्यवस्था के भीतर से विकास लाने की क्षमता नहीं रखती है।
10. **जनसंख्या तथा धन वृद्धि के प्रभाव की अवहेलना –** शुम्पीटर किसी देष के आर्थिक विकास पर जनसंख्या तथा धन की वृद्धि के प्रभाव को आंकने में असफल रहा। जनसंख्या वृद्वि की ऊंची दर विकासषील अर्थव्यवस्था की वृद्धि – दर घटा देती है। जबकि प्राकृतिक साधनों के नये श्रोत या उनका अधिक अच्छा प्रयोग विकास की गति को बढ़ा देता है।
11. **स्फीतिकारी शक्तियों का असन्तोषजनक विवेचन –** शुम्पीटर की पद्वति में विाफितिकारी प्ररेणाएं विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग होती है। परन्तु इनमें दीर्घकालीन स्फीति नहीं होती है। दीर्घकालीन कीमत स्तर स्थिर रहता है पर अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी षक्तियां बहुत प्रबल होती है। ''राजनैतिक तथा श्रमसंघ मार्गो के माध्यम

से सामाजिक मांग अर्थव्यवस्था से उतने की अपेक्षा अधिक खींच लेना चाहती है। जितना घरेलू उत्पादन तथा अन्तराष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से उससे प्राप्त किया जा सकता है। केवल विकास तथा सम्बन्ध निवेश नही नहीं बल्कि मांग अनुस्थापित अर्थव्यवस्था का समस्त सामाजिक वातारण ही स्फीतिकारी प्रवृत्तियों के लिए उत्तरदायी है।

7.6 शुम्पीटर के विकास मॉडल का अर्थव्यवस्था में महत्व

अब तक के अध्ययन से आप शुम्पीटर के विकास प्रक्रिया से भली प्रकार परिचित हो गए होगें अब हम शुम्पीटर मॉडल के महत्व का अध्ययन करेंगें–

शुम्पीटर का सिद्धान्त आर्थिक विकास के मुख्य साधन के रूप में स्फीतिकारी वित्त एंव नवप्रवर्तनों के महत्व को रेखाकित करता है। स्फीतिकारक वित्त व्यवस्था उन शाक्तिशाली ढ़गो में से एक मानी पाती है जिसे प्रत्येक अल्पविकसित देश किसी न किसी समय अपनाने का अवश्य प्रयास करता है। नवप्रवर्तनों से एक ओर उत्पादकता व दूसरी ओर से रोजगार में वृद्धि में होती है। यद्यपि यह पाश्चात्य पूंजीवाद की समस्याओं में सम्बन्ध रखता है। फिर भी जब एक बार औद्योगिकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये तो यह निश्चित रूप से उन समस्याओं की ओर संकेत दे सकता है कि व्यर्थ तथा अतिरिक्त कठिनाईयों से कैसे बचा पाये जो आयोजनाओं तथा असमन्वित विकास में रहती है। व्यापार चक्रों को पैदा करने के सम्बन्ध में शुम्पीटर नव प्रवर्तनों के महत्व पर प्रकाश डाला हैं

Benjamin Higgins, "Tautological though the theory may be, there can be little doubt of its relevance (To under developed countries)"

Henry c. Wallich – इन्होने अपने एक लेख ** Some Notes Towards a theory of Derived development" में शुम्पीटर मॉडल कर अध्ययन किया इनके अनुसार – 'It is full of internal unity'

7.7 शुम्पीटर के मॉडल का बेंजामिन हिगिन्स द्वारा प्रस्तुत समीकरणों की सहायता से स्पष्टीकरण

1- Producition function –

$$O = F (L, K, Q, T) \quad \text{------} \quad (1)$$

जिसमें O = उत्पादन स्तर, L = श्रम शक्ति के आकरर का, K = ज्ञात साधनों की पूर्ति को

Q = पूंजी की मात्रा का और, ज त्र तकनीकी स्तर को बतलाता है।

2. बचत, मजदूरी, लाभ और ब्याज दर पर निर्भर होती है। –

$$S = \Delta (W,R, r) \quad (2)$$

Where

S = Saving

W = Wage rate

R = Rate of profit

r = rate of intrest

3- कुल विनियोग को प्रेरित विनियोग तथा स्वतः विनियोग में बाटा जा सकता है।

$I = I_i + I_A$

I = Total investment

I_i = induced

I_A = Automous investment (Intrest)

2. प्रेरित विनियोग लाभ के स्तर तथा ब्याज की दर पर निर्भर होता है। –

$I_i = 1(R,r,Q)$ (4)

R = लाभ का स्तर, r = ब्याज की दर , Q = पूंजी का स्टॉक

6- स्वतः विनियोग साधनों की खोज तथा तकनीकी प्रगति पर निर्भर होता है –

$I_A = I_a(K,T)$ (5)

K = साधनों की खोज की दर

T = तकनीकी प्रगति की दर

7- तकनीकी प्रगति और साधनों की खोज की दर साहसियों की पूर्ति पर निर्भर होती है।

$T = T(E)$ (6)

$K = K(E)$ (7)

E = साहसियों की पूर्ति

8- साहसियों की पूर्ति लाभ की दर ;त्द्ध और सामाजिक वातावरण पर निर्भर करती है।

$E = E(R,X)$ (8)

9- कुल राष्ट्रीय उपज बचत और विनियोग के सम्बन्ध तथा अति गुणक पर निर्भर होती है।

$O = K(I-S)$ (9)

I = विनियोग

S = cpr

K = अति गुणक

10- मजदूरी बिल विनियोग के स्तर पर निर्भर होता है।

$W = W(I)$ (10)

11- सामाजिक वातावरण आय के वितरण से निर्धारित होता है।

$X = X(R/W)$ (11)

X = सामाजिक वातावरण

R = लाभ

W = मजदूरी

12- कुल राष्ट्रीय उपज लाभ तथा मजदूरी के बराबर होती है।

$$O = R+W \qquad (12)$$

7.8 शुम्पीटर के विकास प्रारूप की आलोचना

मॉयर तथा वाल्डविन के अनुसार–शुम्पीटर के सिद्धान्त को एक ऐसा प्रमुख कार्य कहना चाहिये जिसे निष्चय से स्मिथ, रिकार्डो मिल, मार्क्स, मार्शल तथा कीन्स जैसे अर्थशास्त्रियों के योग्य तथा समकक्ष माना जा सकता है। यह शानदार तर्क एक बड़े सैद्वान्तिक की अंतर्दृष्टि से आपूरित है। फिर भी वे इस सिद्वान्त की कटु आलोचनायें करते है।

1. **नवप्रवर्तन उद्यमी का कार्य नहीं** – शुम्पीटर के सिद्वान्त की समाप्त प्रकिया उद्यमी व नवप्रर्वतन पर आधारित है जिसे वह एक आर्दश व्यक्ति मानता है। यह भी 18वीं तथा 18वीं षताब्दी में सम्भवस्तः जब नवप्रर्वतक उद्यमी या अविष्कारों द्वारा किये जाते है। परन्तु वर्तमान में सभी प्रकार के नवप्रर्वतन कम्पनियों के कार्य क्रम का एक आय है। इनके लिए किसी विशेष प्रकार की व्यक्ति आवष्यकता नहीं समझा गया है।
2. **आर्थिक विकास के लिए चकीय प्रकिया आवश्यक नहीं** – शुम्पीटर के अनुसार – नवप्रवर्तनों से आर्थिक विकास चकीय प्रकिया में होता है। परतुं यह सही नही। आर्थिक विकास के लिए मंदी वेतन का चक्र आवश्यकता नहीं। इसका सम्बन्ध निंरतर परिवर्तनों से होता है। जैसा कि नर्कसे में कहा है।
3. **नवप्रवर्तन ही विकास का मुख्य कारण नही** – शुम्पीटर नवप्रवर्तन को ही विकास का मुख्य कारण मानता है परंतु यह वास्तविकता से दूर है, क्योंकि आर्थिक विकास केवल नवप्रवर्तनों पर निर्भर नहीं करता बल्कि कई अन्य आर्थिक एवं सामाजिक तत्वों पर निर्भर करता है।
4. **चर्कीय परिवर्तन नवप्रवर्तनों के कारण नहीं** :– फिर मंदी व तेजी नवप्रवर्तनों के ही कारण नहीं होती इसके कई मनोविज्ञानिक, प्राकृतिक, वित्तिय आदि कारण भी होते है।
5. **बैंक साख को अधिक महत्व** :– शुम्पीटर पूंजी निर्माण में बैंक साख को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है। बड़े–बड़े औद्योगिक संस्थान अल्पकाल में तो बैंक से साख ऋण प्राप्त कर सकते है। परन्तु दीर्घकालीन नवप्रवर्तनों के लिए जिसमें पूंजी की अधिक आवश्यकता होती है। बैंक ऋण अपर्याप्त होते है। इसके लिए ऋण पत्र तथा नये शेयरो को बेचकर ही पूंजी प्राप्त की जा सकती है।
6. **पूंजीवाद से समाजवाद की प्रकिया सही नही** – शुम्पीटर का पूंजीवादी से समाजवादाकी ओर जाने का विश्लेषण सही नहीं, वह इस बात का विश्लेषण नहीं करता कि पूंजीवाद समाज समाजवाद की ओर कैसे अग्रसर होता है। वह केवल यह बताता है कि उद्यमी के कार्यो में परिवर्तन होने से पूंजीवादी समाज का संस्थानिक ढांचा परिवर्तित हो रहा है। उसका पूंजीवाद के नाष का विष्लेषण भावुक है। न कि वास्तवकि। अन्त में, मायर तथा बाल्डविन के शब्दों में– ''शुम्पीटर विकास का बृहत सामाजिक आर्थिक विश्लेषण किया हैं उसकी सर्वत्र प्रशंसा की जाती है परंतु बहुत कम लोग उसके निष्कर्णो को स्वीकार करने के लिए तैयार है। उसका तर्क उत्तेजक

है उसका विश्लेषण उछयिक है पर वह पूर्ण रूपेण विश्वनीय नहीं है। उसका विश्लेषण एकतरफा है तथा उसने कई बातों पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया। ''

अभ्यास 3

रिक्त स्थान की पूर्ति करिए–

i. शुम्पीटर ने पूंजीवाद के पतन के लिए..... प्रमुख कारणों को उत्तरदायी बताया है।

ii. पूंजीवाद के पतन का अन्तिम कारण ..... है।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

i. पूंजीवाद के पतन का कारण नही है–

1.व्यापार चक्र में तेजी।

2.उद्यमी कार्य का समाप्त होना।

3.बुर्जुआ परिवार का बिखरना ।

4.पूंजीवादी समाज के संस्थानिक ढांचे का विघटन ।

ii. अल्पविकसित देशों के साथ शुम्पीटर का सिद्वान्त हैं–

1.भिन्न सामाजिक आर्थिक व्यवस्था ।

2.उद्यमता का अभाव।

3.उपभोग की अवहेलना।

4.उपर्युक्त सभी।

1- सत्य/असत्य बताइए–

i. नवप्रवर्तन से एक ओर उत्पादकता तथा दूसरी ओर रोजगार में वृद्वि होती है। (सत्य/असत्य)

ii. व्यापार चक्रों को पैदा करने के सन्दर्भ में शुम्पीटर नें श्रमिकों को महत्वपूर्ण होता है। (सत्य/असत्य)

अतिलघु उत्तरीय

i. शुम्पीटर का विकास प्रारूप किस किस पुस्तक में प्रकाशित हुआ?

ii. शुम्पीटर ने आर्थिक विकास का प्रमुख कारण किये माना है?

iii. शुम्पीटर के विकास प्रारूप में व्यापार चक्र का प्रमुख कारण क्या है।

iv. पूंजीवाद के नाश के तीन प्रमुख कारण क्या है।

v. पूंजीवाद के विनाश के बाद किस बाद की शुरूआत की बात कहीं है।

7.9 सारांश

शुम्पीटर के विकास प्रारूप का अध्ययन करने के पश्चात् आप स्पष्ट रूप से इस बात से परिचित हो गए हैं कि शुम्पीटर एक ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना करते है जो स्थिर संतुलन में हैं। अर्थात् जहॉ पूर्ण प्रतियोगी संतुलन होता है, जहॉ न कोई लाभ न कोई बचत की दर और न कोई निवेश होते हैं, और न ही कोई अनैच्छिक बेरोजगारी होती है।

इसे शुम्पीटर ने वृत्तिय प्रवाह की संज्ञा दी है। शुम्पीटर कहते हैं कि कोई भी परिवर्तन बाहर से नही होता है बल्कि स्वयंभूत प्रेरणाओं से उत्पन्न होता है।

शुम्पीटर ने अपने प्रारूप में स्पष्ट रूप से बताया है कि आर्थिक विकास एक असतत् प्रकिया है, अर्थात संतुलन की ऐसी हलचल है जो पूर्व स्थापित साम्य की स्थिति को सदा के लिए बदल देती है, और यह हलचल या बाधा नवप्रवर्तन के रूप में उत्पन्न होती है।

आप नवप्रवर्तनों की भूमिका से भली प्रकार से परिचित हैं और यह ठीक प्रकार से जानते हैं कि शुम्पीटर ने नवप्रर्वतनों के किन –किन कारणों को बताया है, जैसे–नई वस्तु का प्रचलन, उत्पादन की नई विधि का प्रचलन, नए बाजार खोजना आदि।

इस प्रकार शुम्पीटर ने अपने विकास प्रारूप में उपक्रमी की भूमिका तथा उसे प्रोत्साहित करने वाले श्रोतो का भी वर्णन किया है।उनके अनुसार–"विकास की दर समाज में तकनीकी ज्ञान के भण्डार में परिवर्तन का फलन है। तकनीकी परिवर्तन की दर उद्यमियों के सक्रिय होने के स्तर पर निर्भर करती है, और यह सक्रियता स्तर नए उद्यमियों के प्रकट होने तथा साख निर्माण की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है।"

शुम्पीटर ने अपने प्रारूप में साख के महत्व को भी बताया है। आप जानते हैं कि शुम्पीटर अपने विकास प्रारूप में पूँजीवाद के विकास प्रक्रिया को तीन अवस्थाओं में बताते हैं। और इस प्रक्रिया के बाद शुम्पीटर ने पूँजीवाद के विनाश की भी बात कही है।शुम्पीटर के शब्दों में–"पूँजीवाद का अन्त सुनिश्चित है, जिसके पश्चात् समाजवाद का जन्म होना अनिवार्य है।"

7.8 शब्दावली

1. **वृद्धि** – वृद्धि से तात्पर्य कुछ समयावधि में पहले समयावधि की तुलना में उत्पादन में हुई मात्रा वृद्धि से हैं। वृद्धि विकसित देशों से सम्बन्धित है। यह नियमित घटनाओं का परिणाम है। तथा स्थैतिक साम्य से सम्बन्धित है। संवृद्धि से अर्थ, अधिक उत्पादन से है। यहे स्वाभाविक कृमिक व स्थिर गतिवाला परिवर्तन होता है।
2. **विकास** – विकास एक व्यापक संकल्पना है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थ व्यवस्था की राष्ट्रीय आय व प्रतिव्यक्ति आय में निरंतर व दीर्घकालीन वृद्धि होती है। आर्थिक विकास, अधिकउत्पादन, नवीन तकनीक व संस्थागत सुधारों के समन्वय से है। यह प्रेरित एंव असतत् प्रकृति का परिवर्तन होता है। विकास के लिए संरचनात्मक परिवर्तनों का होना आवष्यक है। रिचर्डसन के अनुसार – ''आर्थिक विकास से तार्त्पय वस्तुओं एवं सेवाओं को अधिक से अधिक मात्रा में उपलब्ध करने से है जिसमें की जनसामान्य के भौतिक कल्याण में निरंतर एवं दीर्घकालीन वृद्धि हो सके।''

3. **वृत्तीय प्रवाह** – शुम्पीटर ने अपने विकास मॉडल में वृत्तीय प्रवाह का महत्वपूर्ण माना है यह एक क्रम में चलता रहता है। और यह नवप्रवर्तनों के कारण भंय होता है।
4. **नवप्रवर्तन** :– नवप्रवर्तन से तार्त्पय विकास धीरे–धीरे न होकर एक साथ बड़े प्रयत्न के कारण होता है। नवीन प्रवर्तनों से प्रेरित होकर अन्य विनियोजक भी प्रोत्साहित सट्टे की क्रियाओं को बढाते है। पूंजीगत उद्योगों का विकास होता है। प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि होकर लाभ की सम्भावनाये बढती है।
5. **पूंजीवाद** – पूंजीपति वह व्यक्ति होता है जो आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में निवेश

करने का साहस रखता है। एक प्रकार से पूंजीपति नवप्रवर्तनों के लिए मार्ग दर्शक होता है।

6. **सृजनात्मक विनाश** – शुम्पीटर के अनुसार जो नवप्रवर्तन होता है। वह चक्रीय प्रक्रिया से होता है। और सृजनात्मक विनाश की प्रक्रिया शुरू होती है। जब नई वस्तुयें बाजार में आना शुरू होती है जो पुरानी वस्तुओं को विस्थापित करती है। बाजार में नई वस्तुओं के प्रयोग से उत्पादन इकाईयों में परस्पर प्रतिस्पर्धा होती है जिसे सृजनात्मक विनाष की प्रक्रिया का प्रथम चरण कहा है।
7. **मंदी** – मंदी से तात्पर्य मुद्रा विस्फीति से है शुम्पीटर के विकास प्रारूप में मंदी की स्थिति तब दृष्टिगोचर होती है। जब बैंक अपना रूपया वापस लेने लगती है। फलस्वरूप कीमतों व मौद्रिक आय में ह्रास होना शुरू हो जाता है।
8. **पुनरूत्थान** – पुनरूत्थान से तात्पर्य नई तेजी से है। मंदी की स्थिति के बाद जब अर्थव्यवस्था इस दुष्चक्र से धीरे–धीरे निकलने का प्रयास करती है। तो यह पुनरूत्थान की अवस्था कहलाती है।
9. **स्फीति** – स्फीति से तार्त्पय तेजी से है स्फीति मंदी से विपरीत स्थिति है। स्फीति की स्थिति में मुद्रा का मूल्य दिए रहा होता है। तथा कीमतों में तेजी से वृद्धि होती है। इसमें अर्थव्यवस्था का तेजी का समय भी कहा जाता है।
10. **अल्पविकसित देश** – अल्पविकसित देश से तात्पर्य उन देशों से है जो विकास के स्तर पर नहीं पहुंच पाये है। और पिछड़े हुये है। अधिक जनसंख्या, बेरोजगारी आदि मूल्य विकसित देशों में सर्वाधिक पाये जाते है।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1

रिक्त स्थान भरो–(i) 1911 **(ii)** निराशावादिता। **(iii)** आशावादी। **(iv)** नवप्रवर्तन।–**(v)** . सरिता। **(vi)** .जोखिम। **(vii)** नवप्रवर्तन।

1.सत्य / असत्य बताइए– (i) असत्य। **(ii)** सत्य। **(iii)** असत्य।

अभ्यास 2

1.बहुविकल्पीय प्रश्न– (i) उद्यमी। **(ii)** उपर्युक्त सभी।

अभ्यास 3

रिक्त स्थान भरो– (i) तीन। **(ii)** पूंजीवादी समाज के संस्थानिक ढॉचे का विघटन ।
2–बहुविकल्पीय प्रश्न– (i) व्यापार चक्र में तेजी। **(ii)** उपर्युक्त सभी।
3.सत्य/ असत्य बताइए– (i) सत्य । **(ii)** असत्य।
अतिलघु उत्तरीय
(i) 'The Theory of economic development' **(ii)** नवप्रवर्तन।**(iii)** नवप्रवर्तन।
(iv) (1) उद्यमीय कार्य का हास। (2) बुर्जुआ परिवार का विखराव।
(3) पूंजीवादी समाज के संस्थानिक ढांचे का विघटन।**(v)** समाजवाद।

7.10 सन्र्दभ सहित ग्रन्थ –

1. कुलवन्त राय गुप्त 2009–विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन इतिहास, सिद्धान्त।
2. टी0 आर0 जैन, वी0 के0 ओरी–2006–07 ''डेवलेपमेन्ट इकोनोमिक्स'' वी0 के0 पब्लिकेशन।
3. Development Studies, Vols 1 &2, Ed. Robin Gnosh, K.R. Gupta a and Premjit Malti.
4. Kenneth K. Kurihava, the Keynesion theory of Economic Development (London-1961) P. 79-80.

7.11 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

1. अग्रवाल ए0एन0, (2006) ''इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)'' आशीष पब्लिशिंग हाऊस, सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
3. एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
4. धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) आर्थिक विकास के सम्बन्ध में शुम्पीटर के मत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?
(2) शुम्पीटर के मत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये कि आर्थिक विकास आर्थिक जीवन के वृत्तीय प्रवाह की दिशाओं में आकस्मिक तथा असतत् परिवर्तन है की दिशाओं में जो पहले की विद्यमान संतुलन स्थिति को सदा के लिए परिवर्तित तथा विस्थापित कर देता है?
(3) शुम्पीटर का आर्थिक विकास का सिद्धान्त स्पष्ट कीजिऐ। अल्पविसिति देशों के योजनावद्ध विकास में यह कहां तक लागू होता है?
(4) शुम्पीटर के आर्थिक विकास के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिऐ और इसकी सीमाऐं बताइये?

इकाई 8– हैरोड–डोमर का विकास प्रारूप

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 हैरोड का विकास प्रारूप

8.3.1 हैराड का विकास प्रारुप की मान्यताए

8.3.2 वास्तविक वृद्धि दर

8.3.3 अभीष्ट या आवश्यक वृद्धि दर

8.3.4 हैरोड वृद्धि मार्ग

8.3.5 दीर्घकालीन असन्तुलनों का मूलरूप

8.3.6 सहज या प्राकृतिक वृद्धि दर

8.3.7 G, Gw एवं Gn का विचलन

8.4 डोमर का विकास प्रारूप

8.4.1डोमर के विकास प्रारुप की मान्यताएं

8.4.2 पूर्ति पक्ष

8.4.2 मॉग पक्ष

8.4.3 संतुलन

8.6 हैरॅड तथा डोमर प्रारुपो का तुलनात्मक अध्ययन

8.6.1 हैरॅड तथा डोमर प्रारुप की समानताएँ

8.6.2 हैरॅड तथा डोमर प्रारुप की असमानताएँ

8.7 सारांश

8.8 शब्दावली

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के प्रारुप से सम्बन्धित यह आठवीं इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि आर्थिक विकास क्या है ,आर्थिक विकास का मापन की विधियॉ कौन–2 सी है। आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित विकास प्रारूप एवं मार्क्स का विकास प्रारुप क्या है।

इस इकाई में हैरोड–डोमर के विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है कि हैरोड–डोमर के विकास प्रारुप कौन–2 से है, इसके अर्न्तगत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है।इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में हैरोड–डोमर के विकास प्रारुप के द्वारा विकासशील अर्थव्यवस्था में सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हैरोड–डोमर के विकास प्रारुप के महत्व को समझा सकेगें, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके विभिन्न प्रारुपों का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हैरोड के विकास प्रारुप की प्रमुख मान्यतॉओं को जान सकेगें।
- हैरोड का विकास प्रारुप को समझ सकेंगे।
- डोमर के विकास प्रारुप की प्रमुख मान्यतॉओं को जान सकेगें।
- डोमर के विकास प्रारुप को समझ सकेंगे।

8.3 हैरोड का विकास प्रारूप

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने पूँजी संचय के क्षमता वृद्धि पक्ष पर अधिक जोर दिया था और उसके माँग पक्ष की अवहेलना की थी। इसके विपरीत कीन्सवादियों ने पूँजी संचय के "आय– वृद्धि पक्ष पर अधिक जोर दिया और उसके क्षमता वृद्धि पक्ष को भुला दिया।" हैरोड डोमर ने इन दोनों घरानों की भूल को सुधारते हुये निवेश प्रक्रिया के दोनों पक्षों को मिला दिया है और इस प्रकार यह उनके मॉडल की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है।

हैरोड तथा डोमर ने भी आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में निवेश को प्रमुख स्थान दिया है, विशेष रुप से उसकी द्वैत प्रकृति को एक तरफ निवेश आय में वृद्धि करता है, तो दूसरी तरफ अर्थव्यवस्था के पूँजीगत स्टॉक को बढ़ाकर उसकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि कर देता है। पहले को निवेश का माँग प्रभाव और दूसरे को पूर्ति प्रभाव कहा जा सकता है। इसलिए एक अर्थव्यवस्था में जब तक निवेश बढ़ता रहेगा, तब तक वास्तविक आय तथा उत्पादन का विस्तार होता रहेगा।

सर रॉय एफ हैरोड ने गतिशील अर्थशास्त्र को सन् 1939 में एक नया मोड दिया जबकि उनका लेख "An Essay on Dynamic Theory" का प्रकाशन ब्रिटेन में

'Economic Journal' में हुआ। हैरोड ने इसी विषय लन्दन विश्वविद्यालय में सन् 1947 में एक भाषण माला भी दी जो सन् 1948 में Towards A Dynamic Journal के शीषर्क से प्रकाशित हुई इन भाषणों में तीसरे भाषण का शीर्षक 'Fundamental Dynamic Thermos' था। इसी भाषण में हैरोड के विकास प्रारुप का प्रारूप दिया है।

8.3.1 हैराड का विकास प्रारुप की मान्यताएं

हैराड का विकास प्रारुप की प्रमुख मान्यताएं निम्नवत है–

1) समाज में अपेक्षित बचत (Intended extant Savings) तथा वास्तविक बचत बराबर होती है। अर्थात औसत बचत प्रवृत्ति ; ।च्द्धए सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) के बराबर होता है। APS=MPS

2) अर्थव्यवस्था में अपेक्षित निवेश तथा वास्तविक निवेश भी बराबर होते है ।

अर्थात $\mathbf{S = I}$

3) उत्पादन का उद्देश्य साम्य की स्थिति को प्राप्त करना।

4) विनियोग की दर उत्पादन व आय वृद्धि की दर पर निर्भर करती है।

5) अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार विद्यमान है।

6) मूल्य–स्तर तथा ब्याज की दर में कोई परिवर्तन नहीं होता और पूँजी श्रम अनुपात तथा पूँजी उत्पादन अनुपात भी यथा स्थिर है।

7) राज्य हस्तक्षेप का अभाव है।

8) पूँजी गुणाँक ;ब्ंचपजंस ब्वमपिबपमदजद्ध अर्थात पूँजीगत स्टॉक का आय से अनुपात स्थिर मान लिया गया है।

9) पूँजीगत वस्तुओं का मूल्य ह्रास नहीं होता है।

हैरोड ने अपना विकास प्रारुप तीन प्रकार की वृद्धि दरों पर आधारित किया है।

8.3.2 वास्तविक वृद्धि दर

वास्तविक वृद्धि दर (G) वह दर है जिस दर पर देश विकास कर रहा है। इस दर को बचत अनुपात तथा पूँजी उत्पाद अनुपात (COR) निर्धारित करते है और यह दर अल्पकालिक चक्रीय परिवर्तनों को प्रकट करती है समीकरण रुप में

$$\mathbf{GC = S}$$

G = आय की वृद्धि दर अर्थात $\Delta y/y$, C = पूँजी में किया गया शुद्ध योग है अर्थात पूँजी उत्पाद अनुपात अर्थात $C = I/\Delta y$, S = औसत बचत प्रवृति अर्थात

$$\mathbf{S = S/Y}$$

$$\mathbf{s/Y = \Delta Y/Y \times I/\Delta Y}$$ या

$$\mathbf{I/Y = S/Y}$$ या

$$S = I$$

वास्तविक बचतें = वास्तविक निवेश

उपरोक्त सम्बन्ध को आय का व्यवहार स्पष्ट करता है। बचत (S) आय पर निर्भर करती है, निवेश (I) आय में वृद्धि (ΔY) पर निर्भर होता है अर्थात एक प्रकार से यह त्वरण सिद्धान्त है।

8.3.3 अभीष्ट या आवश्यक वृद्धि दर

हैरोड के शब्दो में, " आवश्यक वृद्धि दर (GW) विकास की वह दर होती है जिसे यदि प्राप्त कर लिया जाये तो उद्यमी ऐसी मानसिक स्थिति में होते है कि वे इसी प्रकार से विकास करते रहने के लिए प्रेरित होगें।

समीकरण रूप में इस प्रकार व्यक्त है

$$GwCr = S \text{ या } Gw = S/Cr$$

Gw = आवश्यक वृद्धि दर, S = सीमान्त बचत प्रवृति (MPS)

Cr = पूँजीगत आवश्यकताऐं (Capital requirement)

अर्थात Gw को बनाए रखने के लिए आवश्यक पूँजी की मात्रा अर्थात आवश्यक पूँजी उत्पाद– अनुपात यह $I/\Delta Y$ का मूल्य है।

पूर्ण रोजगार संतुलन वृद्धि के लिए G वास्तविक वृद्धि दर अभीष्ट वृद्धि दर अथवा पूर्ण क्षमता वृद्धि दर Gw के बराबर होनी चाहिए जो अर्थव्यवस्था को सतत् उन्नति दे सकेगी और C वास्तविक पूँजी वस्तुएँ Cr सतत् वृद्धि के आवश्यक पूँजी वस्तुए बराबर होनी चाहिए।

8.3.4 हैरोड वृद्धि मार्ग

हैरोड वृद्धि पथ को रेखाचित्र 1 से दिखाया गया है जिसमें क्षैतिज आय को लम्ब आय बचत एवं निवेश को प्रकट करता है। निवेश मात्रा के मूल्य पर निर्भर करती है।

इसे रेखाचित्र में ब्त द्वारा प्रकट किया गया है समान्तर रेखाएं Y_1Cr_1, Y_2Cr_2 व Y_3Cr_3 स्थिर पूँजी अनुपात को बता रही है। आय में Y_1 से Y_2 परिवर्तन होने से प्रेरित निवेश I_2Y_2 जो कि S_1Y_1 बचत के समान है इस स्तर पर उत्पादन में वृद्धि दर Y_2-Y_1/Y_1 के समान है। I_2 निवेश आय को बढ़ाकर Y_3 पर ले जाता है और उत्पादन में वृद्धि दर Y_3 - Y_2 /Y_2 के समान है इसी प्रकार I_3 निवेश आय को बढ़ाकर Y_4 के स्तर पर लाती है अतः अर्थव्यवस्था एक समान वृद्धि दर से बढ़ती है।

रेखाचित्र 1

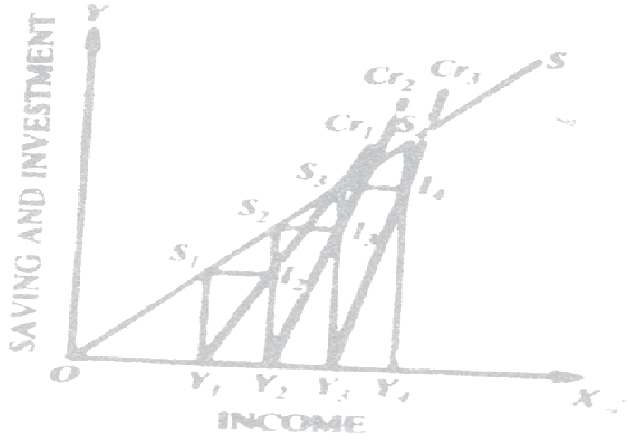

$$Y_2 - Y_1 / Y_1 = Y_3 - Y_2 / Y_2 = Y_4 - Y_3 / Y_3$$

8.3.5 दीर्घकालीन असन्तुलनों का मूलरूप

यदि G और Gw बराबर नहीं है तो अर्थव्यवस्था असन्तुलन में रहेगी। यदि Gw से G बढ़ जाएगा G> Gw तो Cr से C कम होगा (C < Cr) तो दीर्घकालीन स्फीति होगी। इसे रेखाचित्र 2(A) में दर्शाया गया है। आय की दर अनुलम्ब अक्ष पर तथा समय क्षैतिज अक्ष पर दिया गया है। आय के प्राप्त पूर्ण रोजगार स्तर ल्व से शुरू करते है वास्तविक वृद्धि दर G बिन्दु E तक अभष्टि वृद्धि पर Gw के साथ t_1 समय पर्यन्त चलती है t_2 समय पश्चात दीर्घकालीन स्फीति में ले जाता है। दूसरी ओर यदि Gw से कम G है तो Cr से C अधिक होगा। ऐसी स्थिति दीर्घकालीन मंदी लाती है क्योंकि उत्पादन, रोजगार और आय में कमी होगी रेखाचित्र 2 (B) में इसे दर्शाया गया है जब t_2 समय के पश्चात Gw से G नीचे गिरती है और दोनों एक दूसरे से दूर होते जाते है। **रेखाचित्र 2**

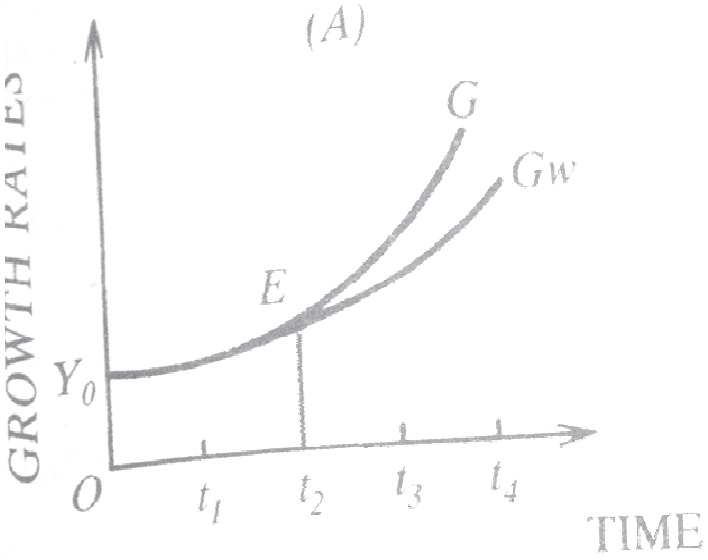

अतः G और Gw में संतुलन छुरी धार संतुलन (Knife edge equilibrium) है। क्योंकि एकबार भंग होने पर स्वयं सन्तुलन में नहीं आता अतः दीर्घकालीन स्थिरता के लिए G तथा Gw को इक्टठे् रखा जाए इस उद्देश्य के लिए हैरोड ने तीसरा समीकरण प्रस्तुत किया है।

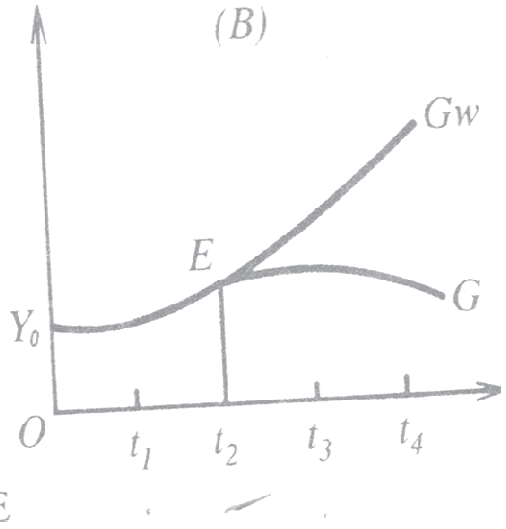

8.3.6 सहज या प्राकृतिक वृद्धि दर

इसे वृद्धि की पूर्ण रोजगार दर या वृद्धि की सामान्य दर भी कहा जाता है यह दर देश के प्राकृतिक साधनों श्रम की उपलब्ध मात्रा तथा तकनीकी उन्नति आदि घटकों पर निर्भर करती है। चूँकि ये घटक परिवर्तनशील है अतः Gn , S के बराबर हो भी सकती है और नहीं भी अर्थात्

GnCr = S or

GnCr ≠ S

8.3.7 G, Gw एवं Gn का विचलन

पूर्ण रोजगार सन्तुलन = Gn = Gw = G जो कि एक छुरी धार संतुलन है। यदि तीनों में कोई विचलन होगा तो अर्थव्यवस्था तो दीर्घकालीन स्थिरता अथवा स्फीति की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जायेगी। यदि G > Gw हो तो निवेश बचत की अपेक्षा तीव्रता से वृद्धि होती है और आय में Gw की अपेक्षा तीव्र वृद्धि होगी यदि G < Gw तो विलोमश स्थिति होगी। हैरोड के अनुसार यदि Gw > Gn हो तो दीर्घकालीन मंदी पैदा हो जायेगी। ऐसी स्थिति में G से Gw द्वारा लगाई जाती है।

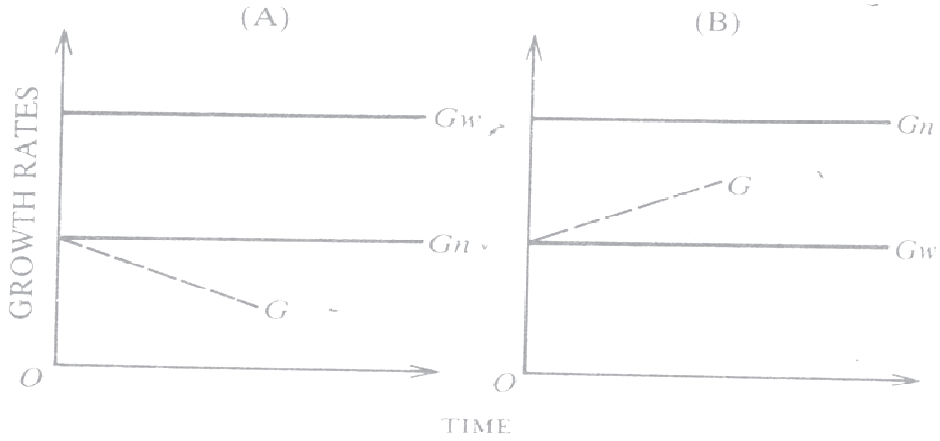

रेखाचित्र 3

जैसाकि रेखाचित्र 3 (A) में दिखाया गया है। ळद से ळू अधिक होती है। यदि Gw < Gn हो तो G से Gw नीचे होगा जैसा रेखाचित्र 3 (B) में दिखाया गया है। अब अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन स्फीति होगी। तथा C < Cr श्रम की अधिकता पूँजी की कमी लाभ अधिक होता है।

8.4 डोमर का विकास प्रारूप

ईब्स डोमर ने सन् 1946 में अपनी पुस्तक Essay in the theory of Economy Growth में एक अध्याय Capital Expansion Rate of growth and employment के अर्न्तगत अपने विकास प्रारुप का प्रतिपादन किया

डोमर के विकास प्रारुप की मान्यताएं भी हैरोड के प्रारुप के समान है इन्होंने कहाँ कि निवेश एक ओर तो आय को उत्पन्न करता है और दूसरी ओर उत्पादक क्षमता बढ़ाता है इसलिए उत्पादक क्षमता में वृद्धि को आय में वृद्धि के बराबर करने के लिए निवेश किस दर से बढ़े ताकि पूरा रोजगार बना रहे वह निवेश के माध्यम से कुल पूर्ति तथा कुल माँग के बीच संबध स्थापित करके इस प्रश्न का उत्तर देता है।

8.4.1 डोमर के विकास प्रारुप की मान्यताएं

डोमर का विकास प्रारुप की प्रमुख मान्यताएं निम्नवत हैः–

1) समाज में अपेक्षित बचत (Intended extant Savings) तथा वास्तविक बचत बराबर होती है। अर्थात औसत बचत प्रवृत्ति (APS), सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) के बराबर होता है।

2) अर्थव्यवस्था में अपेक्षित निवेश तथा वास्तविक निवेश भी बराबर होते है ।

अर्थात S = I

3) उत्पादन का उद्देश्य साम्य की स्थिति को प्राप्त करना।

4) विनियोग की दर उत्पादन व आय वृद्धि की दर पर निर्भर करती है।

5) अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार विद्यमान है।

6) मूल्य–स्तर तथा ब्याज की दर में कोई परिवर्तन नहीं होता और पूँजी श्रम अनुपात तथा पूँजी उत्पादन अनुपात भी यथा स्थिर है।

7) राज्य हस्तक्षेप का अभाव है।

8) पूँजी गुणाँक (Capital Coefficient) अर्थात पूँजीगत स्टॉक का आय से अनुपात स्थिर मान लिया गया है।

9) पूँजीगत वस्तुओं का मूल्य ह्रास नहीं होता है।

8.4.2 पूर्ति पक्ष

डोमर ने पूर्ति पक्ष को इस प्रकार सपष्ट किया है कि मान लीजिए निवेश की वार्षिक आय I है और नयी पूँजी (मशीन) की उत्पादन क्षमता S के बराबर है। तब I डालर से उत्पादन क्षमता IS डालर वार्षिक होगी। लेकिन यदि नयी पूँजी का उपयोग पुरानी मशीनों के

स्थान पर किया जाए तो वार्षिक उत्पादन क्षमता IS से कम होगी। डोमर इसे **I σ** से प्रदर्शित करता है।

दूसरे शब्दों में **ΔY = I σ**

जबकि निवेश की औसत उत्पादकता **σ = ΔY/I, I σ** को सिग्मा प्रभाव भी कहते है

8.4.3 माँग पक्ष

इसकी व्याख्या केन्ज की गुणक प्रक्रिया से करता है। मान लीजिए राष्ट्रीय आय में वार्षिक वृद्धि **ΔY** होगी, वह निवेश में वृद्धि **ΔI** की 1/ α गुणा होगी

$$\mathbf{I = \alpha Y}$$

अथवा $\mathbf{1/\alpha = Y}$

$$\mathbf{Y = 1/\alpha}$$

दूसरे शब्दों में

$$\mathbf{\Delta Y = \Delta I}\ 1/\alpha$$

8.4.4 संतुलन

आय का पूर्ण रोजगार संतुलन बनाए रखने के लिए कुल माँग एवं कुल पूर्ति के बराबर रहना चाहिए। समी. (1) और (2) को बराबर रखने पर

$$\mathbf{\Delta I/\alpha = I\sigma}$$ **अर्थात**

$$\mathbf{\Delta I/I = \alpha\sigma} \text{ ----------(3)}$$

समी. (3) से स्पष्ट है कि यदि हम पूर्ण रोजगार बनाये रखना चाहते है तब $\Delta^{ष्प}$ शुद्ध स्वायत्त निवेश की वृद्धि दर α σ के बराबर होनी चाहिए इसका स्पष्टीकरण एक उदाहरण द्वारा दिया है। मान लीजिए कि σ =50% प्रतिवर्ष , α = 24% और Y =300 बिलियन डॉलर प्रतिवर्ष है।

यदि पूर्ण रोजगार को बनाए रखना है तो 300 x 24 / 100 = 72 मिलियन डॉलर निवेश चाहिए। इससे उत्पादन क्षमता में निवेशित मात्रा की σ गुणा वृद्धि होगी। अर्थात 300x24/100 x 50/100 = 36 बिलियन डॉलर की और राष्ट्रीय आय को भी इतनी ही मात्रा में बढ़ना पड़ेगा। परन्तु आय में सापेक्ष वृद्धि आय द्वारा विभक्त निरपेक्ष वृद्धि के बराबर होगी ΔY/Y अर्थात

(i) $\Delta Y = 1/\alpha\ \Delta I$ अर्थात $\Delta I = \Delta Y\ \alpha$ = 300x 24/ 100 = 72 बिलियन डॉलर

(ii) $\Delta I.\sigma$ = 76x50 /100 =36 बिलियन डॉलर

(iii) $\Delta Y/Y$ = 36/300 = 12/100 = 12% = α = 24/100 x 50/100 = 12%

इसलिए पूर्व रोजगार बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि आय में 12% प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हो इस सुनहरी मार्ग से विचलन के परिणामस्वरूप चक्रीय परिवर्तन होगें। जब $\alpha \sigma ls \Delta I/I$ अधिक होगा, तो अर्थव्यवस्था में मंदी की स्थिति होगी।

रेखाचित्र 4 **Y = S+I**

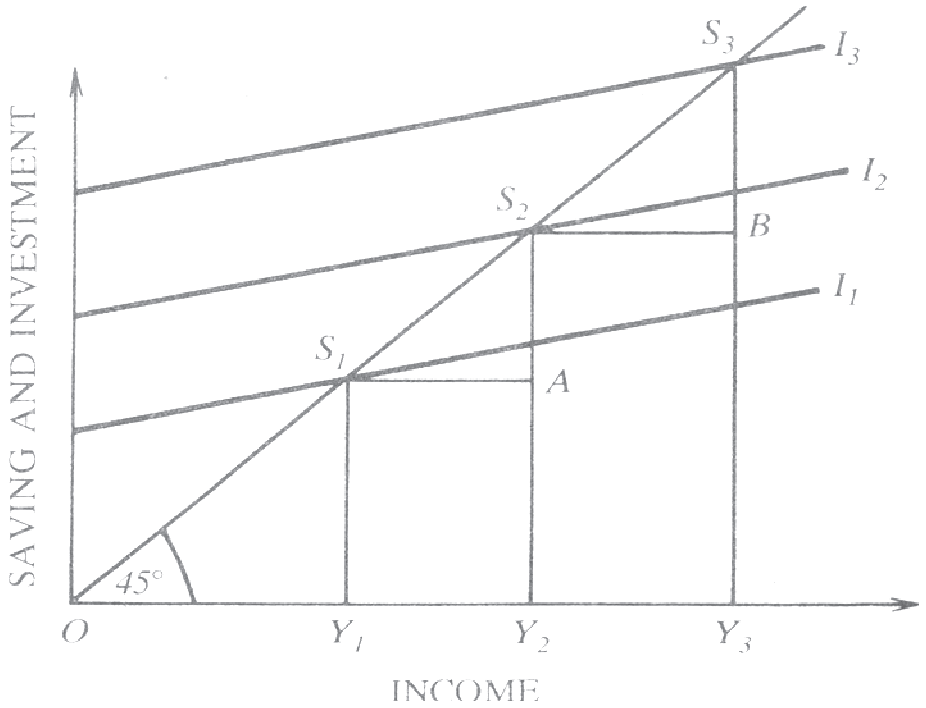

रेखाचित्र 4 में राष्ट्रीय आय का निर्धारण समस्त माँग तथा समस्त पूर्ति रेखाओं द्वारा दिखाया गया है। क्षैतिज अक्ष पर आय के स्तर को जबकि अनुलम्ब अक्ष पर बचत एवं निवेश को लिया गया है 45^0 कोण $Y = S+I$ का संतुलन दिखाया गया है।

प्रारम्भ में अर्थव्यवस्था का संतुलन बिन्दु S_1 हैं अब आर्थिक निवेश I_1 है गुणक प्रभाव के कारण आय का स्तर बढ़कर $S_1 A (= Y_1Y_2)$ हो जाता है लेकिन वार्षिक उत्पादन क्षमता $I \sigma$ से कम रहती है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि $OY_2 > OY_1$ अब निवेश की मात्रा बढ़ कर I_2 हो जायेगी और आय में वृद्धि $S_2 B (= Y_2Y_3)$ होगी। यह प्रक्रिया निवेश गुणक के अनुसार चलती रहेगी जब तक आय में वृद्धि निवेश में की गई वृद्धि की गुणक की वृद्धि के बराबर नहीं हो जाती।

8.5 आलोचना

(1) उत्पादन फलन तथा पूँजी श्रम अनुपात को स्थिर माना।
(2) सीमांत बचत प्रवृति तथा औसत बचत प्रवृति स्थिर है।
(3) कीमत परिवर्तन पर ध्यान नहीं दिया।
(4) पूँजीगत तथा उपभोक्ता वस्तुओं में भेद नहीं करता।
(5) उद्यमी व्यवहार की उपेक्षा की गई है।

(6) सरकार की भूमिका पर विचार नहीं करता।

8.6 हैरॅड तथा डोमर प्रारुपो का तुलनात्मक अध्ययन

इनमें कुछ समानताएँ भी है जबकि कुछ असमानताँए है–

8.6.1 हैरॅड तथा डोमर प्रारुपो की समानताएँ

(i) बचत एवं निवेश को अधिक महत्व :–

दोनों प्रारुप बचत एवं निवेश को विशेष महत्व देते है और अर्थव्यवस्था का संतुलन बचत एवं निवेश की समानता पर निर्भर करता है।

डोमर प्रारुप	हैरोड प्रारुप
$\Delta I/I = \alpha \sigma$	$GC = S$
जबकि $\alpha = \Delta S/\Delta Y$, $\sigma = \Delta Y/I$	जबकि $G = \Delta Y/Y$, $c = I/\Delta Y$
$\Delta I/I = \Delta S/\Delta Y \times \Delta Y/I$	$\Delta Y/Y \times I/\Delta Y = S/Y$
OR $\Delta I/I = \Delta S/I$	OR $I/Y = S/Y$
$\Delta I = \Delta S$	$I = S$

(ii) डोमर की सतत् वृद्धि दर ($\alpha \sigma$) हैरोड की वृद्धि की अभीष्ट दर (Gw) के अनुसार है हैरोड का S डोमर के α के बराबर है। अतः $\alpha = S/Y$ अथवा $S = \alpha Y$

$$\sigma = \Delta Y/I \text{ OR } I = \Delta Y/\sigma$$

अर्थव्यवस्था में आय का संतुलन बनाए रखने के लिए बचत एवं निवेश का बराबर होना आवश्यक है।

$$I = S,\ \Delta Y/\sigma = \alpha Y \text{ OR } \Delta Y/Y = \alpha \sigma = Ws$$

(iii) हैरोड यह मानकर चलता है कि बचत कुल आय का एक स्थिर अशं मात्र gS $S = sY$ ($o<r<I$)

बचत फलन दीर्घकालीन उपभोगफलन है जिससे **APS = MPC**

निवेश आय के स्तर में परिवर्तन का फलन है **I = Cr (ΔY)Cr >o Long Turn esa**

I = S or Cr (ΔY) = sY

दोनों तरफ Y से बिभक्त करें

Cr ΔY/Y = s Y/Y

Cr (ΔY/y) =S

Gw = S/Cr

8.6.2 हैरॅड तथा डोमर प्रारुप की असमानताएँ

1. डोमर सीमान्त पूँजी उत्पादन तथा गुणक के व्युत्क्रम $\Delta Y/d = \Delta I/\sigma$ का प्रयोग करता है हैरोड सीमांत पूँजी उत्पादन तथा त्वरक का प्रयोग करता है।
2. डोमर निवेश को वृद्धि प्रक्रिया में मुख्य कार्य सौपता है जबकि हैरॅड आय स्तर को वृद्धि प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण कारक समझता है।

3. डोमर निवेश की माँग और पूर्ति में संबध स्थापित करता है जबकि हैरॅड बचत की माँग और पूर्ति को बराबर करता है।
4. डोमर पूँजी उत्पादन अनुपात के व्युत्क्रम का प्रयोग करते है हैरॅड पूँजी उत्पादन अनुपात का इस दृष्टि से डोमर का $\sigma = 1/Cr$ हैरॅड का।
5. डोमर $\Delta I/I = \Delta Y/Y$ की मान्यता स्वीकारतें है जबकि हैरॅड नहीं।
6. हैरॅड के लिए व्यापार चक्र वृद्धि के मार्ग का अभिन्न अंग पर डोमर के लिए नहीं फिर भी वह σ निवेश की औसत उत्पादकता के उतरी चढ़ाव को माना है।
7. हैरॅड उद्यमियों के व्यवहार ढ़ाँचे को माना जबकि डोमर सम्बन्ध में कुछ नहीं सुझातें है।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.विकास की अभीष्ट दर हैः

अ.$GC=S$ ब.$GC=S/Cr$ स.$GC=SCr$ द.$GC=I$

2.Essay in the Theory of Economy Growth पुस्तक है

अ. हैरोड ब.डोमर स.एडम स्मिथ द. रिकार्डो।

3.हैरोड–डोमर के आर्थिक प्रारुप में, बढता पूँजी निर्गत अनुपात दिया होने पर, आवश्यक वृद्धि दर निर्भर करती है?

अ. पूँजी की सीमान्त क्षमता पर
ब. विनियोग की सीमान्त उत्पादकता पर
स. श्रम–शक्ति के विकास की दर पर
द. बचत–आय अनुपात पर

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हैरोड का विकास प्रारुप क्या है?
2. हैरोड की वास्तविक संवृद्वि दर का वर्णन कीजिए।
3. डोमर के विकास प्रारुप क्या है?
4. हैरोड–डोमर के विकास प्रारुप की प्रमुख मान्यतॉए क्या है?
5. हैरोड–डोमर के विकास प्रारुप की मुख्य बातें क्या है?

8.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने पूँजी संचय के क्षमता वृद्धि पक्ष पर अधिक जोर दिया था और उसके माँग पक्ष की अवहेलना की थी। इसके विपरीत कीन्सवादियों ने पूँजी संचय के "आय– वृद्धि पक्ष पर अधिक जोर दिया और उसके क्षमता वृद्धि पक्ष को भुला दिया।" हैरोड डोमर ने इन दोनों घरानों की भूल को सुधारते हुये निवेश प्रक्रिया के दोनों पक्षों को मिला दिया है और इस प्रकार यह उनके मॉडल की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है। हैरोड एवं डोमर के

विकास प्रारुप की मान्यताएं समान है इन्होंने कहाँ कि निवेश एक ओर तो आय को उत्पन्न करता है और दूसरी ओर उत्पादक क्षमता बढ़ाता है इसलिए उत्पादक क्षमता में वृद्धि को आय में वृद्धि के बराबर करने के लिए निवेश किस दर से बढ़े ताकि पूरा रोजगार बना रहे वह निवेश के माध्यम से कुल पूर्ति तथा कुल माँग के बीच संबध स्थापित करके इस प्रश्न का उत्तर देता है।

हैरोड तथा डोमर ने भी आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में निवेश को प्रमुख स्थान दिया है विशेष रुप से उसकी द्वैत प्रकृति को एक तरफ निवेश आय में वृद्धि करता है तो दूसरी तरफ अर्थव्यवस्था के पूँजीगत स्टॉक को बढ़ाकर उसकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि कर देता है। पहले को निवेश का माँग प्रभाव और दूसरे को पूर्ती प्रभाव कहा जा सकता है। इसलिए एक अर्थव्यवस्था में जब तक निवेश बढ़ता रहेगा, तब तक वास्तविक आय तथा उत्पादन का विस्तार होता रहेगा।

8.8 शब्दावली

वास्तविक वृद्धि दर –वास्तविक वृद्धि दर वह दर है जिस दर पर देश विकास कर रहा है।

अभीष्ट या आवश्यक वृद्धि दर – आवश्यक वृद्धि दर विकास की वह दर होती है जिसे यदि प्राप्त कर लिया जाये तो उद्यमी ऐसी मानसिक स्थिति में होते है कि वे इसी प्रकार से विकास करते रहने के लिए प्रेरित होगें।

प्राकृतिक वृद्धि दर–इसे वृद्धि की पूर्ण रोजगार दर या वृद्धि की सामान्य दर भी कहा जाता है।

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्न 1– ब.ळब्त्रैध्ब्तए2.. ब.डोमर 3– द. बचत–आय अनुपात पर

लघु उत्तरीय प्रश्न 1–देखिए 8.3 , 2–देखिए 8.3.3 ,3–देखिए 8.4

4–देखिए 8.3.1,8.4 ,5–देखिए 8.6।

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
3. एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
4. धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

8.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007

- Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. हैरोड–डोमर के विकास प्रारुप की विवेचना कीजिए तथा इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. हैरोड–डोमर के विकास प्रारुप में समानताओं और असमानताओं की विवेचना कीजिए?
3. हैरोड–डोमर के विकास प्रारुप के विश्लेषण के प्रमुख अंश स्पष्ट कीजिए। इसके व्यावहरिक प्रयोग की विवेचना कीजिए?

इकाई 9– सोलो का विकास प्रारूप

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 सोलो का विकास प्रारूप

9.3.1 सोलो का विकास प्रारूप की मान्यताएँ

9.3.2 दीर्घकालीन वृद्धि का प्रारूप

9.3.3 सम्भव विकास प्रारूप

9.3.4 विकास प्रारूप के आधारभूत समीकरण की रेखाचित्र द्वारा व्याख्या

9.3.5 विकास प्रारूप में अस्थिरता की स्थितियां

9.4 सोलो का विकास प्रारूप का आलोचनात्मक मूल्यांकन

9.5 सारांश

9.6 शब्दावली

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के प्रारुप से सम्बन्धित यह नवीं इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि आर्थिक विकास क्या है ?आर्थिक विकास का मापन की विधियॉ कौन–2 सी है। अल्पविकसित देशों की विशेषताएँ और विकास के निर्धारक घटक क्या–क्या है। साथ ही आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित विकास प्रारूप ,मार्क्स का विकास प्रारूप ,शुम्पीटर का विकास प्रारूप और हैरोड–डोमर का विकास प्रारूप का अध्ययन कर चुके है।

इस इकाई में सोलो विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है, इसके अर्न्तगत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है।इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में सोलो विकास प्रारुप के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद सोलो विकास प्रारुप के महत्व को समझा सकेगें, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके योगदान का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- बता सकेंगे कि सोलो का विकास प्रारुप क्या होता है।
- सोलो का विकास प्रारूप की मान्यताएँ को समझ सकेंगे।
- सोलो के विकास प्रारुप की प्रमुख विशेषताएं को जान सकेगें।

9.3 सोलो का विकास प्रारूप

हैरोड डोमर प्रारुप के आलोचको में नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री अग्रणी है और उनमें भी सबसे आगे है प्रो0 रार्बट एम0 सोलो का नाम प्रमुख है।

हैरोड डोमर प्रारुप स्थिर पूँजी– श्रम अनुपात की धारणा पर आधारित है सोलो ने 1956 में प्रकाशित अपने लेख "A Contribution to the theory of Economic Growth" में स्थिर पूँजी श्रम अनुपात की धारणा की मान्यता को अस्वीकार करते हुए कहा कि पूँजी– श्रम अनुपात में परिवर्तन करके उत्पादन में परिवर्तन लाया जा सकता है।

प्रो0सोलो का यह भी मत है कि पूँजी– श्रम अनुपात में परिवर्तन करने से आर्थिक विकास प्रक्रिया में समायोजनशीलता बढ जाती है। दूसरे रुप में कहे, संसाधनों की वर्तमान स्थिति के अनुरुप उत्पादन में कम या अधिक पूँजी– श्रम अनुपात वाली तकनीक को अपनाना सम्भव हो जाता है।

9.3.1 सोलो का विकास प्रारूप की मान्यताएँ

सोलो का विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यताएँ निम्नवत है–

1. एक समिश्र वस्तु का ;ब्वउचवेपजम ब्वउउवकपजलद्ध का उत्पादन होता है।
2. पूँजी मूल्य ह्रास की गुजाइश छोड़ने के बाद उत्पादन को शुद्ध उत्पादन समझा जाता है। फलस्वरुप निवेशत्रबचतें और यह पूँजी –कोष में होने वाले परिवर्तन (K) के बराबर होती हैं , अर्थात

$$I = sY = K$$

3. उत्पादन के केवल दो साधनों श्रम तथा पूँजी का प्रयोग किया जाता है।
4. पैमाने के स्थिर प्रतिफल होते है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन फलन प्रथम कोटि का समरूप होता है।
5. उत्पादन के दोनों साधनों श्रम तथा पूँजी को उनकी सीमान्त वस्तु उत्पादकताओं के अनुसार भुगतान किया जाता है।
6. कीमतें तथा मजदूरी लोचशील होती है।
7. श्रम स्थायी रूप से पूर्ण रोजगार में रहता है।
8. श्रम शक्ति की वृद्धि दर बर्हिजनित निर्धारित होती है।
9. पूँजी का उपलब्ध स्टॉक भी पूर्ण नियुक्त रहता है।
10. पूँजी संचय संमिश्र वस्तु के संचय के रूप में होता है।
11. श्रम तथा पूँजी का परस्पर स्थानापन्न किया जा सकता है।
12. तकनीकी प्रगति तटस्थ है।
13. बचत अनुपात स्थिर है।

इन मान्यताओं के दिये होने पर सोलो ने अपने प्रारुप में स्पष्ट किया है कि यदि तकनीकी गुणाँक परिवर्ती हो तो पूँजी श्रम अनुपात की प्रवृति यह होगी कि वह अपने आप को समय बीतने पर संतुलन अनुपात की दिशा में समायोजित कर लेगा। यदि श्रम से पूँजी का प्रारंभिक अनुपात अधिक होगा तो श्रम शक्ति की तुलना में पूँजी तथा उत्पादन की वृद्धि अधिक धीरे होगी और विलोमशः भी। सोलो का विश्लेषण संतुलन पक्ष स्थिर अवस्था की ओर केन्द्रित है चाहे वह किसी भी पूँजी श्रम अनुपात से क्यों न प्रारम्भ हों।

9.3.2 दीर्घकालीन वृद्धि का प्रारूप

सोलो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में एक मात्र वस्तु का ही उत्पादन मान कर चलता है। केन्द्रीय विश्लेषण की सहायता से यह स्पष्ट करता है उत्पादन की दर ल;जद्ध ही अर्थव्यवस्था की वास्तविक आय प्रकट करती है। आय का कुछ भाग उपभोग किया जाता है कुछ बचा लिया जाता है साथ ही निवेशित किया जाता है। दूसरे शब्दों में एक स्थिर पूँजी श्रम अनुपात बनाए रखने के लिए बचत का भाग अवश्य निवेश के बराबर होना चाहिए। वह शुद्ध निवेश अथवा पूँजी स्टॉक को $[k(t)]$ एवं बचत की दर को $sy(t)$ दर्शाता है जो बराबर है। निवेश बचत समीकरण यह हैः $I=S$ अथवा

$$K` = sy \qquad (K=\Delta k/\Delta t).....(i)$$

उत्पादन के साधन पूँजी k व श्रम L को उत्पादन फलन में दिखाने से

$$y = F(k,L) \quad \text{.....(ii)}$$

जो स्थिर प्रतिफल दर्शाता है।

समी0 (2) को समी0 (1) में रखने पर

$$K` = SF(K,L) \quad \text{.....(iii)}$$

समी0 (3) प्रौद्योगिक संभावनाओं को व्यक्त करता है। रोजगार स्तर व यह भी एक स्थिर सापेक्ष दर से बढ़ता है। इस प्रकार

$$L(t) = Loe^{nt} \quad \text{.....(iv)}$$

प्रौद्योगिक उन्नति के अभाव में n वृद्धि की प्राकृतिक दर होगी। समय (t) में L श्रम की मात्राओं को रोजगार पर लगाते है जबकि समय O से लेकर ज तक श्रम शक्ति एक घांताकीय (Exponentially) रूप से बढ़ती पूर्णत बेलोचदार श्रम की माँग है अर्थात श्रम पूर्ति वक्र Y अक्ष के समानांतर होगा।

पैमाने के स्थिर प्रतिफल के दिये होने पर पूँजी श्रम जिस तीवृता से बढ़ते है उत्पादन तथा बचत में वैसे बढ़ते है। इस तरह संतुलन विकास संभव है। सोलो का मूल समी0 निम्न होगा।

$$K` = sF(K, Loe^{nt}) \quad \text{.....(v)}$$

9.3.3 सम्भव विकास प्रारूप

सोलो ने एक नया चर त श्रम से पूँजी का अनुपात ;ज्ञध्स्द्ध लिया है। समय के साथ में आनुपातिक परिवर्तन को इस प्रकार लिखते है।

$$r`/r = k`/k - L`/L \quad \text{.....(vi)}$$

समय के साथ r में आनुपातिक परिवर्तन त्र समय के साथ पूँजी स्टॉक में आनुपातिक परिवर्तन – समय के साथ श्रम शक्ति में आनुपातिक समीकरण (6) esa $K` = SF(k,L)$ एवं $L/L = n$ रखने पर

$$r`/r = SF(K,L)/K - n$$

or

$$r` = r.[SF(K,L)]/K - nr \quad \text{.....(7)}$$

L से गुणा तथा भाग देने पर समी0 7 का स्वरूप बदलने से क्योंकि उत्पादन फलन प्रथम कोटि के समरूप है।

$$r = r.\{SFL(K/L .I)/K - nr$$

$$\text{Or} \quad r = r.L/K\ SF[k/L.I] - nr$$

जैसा कि सोलो ने बताया $r = K/L$ या $1/r = L/K$ होगा तो आधारभूत समी0

$$r = r.1/r\ SF(r, 1) - nr$$

or

$r = SF(r, 1) - nr$ .....(8)

समीकरण 8 में r = पूँजी श्रम अनुपात के परिवर्तन की दर जबकि SF (r, 1) उत्पादकता बताता है। दत व्यक्त करता है कि स्थिर पूँजी श्रम अनुपात रखने के लिए पूँजी श्रम अनुपात के किसी भी मूल्य पर प्रति श्रमिक कितना निवेश किया जायें।

9.3.4 विकास प्रारूप के आधारभूत समीकरण की रेखाचित्र द्वारा व्याख्या

आधारभूत समी0 में $r = o$ रखने से $sF(r,1)$= दत होगें। तो श्रम शक्ति की वृद्धि = पूँजी स्टॉक की वृद्धि = प्रति श्रमिक स्थिर उत्पादन। यही स्थिति संतुलित विकास प्रकट करती है। जैसा कि चित्र (1) में दिखाया है कि दत रेखा मूल बिन्दु से जाती है वक्र $SF(r,1)$ इस ढंग से व्यक्त है कि पूँजी की घटती सीमांत उत्पादकता को व्यक्त करें। जब $r = o$ तब दोनों वक्र एक दूसरे को e^1 बिन्दु पर काटते है।

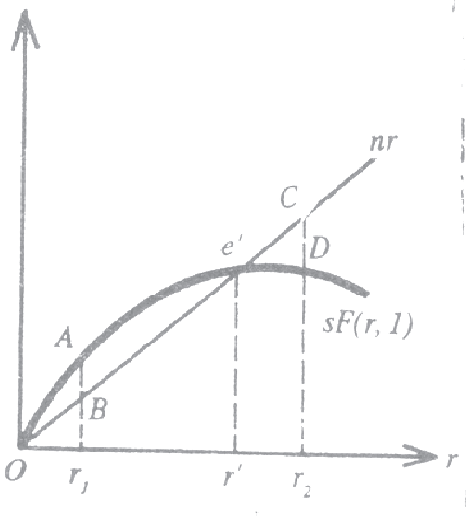

चित्र (1A)

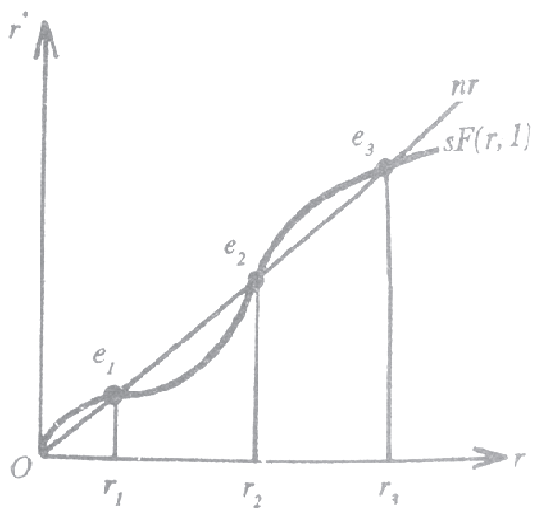

चित्र (1B)

9.3.5 विकास प्रारूप में अस्थिरता की स्थितियां

दूसरी तरफ यदि $SF(r,1)>nr$, तो ऐसी स्थिति में पूँजी एवं उत्पादन में वृद्धि श्रम शक्ति की अपेक्षा अधिक होगी जब तक पूँजी का प्रारम्भिक संतुलन मूल्य r^1 के बराबर नहीं आ जाता। जैसा चित्र (1A) में दिया है कि r^1 झ त, और बचत की पूर्ति $Ar_1 > Br_1$ निवेश की मात्रा से बिन्दु A से बिन्दु e^1 तक पूँजी में वृद्धि तीव्र रहेगी। इसके विपरीत $nr> SF(r,1)$ तब ऐसी स्थिति में निवेश की मात्रा $Cr_2>Dr_2$ बचत की पूँजी क्योंकि $r_2>r_1$ से। इसलिए संतुलित विकास के लिए पूँजी श्रम अनुपात (r_2) के मूल्य को कम करके r_1 के बराबर रखना होगा।

लेकिन स्थिरता की स्थिति उत्पादकता वक्र की ढाल पर निर्भर करती है। चित्र (1B) में उत्पादकता वक्र SF(r,I) मूल बिन्दु O से खीचा दत को तीन बिन्दु e_1, e_2 व e_3 पर काटता है O से e_1 तक उत्पादकता की ढाल से स्पष्ट है पूँजी में वृद्धि धीमी है। e_2 पर संतुलन नहीं क्योंकि श्रम वृद्धि रेखा को नीचे से काटता है। e_2 पर संतुलन e_3 तक पूँजी में वृद्धि तीव्र है पूँजी श्रम अनुपात r_1 या r_3 पर संतुलित वृद्धि होगी सोलो ने कहा यह सब संभावनाओं को समाप्त नहीं करता। दो संभावनायें और है जिसे चित्र 2 में दिखया गया है।

इससे किरण दत संतुलित वृद्धि पथ जहाँ अभीष्ट तथा प्राकृतिक वृद्धि दर बराबर है। **वक्र $S_1F^1(r,1)$ जो दत से ऊपर है बहुत उत्पादकीय व्यवस्था व्यक्त करता है।** जिसमें पूँजी श्रम की पूर्ति की अपेक्षा अधिक तीव्र बढ़ते है निरंतर पूर्ण रोजगार है आय बचत इतनी बढती है कि पूँजी श्रम अनुपात सीमा रहित बढ़ती **है। जबकि $S_1F^{11}(r,1)$ एक बहुत अनुउत्पादकीय व्यवस्था को व्यक्त करता है इसमें पूर्ण रोजगार पर कम हो रही प्रति व्यक्ति आय की ओर ले जाता है, क्योंकि दत से नीचे है।** इसमें भी आय बढ़ती है। क्योंकि शुद्ध निवेश धनात्मक है। श्रम पूर्ति बढ़ रहा है। परन्तु दोनों ही अवस्था में निरंतर घटती सीमांत उत्पादकता पाई जाती है। **चित्र 2**

सोलो ने निष्कर्ष रूप में अपने प्रारुप में इस प्रकार बताया कि, ''जब परिवर्ती समानुपातों तथा पैमाने के स्थिर की सामान्य नवक्लासिकी परिस्थितियों के अर्न्तगत उत्पादन होता है तो वृद्धि प्रकृति तथा अभिष्ट दरों में कोई साधारण विरोद्ध सम्भव नहीं कोई छुरी धार संतुलन नहीं हो सकता व्यवस्था श्रम शक्ति की किसी भी दी हुई दर से समायोजन कर सकती है और अन्ततः स्थिर समानुपातिक विस्तार की अवस्था तक पहुँच सकती है। अर्थात

$$\Box k/k = \Box L/L = \Box Y/Y$$

9.4 सोलो का विकास प्रारूप का आलोचनात्मक मूल्यांकन

प्रो0 ए0 के0 सैन कई दृष्टिकोण से इसे दुर्बल तथा कमी वाला मानते है। इसकी प्रमुख आलोचनाएं इस प्रकार है।

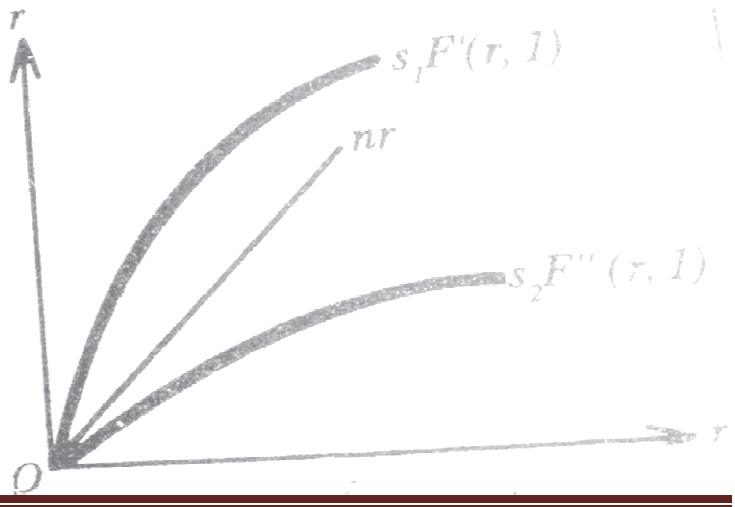

1. अवास्तविक मान्यताँए :– (i) पूर्ण रोजगार का पाया जाना **(ii)** निवेश का बचत पर निर्भर होना।

2. निवेश फलन की अनुपस्थिति :– प्रो0 सेन

का कहना है कि सोलो प्रारुप निवेश फलन अनुपस्थित है यदि इसे एक बार शामिल कर ले तो सोलों प्रारुप में भी अस्थिरता की हैरोडियन समस्या तुरन्त पैदा हो जाती है।

3. वास्तविक वृद्धि दर और आवश्यक वृद्धि दर के बीच सन्तुलन की उपेक्षा :– यह केवल आवश्यक वृद्धि दर (Gw) और प्राकृतिक वृद्धि दर (Gn) के बीच सन्तुलन करने का प्रयास करता है। वास्तविक वृद्धि दर (G) और आवश्यक वृद्धि दर (Gw) में सन्तुलन की समस्या छोड देता है।

4. पूँजी एवं श्रम का प्रतिस्थापन :– पूँजी तथा श्रम के बीच में दीर्घकाल में कुछ प्रतिस्थापन होता है परन्तु यह मान लेना कि प्रतिस्थापन की यह सम्भावना सदैव पायी जाती है वास्तविकता से सरासर परे है।

5. सतत् या नियमित विकास की अवधारणा :– यह धारणा व्यावहारिक उपयोगिता के बजाए मात्र सैद्धान्तिक महत्व की निर्मूल धारणा बनकर रह जाती है।

6. पूँजी की समरूपता एवं लोचशीलता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

7. सोलो प्रारुप श्रम– वर्द्धक तकनीकी प्रगति की मान्यता पर आधारित है, जिसका कोई आनुभविक औचित्य नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

- सोलो के विकास प्रारूप का वैकल्पिक रुप है :
  अ.एडम स्मिथ **ब.**हैरोड–डोमर **स.**माल्थस **द.** मार्क्स।
- सोलो के विकास प्रारूप सम्बन्धित है:
  अ.अल्पकालीन वृद्धि से **ब.** दीर्घकालीन वृद्धि से **स.**उपर्युक्त दोनों से **द.** उपर्युक्त कोई नहीं।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सोलो का विकास प्रारूप की मान्यताए बताइए?
2. सोलो के विकास प्रारूप की मुख्य आधारभूत समीकरण क्या है?
3. सोलो के विकास प्रारूप का सार क्या है?
4. सोलो विकास प्रारूप की आलोचनाएं बताइए?

9.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि पूँजी– श्रम अनुपात में परिवर्तन करने से आर्थिक विकास प्रक्रिया में समायोजनशीलता बढ जाती है। दूसरे रुप में कहे, संसाधनों की वर्तमान स्थिति के अनुरुप उत्पादन में कम या अधिक पूँजी– श्रम अनुपात वाली तकनीक को अपनाना सम्भव हो जाता है। सोलो ने अपने प्रारुप में स्पष्ट किया है कि यदि तकनीकी गुणाँक परिवर्ती हो तो पूँजी श्रम अनुपात की प्रवृति यह होगी कि वह अपने आप को समय बीतने पर संतुलन अनुपात की दिशा में समायोजित कर लेगा। यदि श्रम से पूँजी का प्रारंभिक अनुपात अधिक होगा तो श्रम शक्ति की तुलना में पूँजी तथा

उत्पादन की वृद्धि अधिक धीरे होगी और विलोमशः भी। सोलो का विश्लेषण संतुलन पक्ष स्थिर अवस्था की ओर केन्द्रित है चाहे वह किसी भी पूँजी श्रम अनुपात से क्यों न प्रारम्भ हों।

सोलो ने निष्कर्ष रूप में अपने प्रारुप में इस प्रकार बताया कि, ''जब परिवर्ती समानुपातों तथा पैमाने के स्थिर की सामान्य नवक्लासिकी परिस्थितियों के अर्न्तगत उत्पादन होता है तो वृद्धि प्रकृति तथा अभिष्ट दरों में कोई साधारण विरोद्ध सम्भव नहीं कोई छुरी धार संतुलन नहीं हो सकता व्यवस्था श्रम शक्ति की किसी भी दी हुई दर से समायोजन कर सकती है और अन्ततः स्थिर समानुपातिक विस्तार की अवस्था तक पहुँच सकती है। अर्थात

$$\Delta k/k = \Delta L/L = \Delta Y/Y$$

9.6 शब्दावली

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री–एडम स्मिथ और उनके अनुयायी जैसे– रिकार्ड़ो ,जे. एस. मिल आदि।

श्रम–वर्द्धक तकनीकी– उत्पादन की वह प्रकिया जो श्रम प्रधान हो।

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–1. ब.हैरोड–डोमर । **2. ब.** दीर्घकालीन वृद्धि से ।

लघु उत्तरीय प्रश्न– **1.**देखिए 9.3.1 । **2.**देखिए 9.3.2 । **3.** देखिए 9.3 । **4.** देखिए 9.4 ।

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
3. एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
4. धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

9.9 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

1. Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
2. Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सोलो के विकास प्रारूप की विवेचना कीजिए तथा इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. सोलो के विकास प्रारूप की गणितीय विवेचना कीजिए?

इकाई 10– मीड का विकास प्रारूप

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 जे0 ई0 मीड नव क्लासिकी आर्थिक विकास प्रारुप

10.3.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

10.3.2 उत्पादन की विधि एवं उसके प्रभाव

10.3.3 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप की विशेषताएं

10.3.4 अतिरेक मूल्य का सिद्वांत

10.3.5 पूँजीवादी संकट

10.4 संवृद्वि के चरण

10.5 गणितीय रुप मेंमार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप

10.6 कार्ल मार्क्स का आर्थिक विकास प्रारुप की आलोचना

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के प्रारुप से सम्बन्धित यह छठी इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि आर्थिक विकास क्या है ? आर्थिक विकास का मापन की विधियॉ कौन–2 सी है। अल्पविकसित देशों की विशेषताएँ और विकास के निर्धारक घटक क्या–क्या है।

इस इकाई में जे0 ई0 मीड विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है, इसके अर्न्तगत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है।इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में जे0 ई0 मीड विकास प्रारुप के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जे0 ई0 मीड विकास प्रारुप के महत्व को समझा सकेगें, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके योगदान का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- बता सकेंगे कि जे0 ई0 मीड का विकास प्रारुप क्या होता है।
- अतिरेक मूल्य का सिद्वांत को समझ सकेंगे।
- जे0 ई0 मीड के विकास प्रारुप की प्रमुख विशेषताएं को जान सकेगें।

10.3 जे0 ई0 मीड नव क्लासिकी आर्थिक विकास प्रारुप

केम्ब्रिज वि0 वि0 के प्रो0 जे0 ई0 मीड ने 1961 में आर्थिक वृद्धि का नव क्लासिकी मॉडल निर्मित किया है जिसका उद्देश्य यह प्रकट करना है कि संतुलन वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान सरलतम क्लासिकी आर्थिक प्रणाली का व्यवहार क्या होगा।

10.3.1 मीड नव क्लासिकी आर्थिक विकास प्रारूप की मान्यताएँ

मीड नव क्लासिकी आर्थिक विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यताएँ निम्नवत है–

1. पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाए जाते है।
2. स्वतन्त्र बन्द अर्थव्यवस्था होती है जिसमें पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
3. अर्थव्यवस्था में पूँजी तथा उपभोग वस्तुएँ ही उत्पादित होती है।
4. अर्थव्यवस्था में मशीनें ही पूँजी का एकमात्र रूप है।
5. सब मशीनें एक समान मान ली जाती है।
6. माना गया है कि उपभोग वस्तुओं की स्थिर मुद्रा कीमत होती है।
7. भूमि तथा श्रम का पूर्ण प्रयोग होता है।
8. अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में ही श्रम का मशीनरी से अनुपात बदला जा सकता है इसे मीड मशीनरी की पूर्ण लोचता कहते है।
9. पूँजी तथा उपभोग वस्तुओं के बीच उत्पादन में पूर्ण स्थानापन्नता होती है।

10. प्रतिवर्ष मशीनरी के ह्रास की पुनः स्थापना होती है।

10.3.2 उत्पादन फलन

अर्थव्यवस्था में उत्पादन फलन चार तत्वों पर निर्भर करता है।

(a) मशीनों के रूप में उपलब्ध पूँजी का शुद्ध स्टॉक

(b) उपलब्ध श्रम शक्ति की मात्रा

(c) भूमि तथा प्राकृतिक साधनों की प्राप्यता

(d) तकनीकी ज्ञान की स्थिति जिसमें कालपर्यन्त सुधार होता है।

उत्पादन फलन $\mathbf{Y = F\ (K, L, N, t)}$

जहाँ **Y** शुद्ध उत्पादन (राष्ट्रीय आय शुद्ध), **K** पूँजी मशीनों का वर्तमान स्ट्रॉक, **L** श्रम शक्ति, **N** भूमि तथा प्राकृतिक साधन और **t** समय है तकनीकी प्रगति को व्यक्त करता है। **राष्ट्रीय आय.. N** को स्थिर मान कर **K, L,** तथा **t,** में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि

$$\Delta Y = MPP_K\ \Delta K + MPP_L\ \Delta L + \Delta Y^1 \text{----------(1)}$$

जहाँ Δवृद्धि को MPP_K पूँजी के सीमान्त उत्पादन, ΔK मशीन के स्टॉक में वृद्धि MPP_L श्रम का सीमान्त उत्पादन,$\square L$ श्रम की मात्रा में वृद्धि, और t की जगह Y^1 रखने से वार्षिक उत्पादन वृद्धि ΔY^1 द्वारा व्यक्त है।

समी0 (1) में दोनों तरफ Y से विभक्त करने पर

$$\Delta Y/Y = MPP_K/Y\ \{\Delta K\} + MPP_L/Y\ \{\Delta L\} + \Delta Y^1/Y$$

ΔK में K से गुणा तथा K से विभाजन ΔL में L से गुणा तथा L से विभाजन करने पर

$$\Delta Y/Y = MPP_K\ \{\Delta K/K\}.K + MPP_L\ \{\Delta L/L\}.L + \Delta Y^1/Y$$

यदि ΔK उत्पादन की आनुपातिक वृद्धि दर को y, $\Delta K/K$ पूँजी स्ट्रॉक में आनुपातिक वृद्धि दर को k, $\Delta L/L$ श्रम की आनुपातिक वृद्धि दर को सए तथा $\square Y^1/Y$ तकनीकी प्रगतिकी आनुपातिक वृद्धि दर को त से व्यक्त करे तो।

$$y = Uk + Q_l + r \text{ .....(2)}$$

जहाँ U = पूँजी के आनुपातिक सीमान्त उत्पादन, Q = श्रम के आनुपातिक सीमान्त उत्पादन है।

10.3.3 प्रति व्यक्ति वास्तविक आय

अर्थव्यवस्था की वास्तविक प्रगति की सूचक प्रति व्यक्ति वास्तविक आय है।

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि

$$y - l = Uk + Q\,l + r\text{-}l$$
$$= Uk - l + Q\,l + r$$

$$= Uk - (1-Q)\,l + r$$

समी0 में [- (1-Q) l ,घटते प्रतिफल की प्रवृत्ति को प्रगट करता है।

10.3.4 पूँजी संचय

अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर पूँजी संचय की वृद्धि पर भी निर्भर करती है। समी0 में Uk में निहित है: $Uk = MPP_K / Y \ \{\Delta K/K\}\ K \qquad (\Delta K = I = SY)$

$$Uk = MPP_K/Y\ (\ SY/K\ )\ K$$

$$Uk = MPP_K\ S$$

$$Uk = VS \qquad (MPP_K = V)$$

समी0 ;2द्ध में रखने पर

$$y - l = vs - (1-Q)\,l + r$$

10.3.5 तकनीकी प्रगति

यदि तकनीकी प्रगति (r) व जनसंख्या (l) को स्थिर मान ले तो बचत में वृद्धि प्रति व्यक्ति पूँजी बढ़ा देगा और पूँजी के सीमांत उत्पादन (v) में कमी लायेगा यदि श्रम व भूमि के स्थानापन्न में पूँजी का प्रयोग हो तो v में अपेक्षाकृत कम कमी होगी तथा r के कारण v में वृद्धि होगी तो आगे समय में PQI में वृद्धि करेगी। और बचत (S) बढ़ेगी।

स्थिर जनसंख्या (l = o) पर प्रति व्यक्ति आय (PPI)

$$y - l = vs - (1-Q)l + r$$

यदि r को भी स्थिर मान ले तो y = vs होगा।

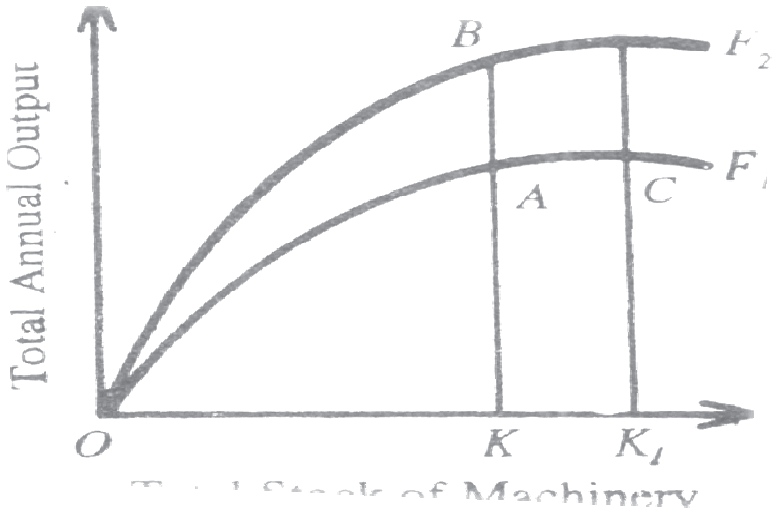

चित्र 1

कुल राष्ट्रीय आय पर तकनीकी प्रगति प्रभाव को रेखाचित्र में स्पष्ट किया गया है।

10.3.6 सत्त आर्थिक वृद्धि की अवस्था

इस अवस्था में प्रो0 मीड ने जनसंख्या में आनुपातिक दर L से बढ़ रही है तकनीकी प्रगति की दर r स्थिर है। कुल उत्पादन आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर स्थिर है इनके लिए तीन स्थितियां होनी चाहिए (क) विभिन्न साधनों के बीच प्रतिस्थापन लोच समान हो (ख) तकनीकी प्रगति की दर सभी साधनों के प्रति तटस्थ है (ग) बचाए हुए लाभ Sv बचाई मजदूरी Sw व बचाए लगान Sy के अनुपात सब स्थिर हो। कुल बचत S = SvU + SwQ+ SyZ+ NP(NI) के अनुपात स्थिर रहेगा।

समी0 (2) में $Y = Uk + Q_L + r$ में सत्त वृद्धि अवस्था में U,Q, L, o r के मान स्थिर है। जबकि $k = \Delta k/k = (I=Sy=S)/k$,$\Delta k = I= sY=S$ भी स्थिर है। अतः Y/K तब स्थिर रहेगा जब पूँजी स्ट्रॉक की वृद्धि दर (k) राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर (y) के बराबर हो, तब आय वृद्धि दर स्थिर रहेगी।

क्रांतिक वृद्धि दर – सत्त वृद्धि के लिए $\Delta Y/Y = \Delta K/K$ जिसे प्रो0 मीड ने कहा कि पूँजी स्टॉक की एक क्रांतिक वृद्धि दर होती है जिस पर आय तथा पूँजी स्टॉक की वृद्धि दरें बराबर होती है इसलिए

y= k= को समी0 (2) में रखने पर

$$y = U_k + Q_l + r$$

$$a = U_a + Q_l + r$$

$$a - U_a = Q_l + r$$

$$a (1-U) = Q_l + r$$

$$a = (Q_l + r)/ 1-U$$

अस्थिरता की स्थितियाँ – पूँजी स्टॉक की वृद्धि दर k या $\Delta k/k = Sy/K > (Q_l + r)/ 1-U$ तो इस स्थिति में पूँजी स्टॉक में वृद्धि आय में वृद्धि से अधिक होगी तो परिणाम में बचत कम होगी पूँजी में वृद्धि दर में कमी होगी जो आय वृद्धि दर के बराबर ला देगी।

यदि $(Q_l + r)/ 1-U >$ ा तो आय वृद्धि पूँजी स्टॉक वृद्धि से अधिक है So Saving increase होगी और बराबर पर ला देगी।

10.4 सत्त आर्थिक वृद्धि चित्र

रेखाचित्र में क्षैतिज अक्ष पर पूँजी स्टॉक की वृद्धि दर (k) को व बिन्दु से 45^0 रेखा से दिखाया गया है। अनुलम्ब अक्ष पर जनसंख्या वृद्धि (Q_l) जमा तकनीकी प्रगति (r) को मापा गया है Ay रेखा राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर (y) को व्यक्त करता है (U) रेखा पूँजी की आनुपातिक सीमांत उत्पादकता को मापता है।

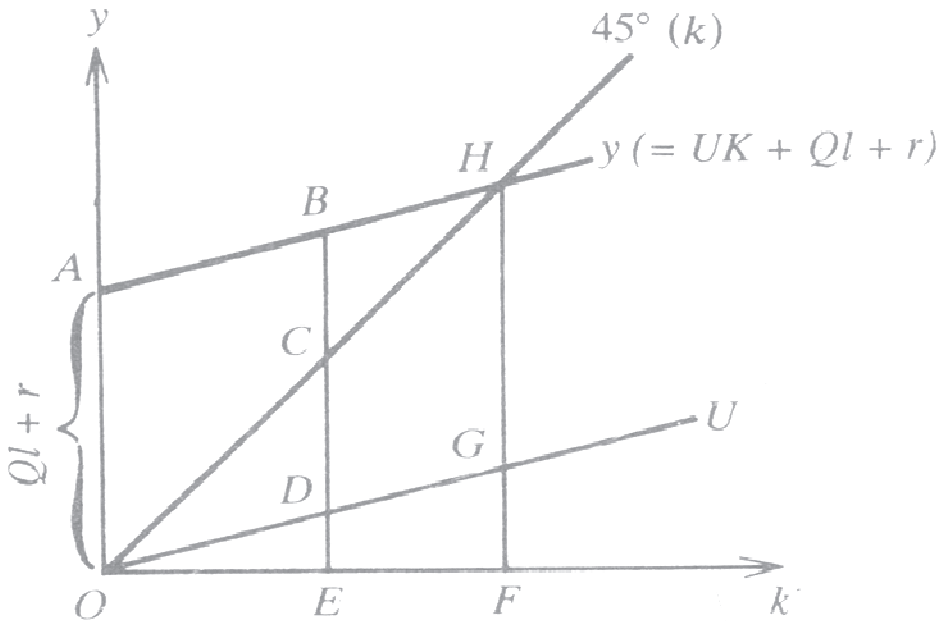

चित्र 2

स्पष्ट है कि s बिन्दु पर राष्ट्रीय आय वृद्धि दर (y) अधिक है पूँजी स्टाक वृद्धि दर (k) से क्योंकि k रेखा नीचे है y रेखा से BE>CE (CE=OE) पूँजी की सीमांत उत्पादकता(U) न बराबर DE व जनसंख्या वृद्धि जमा तकनीकी प्रगति ($Q_l + r$) बराबर BD।

अतः B सत्त आर्थिक वृद्धि का बिन्दु नहीं है। तथा बिन्दु H तक बढ़ता है जहाँ y = k = HF सत्त वृद्धि की अवस्था।

क्रांतिक वृद्धि दर की माप :– रेखाचित्र में H बिन्दु क्रांतिक वृद्धि दर बिन्दु है।

$Y = Uk + Ql + r$

$HF = GF.\ HF + GH$

$(Ql + r = GH)$

$HF - GF.HF = GH$

$HF\ (1 - GF) = GH$

$HF = GH / 1 - GF$

$Or\ OF = GH / 1 - GF \qquad (HF = OF)$

$k = QI + r / 1 - U$

$a = Ql+r/ 1-U \qquad (Y= k=a)$

10.5 मीड मॉडल की हैरेड डोमर से तुलना

मीड की सतत वृद्धि दर में $\Delta Y/Y = \Delta K/K$ जबकि हैरॅड के अनुसार सतत वृद्धि दर तब होगी जब $G = Gw = Gn$ डोमर में $\Delta I/I = \Delta$

प्रो0 मीड का पूँजी का सीमांत उत्पादन (MPP_k) बराबर है डोमर के सिग्मा (□) के।

$MPP_k = \Delta I/I = \Delta$

Or $\Delta y/y$

10.6 आलोचनात्मक मूल्यांकन

(1) पूर्ण प्रतियोगिता
(2) पैमाने के स्थिर प्रतिफल
(3) अभासी–कारण सम्बन्ध
(4) मशीन की पूर्ण लोचता
(5) अनिश्चिता को कोई स्थान नही
(6) बन्द अर्थव्यवस्था
(7) संस्थानिक तत्वों की उपेक्षा
(8) गणितीय मॉडल

गुण (Merit)–(1) इसका प्रमुख गुण यह है कि यह काल पर्यन्त राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर तथा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय दर जनसंख्या वृद्धि, पूंजी–संचय तथा तकनीकी प्रगति का प्रभाव प्रदर्शित करता है।

(2) सतत आर्थिक वृद्धि की अवस्था वस्तुतः श्रीमति रॉबिन्सन के स्वर्ण युग से अधिक ढंग से की गयी व्याख्या है जिसमें उन चरों का अध्ययन किया गया है जिसे उन्होने स्थिर माना है।

अभ्यास प्रश्न 1

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.मार्क्स के अनुसार वस्तु के मूल्य का आधार है:

अ.श्रम **ब.** भूमि **स.** पूँजी **द.**खनिज संम्पदा।

2.Das Capital पुस्तक के लेखक है:

अ.एडम स्मिथ **ब.** रिकार्ड़ो **स.**माल्थस **द.** मार्क्स।

3.मार्क्स का अतिरेक मूल्य है:

अ. प्रयोग मूल्य **ब.** प्रयोग मूल्य एवं विनिमय मूल्य का अन्तर **स.** विनिमय मूल्य **द.** कोई नहीं।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मीड ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या किस प्रकार की है?
2. मीड का अतिरेक मूल्य का सिद्वांत क्या है?

3. मीड के विकास प्रारुप की मुख्य गुण क्या है?
4. मीड ने पूँजीवाद के पतन के क्या कारण बताइए है?

10.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि जे0 ई0 मीड ने 1961 में आर्थिक वृद्धि का नव क्लासिकी मॉडल निर्मित किया है जिसका उद्देश्य यह प्रकट करना है कि संतुलन वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान सरलतम क्लासिकी आर्थिक प्रणाली का व्यवहार क्या होगा।यह काल पर्यन्त राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर तथा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय दर जनसंख्या वृद्धि, पूंजी–संचय तथा तकनीकी प्रगति का प्रभाव प्रदर्शित करता है।सतत आर्थिक वृद्धि की अवस्था वस्तुतः श्रीमति रॉबिन्सन के स्वर्ण युग से अधिक ढंग से की गयी व्याख्या है जिसमें उन चरों का अध्ययन किया गया है जिसे उन्होने स्थिर माना है।

5.8 शब्दावली

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री–एडम स्मिथ और उनके अनुयायी जैसे– रिकार्ड़ो ,जे. एस. मिल आदि।

विकास दूत–(1) भूमिपति (2) पूँजीपति तथा(3) श्रमिक जिनमें भूमि की समस्त उपज बाँटी जाती है।

स्थिर अवस्था– अर्थव्यवस्था एक ऐसी स्थिति जहॉ लाभ शून्य तक गिर जाए और पूँजी–संचय बिल्कुल रुक जाएगा।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–1.अ.श्रम। **2. द.** मार्क्स।**3. ब.** प्रयोग मूल्य एवं विनिमय मूल्य का अन्तर।

लघु उत्तरीय प्रश्न– **1.**देखिए 6.3। **2.**देखिए 6.3.1। **3.** देखिए 6.3.4। **4.** देखिए 6.3.3।

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
3. एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
4. धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

10.11 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

1. Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007

2. Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मीड के विकास प्रारुप की विवेचना कीजिए तथा इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. '' मीड के विकास प्रारुप पश्चिमी पूँजीवाद के उदभव एवं विकास को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।'' व्याख्या कीजिए?
3. मीड के विकास प्रारुप व्याख्या की विवेचना कीजिए?

इकाई.11 जॉन रॉबिन्सन का विकास प्रारूप

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 श्रीमती रॉबिन्सन के विकास प्रारूप

- 11.3.1 श्रीमती रॉबिन्सन के विकास प्रारूप का इतिहास
- 11.3.2 श्रीमती रॉबिन्सन के विकास प्रारूप की मान्यतायें
- 11.3.3 आर्थिक समस्या

11.4 जॉन रॉबिन्सन का विकास प्रारूप की विवेचना

- 11.4.1 मॉडल का गणितीय रूप
- 11.4.2 स्वर्ण युग
- 11.4.3 स्वर्ण युग के अन्य रूप
- 11.4.4 तकनीकी प्रगति

11.5 रॉबिन्सन तथा हैरॉड–डोमर मॉडल में सम्बन्ध

11.6 जॉन रॉबिन्सन के मॉडल की सीमायें

11.7 श्रीमती रॉबिन्सन के मॉडल का अर्थव्यवस्था में महत्त्व

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.11 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ

11.12 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई मे आपने सोलो और मीड के आर्थिक विकास के प्रारूप के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त की।

इस इकाई में हम आर्थिक विकास के अध्ययन विधि से रॉबिन्सन के विकास प्रारूप का अध्ययन करेंगे। आर्थिक विकास के अध्ययन के क्षेत्र में रॉबिन्सन के मॉडल का महत्वपूर्ण योगदान है।

श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने सन् 1956 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "The Accumulation of Capital" में आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में एक विकास मॉडल का निर्माण किया था। श्रीमती रॉबिन्सन का यह मॉडल आर्थिक विकास के जनसंख्या वृद्धि के घटक को स्वीकार करते हुये पूंजी संचय की दर और उत्पादन वृद्धि पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

इस वृद्धि से रॉबिन्सन मॉडल को केन्सवादी विधि से क्लासिकल सिद्धान्त पुनर्व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है जिसका मूल उद्देश्य अल्पविकसित देशों के विकास की समस्याओं का समाधान करना है।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप यह समझा सकेंगे कि–

1. आर्थिक विकास का क्या अर्थ है।
2. रॉबिन्सन का प्रारूप किस प्रकार की अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखता है।
3. रॉबिन्सन के विकास प्रारूप के प्रमुख तथ्य क्या हैं।
4. श्रमिक वर्ग तथा उद्यमी वर्ग से क्या अर्थ हैं।
5. पूँजी निर्माण का क्या अर्थ हैं।
6. स्वर्ण युग से क्या तात्पर्य हैं।
7. स्वर्ण युग के अन्य रूप क्या–क्या हैं।
8. आप तकनीकी प्रगति को ठीक प्रकार से बता सकेंगें।
9. तकनीकी प्रगति का क्या अर्थ है।
10. रॉबिन्सन के मॉडल का महत्त्व समझ सकेंगे।
11. रॉबिन्सन के मॉडल का अन्य मॉडलों से सम्बन्ध समझा सकेंगे।

11.3 श्रीमती रॉबिन्सन का विकास

श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने सन् 1956 में प्रकाशित अपनी पुस्तक श्जीम ।बबनउनसंजपवद वि ब्वपजंसश में आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में एक विकास मॉडल का निर्माण किया था। श्रीमती रॉबिन्सन का यह मॉडल आर्थिक विकास के जनसंख्या वृद्धि के घटक

को स्वीकार करते हुये पूंजी संचय की दर और उत्पादन वृद्धि पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

11.13.1 श्रीमती रॉबिन्सन के विकास प्रारूप का इतिहास

जॉन रॉबिन्सन के विकास प्रारूप का इतिहास – रॉबिन्सन का मॉडल हैरॉड मॉडल का विस्तार है। अपने आर्थिक विकास के विभिन्न मॉडलों का विस्तार रॉबिन्सन द्वारा प्रकाशित पुस्तक–"The Accumulation of capital "में मिलता है। यह विकास के प्रारूप का महत्वपूर्ण मॉडल है। हम रॉबिन्सन मॉडल के अध्ययन से समझ सकेंगें कि .... रॉबिन्सन का मॉडल निम्न दो तथ्यों पर आधारित हैः–

1. पूँजी निर्माण की दर आय के वितरण पर निर्भर करती है।
2. श्रम के प्रयोग की दर पूँजी की पूर्ति तथा श्रम की पूर्ति पर निर्भर करती है।

11.3.2 रॉबिन्सन के विकास प्रारूप की मान्यतायें

रॉबिन्सन का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं : जिसका अध्ययन हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकतें हैः–

1. पूँजीवादी अबन्ध एवं बन्द अर्थव्यवस्था है।
2. ऐसी अर्थव्यवस्था में केवल पूँजी और श्रम ही उत्पादकीय साधन है।
3. दिये हुये उत्पादक का उत्पादन करने के लिए पूँजी तथा श्रम स्थिर अनुपातों में लगाये जाते हैं। तकनीकी प्रगति तटस्थ है।
4. श्रम की कमी नहीं होती, और उद्यमी जितना चाहे श्रम को रोजगार पर लगा सकते हैं।
5. केवल दो ही वर्ग होते हैं– 'श्रमिक वर्ग तथा उद्यमी वर्ग
6. श्रमिक तथा उद्यमी जिनके बीच आय का वितरण होता है।
7. श्रमिक कुछ बचत नहीं करते और अपनी मजदूरी–आय को उपभोग पर व्यय करते हैं।
8. बचत करने और लाभ से प्राप्त अपनी समस्त आय को पूँजी–निर्माण के लिए निवेश करने के सिवाय उद्यमी कुछ नहीं उपभोग करता।
9. कीमत–स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता।
10. पूर्ण प्रतियोगी अर्थव्यवस्था है।

11.3.3 आर्थिक समस्या

अर्थशास्त्र में किसी भी तरह की समस्या वास्तविक जगत से सम्बन्धित होती है। रॉबिन्सन के मॉडल से हम आर्थिक विकास से जुड़ी समस्याओं की जानकारी प्राप्त होती है।

जॉन रॉबिन्सन ने अपने मॉडल में ष्ळवसकमद ।हमष् की बात कही है जहाँ रोजगार पूर्ण रूप से होगा तथा पूँजी का पूर्णतः सदुपयोग होगा।

रॉबिन्सन के शब्दों में– ''जब तकनीकी परिवर्तन तटस्थ हो, और एक स्थिर गति से हो, तब अर्थव्यवस्था 'स्वर्ण युग' की स्थिति में होगी।

When technical progress is neutral, and procreation steadily without any change in the time pattern of production the competitive mechanism working freely, population growing at a steeply rate and accumulation growing un jest enough to supply predictive Capacity for all available labour the rate of profit tend to be construct and the level of real wager to rise with output annual output and the stock of capital then grow together at a constant proportionate rate compounded of the rate of increase of the labour force and the rate of increase of lab ouput per man.We may describe these condition as a 'golden age'

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की समस्या स्थिरता की समस्या नहीं है, बल्कि वह आर्थिक विकास की गति को तेज करने की समस्या है।

रॉबिन्सन ने 'स्वर्ण युग' की बात कही है स्वर्ण युग जब अर्थव्यवस्था पूर्णतः रोजगार की स्थिति में हो।

जनसंख्या की वृद्धि दर, संसाधनों की वृद्धि के बराबर हो, अर्थव्यवस्था में किसी भी प्रकार का कोई आपदा न हो, ऐसी स्थिति 'स्वर्ण युग' कहलायेगी।

अभ्यास प्रश्न 1

1.रिक्त स्थान भरें–

I. रॉबिन्सन ने सन्..... में अपना मॉडल प्रस्तुत किया।

II. रॉबिन्सन मॉडल का उद्देश्य..... देशों की विकास की समस्याओं का समाधान करना है।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

I. रॉबिन्सन ने अपने मॉडल में बात कही है–
1.पूँजीवादी युग 2.समाजवादी युग 3.स्वर्ण युग 4.भौतिक युग

II. रॉबिन्सन की 1956 में प्रकाशित पुस्तक है–
1-Theory of economic development 2-The accumulation of capital 3-Genral theory of employment 4-Trade cycle

3.सत्य असत्य बताइए–

i. जनसंख्या की वृद्वि दर संसाधनों की वृद्वि दर के बराबर होती है तब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार सन्तुलन में होती है। ;सत्य /असत्यद्ध

ii. स्वर्ण युग का समीकरण है–$\Delta I/I = -\Delta S/S$ (सत्य /असत्य)

11.4 जॉन रॉबिन्सन का विकास प्रारुप की विवेचना

11.4.1 मॉडल का गणितीय रूप

इस मॉडल के अनुसार चूंकि उत्पादन के दो ही साधन हैं– पूँजी तथा श्रम। अतः राष्ट्रीय आय, सकल लाभों तथा सकल मजदूरियों का योग होगी।

$$(Y=wn+pk)$$

अर्थात्

कुल आय = (मजदूरी X श्रमिकों की संख्या)

+ (लाभ की दर X पूँजी की मात्रा)

इस समीकरण में,

Y = कुल आय

W = मजदूरी दर

N = श्रमिकों की संख्या

P = लाभ की दर

K = पूँजी की मात्रा

लाभ की दर जो कि पूँजी संचय का आधार है, का मान निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है–

$$P = \frac{Y-wn}{K}$$

$$\frac{\text{राष्ट्रीय आय} - \text{कुल मजदूरी}}{\text{पूँजी की मात्रा}}$$

श्रमिकों को मजदूरी देने के बाद बची हुई शुद्ध राष्ट्रीय आय से पूँजी का अनुपात ही लाभ की दर है। दूसरे शब्दों में लाभ की दर, आय (Y) (श्रम उत्पादकता), वास्तविक मजदूरी दर (W), तथा पूँजी–श्रम अनुपात घट जाता है।

अतः इस प्रकार की स्थितियों में एक साहसी अपने लाभ को अधिकतम कर सकता है। इसी प्रकार

मजदूरी दर :

$$W = \frac{Y-Pk}{N}$$

यहाँ, W = राष्ट्रीय आय–पूँजी का हिस्सा

श्रम की संख्या

व्यय के पक्ष से शुद्ध राष्ट्रीय आय (Y) बराबर होती है,

उपभोग व्यय (c) + निवेश व्यय (I)

$$Y = C+I$$

इस तरह, रॉबिन्सन का यह मॉडल व्यय पक्ष की दृष्टि से केन्स की धारणा को ही स्वीकार करता है।

श्रीमती रॉबिन्सन ने न्यूमैन की धारणा के अनुरूप यह मान लिया है, कि मजदूरियों में से बचत शून्य होती है, क्योंकि मजदूर अपनी समस्त आय को उपभोग पर खर्च कर देते हैं और कुछ भी बचत नहीं कर पाते हैं। बचत उद्यमियों द्वारा की जाती है ।

(उद्यमी लाभों को व्यय न करके केवल विनियोजन करते हैं)

अतः $S=I$

जहाँ $S =$ बचत (Saving)

तथा $I =$ विनियोजन (Investment)

बचत और विनियोग बराबर होते हैं।

जब सम्पूर्ण लाभ विनियोजन के लिए होते हैं, तो किसी निश्चित समय में पूँजी की वृद्धि लाभ की दर तथा पूँजी की मात्रा के गुणनफल के बराबर होती है।

इस पर यह स्पष्ट है कि,यदि मजदूरी निकालकर आय स्थिर रहती है और पूँजी–श्रम अनुपात ऊँचा हो जाता है, तो लाभ की दर कम हो जायेगी और परिणामस्वरूप पूँजी निर्माण की दर कम हो जायेगी।

बचत–निवेश सम्बन्ध को निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं–

$$S= Pk$$

$$I= \Delta K$$

यहाँ ΔK वास्तविक पूँजी में वृद्धि को दर्शा रहा है।

$PK = \Delta K$ $\quad S=I$

या $P = \Delta K/K$ पूँजी में वृद्धि की दर है

अथवा पूँजी संचय की दर है।

इस प्रकार गणितीय विश्लेषण से आप समझ चुके होंगें कि ,–

पूँजी संचय की दर $(\Delta K/K)$ क्योंकि लाभ की दर (P) के बराबर ही है इसलिए पूँजी संचय की मात्रा भी उन्हीं घटकों पे निर्भर करती है जिन पर लाभ की मात्रा निर्भर करती है पूँजी संचय (ΔK) की मात्रा के अतिरिक्त एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटक है जनसंख्या वृद्धि, जिससे विकास की दर सम्बन्धित है।

यदि जनसंख्या अथवा श्रम शक्ति में वृद्धि पूँजी संचय की तुलना में कहीं अधिक हो जाती है तो इसके कारण श्रम उत्पादकता घटेगी। बेराजगारी की समस्या भी बढ़ेगी और अन्य अनेक समस्यायें स्वयं और उत्पन्न होंगी।

रॉबिन्सन ने यह विचार भी स्पष्ट किया कि पूर्ण रोजगार की स्थिति तब तक ही सम्भव है, जब तक जनसंख्या की वृद्धि के अनुपात में उतनी ही पूँजी वृद्धि की दर चलती रहे।

अभ्यास प्रश्न 2

1. **रिक्त स्थान भरें:–**

1.राष्ट्रीय आय.....का योग है।

2.वृद्वि अनुपात में स्थिरता बनी रहने से ही .....की स्थिति बनी रहती है।

3.तकनीकी प्रगति .....है।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न–

1,रॉबिन्सन के विकास प्रारूप में उत्पादन के साधन हैं।

a.दो b.चार c.तीन d.एक

2.स्वर्ण युग से विचलन होता है–

a.जब जनसंख्या की वृद्वि दर पूँजी की वृद्वि दर से अधिक होती है।

b.जब जनसंख्या की वृद्वि दर पूँजी की वृद्वि दर से कम होती है।

c.जब जनसंख्या की वृद्वि दर पूँजी की वृद्वि दर से बराबर होती है।

d.उपर्युक्त दोंनों।

3.सत्य असत्य बताइए–

1. पंगु स्वर्ण युग की विशेषता हैः– पूँजी संचय की दर पूर्ण रोजगार के लिए आवश्यक दर से अधिक होती है। (सत्य /असत्य)

2.श्रमिक अपनी मजदूरी उपभोग पर व्यय करते हैं।(सत्य /असत्य)

11.4.2 स्वर्ण युग (Golden Age)

अब आप रॉबिन्सन के विकास प्रारूप के स्वर्ण युग का अध्ययन करेंगें....

इस प्रकार एक ओर पूंजी की वृद्धि–दर (Δ K/K) और जो अर्थव्यवस्था की वृद्धि–दर (Δ छध्छद्ध है, को निर्धारित करती है। जब जनसंख्या की वृद्धि–दर पूँजी की वृद्धि दर के बराबर हो जाती है तो अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार संतुलन में होती है।

(Δ N/N) =(Δ K/K) ऐसी स्थिति में पूँजी तथा श्रम का पूर्ण नियोजन होता है और इस आधार पर अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर निर्धारित होती है। जब ये दोनों दरें समान होती हैं, तो देश की अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार संतुलन में होती है,

रॉबिन्सन के अनुसार यही 'स्वर्ण युग' Golden Age है।

अर्थात् (Δ N/N) =Δ K/K) Golden Age

इस स्वर्ण युग के विषय में श्रीमती रॉबिन्सन ने लिखा है– कि जब यांत्रिक प्रगति धीरे–धीरे होती रहती है, तब बिना उत्पादन व्यवस्थाओं में आमूल परिवर्तन के प्रतियागितात्मक व्यवस्था स्वतन्त्र रूप से कार्य करती है, जनसंख्या मंद गति से बढ़ती है और पूँजी संचय, श्रम की पूर्ति तथा उत्पादन क्षमता की तुलना में अधिक तेजी से होता है। लाभ की दर भी लगभग स्थिर रहती है ओर प्रति व्यक्ति उत्पादन के साथ वास्तविक मजदूरियों में वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था में कोई आन्तरिक अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होने पाती। साहसियों को भविष्य के विषय में निश्चितता होती है, उनकी संचय प्रवृत्ति यथास्थिर पूर्ववत् बनी रहती है। कुल वार्षिक उत्पादन और पूँजी की मात्रा (वस्तुओं के रूप में मूल्यांकित किये जाने पर) श्रम शक्ति तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि के सन्दर्भ में स्थिर अनुपात से बढ़ती रहती है। इसी को श्रीमती रॉबिन्सन ने 'स्वर्ण युग' कहा है।

इस प्रकार रॉबिन्सन के विकास प्रारूप के स्वर्ण युग **के अध्ययन को आप अर्थव्यवस्था की सबसे ठीक स्थिति समझ सकतें हैं।**

संक्षिप्त रूप में यह एक ऐसी आदर्श अवस्था है जिसमें न तो जनसंख्या और न ही उत्पादन अथवा पूँजी संचय में कमी अथवा अधिकता जैसी कोई असामान्य स्थिति उत्पन्न होने पाती है।

स्वर्णयुग की स्थापना के लिए लाभ तथा मजदूरी का सामंजस्य आवश्यक है।
लाभों की दर स्थिर रहने के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं–

1.जनसंख्या का स्थिर अनुपात में बढ़ना।

2.श्रम–आधिक्य के लिए पूँजी–संचय का काफी तेजी से बढ़ना।

3.प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के साथ वास्तविक मजदूरी का स्तर बढ़ना।

इस व्यवस्था में पारस्परिक विरोध नहीं होता, क्योंकि कुल वार्षिक आय तथा पूँजी स्टॉक समान रहते हैं। यह स्थिति 'स्वर्ण युग' कहलाती है।

स्वर्ण युग से विचलन

रॉबिन्सन ने अपने मॉडल में स्वर्ण युग के विचलन की भी बात कही है।
अर्थव्यवस्था 'स्वर्ण युग' के इस रास्ते अथवा बिन्दु से यदि हटती है तो भी इस बात की काफी सम्भावनाए रहती हैं कि वह पुनः संतुलन की स्थिति प्राप्त कर लेगी।
यहाँ पर एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि यदि यह संतुलन भंग हो जाये तो क्या अर्थव्यवस्था में ऐसा कोई विकल्प है, जिसकी सहायता से इसे पुनः प्राप्त किया जा सके ?इस विषय का अध्ययन करने से पहले हम यह बता देना उचित समझेंगे कि दो ऐसी स्थितियां हो सकती हैं, जिनमें यह सन्तुलित स्थिति (स्वर्णयुग) नहीं पाई जाती।ये स्थितियां इस प्रकार हैं–

यदि जनसंख्या वृद्धि दर पूँजी की वृद्धि से अधिक है, अर्थात् $(\Delta N/N) = (\Delta K/K)$ तो वह अल्प रोजगार की स्थिति को जन्म देती है। इस स्थिति में श्रमिकों की अधिकता मजदूरी की दर को घटा देती है और कीमतों में स्थिरता रहने से वास्तविक मजदूरी कम हो जाती है। इसका परिणाम यह होगा कि लाभ की दर बढ़ जायेगी जो पूँजी की वृद्धि दर को जनसंख्या स्तर तक बढ़ा देगी। इसके विपरीत यदि पूँजी की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक है।

(अर्थात् $(\Delta K/K) > \Delta N/N$) तो प्राविधिक सुधारों एवं पूंजी–श्रम अनुपात या उत्पादकता में परिवर्तनों के द्वारा साम्य की स्थिति लाई जा सकती है।

जॉन रॉबिन्सन के मॉडल की व्याख्या चित्र के द्वारा की जा सकती है–चित्र में OP उत्पादन फलन को व्यक्त करता है, जिसका प्रत्येक बिन्दु श्रम व पूँजी के अनुपात को प्रदर्शित करता है।

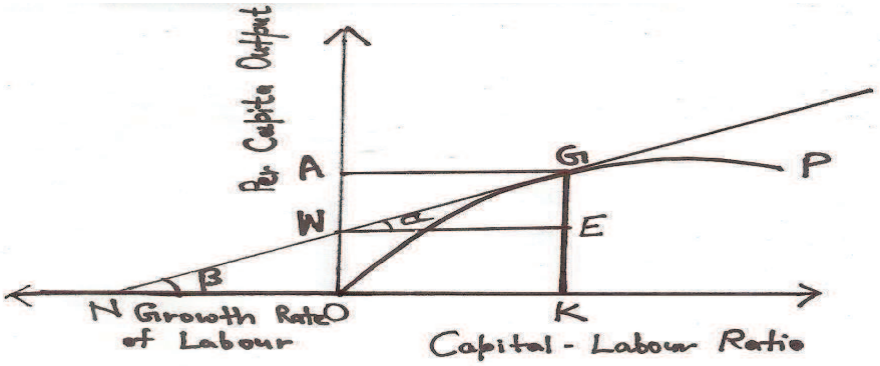

पूँजी–श्रम अनुपात मजदूरी–लाभ सम्बन्ध को ज्ञात करने हेतु हमOP वक्र पर एक स्पर्श रेखा BT khicte है, जो OP को G बिन्दु पर काटती है तथा खड़े अक्ष को W पर काटती है। G बिन्दु स्वर्ण युग का पूँजी–श्रम अनुपात है जो Ok के बराबर है। प्रति व्यक्ति उत्पादन OA के बराबर है जिसमें से OW मजदूर दे दी जाती है तथा AW अतिरिक्त है जो पूंजी पर लाभ की दर बताता है।

इससे सिद्ध होता है कि पूंजी की वृद्धि दर श्रम की वृद्धि दर के बराबर है अतः पूंजी की वृद्धि दर (Δ K/K) श्रम की वृद्धि दर(Δ N/N) के बराबर हो जाती है।

$$\Delta K/K = \Delta N/N$$

EG/EW व्यक्त करता है Δ K/K और OW/ON व्यक्त करता है Δ N/N को अतः EG/EW = OW/ON क्योंकि Tan – tan B

रॉबिन्सन के अनुसार स्वर्ण युग की स्थिति सम्भाव्य वृद्धि अनुपात (Potential growth Rate) में ही बन सकती है। सम्भाव्य वृद्धि अनुपात पूंजी संचय की चरम सीमा को प्रकट करता है जो लाभ की स्थिर दर पर सदैव ही निर्धारित की जा सकती है।

अतः वृद्धि अनुपात में स्थिरता बनी रहने से ही स्वर्ण युग की स्थिति बन सकती है, अन्यथा नहीं।

परिस्थितियों में परिवर्तन होने से स्वर्ण युग की स्थिति भी बदलती है। स्थिर अवस्था स्वर्ण युग की एक विशिष्ट अवस्था है। इसमें विकास अनुपात शून्य होता है लाभ की दर शून्य होती है और उद्योगों के उत्पादन का कुल भाग मजदूरियों के रूप में ही समाप्त हो जाता है।

इस अवस्था को श्रीमती रॉबिन्सन ने आर्थिक मोक्ष की अवस्था कहा है क्योंकि इस अवस्था में अभोग अपने अधिकतम स्तर पर होता है और ऐसा स्थायी रूप से दी हुई यांत्रिक दशाओं में भी सम्भव हो सकता है।

11.4.3 स्वर्ण युग के अन्य रूप

आपने रॉबिन्सन के मॉडल **में स्वर्ण युग की अवधारणा का अध्ययन किया..... अब आप** रॉबिन्सन द्वारा बताए गए स्वर्ण युग के कुछ अन्य रूपों का भी उल्लेख किया है–

1. **पंगु स्वर्ण युग (Limping Golden Age)**–यह वह स्थिति है जब पूँजी संचय की दर पूर्ण रोजगार के लिए आवश्यक दर से कम होती परन्तु फिर भी वह जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक होती है। यह अवस्था अर्थव्यवस्था का धीरे–धीरे स्वर्ण युग की तरफ बढ़ने का संकेत करती है।

2. **सीसा युग (A Leaden Age)**–यह पंगु स्वर्ण युग का दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। इसमें पूंजी–संचय की दर जनसंख्या की वृद्धि दर से कम होती है। बेरोजगारी में वृद्धि होती है, तथा तकनीकी प्रगति अवरुद्ध हो जाती है।

3. <u>प्रतिबन्धित स्वर्ण युग</u> **(Restrained Golden Age)**–इस अवस्था में पूर्ण रोजगार भी विद्यमान रहता है और पूंजी संचय भी परन्तु साम्य की यह स्थिति Δ छध्छ त्रΔज्ञध के कारण न उत्पन्न होकर किन्हीं अन्य कारणों तथा श्रम संघों के दबाव अथवा सरकारी प्रतिबन्धों व आदेशों के फलस्वरूप होती है।

4. <u>रेंगता हुआ प्लैटिनम युग</u> **(Creeping Platinum Age)**–इस अवस्था में पूर्ण रोजगार होता है। पूंजी गहन तकनीकी अपनायी जाती है।फिर भी लाभ घटने लगते हैं और जब यह घटकर मजदूरी दर के बराबर हो जाते हैं। तब पूंजी संचय और स्टॉक का समायोजन होने पर अर्थव्यवस्था स्थैतिक रूप ग्रहण कर लती है।

5. <u>उछलता–कूदता प्लैटिनम युग</u> **(Galloping Platinum Age)**–इस अवस्था के प्रारम्भ में बेरोजगारी होती है, परन्तु लाभों के बढ़ने के कारण रोजगार बढ़ने लगता है। तीव्र लाभ लालसा पूंजीगत निवेश को बढ़ावा देती है, जिसके फलस्वरूप लाभ तथा रोजगार दोनों बढ़ते हैं। विकास की गति भी बढ़ती है, परन्तु धीरे–धीरे पूंजी निवेश पर मिलने वाला लाभ घट जाता है और अंततः यह अवस्था समाप्त हो जाती है।

6. <u>दोगला स्वर्ण युग</u> **(Bastard Golden Age)**–यह वह युग है, जिसमें बेराजगारी विद्यमान रहती है। फिर भी संगठित होने के कारण श्रमिक काम करने तथा उत्पादकता बढ़ाने को तैयार नहीं होते। फलस्वरूप पूंजी संचय तथा तकनीकी प्रगति का कार्य रुक जाता है। बेराजगारी के साथ–साथ मुद्रा स्फीति भी बढ़ती है। अर्थव्यवस्था में नरक सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है तथा ऊँची मौद्रिक तथा वास्तविक मजदूरी विकास में बाधक सिद्ध होने लगती है।

7. <u>दोगला प्लैटिनम युग</u> **(Bastard Platinum Age)**–यह वह युग है जिसमें तकनीकी प्रगति होती है पूंजी संचय भी होता है तथा पूर्ण रोजगार भी विद्यमान रहता है परन्तु इसके बावजूद श्रमिकों की वास्तविक आय नहीं बढ़ने पाती है।

11.4.4 तकनीकी प्रगति (Technical Progeres)

अब तक आप स्वर्ण युग की परिकल्पनाओं को ठीक प्रकार समझ चुके हैं... अब हम तकनीकी प्रगति के विषय में अध्ययन करेंगें

तकनीकी प्रगति रॉबिन्सन के मॉडल में तटस्थ है। परन्तु तकनीकी प्रगति श्रम की मांग व पूर्ति पर निर्भर करती है।

जब फर्मे अपने इर्द–गिर्द प्रसार कर रही लाभदायक मार्केटों का फायदा उठाने में असमर्थ होती है तो वे श्रम–बचतकारी तरीकों को अपनाने का प्रयत्न करती है।

ऐसा इसलिए है कि तकनीकी प्रगति की दर को जनसंख्या की वृद्धि दर को शून्य मानते हुये प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि परिभाषित किया गया है। फिर भी वृहद बेरोजगारी होने पर भी तकनीकी प्रगति होती रहती है।

जॉन रॉबिन्सन के अनुसार– ज्ञान की वृद्धि से ''स्वायत्त नवप्रवर्तन'' फर्मों में प्रतियोगिता से ''प्रतियोगी नवप्रवर्तन'' तथा श्रम की कमी से ''प्रेरित नवप्रवर्तन'' हो सकते हैं। मॉडल के दृष्टिकोण से वृद्धि की इच्छित दर प्रतियोगी और स्वायत्त नवप्रवर्तन के कारण वृद्धि की सम्भाव्य दर से कम हो सकती है। इच्छित वृद्धि दर संचय की दर हैं जो जिस स्थिति में फर्मे अपने आपको पाती हैं।

उसी में उन्हें संतुष्ट बनाये रखती है। इच्छित वृद्धि दर संचय की दर के कारण जो लाभ दर होती है उस द्वारा निर्धारित होती है तथा संचय की दर उस लाभ की दर द्वारा प्रेरित होती है।

रेखाचित्र द्वारा तकनीकी प्रगति को आप ठीक प्रकार समझ सकेंगें–

चित्र में, वक्र A लाभ की सम्भावित दर को व्यक्त करता है जो संचय की दर की फलन है।

वक्र I संचय की दर को व्यक्त करता है जो संचय की दर की फलन है।

वक्र I संचय की दर को व्यक्त करता है जो लाभ की दर की फलन है। बिन्दु D के दाई ओर किसी भी स्थिति में लाभ की सम्भावित दर संचय की दर से कम होती है। इसलिए निवेश बढ़ाने की प्रवृत्ति होती और संचय की दर बढ़ कर बिन्दु क तक पहुँच जायेगी।

इस प्रकार बिन्दु D इच्छित वृद्धि दर को व्यक्त करता है।

दूसरी ओर सम्भाव्य वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि और तकनीकी ज्ञान से उत्पन्न होने वाली भौतिक स्थितियों पर निर्भर करती।

11.5 रॉबिन्सन तथा हैरड–डोमर मॉडल में सम्बन्ध

प्रो0 कुरिहारा ने रॉबिन्सन एवं हैरड–डोमर मॉडलों के बीच सम्बन्ध को निम्नवत् व्यक्त किया है –

$$P=\Delta K/k = Y\text{-}wn/k$$

या $P=Y/y \quad y\text{-}wn/k$

(समीकरण के दायीं तरफ के भाग को Y से गुणा तथा भाग देने पर)

या $P= Y/K \left(\frac{Y- WN}{Y}\right)$

या $P= \left(\frac{Y - S}{Y}\right)$

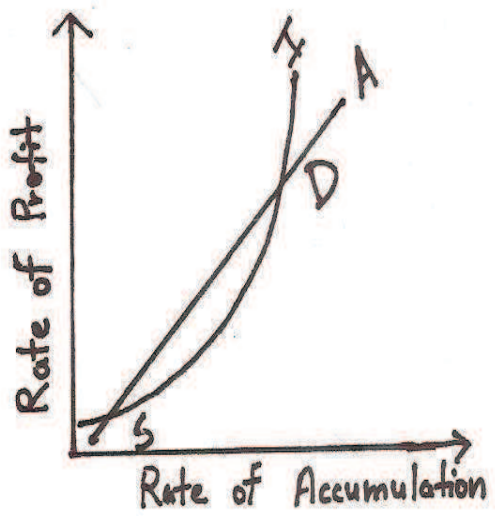

आय तथा WN व्यय को व्यक्त करता है। अतः इनका अन्तर बचत (S I) है यहाँ Y/K पूँजी की उत्पादकता अर्थात् O तथा S/Y औसत क्या प्रवृत्ति अर्थात् O है।

: $\Delta K/k = O$ (डोमर के वृद्धि माडल में $\Delta K/k = \Delta Y/Y$)

इस तरह यह डोमर का वृद्धि समीकरण है

तथा $G = S/C$

पुनः $\Delta K/k = G, L=S$

$O=1/C$ यह Harrod का वृद्धि समीकरण है।

समानताएँ

उपर्युक्त सम्बन्ध यह स्पष्ट करता है कि दोनों मॉडल प्रकृति में समान हैं तथा समान परिणाम देते हैं अर्थात् अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर बचत–आय अनुपात तथा पूँजी की उत्पादकता पर निर्भर करती है। दोनों मॉडलों में स्थिर पूंजी गुणांक तथा तकनीकी तटस्थ की धारणा को अंगीकार किया गया है।

असमानतायें

1. हैराड–डोमर मॉडल में पूंजी संचय का निर्धारण बचत–आय अनुपात तथा पूंजी की उत्पादकता द्वारा होता है जबकि जॉन रॉबिन्सन के मॉडल पूंजी संचय को लाभ–मजदूरी सम्बन्ध तथा श्रम की उत्पादकता द्वारा निर्धारित किया गया है।
2. हैराड–डोमर मॉडल में पूंजी ही पूंजी संचय का प्रमुख कारक है, जबकि जॉन रॉबिन्सन के मॉडल में श्रम को पूंजी संचय का कारक माना गया है।
3. हैराड–डोमर मॉडल व्यापार चक्रो की समुचित व्याख्या करता है जबकि रॉबिन्सन का मॉडल व्यापार चक्रों के स्पटीकरण की उपेक्षा करता है।
4. जब लगभग पूर्ण रोजगार पर इच्छित वृद्धि दर सम्भाव्य वृद्धि दर के बराबर होती है तो अर्थव्यवस्था स्वर्ण युग में है। तकनीकी प्रगति के कारण प्रति व्यक्ति उत्पादन जब बढ़ रहा होता है, तो वास्तविक मजदूरी दर में वृद्धि होती है। परन्तु पूंजी पर लाभ की दर स्थिर रहती है। तथा लाभ की दर के अनुरूप उत्पादन की तकनीकों का चुनाव किया जाता है यही रॉबिन्सन का स्वर्ण युग है।

11.6 श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के मॉडल की सीमायें

आपनें रॉबिन्सन मॉडल के सभी सकारात्मक तथ्यों का अध्ययन कर लिया है। अब हम रॉबिन्सन के विकास प्रारूप की सीमाओं का अध्ययन करेंगें–

श्रीमती रॉबिन्सन का मॉडल हैरॉड की वृद्धि मॉडल का विस्तार है। सम्भाव्य वृद्धि दर हैरड की प्राकृतिक वृद्धि दर है।

स्वर्ण युग में वास्तविक (G) तथा प्राकृतिक वृद्धि (Gn) दरें एक–दूसरे के बराबर होती हैं और अभीष्ट वृद्धि दर (Gw) उनके अनुरूप होती है। दोनों, तटस्थ तकनीकी परिस्थितियों तथा स्थिर बचत–अनुपात को स्वीकार करते हैं। पर जॉन रॉबिन्सन का पूंजी संचय का सिद्धान्त मजदूरी सम्बन्ध तथा श्रम–उत्पादकता पर निर्भर है। इसके विपरीत हैराड का

सिद्धान्त बचत–आय अनुपात तथा पूंजी उत्पादकता पर निर्भर है। रॉबिन्सन का मॉडल पूंजी संचय में श्रम के महत्त्व पर बल देता है। जबकि हैरॉड का पूंजी के महत्त्व पर।

प्रो0 कुरिहारा के अनुसार– केन्स के बाद वृद्धि अर्थशास्त्र में श्रीमती रॉबिन्सन का प्रमुख योगदान यह होता है कि उसने क्लासिकल मूल्य और वितरण प्रतीत सिद्धान्त तथा केन्ज के आधुनिक बचत–निवेश सिद्धान्त का एक सांमजस्यपूर्ण प्रणाली में एकीकरण कर दिया। परन्तु ''यदि श्रम–उत्पादकता मजदूरी दर, लाभ दर और पूंजी–श्रम अनुपात व्यावहारिक नीति के लक्ष्य न माने जायें तो इसमें इतना सुधार नहीं हो सकता कि राजकोषीय मौद्रिक नीति प्राचलों का प्रवर्तन कर सके जितना कि पूर्णतया योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में उन्हें ऐसा समझा जाये।''

मॉडल की कमियॉ (Weaknesses of the Model)

इस मॉडल की निम्न कमियाँ हैं–

1. **आर्थिक वृद्धि को निजी लाभ–प्राप्तकर्ताओं पर छोड़ना सही नहीं (Not right to laeave economics growth to private profit makers)** –''जॉन रॉबिन्सन की पूंजी–वृद्धि की चर्चा का यह व्यापक प्रभाव पड़ता है कि आर्थिक वृद्धि जैसी महत्त्वपूर्ण समस्या खेल के पूँजीवादी नियमों पर छोडने का समस्त विचार अस्वीकार करना पड़ता है क्योंकि उसका स्वतन्त्र वृद्धि का मॉडल यह प्रदर्शित करता है कि बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं तथा उन्नतिशील प्रौद्योगिकी के अनुरूप अर्थव्यवस्था की आर्थिक वृद्धि करने का परम कार्य निजी लाभ प्राप्तकर्ताओं पर छोड़ना कितना विपत्तिजनक तथा असुरक्षित है।''
2. **बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy)**–जॉन रॉबिन्सन का मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था की मान्यता पर आधारित है। परन्तु विकसित देशों की अर्थव्यवस्थायें बन्द नहीं बल्कि खुली होती हैं, जिनमें उनके विकास की दर को बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण कार्य विदेशी व्यापार एवं विदेश पूंजी करते हैं।
3. **संस्थानिक साधनों की उपेक्षा (Neglect of institutional Factors)**–यह मॉडल संस्थानिक साधनों को दिये हुये मानकर चलता है, परन्तु किसी भी मॉडल में आर्थिक वृद्धि के एक निर्धारक के रूप में संस्थानिक साधनों के कार्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।अर्थव्यवस्था का विकास काफी हद तक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा संस्थानिक परिवर्तनों पर निर्भर करता है।
4. **स्थिर कीमत स्तर (Constant Price leavel)**–यह मॉडल स्थिर कीमत स्तर की मान्यता पर आधारित है परन्तु यह मान्यता अवास्तविक है। जब एक अर्थव्यवस्था प्रगति के मार्ग पर अग्रसर रहती है। तो इसके लिए निवेश की मात्रा लगातार बढ़ाई जाती है, जिससे साधनों की मांग भी निरन्तर बढ़ती रहती है। परन्तु उसकी पूर्ति को मांग के अनुसार बढ़ाया नहीं जा सकता।

   इस कारण कीमतों में वृद्धि होती जाती है। अतः वृद्धि के साथ कीमतों में वृद्धि अनिवार्य है।

5. **उत्पादन के स्थिर गुणांक नहीं होते (No Fixed C0-efficinets of production)** –रॉबिन्सन यह मानती हैं कि उत्पादन की एक दी हुई मात्रा उत्पादित करने के लिए पूंजी और श्रम स्थिर अनुपातों में लगाये जाते हैं, यह एक अवास्तविक मान्यता है क्योंकि एक गत्यात्मक अर्थव्यवस्था में उत्पादन के स्थिर गुणांक नहीं होते हैं। बल्कि समय के साथ पूंजी और श्रम में स्थानापन्नता होती है। तथा स्थानापन्नता की कोटि रहती प्रौद्योगिकी परिवर्तनों की प्रकृति पर निर्भर करती है।

11.7 श्रीमती रॉबिन्सन के मॉडल का अर्थव्यवस्था में महत्त्व

आपने रॉबिन्सन मॉडल के विभिन्न तथ्यों को भली प्रकार अध्ययन कर लिया है। इसके द्वारा आप रॉबिन्सन मॉडल को ठीक प्रकार समझ सकतें है।रॉबिन्सन का मॉडल अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी है–

1.विकासशील अर्थव्यवस्था–इस सिद्धान्त में विकासशील अर्थव्यवस्था में जनसंख्या का पूंजी–संचय की दर पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। योजनाबद्ध आर्थिक विकास की सहायता से कोई भी देश ''स्वर्ण युग'' को प्राप्त कर सकता है।

2.सम्भाव्य वृद्धि अनुपात– स्वर्ण युग वृद्धि अनुपात पर निर्भर करता है। श्रम–शक्ति की बृद्धि पर एवं प्रति व्यक्ति उत्पादन के आधार पर सम्भाव्य वृद्धि अनुपात का हिसाब ठीक ढंग से लगाकर योजना कार्य आसान किया जा सकता है।

3.अल्प–रोजगार की प्रवृत्ति– पूंजी दर की अपेक्षा जनसंख्या की वृद्धि अधिक होने पर अल्प–रोजगार की प्रवृत्ति का सामना करना पड़ता है।

रॉबिन्सन के मॉडल में कीमत स्तर को स्थिर माना गया है। इनके मॉडल में दो भाग हैं–1. क्लासिकल, 2.कीन्सीयन।

आय (Income) पक्ष और व्यय पक्ष दोनों को जोड़ दिया जाये तो इनका मॉडल एक महत्त्वपूर्ण मॉडल बन जाता है।

रॉबिन्सन के मॉडल की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यह जनसंख्या व मानव शक्ति की पूर्ति की आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक मानते हैं।

इन देशों में जनसंख्या के आधिक्य की कठिनाई दूर करने के लिए विकास की समस्या का विश्लेषण श्रम के दृष्टिकोण से किया गया है। अल्प–विकसित देशों के लिए आय की वृद्धि की उचित दर वह होगी जो जनसंख्या वृद्धि की दर और पूंजी निर्माण की दर में समानता स्थापित कर सके।

11.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ चुके हैं कि जॉन रॉबिन्सन का मॉडल एक विकासशील अर्थव्यवस्था में जनसंख्या वृद्धि की समस्या को स्पष्ट रूप से सम्मिलित करता है और पूंजी संचय की दर तथा उत्पादन वृद्धि पर जनसंख्या के प्रभावों का विश्लेषण करता है। उनका मॉडल दो आधारभूत तथ्यों पर आधारित है–

1. पूँजी–निर्माण आय के वितरण पर निर्भर होती है।
2. श्रम के प्रयोग की दर पूंजी की पूर्ति और श्रम की पूर्ति पर निर्भर होती है।

अर्थव्यवस्था में रॉबिन्सन द्वारा दी गयी सभी मान्यताओं को मानते हुये सन्तुलन की दशा में बचत विनियोग के बराबर होनी चाहिये।

अर्थात~ $S=I$

आप जानते है कि रॉबिन्सन यह मानती हैं कि श्रमिक अपनी समस्त आय उपभोग पर व्यय कर देते हैं और मजदूरी में से शून्य बचत होती है। इसके दूसरी ओर साहसियों के समस्त लाभ का विनियोग कर दिया जाता है।

इन दशाओं में $S= PK$ और $I= \Delta k$,

$\Delta k=$ वास्तविक पूंजी की वृद्धि

$S= I$

$PK=\Delta k$

अर्थात् $P=\Delta K/K$

पूंजी संचय की दर $(\Delta K/K)$ लाभ की दर (P) के बराबर होती है और इसलिए यह कहा जा सकता है कि पूंजी संचय की दर उन्हीं बातों से निर्धारित होती है और लाभ की दर को निर्धारित करती है।

रॉबिन्सन ने अपने मॉडल में स्वर्ण युग की बात कही है।

'स्वर्ण युग' वह स्थिति है, जिसमें पूर्ण रोजगार की स्थिति अर्थव्यवस्था में विद्यमान होती है। इस स्थिति में,पूंजी की वृद्धि दर, जनसंख्या की वृद्धि दर के बराबर होती है।

तकनीकी प्रगति तटस्थ होती है, और स्थिरता के साथ बढ़ती है, उत्पादन के प्रतिरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

प्रतियोगी यंन्त्र स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर रहा होता है जनसंख्या वृद्धि एक ही दर से होती है और समस्त उपलब्ध श्रम को उत्पादक पूंजी प्रदान करने के लिए पूंजी संचय प्राप्त तेजी के साथ होता है, लाभ की दर स्थिर रहने की प्रवृत्ति होती है और प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होने के साथ–साथ मजदूरी बढ़ती है। ऐसी दशा में अर्थव्यवस्था में कोई आन्तरिक अन्तर्विरोध नहीं होता है–

तब वार्षिक उत्पादन और पूंजी का स्टॉक श्रम शक्ति की वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन के एक निश्चित यौगिक अनुपात में बढ़ता है। इन सारी दशाओं की रॉबिन्सन ने 'स्वर्ण युग' कहा है।

$$\boxed{\Delta N/N =\Delta k/k}$$

यदि $\Delta N/N > \Delta k/k$

अर्थात् जब अर्थव्यवस्था में जनसंख्या वृद्धि की दर पूंजी संचय की दर से अधिक होती है तो अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है ।

अधिकांश अल्पविकसित देशों में ऐसी ही स्थिति पायी जाती है।

इस स्थिति से अर्थव्यवस्था वापस लौटती अथवा नहीं, यह लाभ मजदूरी सम्बन्ध के व्यवहार पर निर्भर करता है।

पर रॉबिन्सन यह मानती हैं कि अर्थव्यवस्था में श्रम की अधिकता जल्दी या देर से मौद्रिक मजदूरी की दर को गिरा देगी, जिसके कारण वास्तविक मजदूरी की दर गिर जायेगी। वास्तविक मजदूरी की दर नीची होने के कारण लाभ की दर अधिक हो जायेगी, अधिक मात्रा में पूंजी का संचय किया जायेगा और वह जनसंख्या वृद्धि दर के बराबर पहुंच जायेगा।

इस प्रकार फिर से 'स्वर्ण युग' संतुलन स्थापित हो जायेगा। यदि वास्तविक मजदूरी की दर गिरती है, तो यह संतुलन पुनः स्थापित नहीं हो सकेगा।

आप जानते हैं कि रॉबिन्सन ने स्वर्ण युग से विचलन की बात कही है ऐसी स्थिति में, इसके दूसरी ओर यदि पूंजी संचय की छः जनसंख्या वृद्धि की दर से अधिक होती है। अर्थात् यदि $\Delta N/N > \Delta k/k$ तो ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था में पूंजी संचय की अधिकता तथा श्रम की कमी पायी जायेगी । ऐसा विकसित देशों के सम्बन्ध में इस प्रकार की दशाओं में तकनीकी सुधार के द्वारा समस्त उत्पादन फलन को बदल कर स्थापित किया जासकता है। जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था ऊँचे पूंजी–श्रम अनुपात पर अपना सामंजस्य कर लेती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि अर्थव्यवस्था स्वर्ण युग से हट जाती है तो कुछ दशाओं में फिर संतुलन स्थापित करना सम्भव होता है किन्तु आत्मविकसित देशों की अपेक्षा विकसित देशों की 'स्वर्ण युग' संतुलन के मार्ग पर लौटने की सम्भावना अधिक होती है।

जॉन रॉबिन्सन 'स्वर्ण युग' को आर्थिक मोक्ष की अवस्था कहती है, जिसमें उपभोग अधिकतम सम्भव दर से बढ़ रहा होगा।

11.9 शब्दावली

1.पूँजी संचय–रॉबिन्सन ने अपने विकास प्रारूप में संचय की दर को महत्त्वपूर्ण कारक माना है, जो केवल उद्यमी वर्ग ही करता है, और निवेश भी उद्यमी ही करता है। पूँजी संचयन की दर लाभ की दर तथा निवेश की दर को निर्धारित करती है, निवेश की दर लाभ की दर को प्रभावित करती है और लाभ की दर स्वयं पूँजी संचय की दर को निर्धारित करती है।

2.बन्द अर्थव्यवस्था–रॉबिन्सन का मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था पर आधारित है। बन्द अर्थव्यवस्था से तात्पर्य ऐसी अर्थव्यवस्था से है, जहाँ विदेशी व्यापार नहीं होता अर्थात् आयात–निर्यात पूर्णतः बाधित रहता है।

3.तकनीकी प्रगति–रॉबिन्सन के मॉडल में तकनीकी प्रगति तटस्थ है। तकनीकी प्रगति से तात्पर्य, नवप्रवर्तन, विकास ज्ञान में वृद्धि आदि अनेकों परिवर्तन से है।

4.तटस्थ –तटस्थ से तात्पर्य एक समानता से है। अर्थात् कोई भी परिवतन दिखाई न देना।

5.उद्यमी–उद्यमी से तात्पर्य साहसी से है जो विनियोग करता है। रॉबिन्सन ने उद्यमी को महत्त्वपूर्ण माना है क्योंकि इनके मॉडल में बचत केवल साहसी करते हैं, और विनियोग केवल साहसी ही करते हैं, और मजदूरी की बचत की दर त्रब्–त्रव है।

6.बचत–बचत से तात्पर्य बचाने से है। आय का वह भाग उपभोग या विनियोग न किया जाये रॉबिन्सन के अनुसार बचत केवल उद्यमी वर्ग ही करता है, और निवेश भी वही करता है।

7.उपभोग–व्यक्ति अपनी आय का उपयोग मुख्यतः दो भागों में करता है– बचत तथा उपभोग, रॉबिन्सन के अनुसार उद्यमी वर्ग बचत तथा विनियोग करते हैं, श्रमिक वर्ग केवल उपभोग करते हैं।

8.स्वर्ण युग–जब जनसंख्या की वृद्धि दर पूँजी की वृद्धि दर के बराबर होती है तो रॉबिन्सन के अनुसार यह स्वर्ण युग की स्थिति होती है।

$$\Delta N/N = \Delta k/k = \text{Golden Age}$$

रॉबिन्सन ने इसे अर्थव्यवस्था की अनोखी स्थिति कहा है, क्योंकि इस युग में पूर्ण रोजगार की स्थिति होती है।

9.अल्पविकसित देश–अल्प विकसित देशों से तात्पर्य कम विकसित देशों से है। जहाँ विकास कम हुआ है। अल्प विकसित देशों में सामान्यतः बेरोजगारी की स्थिति पायी जाती है, और जनसंख्या भी अधिक होती है।इन देशों में पूर्ण रोजगार तब ही सम्भव है, जब जनसंख्या की वृद्धि दर पूँजी की वृद्धि दर के बराबर हो।

अभ्यास प्रश्न 3 –

1.रॉबिन्सन का मॉडल किस प्रकार की अर्थव्यवस्था पर आधारित है ?
2. आय के वितरण के लिए दो वर्ग कौन–कौन से हैं ?
3. रॉबिन्सन ने किस वर्ग को बचत और निवेश का उत्तरदायी माना है ?
4. अर्थव्यवस्था में 'स्वर्ण युग' की स्थिति कब रहती है ?
5. रॉबिन्सन का विकास मॉडल किस मॉडल का विस्तार है ?

11.10 उत्तर–

अभ्यास 1

रिक्त स्थान भरें–(i) 1956। (ii) अल्पविकसित।

2–बहुविकल्पीय प्रश्न–**(i) स्वर्ण युग। (ii)The Accumulation of Capital.**

3–सत्य असत्य बताइए–**(i)** सत्य**(ii)** असत्य

अभ्यास 2

रिक्त स्थान भरो–(i) सकल आय तथा सकल मजदूरी।(ii) स्वर्ण युग।(iii) तटस्थ।

2–बहुविकल्पीय प्रश्न–**(i) दो।(ii)उपर्युक्त दोनों ।**

3–सत्य असत्य बताइए–**(i)** असत्य।**(ii)** सत्य।

अभ्यास 3

1.बन्द अर्थव्यवस्था। 2.उद्यमी तथा श्रमिक। 3.उद्यमी। 4.जब ''$\Delta N/N = \Delta K/K$. 5.हैरॉड के वृद्धि मॉडल।

11.11 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ

5. कुलवन्त राय गुप्त 2009–विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन इतिहास, सिद्धान्त।
6. टी0 आर0 जैन, वी0 के0 ओरी–2006–07 ''डेवलेपमेन्ट इकोनोमिक्स'' वी0 के0 पब्लिकेशन।
7- Development Studies, Vols 1 &2, Ed. Robin Gnosh, K.R. Gupta a and Premjit Malti.
8- Kenneth K. Kurihava, the Keynesion theory of Economic Development (London-1961) P. 79-80.

11.12 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

1. अग्रवाल ए0एन0, (2006) ''इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)'' आशीष पब्लिशिंग हाऊस, सिन्हा वी.सी.(2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
2. एस. पी. सिहं(2001)आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
3. एम.एल.झिंगन(2002)आर्थिक विकास एवं नियोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
4. धींगरा आई0सी0 (1987), ''इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया'', एस0 चन्द्र नई दिल्ली।

11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के आर्थिक वृद्धि के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। यह कहाँ तक
   अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं पर लागू होता है ?
2. 'स्वर्ण युग' से आप क्या समझते हैं ? जॉन रॉबिन्सन की इस धारणा की व्याख्या कीजिए।
3. रॉबिन्सन के विकास प्रारूप में तकनीकी प्रगति की क्या भूमिका है ?
4. रॉबिन्सन के मॉडल का गणितीय रूप क्या है ?रॉबिन्सन के मॉडल का H-D मॉडल से सम्बन्ध बताइये ?

इकाई–12 हार्वे लीबिन्सटीन का आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त

इकाई संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की अवधारणा

13.4 सिद्धान्त की मान्यतायें

13.5 सिद्धान्त की व्याख्या

13.6 विकास के दूत/प्रतिनिधि

13.7 प्रजनन विलम्बना और आवश्यक न्यूनतम प्रयास

13.8 सिद्धान्त की आलोचनाएँ

13.9 रोदान बनाम हार्वे लीबिस्टीन का मत

13.10 सारांश

13.11 शब्दावली

13.12 अभ्याय प्रश्नों के उत्तर

13.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.14 सहायक अध्ययन सामग्री

13.15 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

1957 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Economic Backwardness and Economic Growth में प्रो0 एच0 लेवेन्स्टीन ने नेल्सन की ही तरह 'अल्प प्रति व्यक्ति आय की संस्थिति पाश' की चर्चा की जिसमें विकासशील तथा अल्प विकसित अर्थव्यवस्थायें निरन्तर फंसी रहती हैं इस भंवर से निकालने के लिए लेबेन्स्टीन ने 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास की आवश्यकता पर बल दिया जिससे प्रति व्यक्ति आय में इतनी अधिक वृद्धि आ जाये कि आय की वृद्धि दर जन संख्या की वृद्धि दर से अधिक हो जायें इस 'निम्न संतुलन पाश' से किसी देश को बाहर निकालकर सतत विकास की स्थिति में लाना किसी वायुयान को भूमि की सतह से उड़ाकर ऊपर ले जाने के समान हैं किसी वायुयान को हवा में उड़ने वाला बनाने के पहले यह आवश्यक है कि उसे एक न्यूनतम आवश्यक गति प्रदान की जाय, ठीक उसी प्रकार जब तक आवश्यक न्यूनतम प्रयास न किया जाये, अर्थ व्यवस्था इस जाल से मुक्त नहीं हो सकती हैं।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि

1. अर्थव्यवस्था कैसे अपने न्यूनतम प्रयास द्वारा आर्थिक विकास करती है।
2. किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये आवश्यक न्यूनतम प्रयास क्यों जरूरी होता है।
3. किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के दूत कौन–2 से होते हैं।
4. शून्य राशि प्रेरणाओं से क्या तात्पर्य है।
5. धनात्मक राशि प्रेरणायें क्या होती है।
6. विनियोग कसौटी की नीति कैसे आर्थिक विकास लाती है।

12.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की अवधारणा

यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अल्प विकसित देशों में जन संख्या दबावों के कारण निर्धनता एव अल्प पूंजी निर्माण का दुश्चक्र पाया जाता है। ''ये विषम वृत्त इसलिये अधिक विषम बने रहते हैं क्योंकि पर्याप्त मात्रा में विकास के लिए वांछित प्रोत्साहन (प्रयास) उपलब्ध नहीं किये जा सकते हैं।'' जब निवेश आवश्यक न्यूनतम मात्रा में कम किया जाता है तो उससे आय में वृद्धि तो होती है लेकिन बढ़ी हुई आय, बड़ी हुई जनसंख्या द्वारा हड़प कर ली जाती है और फलस्वरूप विकास का क्रम स्थिर बना रहता है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि निवेश 'आवश्यक न्यूनतम मात्रा' में किया जाये ताकि अल्प बचत व अल्प पूंजी निर्माण के रिस्ते हुए घावों को एक बारगी सुखाया जा सके अर्थात आर्थिक दुश्चक्र तोड़ा जा सके।

12.4 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की व्याख्या

लेबेन्स्टीन ने अपनी पुस्तक में अपने सिद्धान्त की व्याख्या के लिए अनेक रेखाचित्रों का सहारा लिया। हम इसमें से कुछ को लेकर सिद्धान्त का विश्लेषण कर रहे हैं–

क. ऐसी स्थिति जबकि अर्थव्यवस्था में जनसंख्या की वृद्धि शून्य हो तथा निवेश या पूंजी संचयन भी शून्य हो – इस स्थिति की व्याख्या रेखाचित्र नं0 12.1 में की गयी है। इस स्थिति की व्याख्या के लिए यह मान लिया गया है कि उत्पादन की मात्रा

संसाधन तथा जनसंख्या के आकार पर 'निर्भर करती है। दोनों ही जनसंख्या तथा निबल निवेश प्रति व्यक्ति आय के ऊपर निर्भर करते हैं।

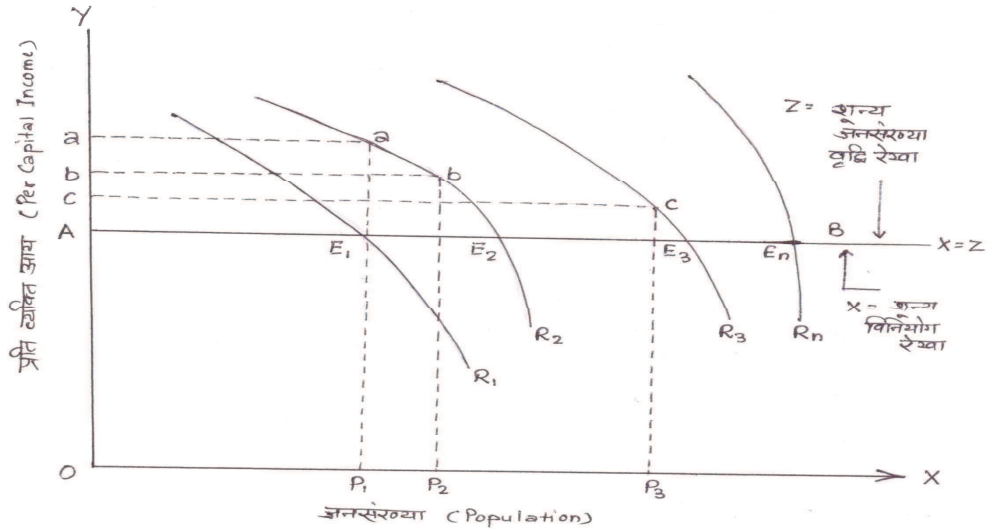

चित्र नं0 12.1

इस रेखा चित्र में खीची गयी AB रेखा जो आधार अक्ष पर समानान्तर है, $X = Z$ प्रदर्शित करती है अर्थात् जनसंख्या की वृद्धि दर शून्य है जिसका अर्थ हुआ कि मृत्युदर तथा जन्मदर बराबर हैं। प्रति व्यक्ति आय के OA स्तर पर जनसंख्या की वृद्धि दर शून्य है यदि प्रति व्यक्ति आय OA से अधिक हुयी तो जनसंख्या की वृद्धि दर धनात्मक होगी, OA पर शून्य तथा OA से कम पर ऋणात्मक होगी। OA स्तर पर निबल निवेश भी शून्य है। शून्य निवेश का अर्थ यह हुआ कि सकल विनियोग तो धनात्मक है पर वह पूंजी सम्पत्ति के प्रतिस्थापन तथा ह्रास या तोड़ फोड़ को पूरा करने के लिए ही हो रहा है अर्थात् निवल निवेश = सकल विनियोग – ह्रास = 0 अर्थात् नयी सृजित पूंजी सम्पत्ति केवल पूंजी सम्पत्ति के मूल्य में ह्रास या तोड फोड़ को पूरा करने के लिये या प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक पूंजी के बराबर है।

रेखाचित्र में R1, R2, R3..... Rn वक्र वैकल्पिक प्रति व्यक्ति आय प्रदर्शित करती है जिसे दिये हुए संसाधन R1, R2, R3, Rn से वैकल्पिक जनसंख्या के आकार पर प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार ये वक्रें एक निश्चित संसाधन के साथ प्रतिव्यक्ति आय तथा/जनसंख्या के आकार के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करती है।

हम सबसे पहले R_1 को लेते हैं जो संसाधन R_1तथा जनसंख्या OP_1के साथ सम्बन्ध व्यक्त करती है। मूल संस्थिति की स्थिति E_1पर है। इस स्थिति में प्रति व्यक्ति आय OA है जिस पर $X = Z$ है। अब मान लीजिए प्रेरित विनियोग के कारण संसाधन R_1 से बढ़कर R_2 हो जाते हैं। स्पष्ट है यदि जनसंख्या OP_1 हो तो नये संसाधन R_2 के साथ

प्रति व्यक्ति आय O_a या P_{1a} होगी पर इस बढ़ी हुयी प्रति व्यक्ति आय के कारण जनसंख्या में वृद्धि होगी। मान लीजिए इसके कारण जनसंख्या का आकार बढ़कर OP_2 हो जाता है तो प्रति व्यक्ति आय गिरकर P2b या Ob हो जायेगी। निवेश की और अधिक वृद्धि यदि R_3 तक हो जाय तो जनसंख्या का आकार OP_3 हो जायेगा और प्रति व्यक्ति आय घटकर P_{3c} या Oc हो जायेगी और यह क्रिया तब तक चलती जायेगी जब तक कि पुनः OA की स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती हे। अतः स्पष्ट है कि इस स्थिति में जनसंख्या एक अवसादी शक्ति के रूप में कार्य करेगी। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि लाती है और जनसंख्या की वृद्धि इतनी बलवती है कि अर्थव्यवस्था पुनः 'अल्पस्तरीय संस्थिति' में वही पहुंच जाती है। यहां हम लोगों ने जो व्याख्या की उसमे यह मान लिया कि प्रत्येक गड़बडी चाहे वह कितनी बड़ी क्यों न हो, जनसंख्या वृद्धि का दीर्घकालीन प्रभाव प्रेरित विनियोग के कारण उत्पन्न प्रभाव की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होगा। लेबन्स्टीन इस सम्भावना के अतिरिक्त दो और सम्भावनाओं की बात करते हैं– 1. प्रणाली छोटी गड़बड़ियों के लिए 'अर्द्ध स्थिर संस्थिति' के रूप में है पर बडी गड़बड़ियों के सम्बध में ऐसा नहीं है। कहने का अर्थ यह है कि छोटी मोटी गड़बड़ियों या असंतुलनों की स्थिति में प्रति व्यक्ति आय को गिराने में जनसंख्या की अवसादी शक्ति प्रेरित विनियोग की उत्प्रेरक शक्ति से अधिक प्रबल होगी पर बड़ी गड़बड़ियो या असन्तुलनों के सम्बन्ध में जनसंख्या की अवसादीय शक्ति कम महत्वपूर्ण होगी। जब प्रारम्भ से ही संस्थिति अस्थायी है,तब स्वयं लेबेन्स्टीन (2) वाली सम्भावना को अल्पविकसित देशों के सम्बन्ध में व्यवाहारिक तथा ठीक हीं पाते हैं।

(ख)ऐसी स्थिति जबकि शून्य विनियोग रेखा (X) तथा शून्य जनसंख्या वृद्धि (Z) , एक ही नहीं हो बल्कि X और Z रेखा से ऊपर हो – ऐसी स्थिति को रेखाचित्र – 12.2 में प्रदर्शित किया गया है –

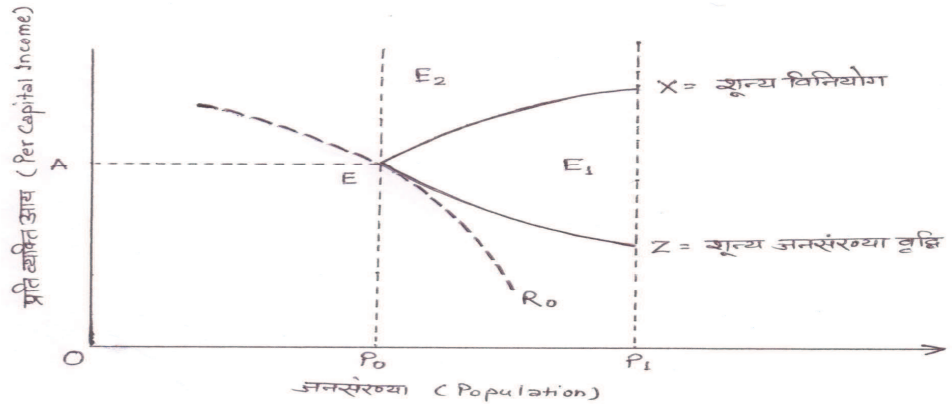

चित्र – 12.2

इस रेखाचित्र में MM1 न्यूनतम प्रतिव्यक्ति आय रेखा है जिससे अधिक प्रति व्यक्ति आय स्तर पर आर्थिक संवृद्धि कायम रह सकेगी। Ro पहले ही की तरह निश्चित संसाधन Ro के साथ प्रति व्यक्ति आय तथा जनसंख्या क आकार के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। मान लीजिये मूल संस्थिति Eपर है जहां जनसंख्या का आकार OP_0 प्रति व्यक्ति आय OAतथा संसाधन Ro है। यह देखा जा सकता है कि प्रेरित विनियोग के कारण कोई भी गड़बड़ी जो प्रणाली को EXZ या ENM1X के भीतर रखती है तो पुनः मूल संस्थिति E की स्थिति कायम हो जायेगी। उदाहरण के लिए यदि गड़बड़ी के बाद नयी संस्थिति का बिन्दु XEZ के भीतर हो मान लीजिए E_1 इस बिन्दु पर निबल निवेश ऋणात्मक होगा क्योंकि E_1 बिन्दु EX या शून्य विनियोग से नीचे है तथा जनसंख्या की वृद्धि दर धनात्मक या शून्य से अधिक होगी क्योंकि E_1 बिन्दु शून्य जनसंख्या वृद्धि रेखा EZ से ऊपर है। इस स्थिति में अविनियोग तथा जनसंख्या वृद्धि दोनों ही प्रति व्यक्ति आय के नीचे लायेंगे और पुनः संस्थिति E पर कायम हो जायेगी। यदि संस्थिति का नया बिन्दु ENM1X के भीतर है, मान लीजिए E_2 है तो निवेश तो धनात्मक होगा क्योंकि E_2 बिन्दु EX रेखा के बिन्दुओं से ऊपर तो है पर जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत अधिक है। जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति आय को नीचे लाने वाली शक्ति धनात्मक विनियोग के कारण आय वर्धक शक्ति की अपेक्षा अधिक प्रबल होगी, जो पुनः अर्थव्यवस्था को E पर संस्थिति की स्थिति में ला देगी।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास– सिद्धान्त के उपयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जब तक अर्थव्यवस्था में प्रतिव्यक्ति आय आवश्यक न्यूनतम आय से कम रहेगी, इसमें अल्पस्तरीय संस्थिति E पर आने की प्रवृत्ति होगी, इन देशों के आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रति व्यक्ति आय चित्र 12.2 में प्रदर्शित MM_1 से अधिक हो। पर ऐसा तभी होगा जब आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों से अधिक प्रबल हों। पिछड़े देशों में आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों से अधिक नहीं होंगी, इसलिए प्रति व्यक्ति आय में उतनी अधिक वृद्धि नहीं होगी जितनी होनी चाहिए। जिससे अर्थ व्यवस्था 'अल्पस्तरीय संस्थिति' से बाहर निकल सके। यही वास्तव में उनकी सम्पूर्ण विचारधारा का निचोड़ है। यदि आय की प्रारम्भिक वृद्धि इतनी अधिक हो कि आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों को बहुत अधिक पीछे छोड़ दे। तो आर्थिक विकास की संचयी प्रक्रिया शुरू हो जायेगी। इसलिए लेबेन्स्टीन ने यह प्रतिपादित किया है कि 'अल्पविकसित देशों में आर्थिक पिछड़ेपन से छुटकारा पाने के प्रयास 'आवश्यक न्यूनतम' से कम है। दी हुयी जनसंख्या की वृद्धि के साथ विनियोग के रूप में आवश्यक न्यूनतम प्रयास इतना होना चाहिए जिससे जनसंख्या का अवरोध टूट सके तथा आर्थिक विकास संचयी रूप से आगे बढ़ सके। यदि जनसंख्या की वृद्धि दर कम हो तो आय में होने वाली प्रारम्भिक वृद्धि जितनी ही अधिक होगी उतनी शीघ्र ही संचयी विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायेगी। स्पष्ट है कि ऐसे अल्पविकसित देशो में जहां जनसंख्या की वृद्धि दर अत्यन्त ही अधिक है वहीं इस स्थिति

को प्राप्त करना कठिन होगा तथा इसे प्राप्त करने में बहुत अधिक समय लगेगा। लेबेन्स्टीन ने अपने इस दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण के लिए निम्नांकित रेखाचित्र 12.3 का सहारा लिया है। यह रेखाचित्र वास्तव में दो परस्पर विपरीत दिशा में काम करने वाली शक्तियों का परिणाम प्रदर्शित करता है।

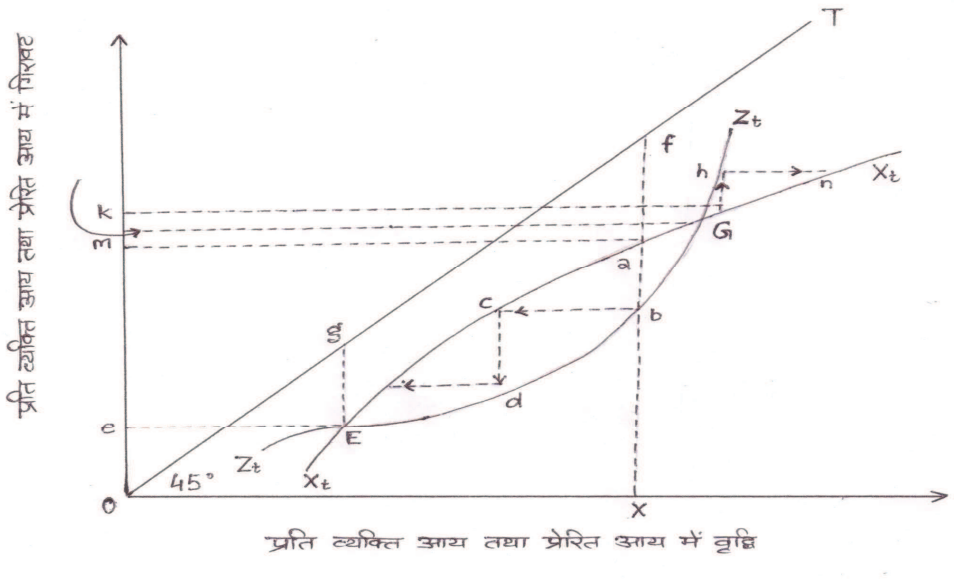

चित्र नं0 – 12.3

इस रेखाचित्र में 45^0 रेखा OT प्रेरित आय में वृद्धि = प्रेरित आय में कमी प्रदर्शित करती है। इस रेखा मे विचलन के आधार पर प्रेरित आय में वृद्धि तथा प्रेरित आय में कमी प्रदर्शित किया गया है। Xt Xt सभी आय वर्धक शक्तियों तथा Zt Zt सभी आय अवसादी शक्तियों को प्रदर्शित करता है। प्रारम्भिक संस्थिति की स्थिति E पर है, जबकि दोनों शक्तियां परस्पर बराबर हैं। आय वर्धक शक्ति gE है तथा आय अवसादी शक्ति भी हम् ही है। यहां इसका उल्लेख आवश्यक है कि OT से इन वक्रों पर लम्बीय अन्तर इन शक्तियों की माप प्रदर्शित करता है, आधार अक्ष से इन पर लम्बीय दूरी इसे प्रदर्शित नही करता है जैसा हम सामान्यता करते हैं।

अब यदि प्रारम्भिक समय के प्रति व्यक्ति आय Om हो तो आय वर्धक शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में जं की वृद्धि लायेगी पर इस स्थिति में आय मे कमी लाने वाली शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में fb की कमी लायेगी, गिरावट का पथ ˙ b c d ..... से दिखाया गया है और पुनः E पर संस्थिति की स्थिति कायम हो जायेगी। पर यदि प्रति व्यक्ति आय व हो तो जैसा रेखाचित्र से स्पष्ट है, OT से Xt पर प्रदर्शित लम्बीय दूरी OT से ˹ज पर प्रदर्शित लम्बीय दूरी की अपेक्षा अधिक है फलस्वरूप अर्थव्यवस्था G h n पथ से

विकसित होती हुयी अल्पस्तरीय संस्थिति जाल से बाहर हो जायेगी, पर ऐसा तभी होगा जबकि प्रतिव्यक्ति आय का स्तर OI एक बारगी पा लिया जाये।

लेबेन्स्टीन का यह मत है कि यदि अल्पविकसित देशों के पास पर्याप्त संसाधन नहीं हों तो विदेशों से पूजी की व्यवस्था की जा सकती है, पर यदि साथ ही एक बार में इतना अधिक विनियोग सम्भव नहीं हो कि अर्थव्यवस्था न्यूनम आवश्यक मात्रा को पार कर सके जैसा कि चित्र 12.2 में M M_1 रेखा से व्यक्त है) तो नियोजित ढंग से इसे थोड़े कम प्रयास के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जैसा उनके द्वारा दिये गये चित्र 12.4 से स्पष्ट है।

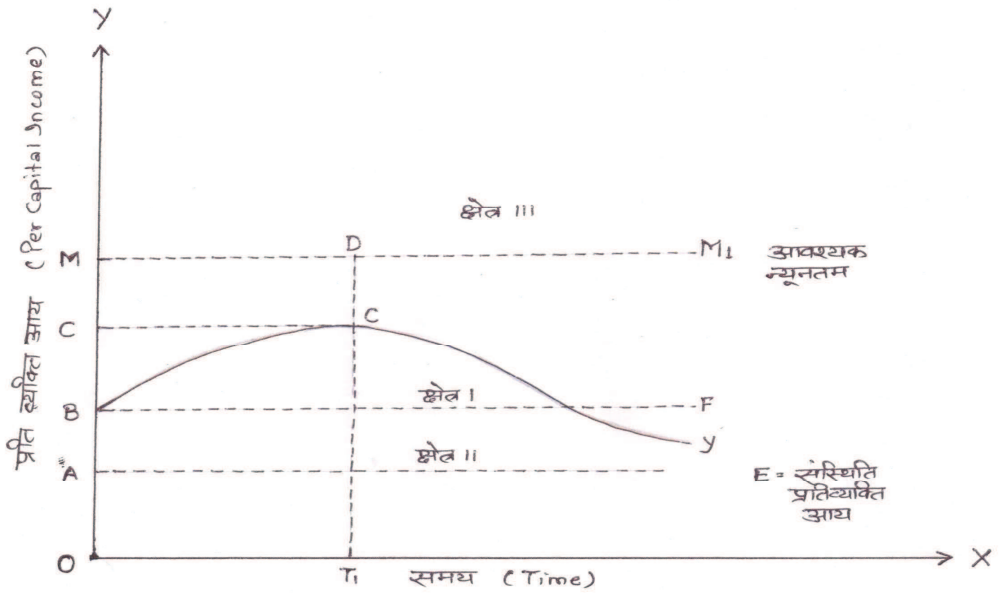

चित्र नं0 12.4

यदि विनियोग एक बारगी इतनी प्रचुर मात्रा में कर दिया जाय कि प्रति व्यक्ति का M_1 स्तर (या OM) प्राप्त हो जाय, स्वतः पोषित आर्थिक विकास की स्थिति प्राप्त हो जायेगी, पर अल्प विकसित देशों के लिए यह अधिक सस्ता तथा कम कष्टप्रद होगा, यदि वे अपने उपलब्ध साधनों को दो बार में लगायें पहली बार में प्रतिव्यक्ति आय OBतक पहुंच जाय, तथा दूसरी बार में विनियोजन के द्वारा इसमें CDके बराबर वृद्धि ला दी जाये, और इस प्रकार MM_1 की प्राप्ति हो जाये।

लेबेन्स्टीन ने अल्पविकसित देशों में पाये जाने वाले गरीबी के दुश्चक्र तथा साहसिकता के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध की बहुत ही प्रभावपूर्ण व्याख्या की। उनके अनुसार इन देशों में साहसियों तथा साहसिक योग्यता की कमी नहीं है, इन देशों की परिस्थितियां उन्हें धानात्मक राशि क्रियाओं के स्थान पर शून्य राशि क्रियायें में लगनें के लिए बाध्य करती है। जिनके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के समग्र संसाधनों में कोई वृद्धि नहीं होती हे, बल्कि साहसिक संसाधन का अपव्यय होता है। ये क्रियाएं अर्थव्यवस्था की उपलब्ध निबल बचत को प्रयोग में लाती है। लेबेन्स्टीन का कहना है कि प्रत्येक साहसिक क्रिया लाभ की

प्रत्याश में की जाती है, यदि लाभ की आशा कम हो तो सहसी धनात्मक क्रियाओं में नहीं लगेगा और धनात्मक क्रियाओं में न लगने का अर्थ होगा, राष्ट्रीय आय के विस्तार में कमी। इस प्रकार लेबेन्स्टीन के दृष्टिकोण की प्रमुख बातें इस प्रकार हैं –

1.ऐसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थायें जो अल्पस्तरीय प्रति व्यक्ति आय की संस्थिति जाल फंसी हुई हैं जहां जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि अर्थव्यवस्था को निरन्तर इसी अल्प संस्थिति की स्थिति में बनाये रखती है, और बाहर नहीं निकलने देती ऐसी अर्थव्यवस्थायें यदि, इस जाल से बाहर निकलना चाहती है यह आवश्यक है कि वे इतनी अधिक मात्रा में विनियोजन करें कि प्रति व्यक्ति आय का स्तर जनसंख्या वृद्धि को पीछे छोड़कर विकास की संचयी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये।

2.विनियोजन विदेशी पूंजी, घरेलू पूंजी या श्रम के रूपान्तरण के द्वारा प्राप्त हो सकता है।

3.जन्मदर की गिरावट आर्थिक विकास की पूर्ववर्ती शर्त नहीं होगी बल्कि आर्थिक विकास स्वतः जनसंख्या की वृद्धिदर में कमी लायेगा। प्रारम्भ में ऐसा हो सकता है कि मृत्युदर में गिरवट आये और जनसंख्या की वृद्धि दर बढ़े पर अंतिम रूप में निश्चित रूप से जनसंख्या की वृद्धि में कमी आयेगी।

4. संचयी विकास के लिए आय वर्धक शक्तियों का प्रबल होना आवश्यक है।

5.''न्यूनतम आवश्यक प्रयास'' की मात्रा वह होगी जहां पहुंचकर अर्थव्यवस्था पुनः अल्पस्तरीय ''संस्थिति जाल' में न आये बल्कि संचयी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास के सम्बन्ध में दो प्रश्न यह उठते हैं कि–

1. विनियोजन की मात्रा कितनी हो ? उसका उत्तर लेबेन्स्टीन ने यह दिया कि निवेश की मात्रा इतनी अधिक अवश्य होनी चाहिए कि जो न केवल आय अवसादी शक्तियों का सामना करने के लिए पर्याप्त हो बल्कि आय वृद्धि की कुछ मात्रा पूंजी निर्माण के लिए भी होती रहे (ध्यान रहे, पूंजी निर्माण तभी होगा जब उपभोग से आय वृद्धि अधिक होगी)।

2. दूसरा प्रश्न यह है कि क्या निवेश एक बार में ही किये जायें या टुकड़ों में ? लेबेन्स्टीन का सुझाव है कि निवेश को टुकड़ों और उन्हें एक दशक में फैलाकर करना अधिक लाभप्रद होगा। लेकिन ऐसा करते समय यह ध्यान रहे, कि निवेश की प्रत्येक डोज से एक निश्चित अवधि में पूर्ण निर्धारित प्रति व्यक्ति आय का स्तर प्राप्त होता रहना चाहिए और निवेश के आखिरी धक्के से देश का आय स्तर आवश्यक न्यूनतम स्तर को अवश्य प्राप्त कर ले। हां! निवेश का हर दूसरा इंजेक्शन, पहले इंजेक्शन के प्रभाव के खत्म होने से पूर्व ही लगा देना चाहिए जिससे कि विकास वर्धक श्वेताणुओं को पनपने का पर्याप्त अवसर मिल सके और दम तोड़ते हुए विनाश मूलक कीटाणुओं को सर उठाने का मौका न मिल सके। लेबेन्स्टीन का यह भी कहना है कि यदि निवेश की आवश्यक न्यूनतम मात्रा देश मे वर्तमान आय स्तर पर उपलब्ध नहीं है तो **विदेशी सहायता** का सहारा भी लिया जा सकता है।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास (CME) **की आवश्यकता क्यों ?**

लेबेन्स्टीन ने अल्पविकसित देशों के लिए CME को निम्न कारणों से आवश्यक बताया है

1. **प्रथम कारण,** साधनों या निवेशों की अविभाज्यता है। अतः बाहरी बचतें प्राप्त करने के लिए बड़ी मात्रा में निवेश करना जरूरी हो जाता है। 2. संतुलित विकास के लिए भी

CME आवश्यक होता है। 3. लेबेन्स्टीन का कहना है कि आर्थिक विकास पुरानी मान्यताओं, आस्थाओं, विचारों तथा रीति रिवाजों को भेदने से होता है। CME से कम निवेश करने पर यह संस्थागत रूकावटें नहीं टूटती क्योंकि पुराने मूल्य और परम्परायें बदलने मे अत्यधिक समय लेती हैं। उन पर तो एक अचानक और वह भी बड़ी मात्रा मे हमला करना चाहिए ताकि **''हर नया परिवर्तन किसी नये परिवर्तन को जन्म दे''।** 4. कभी कभी विकास के परिणाम स्वरूप ही विकास बाधक तत्व उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे आय में थोड़ी वृद्धि होने पर मृत्युदर घटती है किन्तु जनसंख्या बढ़ने लगती है। आय में वृद्धि इतनी अधिक होनी चाहिए कि जन्मदर कम हो जाये और यह तभी संभव है जब निवेश CME रूप में किये जायें। 5. चूंकि विकास के साथ साथ पूंजी उत्पाद अनुपात (COR) घटता जाता है इसलिये यदि निवेश आवश्यक न्यूनतम मात्रा में किया जाये तो प्व्त् अधिक घटेगा और आर्थिक विकास तेजी के साथ होगा।

12.5 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की मान्यतायें

1.जनसंख्या आय का फलन है (P - f(Y) । आय के एक निश्चित स्तर तक यह बढ़ती हुयी फलन होती है, पर एक निश्चित स्तर के बाद यह घटती हुयी फलन होती है। जब अर्थ व्यवस्था में प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर उठती है तो इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि होती है और जनसंख्या की वृद्धि इस स्थिति में बहुत तेज होती है पर प्रति व्यक्ति आय की एक सीमा के बाद जनसंख्या में गिरावट होगी।

जनसंख्या की वृद्धि दर तथा प्रति व्यक्ति आय के बीच सम्बन्ध के आधार पर विकास प्रक्रिया को तीन अवस्थाओं में बॉटा जा सकता है। प्रथम अवस्था वह अवस्था है जिसमें जन्मदर मृत्युदर के बराबर है तथा दोनों ही दरें ऊंची हैं। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धिदर शून्य है। प्रति व्यक्ति आय अत्यन्त ही कम है और अर्थ व्यवस्था जीवन निर्वाह स्तर की आय पर संतुलन की स्थिति में है। दूसरी अवस्था इसके बाद प्रारम्भ होती है। यदि प्रति व्यक्ति आय में इतनी वृद्धि हो जिससे यह जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर हो जाय तो मृत्यु दर में कमी होगी पर जन्मदर में कोई कमी नहीं होगी। जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या की वृद्धिदर में वृद्धि होगी। स्पष्ट है कि शुरू मे प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि कुछ सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि की दर मे वृद्धि लायेगी।

तीसरी अवस्था इस बिन्दु के बाद प्रारम्भ होती है। इस बिन्दु के बाद यदि प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है तो जन्मदर में कमी होगी तथा मृत्युदर मे या तो कमी होगी अथवा यह स्थिर होगी। इस प्रकार जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी होगी। आर्थिक विकास की प्रक्रिया तेज होगी। इस अवस्था में जनसंख्या की वृद्धि आय वृद्धि की घटती हुई फलन होगी क्योंकि इस अवस्था में लोग यह अनुभव करने लगते हैं कि सामाजिक दृष्टि से ऊपर उठने को सम्भावना कम संख्या में बच्चों के साथ अधिक है।

अल्प विकसित अर्थव्यवस्था आय की दृष्टि से या तो प्रथम अवस्था में है जहां जन्म दर = मृत्युदर तथा जनसंख्या वृद्धि नहीं है या दूसरी अवस्था में है। जहां मृत्युदर मे गिरावट तो प्रारम्भ हो गयी है पर जन्म दर में कमी नहीं शुरू हुई हैं। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि दर धनात्मक है। अब भी अर्थव्यवस्था अल्पस्तरीय संस्थिति की स्थिति में है।

2.प्रति व्यक्ति आय के अल्पस्तर पर लोगों की बचत तथा निवेश नगण्य होगी फलस्वरूप राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर कम होगी। स्पष्ट है जैसे जैसे प्रति व्यक्ति आय एक निश्चित न्यूनतम स्तर से ऊपर उठे जहां बचत तथा निवेश शून्य है, बढी आय का बढ़ता हुआ भाग बचत तथा निवेशित होगा, फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी।

3.एक पिछड़ी हुयी अर्थव्यवस्था एक 'अर्द्धस्थिर संस्थिति' प्रणाली है। एक 'पूर्ण स्थिर संस्थिति प्रणाली में जब संस्थिति की स्थिति में गड़बड़ी होगी तो पुनः संस्थिति में कायम होने की प्रवृत्ति होगी और इसके सभी चर पुनः मूल संस्थिति की स्थिति में आ जायेंगे। अर्द्ध स्थिर संस्थिति की स्थिति में कुछ चरों में तो मूल संस्थिति की स्थिति के स्तर पर आने की प्रवृत्ति होगी पर कुछ चर असन्तुलन के स्तर पर बने रह सकते हैं। लेबेन्स्टीन के अनुसार 'पिछड़े देश प्रति व्यक्ति आय के सम्बन्ध में अर्द्धस्थिरता की स्थिति में हैं; अर्थात इस प्रणाली में कुछ ऐसी बाहरी घटनायें हो सकती हैं जिसके कारण प्रति व्यक्ति आय उपलब्ध संसाधन में वृद्धि हो जाये (जिससे प्रति व्यक्ति आय बढ़ जाये) पर अन्त में आवश्यक रूप से प्रणाली पुनः संस्थितीय प्रति व्यक्ति अल्प आय स्तर पर लौट आयेगी जबकि अन्य चर जो इस गड़बड़ी के कारण बढ़े हैं, बढ़ी अवस्था में रहेंगे' उदाहरण के लिए मान लीजिए किसी समय किसी कारण से बचत धनात्मक हो जाती है इसके कारण निवेश बढ़ेगा, आय बढ़ेगी तथा प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगी। प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के कारण जनसंख्या तथा श्रमशक्ति में वृद्धि होगी। इस प्रकार मूल संस्थिति की स्थिति जो अल्प स्तर पर थी उसमे गड़बड़ी होगी पर यह पुनः उसी प्रति व्यक्ति आय स्तर पर नीचे आकर संस्थिति की स्थिति में आ जायेगी। साथ ही असंन्तुलन के दौरान जो अन्य चर बढे थे जैसे श्रमशक्ति में वृद्धि वे बढ़ी ही अवस्था में रहेंगे, मूल संस्थिति वाली स्थिति में नहीं आयेंगे। चूंकि आय के एक निश्चित स्तर तक इन अर्थव्यवस्थाओं में संस्थिति पर पहुंचने की प्रवृत्ति होगी (जैसा स्थिर संस्थिति की स्थिति में होता है) पर एक न्यूनतम सीमा के बाद इनमें संस्थिति की ओर लौटने की प्रवृत्ति नहीं होगी, (अस्थिर संस्थिति की स्थिति) इसलिए इन अर्थव्यवस्थाओं में स्थिर तथा अस्थिर संस्थिति के लक्षण होंगे, सम्भवतः इसीलिए लेबेन्स्टीन ने इसे अर्द्धस्थिर संस्थिति की स्थिति कहा।

4. प्रत्येक अर्थव्यवस्था में दो तरह की शक्तियां क्रियाशील होती हैं– हस्तोत्साहक या अवसादी शक्तियां तथा उत्प्रेरक शक्तियां या आय वर्धक शक्तियां। अवसादी शक्तियां ऐसी शक्तियां हैं जो प्रति व्यक्ति आय में कमी लाती है। जबकि उत्प्रेरक शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि लाती है।

5.यदि पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं की अल्पस्तरीय संस्थिति में गड़बड़ी होती है जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो न्यूनतम आवश्यक प्रयास स्तर से प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर अवसादी शक्तियां उत्प्रेरक शक्तियों से अधिक प्रबल होंगी और पुनः प्रतिव्यक्ति आय अल्पसंस्थिति की स्थिति में आ जायेगी।

6.यदि आय वर्धक शक्तियां आय हतोस्ताहक शक्तियों से अधिक हो जायें या यूं कहिए कि आय वर्धक शक्तियां प्रति व्यक्ति आय को नीचे लाने वाली आय हतोत्साहक शक्तियों के

प्रभाव को समाप्त कर दें तो आवश्यक न्यूनतम प्रतिव्यक्ति आय की स्थिति आ जायेगी और तब अर्थव्यवस्था 'संस्थिति पाश' से बाहर होकर विकसित होने लगेंगी।

इन प्रमुख मान्यताओं तथा निष्कर्षात्मक तथ्यों के आधार पर लबेन्स्टीन ने अपने आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त किया – 'एक पिछडी स्थिति से अधिक विकसित स्थित को प्राप्त करने के लिए जहां हम स्थिर तथा दीर्घकालीन विकास की उम्मीद कर सकते हैं, यह आवश्यक शर्त है, (यद्यपि हमेशा पर्याप्त नहीं) कि किसी बिन्दु पर हम किसी समयावधि में अर्थव्यवस्था में आर्थिक संवृद्धि के लिए कुछ उत्प्रेरणा प्राप्त करें जो एक निश्चित आवश्यक न्यूनतम आकार से अधिक हो।''

12.6 विकास के दूत/प्रतिनिधि

लीबिन्स्टीन के CME सिद्धान्त का तार्किक आधार देश में कुछ अनुकूल आर्थिक दशाओं का पाया जाना है ताकि आय अवसादी शक्तियों की तुलना में आय वर्धक शक्तियां अधिक ऊंची दर से विस्तार कर सके। ये अनुकूल दशायें विकास के प्रतिनिधियों के विस्तार द्वारा उत्पन्न होती है। वृद्धि दूतों से उनका अभिप्राय ''विकास में सहायक क्रियाओं को कार्यान्वित करने के लिये जनसंख्या के सदस्यों में विद्यमान क्षमताओं की मात्रा से है'' जिसका निरन्तर विस्तार किया जाना चाहिये। इनके विस्तार से उद्यमशीलता का निर्माण, ज्ञान की मात्रा में वृद्धि, उत्पादन कुशलता का विस्तार और बचत तथा निवेश की दर में वृद्धि होती है। लीबिन्स्टीन ने उद्यमी, निवेशकर्ता, बचतकर्ता, तथा नवप्रवर्तकों को विकास का दूत या कारक माना है।

प्रेरणायें – लीबन्स्टीन के अनुसार विकास कारकों का विस्तार होगा या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि ऐसी क्रियाओं के प्रत्याशित तथा वास्तविक परिणाम क्या होते हैं और वे विस्तार के लिये प्रेरणा उत्पन्न करती है या संकुचन के लिये। यह प्रेरणायें दो प्रकार की हो सकती है। 1. **शून्य राशि प्रेंरणायें**– इनसे राष्ट्रीय आय में कोई वृद्धि नहीं होती और इनका केवल वितरणात्मक प्रभाव होता है। **2. धनात्मक राशि प्रेरणायें** – इनसे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

स्पष्ट है कि धनात्मक राशि प्रेरणाओं द्वारा ही आर्थिक विकास सम्भव हो सकता है। लेकिन लीबिन्स्टीन का कहना है कि अल्प विकसित देशों के लोग– शून्य राशि क्रियाओं मे अधिक संलग्न रहते हैं जैसे अपेक्षाकृत बड़े आकार की एकाधिकारात्मक स्थिति, राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने की लालसा, सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने हेतु अव्यापारिक क्रियायें तथा सट्टा क्रियायें आदि ही वे शून्य राशि क्रियायें हें जो आय वृद्धि को बढ़ावा नहीं देती बल्कि आय का एक 'दुर्भाग्यशाली' उद्यमी के हाथ से एक 'सौभाग्यशाली' उद्यमी के हाथ में मात्र हस्तान्तरण करती है। इसलिये शून्यराशि प्रोत्साहनों की प्रबलता और धनात्मक राशि प्रोत्साहनों की सीमितता को देखते हुए लीबिन्स्टीन का कहना है कि 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास' काफी बड़ा होना चाहिए ताकि ऐसा वातावरण तैयार हो सके कि जो धनात्मक राशि प्रोत्साहनों को बल प्रदान करें और शून्य राशि प्रेरणाओं को समाप्त करने वाली शक्तियां उत्पन्न करें। CME के फलस्वरूप आय में वृद्धि होगी। जिससे बचत एवं रोजगार का स्तर ऊंचा उठेगा और इसके अगले धनात्मक परिणाम इस प्रकार होंगे – 1. वृद्धि कारकों का

विस्तार, 2. पूंजी के प्रति इकाई क्षमता में वृद्धि (क्योंकि क्षमता बढ़नेपर पूंजी उत्पादक अनुपात घट जाता है), 3. विकास के अवरोध तत्वों की प्रभावपन्नता में कमी, 4. द्वितीयक, एवं तृतीयक क्षेत्रों का विस्तार, 5. सामाजिक तथा आर्थिक गतिशीलता को बढ़ावा देने वाली सामाजिक तथा वातावरण सम्बन्धी स्थितियों का निर्माण और 5. शून्य राशि प्रोत्साहनों का प्रति सन्तुलन करते हुए एक ऐसे वातावरण का निर्माण, जिससे संभाव्य जनसंख्या वृद्धि में कमी आये और सतत विकास को बल मिल सके।

12.7 प्रजनन विलम्बना और आवश्यक न्यूनतम प्रयास

प्रो0 लीबिन्स्टीन सम्भवतः पहले विचारक हैं जिन्होंने जनसंख्या वृद्धि के नियमन की परवाह किये बिना आर्थिक विकास का काम शुरू करने का सुझाव दिया है। वे इसमें विश्वास नहीं करते कि जनसंख्या घनत्व आर्थिक पिछड़ेपन का एक कारण है और न ही उन्होंने जन्मदर में कटौती की विकास को एक पूर्वावश्यकता माना है। प्रो0 ब्लैक, थाम्पसन व नोटेस्टीन की भांति लीबिन्स्टीन का भी मत है कि आर्थिक, सांस्कृतिक व तकनीकी उन्नति के साथ साथ जन्मदर स्वयं घटने लगती है। लीबिन्स्टीन के शब्दों में ''जन्मदर में कमी विकास का स्वयं एक परिणाम है। इस बात की बहुत थोड़ी सम्भावना है कि आर्थिक विकास के अभाव में कोई भी प्रत्यक्ष उपाय, जन्मदर पर नियंत्रण लगाने में सफल हो सकता है। सर्वप्रथम हमें आर्थिक विकास शुरू करना होगा। प्रजनन दर स्वयं घटने लगेगी।'' अल्प विकसित देशों में जन्म दर में वृद्धि का मुख्य कारण लोगों में अज्ञानता, अविवेकशीलता, परिवार नियोजन के अभाव और सहवास एवं प्रजनन क्रिया यम्बंन्धी सोच का अभाव रहा है। चूंकि इन देशों में मृत्युदर अधिक होती है इसलिये लोग 'यमराज के दुखद बुलावे' से सुरक्षा के कारण ही अधिक बच्चे पैदा करने मे लिये बाध्य होते हैं। लीबिन्स्टीन ने जन्म लेने वाले प्रत्येक अगले बच्चे के सम्बन्ध में लागत लाभ विश्लेषण तकनीक का सहारा लेते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इन देशों में बच्चों की लागत कम होती है जबकि उनसे लाभ अधिक होते हैं। एक नवजात शिशु एक उपभोगीय वस्तु है क्योंकि बच्चे को प्यार करने से मनुष्य को एक आत्मिक संतोष मिलता है, यह उत्पादक साधन है क्योंकि ये छोटी उम्र में ही कमाने लग जाते हैं, और ये वृद्धावस्था में उस सुरक्षा को प्रदान करते हैं जिस सामाजिक सुरक्षा का पिछड़े हुए देशों में अभाव होता है। चूंकि आवश्यक न्यूनतम प्रयास के फलस्वरूप प्रजनन दर स्वतः ही घटने लगती है इसलिये हमें इससे चिंतित होने की जरूरत नहीं है।

निवेश मानदण्ड या नीति

जहां तक उचित निवेश नीति का प्रश्न है लीबिन्स्टीन ने कान्ह के 'सामाजिक सीमान्त उत्पादकता मानदण्ड' नर्कसे के 'रोजगार मानदण्ड' और वाइनर एवं कान्ह के कृषि निवेश मानदण्ड' को अस्वीकार किया है। सीमान्त उत्पादकता मानदण्ड का विरोध उन्होने इस आधार पर किया है कि इससे न तो राष्ट्रीय आय और न ही प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है। फिर SMP का पता लगाना भी कठिन है। नर्कसे के अधिकतम रोजगार या श्रम प्रधान विकास नीति को लीबिन्स्टीन ने इसलिये अस्वीकार किया है यदि पूंजी गहन निवेश को कम रखा गया तो इससे तीव्र विकास की सम्भावना घट जायेगी। लीबिन्स्टीन वाइनर के इस मत से भी सहमत नहीं हैं कि अल्प विकसित देशों को अधिकाधिक निवेश कृषि क्षेत्र

में करना चाहिये। उनका कहना है कि 'कृषि क्षेत्र या गांवों के विकास से श्रम–कुशलता, कौशल निर्माण, तकनीकी प्रगति, अविष्कार तथा उद्यमियों का विकास नहीं हो सकता।'' लीबिन्स्टीन ने उपयुक्त निवेश के सम्बन्ध में कहा है कि **निवेश भौतिक तथा मानवीय दोनों प्रकार की पूंजी में वृद्धि लाने हेतु किया जाना चाहिये** और यह 'आवश्यक न्यूनतम मात्रा'' में होना चाहिए। निवेश का ढांचा ऐसा हो जिससे उद्यमियों को बढ़ावा मिले, अर्जित लाभों का पुर्ननिवेश हो, श्रम उत्पादकता में वृद्धि हो, बचतों को प्रोत्साहन मिले और जनसंख्या वृद्धि की दर घटने लगे। एक प्रकार से लीबिन्स्टीन ''पुनर्विनियोग उपलब्धि मानदण्ड'' का समर्थन करते हैं जो कि उन्हीं के नाम से जाना जाता है।

12.7 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनाएँ

मुख्य आलोचनायें इस प्रकार हैं

1.जनसंख्या वृद्धि दर और मृत्युदर का अवास्तविक सम्बन्ध – इस मॉडल की यह मान्यता है कि जनसंख्या वृद्धि की दर एक निश्चित बिन्दु तक प्रति व्यक्ति आय का वृद्धिमान फलन है और उसके बाद यह आय के ह्रासमान फलन का रूप ले लेता है, ठीक नहीं है। इसका कारण जनसख्या में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से नहीं बल्कि मृत्युदर में कमी से होती है और वह कमी चिकित्सा विज्ञान एवं स्वास्थ्य दशाओं में सुधार होने के कारण होती है।

2.प्रति व्यक्ति आय के स्तर और वृद्धि दर का क्रियात्मक सम्बन्ध – प्रो0 मिंट का कहना है कि प्रति व्यक्ति आय के स्तर और वृद्धि की दर में स्थापित किया गया फलनात्मक सम्बन्ध काफी जटिल है और वह इतना सरल नहीं जितना कि लीबिन्स्टीन मानते हैं। यह सम्बन्ध आय के वितरणात्मक ढांचे और बचतों को गतिशील करने वाली वित्तीय संस्थाओं की प्रभावी क्षमता पर निर्भर करता है जिसे लीबिन्स्टीन ने पूरी तरह से भुला दिया है।

3.मॉडल की आधारभूत मान्यता का दोषपूर्ण होना – प्रो0 मिंट, लीबिन्स्टीन की इस मन्यता से भी सहमत नहीं हैं कि अगर प्रारम्भिक निवेश आवश्यक न्यूनतम आकार से कम हुआ तो जनसंख्या बढ़ जायेगी। उन्होंने कहा कि यह तो एक प्रकार से आय और जनसंख्या के बीच प्रत्यक्ष सह सम्बन्ध स्थापित करने वाली बात है जिसे प्रयोगों द्वारा भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।

4.जन्मदर में कमी का कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं– लीबिन्स्टीन का यह सोचना भी भ्रमपूर्ण है कि जन्मदर में कमी इसलिए होती है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि आवश्यक न्यूनतम स्तर पर पहुंच जाती है और जनसंख्या वृद्धि से भी आगे निकल जाती है। सच तो यह है कि लीबिन्स्टीन के विचार उन्नत देशों के अनुभवों पर आधारित रहे होंगे जबकि अल्प विकसित देशों में प्रजनन दर की समस्या मुख्यतः सामाजिक व सांस्कृतिक प्रकृति की होती है और इस पर आय वृद्धि की अपेक्षा धर्म, मर्यादा और परम्पराओं का अधिक प्रभाव पड़ता है।

5.समय तत्व की उपेक्षा – इस सिद्धान्त का एक दोष यह है कि इसने समय तत्व पर कोई ध्यान नहीं दिया जो कि सतत् प्रयासों के लिये अत्यावश्यक है और जिसमें आत्म स्फूर्ति को

सुनिश्चित करने के लिये संस्थात्मक एवं उत्पादक ढांचे में आधार भूत परिवर्तन करने आवश्यक होते हैं।

6.परिवार नियोजन सम्बन्धी राजकीय प्रयत्नों की उपेक्षा – लीबिन्स्टीन ने जन्म दर को घटाने सम्बन्धी सरकरी प्रयत्नों पर कोई ध्यान नहीं दिया जबकि आज कल प्रत्येक सरकार जनाधिक्य से निबटने के लिये विस्तृत अभियान चालू किये हुए हैं। हमारी दृष्टि में आज कोई भी देश इस बात कि प्रतीक्षा नहीं कर सकता है कि कब प्रति व्यक्ति आय काष्ठा–न्यूनतम स्तर से ऊपर उठे ताकि जन्म दर स्वयंमेव गिरनी शुरू हो जाए। प्रतीक्षा की इन घड़ियों में हो सकता है कि वह देश जनसंख्या विस्फोट की स्थिति में पहुंच जाये और समस्या सुझलने के बजाय और उलझ जाये।

7.बन्द अर्थव्यवस्था मूलक मॉडल – यह मॉडल आय, बचत तथा विनियोग के विभिन्न स्तरों पर विदेशी पूंजी तथा अन्य बाहय घटकों के प्रभाव का अध्ययन नहीं करता। इस प्रकार यह सिद्धान्त केवल बन्द अर्थव्यवस्था पर लागू होने के कारण अवास्तविक है।

12.8 रोडान बनाम हार्वे लीविन्स्टीन का मत

रोडान के 'प्रबल प्रयास सिद्धान्त' और लीबिन्स्टीन के 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त' दोनों का ही उद्देश्य अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को दरिद्रता के विषम चक्र से छुटकारा दिलाकर सतत विकास के मार्ग पर लाना है। किन्तु तुलनात्मक रूप में लीबिन्स्टीन का सिद्धान्त रोडान के सिद्धान्त से कई बातों में श्रेष्ठ है –

1.लीबिन्स्टीन की थीसिस अधिक व्यापक, व्यावहारिक एवं वास्तविक है जबकि रोडान का मॉडल सैद्धान्तिक अधिक है।

2.अल्प विकसित देशों में औद्योगिकरण के कार्यक्रम को एकदम से 'प्रवल प्रयास' देना असाध्य है जबकि अर्थव्यवस्था को सतत विकास के मार्ग पर लाने के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रयास समयानुसार तथा आवश्यकतानुसार करना अधिक युक्ति संगत जान पड़ता है।

3.लीबिन्स्टीन के सिद्धान्त का एक गुण यह है कि वह लोकतन्त्रात्मक नियोजन से मेल खाता है जिससे अधिकांश अल्प विकसित देश सम्बद्ध है।

4.रोडान के विपरीत लीबिन्स्टीन पूंजी गहन तकनीकी के समर्थक हैं इसलिये वे असन्तुलन से सन्तुलन की ओर जाते हैं।

5.रोडान के अनुसार प्रबल प्रयास के रूप में आवश्यक निवेश एक मुश्त रूप में किया जाना चाहिए जबकि लीबिन्स्टीन के अनुसार निवेश समयानुसार छोटी छोटी मात्रा में भी किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि लीबिन्स्टीन के अनुसार पूंजी का जुटाना अधिक सरल व व्यावहारिक है।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. हार्वे लीबिन्सटीन ने किस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया?

   A. निम्न सन्तुलन पाश सिद्धानत B. आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त

C. प्रबल प्रयास सिद्धान्त D. जीवन–निर्वाह सिद्धान्त

2. आवश्यक न्यूनतम प्रयास का विचार किसने दिया?

A. नेल्सन B. मिन्ट

C. रोजेन्स्टीन रोडा D. हार्वे लीविन्स्टीन

3. हार्वे लिबिन्स्टीन का कहनाहै कि अल्पविकसित देशों में थोड़े–थोड़े आर्थिक विकास के प्रयास गरीबी के दुश्चक्र को

A. रोक सकते हैं। B. तोड़ नहीं सकते हैं

C. तोड़ सकते हैं D. उपरोक्त में कोई नहीं

सत्य / असत्य

1. लीबिन्स्टीन ने उद्यमी, निवेशकर्ता, बचतकर्ता तथा नवप्रवर्तकों को विकास प्रतिनिधि माना।
2. लीबिन्स्टीन ने प्रबल धक्का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।
3. लीबिन्स्टीन की प्रसिद्ध पुस्तक Economic Backwardness and Economic Growth है।

12.9 सारांश

अपनी पुस्तक के अमुख में लीबिन्स्टीन ने लिखा है कि उसका ''लक्ष्य नुस्खा बनाना नहीं बल्कि व्याख्या करना तथा समझना है।'' परन्तु रोस्टोव की उत्कर्ष की अवस्था की भांति उसके ''क्रांतिक– न्यूनतम प्रयत्न'' सिद्धान्त ने अर्थशास्त्रियों तथा अल्प विकसित देशों में योजना बनाने वालों का ध्यान आकर्षित किया है और वह आर्थिक पिछड़ेपन का नुस्खा समझा जाता है। रोजेन्स्टीन रोदान के ''प्रबल प्रयास' सिद्धान्त के अपेक्षा लीबिन्स्टीन सिद्धान्त अधिक वास्तविक है। अल्प विकसित देशों में औद्योगिकरण के प्रोग्राम को एकदम से ''प्रबल प्रयास'' देना असाध्य है जबकि अर्थव्यवस्था को सतत विकास के मार्ग पर लाने के लिए क्रांतिक–न्यूनतम प्रयत्न उचित ढंग से समय – समय पर किया तथा छोटे प्रयत्नों के क्रम में तोड़ा जा सकता है। यह सिद्धान्त प्रजातंत्रात्तक योजना से भी मेल खाता है।

12.10 शब्दावली

विकास दूत –विकास क्रियाओं के समायक अर्थात उत्पादक, निवेशक, बचतकर्ता आदि।

P=f(y):–जनसंख्या एवं आय के मध्य प्रतिक्रियात्मक सम्बन्ध

अवसादी शक्तिः–आर्थिक विकास में बाधा के रूप में।

12.11 अभ्याय प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त , 2. हार्वे लीविन्स्टीन ,3. तोड़ नहीं सकते हैं

सत्य / असत्य

1. सत्य, 2. असत्य, 3. सत्य

12.12 संदर्भ ग्रन्थ

1 प्रो0 एम0 एल0 झिगन, (2010) ''विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन ''बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस ,दिल्ली ।

2 प्रो0 एस0एन0लाल(2010)''आर्थिक विकास तथा आयोजन शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद ।

3 प्रो0 एस0पी0 सिह, (2010)''आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन''एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन ,दिल्ली ।

12.13 सहायक अध्ययन सामग्री

1. Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
2. Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010
3. B. Higgins : " Economic Development, Priciples, problems and policies.
4. M.P. Todaro : "Economic Development in third world.
5. G.M. Meiter : Inter Sectoral Relationship in Dual Economy".

12.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लीबिन्स्टीन के काष्ठा–न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए ?
2. हार्वे लीविन्स्टीन के न्यूनतम क्रान्तिक प्रयास सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। क्या यह कहना उचित है कि यह सिद्धान्त पूंजी की अपेक्षा जनसंख्या की भूमिका को विकास प्रक्रिया में अधिक महत्व देता है?
3. 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास' विचारधारा की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। विकास को अवरूद्ध करने वाली शक्तियों पर नियंत्रण कैसे प्राप्त किया जाता है, बतलाइए ?
4. क्रांन्तिक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त का वर्णन कीजिए और एक भारत जैसे विकासशील देश में इसकी प्रासंगिकता बताइए ?

इकाई–13 नेल्सन का निम्न स्तर संतुलन पाश विश्लेषण

इकाई संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 निम्न स्तर संतुलन पाश विश्लेषण की अवधारणा

13.4 नेल्सन के सिद्धान्त की व्याख्या

13.5 सिद्धान्त के मुख्य बिन्दु

13.6 सिद्धान्त की आलोचनायें

13.7 सारांश

13.8 शब्दावली

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.11 सहायक उपयोगी अध्ययन सामग्री

13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के संदर्भ में विशेषरूप से ऐसे देशों के सम्बन्ध में, जहां जनसंख्या की वृद्धि बहुत अधिक हो, एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि प्रति व्यक्ति आय का कौन सा स्तर हो जिस पर यह जनसंख्या वृद्धि दर को स्थायी रूप से पीछे छोड़ दे जिससे उसके बाद प्रतिव्यक्ति आय में निरन्तर वृद्धि हो सके। ऐसी स्थिति में हमें एक ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता है जो आर्थिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया के दौरान जनसंख्या वृद्धि के स्वरूप पर प्रकाश डाले, जो इसका जबाब दे सके कि प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि का क्या प्रभाव राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय पर पड़ता है ? इस दिशा में हमें प्रमुख रूप से दो माडल मिलते हैं। आर0 नेल्सन का निम्न सन्तुलन पाश माडल तथा लेबेन्स्टीन का न्यूनतम आवश्यक प्रयास सिद्धान्त। दोनों ही माडल इस बात को स्वीकार करते हैं कि जनसंख्या की वृद्धि, प्रतिव्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि परस्पर सम्बन्धित है।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि–

- निम्न संतुलन पाश विश्लेषण से आप क्या समझते हैं।
- निम्न संतुलन पाश के सहायक कारक कौन–2 से होते हैं।
- पूँजी निर्माण, जनसंख्या वृद्धि एवं आय निर्धारण कैसे अपना योगदान प्रदान करती है।
- क्या नेल्सन का माडल अल्पविकसित व्यवस्था पर लागू होता है।
- मॉडल की कौन–2 सी कमियां है।
- कोई भी अर्थव्यवस्था निम्न संतुलन पाश से कैसे बच सकती है।

13.3 निम्न स्तर संतुलन पाश विश्लेषण की अवधारणा

आर0 आर0 नेल्सन ने अपना निम्न सन्तुलन पाश सिद्धान्त 1956 में अमेरिकन एकोनामिक रिव्यू में प्रकाशित अपने एक लेख । Throry of the Low Level - Equilibrium Trap में प्रस्तुत किया । अल्पविकसित देशों की समस्याओं पर विचार करते हुए नेल्सन ने यह प्रतिपादित किया कि अल्प विकसित देश निम्न प्रति व्यक्ति आय के सन्तुलन पाश मे जकड़े हुए हैं। ये देश अत्यन्त ही अल्प प्रति व्यक्ति आय स्तर जो जीवन निर्वाह की आवश्यकता की पूर्ति के बराबर है या लगभग बराबर है पर स्थित संस्थिति की गतिहीनता की स्थिति में है। स्थायी संस्थिति एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें यदि किसी प्रयास के कारण ये देश इस अल्पस्तरीय संस्थिति से बाहर निकलते हैं तो पुनः इसी स्तर पर संस्थिति के पुनः स्थापित होने की प्रवृत्ति होगी। अल्पस्तरीय संस्थिति की स्थिति में बचत तथा विनियोग की दर अत्यन्त ही कम होती है। इस स्थिति में यदि प्रति व्यक्ति आय को न्यूनतम जीवन निर्वाहस्तर से ऊपर उठाया गया तो इसके कारण जनसंख्या में वृद्धि प्रेरित होगी। जनसंख्या की यह वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में कमी लायेगी और अर्थव्यवस्था पुनः उसी न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तरीय प्रति व्यक्ति आय के साथ संस्थिति जाल मे फंसी रहती है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि प्रति व्यक्ति आय को ऊपर नहीं उठने देती। नैल्सन ने यह प्रतिपादित किया कि इस निम्न संतुलन पाश से बाहर निकालने के लिए यह आवश्यक है

कि इतनी अधिक मात्रा में विनियोग किया जाये कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर को पीछे छोड़ दे क्योंकि प्रारम्भ में जब प्रति व्यक्ति आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर उठती है तो उसके साथ जनसंख्या भी बढ़ती है पर एक सीमा के बाद प्रतिव्यक्ति आय में और वृद्धि होने पर जनसंख्या की वृद्धि दर में गिरावट होने लगती है।

13.4 नेल्सन के सिद्धान्त की व्याख्या

आर0 आर0 नैल्सन ने अल्पविकसित देशों के लिए निम्न संतुलन पाश का सिद्धान्त विकसित किया, नैल्सन का सिद्धान्त माल्थम की इस उपकल्पना पर आधारित है कि किसी देश की प्रति व्यक्ति आय के 'न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर' से बढ़ जाने पर जनसंख्या बढ़ने लगती है, परन्तु जब जनसंख्या की वृद्धि दर 'एक उच्च भौतिक सीमा' पर पहुंच जाती है तो प्रति व्यक्ति आय में और वृद्धियां होने पर यह (जनसंख्या वृद्धि–दर) गिरने लगती है। नेल्सन के अनुसार 'अल्पविकसित देशों के रोग की पहचान यह है कि वह प्रति व्यक्ति आय का ऐसा स्तर है जो निर्वाह आवश्यकताओं पर या उनके निकट पहुंचकर स्थिर हो जाता है।' प्रति व्यक्ति आय के स्थिर संन्तुलन स्तर पर बचत की दर और परिणामतः शुद्ध निवेश की दर एक नीचे स्तर पर रहती है। जब कुल राष्ट्रीय आय की वृद्धि–दर बढ़ाकर बचत एवं निवेश की दर बढ़ाने के प्रयत्न किए जाते हैं तो उनके साथ जनसंख्या वृद्धि की दर भी ऊंची हो जाती है तो प्रति व्यक्ति आय को पीछे धकेल कर उसको स्थिर संतुलन स्तर पर पहुंचा देती है। इस प्रकार अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाएं निम्न संतुलन पाश की जकड़ में फंस जाती है।

13.5 सिद्धान्त के मुख्य बिन्दु

नेल्सन ने चार सामाजिक एवं प्रौद्योगिक स्थितियों का उल्लेख किया है जो पाश करने में सहायक होती है। ये हैं –

- प्रति व्यक्ति आय के स्तर तथा जनसंख्या वृद्धि की दर में ऊंचा सहसंबंध है।
- अतिरिक्त प्रतिव्यक्ति आय को बढ़ाते हुए प्रति व्यक्ति निवेश में लगाने की न्यून प्रवृत्ति।
- अकृषि योग्य कृषि भूमि की दुर्लभता।
- उत्पादन के अदक्ष तरीके।

उपयुक्त कारको के साथ प्रो नैल्सन ने दो कारण और बताए– सांस्कृति निष्क्रियता तथा आर्थिक निष्क्रियता। सांस्कृतिक निष्क्रियता से आर्थिक निष्क्रियता और आर्थिक निष्क्रियता से सांस्कृतिक निष्क्रियता आती है। अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास के अध्ययन से पता चलता है कि ऊपर बताई गई स्थितियों की उपस्थिति के कारण अधिकांश अल्प विकसित देश निम्न संतुलन पाश मे जकड़े हुए हैं।

आय के निम्न स्तर पर किसी अर्थव्यवस्था का पाशन समझाने के लिए नैल्सन ने संबंधों के तीन सैट प्रयोग किए हैं। **प्रथम,** आय पूंजी स्टॉक, प्रौद्योगिकी स्तर तथा जनसंख्या आकार का फलन है। **दूसरे,** शुद्ध निवेश यह पूंजी है जो औद्योगिक क्षेत्र में औजारों एवं उपकरणों के स्टॉक में बढोत्तरियों के रूप में हुई बचतों (जमा) के साथ कृषिगत भूमि की मात्रा में

नई भूमि की बढ़ोत्तरी से है, जो कि बचतो पर आधारित होती है। तीसरे, यदि प्रति व्यक्ति आय नीची हो तो मृत्युदर में परिवर्तनों के कारण जनसंख्या वृद्धि की दर में अल्पकालीन परिवर्तन होते हैं, और प्रति व्यक्ति आय के स्तर में परिवर्तनों के कारण मृत्युदर में परिवर्तन होते हैं। फिर भी, जब प्रति व्यक्ति आय एक बार निर्वाह आवश्यकताओं के स्तर से भली प्रकार ऊपर पहुंच जाती है, तो प्रति व्यक्ति आय में होने वाली और वृद्धियों का मूल्य दर पर प्रभाव नहीं के बराबर होता है।

नेल्सन माडल इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या की वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि परस्पर आश्रित तथा सम्बन्धित है। नेल्सन ने अपने माडल की रूपरेखा तीन समीकरणों के आधार पर की–

- **पूंजी निर्माण से सम्बन्धित समीकरण** – अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण बचत तथा नयी भूमि को जोत में लाने के द्वारा होगी अर्थात $dk + dR =$ का जिसमें का बचत द्वारा निर्मित पूंजी स्टाक में वृद्धि तथा कत भूमि में वृद्धि प्रदर्शित करता है। चूंकि जैसे – जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती जाती है नयी भूमि जोत में आती है, पर एक सीमा के बाद नयी भूमि में वृद्धि दुर्लभ हो जायेगी, इसलिए यह मान लिया गया है कि नयी भूमि पूंजी निर्माण की स्रोत नहीं है, पूंजी स्टॉक में वृद्धि बचत के द्वारा ही होगी। यह भी मान लिया गया है कि सभी बचत विनियोजित हो जायेगी, इस प्रकार

पूंजी निर्माण में वृद्धि = बचत में वृद्धि = औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग में वृद्धि

विनियोग में कोई वृद्धि सम्भव नहीं होगी जब तक आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर नहीं हो जाती जिसके बाद इसमें वृद्धि प्रति व्यक्ति आय के साथ होती है। नेल्सन ने यह भी माना कि अविनियोग की भी एक निचली सीमा है क्योंकि कोई कितना भी भूखा क्यों न हो वह रेल या सड़क तोड़कर नहीं खायेगा। प्रति व्यक्ति बचत वृद्धि दर ;काश्ध्च्द्ध तथा प्रति व्यक्ति आय ;ल्ध्च्द्ध के सम्बन्ध को रेखा चित्र नं0 13.1 में दिखाया गया है।

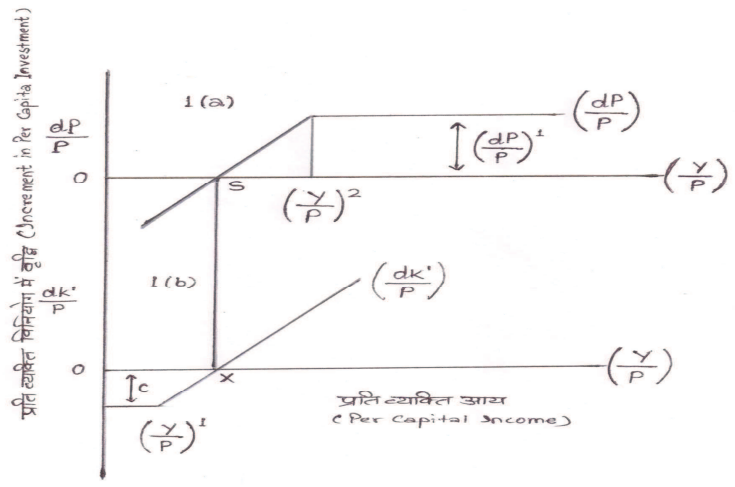

चित्र नं.0 13.1

इस रेखाचित्र में आधार अक्ष पर प्रति व्यक्ति आय (Y/P) तथा लम्ब अक्ष पर प्रति व्यक्ति विनियोग में वृद्धि दर प्रदर्शित है। रेखाचित्र X बिन्दु आय के उस स्तर को

प्रदर्शित करता है जिस पर बचत शून्य है। X से बायीं ओर नीचे (Y/P) तक प्रति व्यक्ति आय इतनी कम है कि अबचत या अविनियोग की स्थिति है जो कि C की स्थिर दर से मान ली गयी है। (Y/P) स्तर के बाद प्रति व्यक्ति बचत प्रतिव्यक्ति आय के साथ बढ़ती है।

- **जनसंख्या वृद्धि समीकरण** – यह मान लिया गया है कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के साथ जनसंख्या की वृद्धि दर (dP/P) मृत्युदर की गिरावट के कारण बढ़ती है। प्रति व्यक्ति आय तथा जनसंख्या की वृद्धि दर के बीच सम्बन्ध को रेखाचित्र नं0 13.1 में दिखाया गया है। रेखाचित्र में बिन्दु (S) न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तरीय प्रति व्यक्ति आय प्रदर्शित करता है। S से बायीं ओर जब प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से भी कम है, जनसंख्या की वृद्धि दर ऋणात्मक है अर्थात मृत्युदर जन्मदर से अधिक है पर जब प्रति व्यक्ति आय से ऊपर बढ़ती है तो जनसंख्या तब तक बढ़ती है जब तक कि यह ऊपरी सीमा T तक नहीं पहुंच जाती। इसके बाद जनसंख्या की वृद्धि दर इसी स्तर पर रहती है जब तक कि प्रति व्यक्ति आय का स्तर (Y/P) नहीं हो जाता, उसके बाद इसमें गिरावट शुरू हो जाती है। अर्थात उच्च प्रति व्यक्ति आय स्तर पर जनसंख्या की वृद्धि दर गिरेगी। इस रेखाचित्र में PP वक्र प्रति व्यक्ति आय के विभिन्न स्तरों पर 'जनसंख्या वृद्धि पथ' प्रदर्शित करता है।
- **आय निर्धारण समीकरण** – नेल्सन माडल में 'आय निर्धारण, समीकरण, उत्पादन फलन की ही तरह है। माडल इस मान्यता पर आधारित है कि आय उत्पादन साधनों के रूप में आगतों का रैखिक सहजातीय फलन है अर्थात Y (अथवा O) = T जिसमें K पूंजी, L = श्रम (जो जनसंख्या का एक स्थिर अनुपात है) तथा T कुल उत्पादकता का निर्देश है। प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक ढांचा को स्थिर मान लिया गया है।

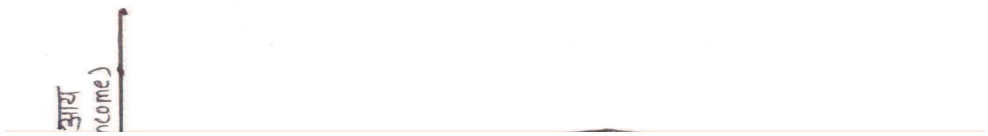

द्वारा निर्मित प्रति व्यक्ति पूंजी शून्य है। फलस्वरूप आय की वृद्धि दर शून्य $(dY/Y= 0)$ है। इस स्थिर संस्थिति के स्तर से ऊपर प्रति व्यक्ति आय के वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति पूंजी की उपलब्धता तथा श्रम शक्ति के वृद्धि के कारण आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होती है, पर प्राविधिक प्रगति के अभाव में' पवितर्नीय अनुपात नियम' के क्रियाशीलन के कारण वृद्धि दर में गिरावट आयेगी।

इसके पूर्व हम लोगों ने नेल्सन माडल के उन तीन समीकरणों की व्याख्या की तथा रेखा चित्र नं0 13.1 तथा 13.2 के अंतर्गत उनके आधार पर तीन महत्वपूर्ण वक्र प्राप्त की। (dp/P) या जनसंख्या में वृद्धि दर वक्र, (dK/P) प्रति व्यक्ति निवेश वृद्धि दर वक्र तथा (dY/Y) आय वृद्धि दर वक्र। इन तीनों समीकरणों तथा तीनों वक्रों के आधार पर नेल्सन ने अपने माडल की व्याख्या की। नेल्सन माडल की व्याख्या के लिए हम 13.1 तथा 13.2 में दिये गये रेखाचित्रों को मिलाकर नीचे रेखाचित्र 13.3 दे रहे हें। जिसके आधार पर अल्पस्तरीय आय संस्थिति पाश की स्थिति प्रदर्शित की गयी है जिसमें प्रति व्यक्ति आय स्थायीरूप से गिरावट की स्थिति में है को प्रदर्शित किया गया है।

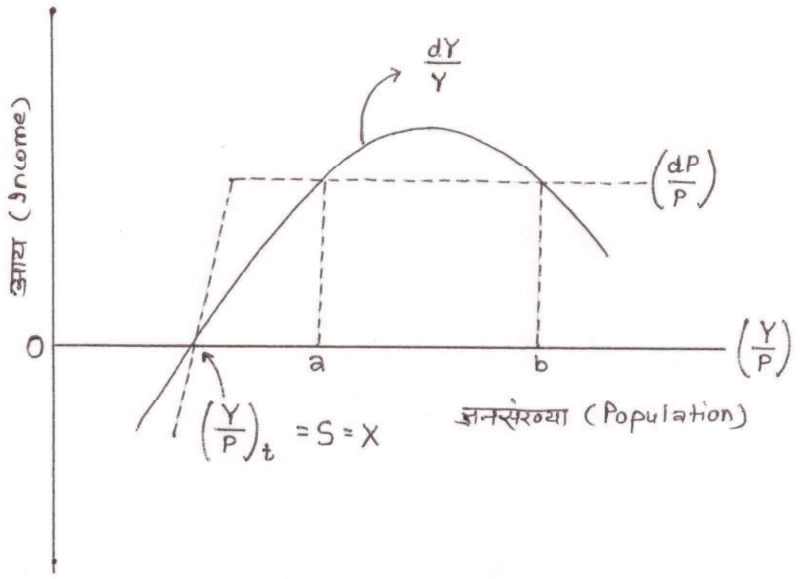

चित्र 13.3

इस रेखाचित्र में (dY/Y) आय वृद्धि दर वक्र है जिसे रेखाचित्र नं0 13.2 से लिया गया है तथा (dP/P) वक्र जनसंख्या वृद्धि दर वक्र है जिसे रेखा 1 (a) से लिया गया है। रेखाचित्र 1 (b) से X का स्तर लिया गया है जो सुविधा क लिए S के बराबर मान लिया गया है। रेखाचित्र 13.3 में $S = X$ एक ऐसा बिन्दु है जिस पर प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर के बराबर है जिस पर जनसंख्या की वृद्धि दर स्थिर है तथा दूसरी ओर यह प्रदर्शित करता है कि इस बिन्दु पर प्रति व्यक्ति बचत तथा निवेश शून्य है।

प्रति व्यक्ति आय के प्रत्येक स्तर पर जो जीवन निर्वाह स्तर बिन्दु (S = X) तथा Oa के बीच हो, जनसंख्या की वृद्धिदर आय की वृद्धि दर की अपेक्षा अधिक होगी, इसके परिणाम स्वरूप प्रति व्यक्ति आय मे स्थायी रूप से गिरावट होगी और यह जीवन निर्वाह स्तर पर पहुंच जायेगी, संस्थिति प्रति व्यक्ति आय का स्तर वहां होगा जहां 'जनसंख्या की वृद्धि दर प्रदर्शित करने वाली वक्र (dP/P) आय संवृद्धि पर दर वक्र (dY/Y) को नीचे से काटे। ऐसा एक बिन्दु Oa के बायीं ओर वहां होगा जहां S=X है। यह बिन्दु 'अल्पसन्तुलन पाश' की स्थिति को प्रदर्शित करेगा। प्रति व्यक्ति आय का कोई भी स्तर जो Oa से कम हो, प्रति व्यक्ति आय को आवश्यक रूप से जीवन निर्वाह स्तर पर पहुंचा देगा। इसके विपरीत यदि प्रति व्यक्ति आय का स्तर Oa से अधिक हो तो प्रति व्यक्ति आय में तब तक स्थायी वृद्धि होगी जब तक कि दोनों वक्रें एक दूसरे को Ob स्तर पर पुनः नहीं काटतीं। यह एक नयी स्थिर संस्थिति की स्थिति होगी जहां 'जनसंख्या की वृद्धि दर वक्र' आय वृद्धि दर वक्र को नीचे से काटती हे। इस 'अल्प सन्तुलन पाश' से निकलने के लिए दो रास्ते हैं – या तो प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाकर Oa कर दिया जाये या सरकारी नीतियों के द्वारा dY/Y तथा dP/P वक्रें वांछित रूप से विवर्तित कर दी जायें। ऐसे विकासशील देश जो ऐसे पाश में फंसे हैं उन्हें एक बार में अपनी प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाकर Oa के बराबर लाना होगा। ये देश इस पाश से तभी छूट सकते हैं जब प्राविधिक प्रगति के कारण समयान्तर में dY/Y को ऊपर विवर्तित किया जा सके या प्रभावपूर्ण जनसंख्या नीति द्वारा dP/P वक्र को नीचे विवर्तित किया जा सके।

जैसा आगे हम 'लेबेन्स्टीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त तथा प्रबल धक्का सिद्धान्त की व्याख्या के दौरान देखेंगे कि दोनों मे ही यह प्रतिपादित किया गया है कि इस अल्पस्तरीय संस्थिति जाल से निकलने के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में एक साथ इतनी अधिक मात्रा में निवेश किया जाय कि प्रति व्यक्ति आय एक बारगी Oa से अधिक हो जाये। लॉ मिंट ने नेल्सन माडल को अल्प विकसित देशों के सम्बन्ध में लागू करने के सम्बन्ध में कुछ कठिनाइयों को बताया है

क.प्रति व्यक्ति आय स्तर, जनसंख्या की वृद्धि दर तथा कुल आय की वृद्धि दर के बीच नेल्सन ने फलनात्मक सम्बन्ध की बात की पर मिंट के अनुसार इनके बीच इस प्रकार के निश्चित तथा कठोर फलनात्मक सम्बन्ध को खींचा नहीं जा सकता है। आजकल अल्प विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के कारण नहीं है बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं, महामारी तथा भयानक बीमारियों आदि के नियंत्रण के परिणामस्वरूप मृत्युदर की कमी के कारण हुयी है। मिण्ट का यह भी कहना है कि प्रति व्यक्ति आय के स्तर तथा कुल आय में वृद्धि दर के बीच फलनात्मक सम्बन्ध अत्यन्त ही जटिल हैं।

ख.नेल्सन के रेखाचित्र 13.3 पर टिप्पणी करते हुए मिण्ट ने दो आपत्तियां उठाईं। 1. प्रति व्यक्ति आय के स्तर में थोड़ी सी वृद्धि जैसे S से C S बिन्दु पर पुनः स्थिर सस्थिति की स्थिति कायम तभी करेगी जबकि 'समय' को वक्र खींचते समय नहीं लिया

गया पर यदि 'समय' को लिया गया तो S से C पर परिवर्तन के साथ पूंजी स्टाक में स्थायी वृद्धि हो जायेगी ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था फिर C से खिसक कर Sपर नहीं आयेगी।

13.6 सिद्धान्त की आलोचनायें

- **जनसंख्या वृद्धि दर मरण दर से सम्बन्धित है ।**
- **जन्मदर मे कमी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण नहीं होती।**
- **जन्मदर कम करने के लिए राज्य प्रयत्नों की उपेक्षा की गई करता है।**
- **समय तत्व की उपेक्षा।**
- **प्रति व्यक्ति आय तथा वृद्धि दर में जटिल संबंध।**
- **यह बन्द अर्थव्यवस्था पर लागू होता है।**

अभ्यास प्रश्न

लिबिन्सटीन के ही समान विचार निम्न में से किस अर्थशास्त्री ने दिये?

A. रोस्टोव B. रोजेन्स्टीन
C. हर्षमैन D. नेल्सन

2. नेल्सन ने किस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया?

A. प्रबल प्रयास सिद्धान्त B. आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त
C. निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त D. जीवन–निर्वाह सिद्धान्त

3. 'Theory of the low level equilibrium trap' लेख सम्बन्धित है–

A. नेल्सन से B. जे0ई0 मीड
C. डोमर D. रॉबिन्सन

4. 'प्रतिव्यक्ति आय के स्तर तथा जनसंख्या वृद्धि की दर में ऊंचा सह संबंध है' यह विचार धारा सम्बन्धित है।

A. सिंगर B. नेल्सन
C. फ्लेमिंग D. मार्शल

सत्य/असत्य

1. नेल्सन का सिद्धान्त माल्थस की इस उपकल्पना पर आधारित है कि किसी देशकी प्रति व्यक्ति आय के न्यूनतम जीवन स्तर से बढ़ जाने पर जनसंख्या बढ़ने लगती है।
2. नेल्सन माडल में आय निर्धारण समीकरण उत्पादन फलन की ही तरह है।
3. ''गुणक एवं त्वरक सिद्धान्तों के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध है। '' की व्याख्या नेल्सन ने की।
4. नेल्सन ने विकास में उद्यमी की भूमिका पर अधिक जोर दिया।

5. बड़े धक्के की सिचांर का सम्बन्ध नेल्सन से है।

13.7 सारांश

निम्न संतुलन पाश से बचने के लिए नेल्सन ने अनेक साधन लक्ष्य किए हैं। **प्रथम,** देश में अनुकूल सामाजिक–राजनैतिक वातावरण होना चाहिए। **दूसरे,** मितव्ययिता तथा उद्यम वृत्ति पर अधिक बल देकर सामाजिक ढांचे में परिवर्तन लाया जाए। अधिक उत्पादन के लिए और प्रोत्साहन दिए जाएं। परिवार का आकार सीमित रखने के लिए भी प्रोत्साहन दिए जाए। **तीसरे,** आय के वितरण में परिवर्तन लाने के लिए कदम उठाए जिससे निवेशक धन संचय कर सकें। **चौथे,** एक सर्वव्यापी सरकारी निवेश कार्यक्रम होना चाहिए। पांचवे, विदेशों से कोष प्राप्त करके आय तथा पूंजी बढ़ाई जाए। **अन्तिम,** विद्यमान साधनों को अधिक पूर्णता से उपयोग में लाने के लिए उत्पादन की सुधरी तकनीकें काम में लायी जायें, ताकि दिये हुए उपकरणों से आय बढ़ जाये। अल्प विकसित देशों में निम्न संतुलन पाश से बचने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि यह अधिक हो। जब किसी निश्चित न्यूनतम प्रति व्यक्ति आय स्तर से ऊपर एक बार यह स्थिति उपलब्ध हो जायेगी, तो सरकारी प्रयत्न के बिना भी तब तक सतत वृद्धि होती चलेगी जब तक कि प्रति व्यक्ति आय का एक नया उच्च स्तर नहीं आ जाता।

13.8 शब्दावली

उच्च भौतिक सीमा – उच्चतम उपभोग की अवस्था।

न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर – आय की वह मात्रा जो मात्र अति आवश्यक उपभोग को ही क्रस कर सके अर्थात आय का निम्न स्तर।

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सत्य/असत्य

1. सत्य, **2.** सत्य ,3. असत्य , **4.** असत्य 5. असत्य

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प्रो0 एम0 एल0 झिगन, '' विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन '' बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस ,दिल्ली ,2010
2. प्रो0 एस0एन0लाल ''आर्थिक विकास तथा आयोजन शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद ''1999
3. प्रो0 एस0पी0 सिह, '' आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन ''एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन ,दिल्ली ,2009

13.11 सहायक उपयोगी अध्ययन सामग्री

1. R. R. Nelson, "A theory of the low level Equilibrium Trap".American Economic Reviev.
2. Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
3. Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नेल्सन के निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करिए। आपकी राय में निम्न संतुलन पाश से बचने के क्या उपाय हो सकते हैं ?

इकाई–14 रोजेन्स्टीन का बड़े धक्के का सिद्धान्त

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 रोजेस्टीन रोदान के बड़े धक्के के सिद्धान्त की अवधारणा

15.4 बड़े धक्के के सिद्धान्त सम्बन्धी रोदान की थीसिस की व्याख्या

15.5 अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताएं

15.6 सिद्धान्त के गुण

15.7 सिद्धान्त की आलोचनाएं

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.12 सहायक उपयोगी सामग्री

15.13 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्रो0 पाल0 एन0 रोजेन्स्टीन रोडान द्वरा प्रतिपादित प्रबल प्रयास या बड़े धक्के का सिद्धान्त लीबिन्स्टीन के 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास'' से काफी मिलता जुलता है। रोडान 'सन्तुलित विकास' के समर्थक थे लेकिन विकास की धीमी प्रक्रिया से सहमत न थे। उनका विश्वास था कि दीर्घकालीन स्थिरता और विषैले चक्रों में फंसी अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं को आत्म निर्भर विकास के मार्ग पर लाने के लिए बड़े धक्के की आवश्यकता होती है। रोडान के अनुसार जिस प्रकार एक सोते हुए व्यक्ति को एकदम झकझोर कर ही उठाना पड़ता है ठीक उसी प्रकार नियोजन का उद्देश्य अर्थ व्यवस्था को उसके निम्न स्तरीय साम्य से झटके के साथ बाहर निकाल कर संचयी विकास पर आरूढ़ करना होना चाहिए।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि –

- बड़े धक्के के सिद्धान्त से क्या तात्पर्य है।
- बड़े धक्के से सम्बन्धित विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की क्षमता क्या होती है।
- अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताओं से क्या तात्पर्य है।
- अविभाज्यतायें कितने प्रकार की होती है।

14.3 रोजेस्टीन रोदान के बड़े धक्के के सिद्धान्त की अवधारणा

यह सिद्धान्त हमें यह बतलाता है कि धीरे धीरे चलने से आर्थिक बाधाएं दूर नहीं हो सकती। एक कमजोर इंसान द्वारा, किसी शक्तिशाली शिकंजे से मुक्त होने के लिए हल्का फुल्का प्रयास करना अपनी ताकत को बर्बाद करना है। उसे तो बची–खुची सम्पूर्ण ताकत को एक दफा समेट कर लगाना होगा ताकि मुक्ति की सम्भावना प्रबल हो सके। यही बात अर्थव्यवस्थाओं के साथ भी लागू होती है। स्थिर अवस्था में पड़ी हुई अर्थव्यवस्थाओं को गति प्रदान करने के लिए एक **'आवश्यक न्यूनतम मात्रा'** में निवेश करना बहुत जरूरी है ताकि अर्थ व्यवस्था को झटके के साथ इस स्थैतिक अवस्था से बाहर निकाला जा सके। रोडान ने अपने तर्क हेतु एक उदाहरण देते हुए कहा है कि एक पिछड़े हुए देश को आत्म निर्भर विकास के मार्ग पर लाना, सही अर्थ में; एक हवाई जहाज को जमीन से ऊपर उड़ाने के समान है। जिस प्रकार हवाई जहाज उड़ाने के लिए जमीन पर एक ''आवश्यक न्यूनतम गति' को बनाये रखना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए साधनों की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा होती है जिसका निवेश करना जरूरी है।''

14.4 बड़े धक्के के सिद्धान्त सम्बन्धी रोदान की थीसिस की व्याख्या

''बड़ा धक्का अथवा प्रयास'' सिद्धान्त प्रो0 पाल0 एन0 रोजेन्स्टीन रोदान के नाम से संबद्ध है। थीसिस यह है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विकास की बाधाओ को पार करने और उसे प्रगति पथ पर चलाने के लिए ''बड़ा धक्का'' या बड़ा व्यापक प्रोग्राम आवश्यक है, जो न्यूनतम किन्तु उच्च मात्रा में निवेश के रूप में हो। उसने ड्ण्ण्ज्ण् अध्ययन से अपने तर्क पर बल देने के लिए एक 'सादृश्य' प्रस्तुत किया है। यदि विकास प्रोग्राम को थोड़ा भी सफल बनाना है, तो संसाधनों का एक न्यूनतम स्तर उस प्रोग्राम में लगाना ही पड़ेगा।

किसी देश की वृद्धि को आत्मनिर्भरता की अवस्था में लाना ठीक ऐसा ही है, जैसा हवाई जहाज को धरती से हवा में उड़ाना। भूमि पर एक ऐसी क्रांतिक गति होती है, जिसे विमान को वायुवाहित बनाने के लिए धरती पर ही पार करना पड़ता है।'' यह सिद्धान्त कहता है कि ''धीरे–धीरे'' चलने से अर्थव्यवस्था को सफलतापूर्वक विकास पथ पर नहीं लाया जा सकता बल्कि इसके लिए आवश्यक स्थिति यह है कि एक न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाए। इसके लिए उन ब्राहय मितव्ययिताओं को प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है, तो तकनीकी रूप में स्वतंत्र उद्योगों की एक साथ स्थापना से उत्पन्न होती है। इस प्रकार निवेश की न्यूनतम मात्रा में प्रवाहित होने वाली अविभाज्यताऐं तथा बाहय मितव्ययिताएं आर्थिक विकास का सफलतापूर्वक सूत्रपात करने के लिए आवश्यक है।

14.5 अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताए

रोजेन्स्टीन रोदान ने तीन विभिन्न प्रकार की अविभाज्यताओं तथा बाहय मितव्ययिताओं में भेद किया है। **1,** उत्पादन फलन में अविभाज्यताएं विशेष रूप से सामाजिक उपरि पूंजी की पूर्ति की अविभाज्यता, **2,** मांग की अविभाज्यता, **3,** बचतों की पूर्ति में अविभाज्यता। आर्थिक विकास लाने में इन अविभाज्यताओं के कार्य का हम अब विश्लेषण करते हैं।

1.उत्पादन फलन में अविभाज्यताएं – रोजेन्स्टीन रोदान के अनुसार, आगतों–निर्गतों तथा प्रक्रियाओं की अविभाज्यताओं से बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। उसका दृढ़ विश्वास है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में बढ़ते प्रतिफलों ने पूंजी उत्पादन अनुपात कम करने में काफी भाग लिया था। परन्तु वह सामाजिक उपरि पूंजी को अविभाज्यता कि और इसलिए पूर्ति पक्ष में बाहय मितव्ययिताओं का, अत्यन्त महत्वपूर्ण उदाहरण मानता है। सामाजिक उपरि पूंजी की सेवाएं, जिनके अंतर्गत आधारभूत उद्योग जैसे विद्युत, परिवहन तथा संचार है, अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादक हैं और उनकी पूरी होने की अवधि लम्बी होती है। इनका आयात नहीं हो सकता। उनकी सस्थापनाएं ''काफी प्रारंभिक राशि' के निवेश की अपेक्षा रखती है। इसलिए उनमें कुछ समय तक अप्रयुक्त क्षमता रहेगी। इनमें ''विभिन्न सार्वजनिक उपयोगिताओं का अहास्य न्यूनतम उद्योग मिश्रण होता है, जिसके कारण अल्प विकसित देश को अपने कुल निवेश का 30–40 प्रतिशत इन दिशाओं में लगाना पड़ेगा।'' इसलिए उन्हें शीघ्र फलदायक प्रत्यक्षतः उत्पादक निवेशों से पहले होना चाहिए।

इस प्रकार, रोदान के अनुसार, सामाजिक उपरि पूंजी को **चार** अविभाज्यताएं विशिष्टता प्रदान करती हैं। **प्रथम**, यह काल में अप्रतिवर्त्य होती है और इसलिए आवश्यक है कि अन्य प्रत्यक्षतः उत्पादक निवेशों से यह पहले हो। **दूसरे,** इसमें एक निश्चित न्यूनतम टिकाऊपन होता है, जो इसे गठीला बनाता है। **तीसरे,** इनकी गर्भावधि लम्बी होती है (अर्थात यह देर में फल देना शुरू करती है) **अन्तिम,** इसमें विभिन्न प्रकार की सार्वजनिक उपयोगिताओं का

एक निश्चित न्यूनतम अहास्य उद्योग मिश्रण होता है। सामाजिक उपरि पूंजी की पूर्ति की ये अविभाज्यताएं अल्पविकसित देशों में विकास की प्रमुख बाधा है, इसलिए शीघ्र फलदायक प्रत्यक्षतः उत्पादक निवेशों का मार्ग चलाने के लिए आवश्यक है कि सामाजिक उपरि पूंजी में उच्च प्रारम्भिक निवेश किया जाए।

2.मांग की अविभाज्यता – मांग की अविभाज्यता या पूरकता इस बात की अपेक्षा रखती है कि अल्प विकसित देशों में परस्पर–निर्भर उद्योगों की एक साथ स्थापना हो। व्यक्तिगत निवेश परियोजनाओं में भारी जोखिम रहता है क्योंकि अनिश्चितता यह होती है कि उनकी वस्तुओं के लिए मार्केट होगी भी या नहीं, इसलिए निवेश सम्बन्धी निर्णय परस्पर निर्भर रहते हैं। रोजेन्स्टीन रोदान ने अपनी बात स्पष्ट करने के लिए जूता–फैक्टरी का प्रसिद्ध उदाहरण दिया है। शुरू में बन्द अर्थव्यवस्था लेकर, मान लीजिए, कि एक जूता फैक्ट्ररी में सौ अदृश्य बेरोजगार श्रमिक काम पर लगाए जाते हैं, जिनकी मजदूरी अतिरिक्त आय का निर्माण करती है। यदि ये श्रमिक अपनी समस्त आय उन जूतों पर खर्च करें जिनका वे निर्माण करते हैं तो जूता मार्केट में निरन्तर मांग रहेगी और इस प्रकार उद्योग सफल हो जाएगा। परन्तु वे अपनी समस्त अतिरिक्त आय जूतों पर नहीं खर्च करेंगे क्योंकि मानवीय आवश्यकताएं नाना प्रकार की होती हैं। फैक्टरी के बाहर के लोग भी इन अतिरिक्त जूतों को नहीं खरीदेंगे क्योंकि वे दरिद्र हैं और उनके पास इतना धन नहीं है कि अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकें। इस प्रकार मार्केट के अभाव के कारण कई फैक्टरी उजड़ जायेगी।

इसी उदाहरण को बदलकर प्रस्तुत किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक फैक्टरी में सौ की बजाय सौ फैक्टरियों में दस हजार श्रमिक लगे हैं, जो विविध प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और उन वस्तुओं के क्रय में अपनी मजदूरी खर्च करते हैं। नए उत्पादक एक दूसरे के ग्राहक होंगे और इस प्रकार अपनी वस्तुओं के लिए मार्केट बना लेंगे। मांग की पूरकता मार्केट ढूंढने की जोखिम को घटाती है और निवेश की प्रेरणा को बढ़ाती है। दूसरे शब्दों में, अल्पविकसित देशों में मार्केट का छोटे आकार तथा निवेश कम प्रेरणा को पार करने के लिए, मांग की अविभाज्यता परस्पर निर्भर उद्योगों में एक उच्च न्यूनतम मात्रा में निवेश को आवश्यक बना देती है।

रोजेन्स्टीन –रोदान की जूता फैक्टरी का उदाहरण चित्र में समझाया गया है। ATC तथा MC वक्र एक प्लाट की लागत को दर्शाता है जो कि एक इष्टतम आकार के

प्लाट से कुछ छोटा है D1 तथा MR1 जूता फैक्टरी के मांग और सीमांत आगम वक्र है अब केवल इसी में निवेश किया जाता है। यह OO1 (10,000) जूतों का उत्पादन करती है जिन्हें OP1 कीमत पर बेचती है जो इसकी ATC (औसत कुल लागत) को पूरा नहीं करती है। अतः फैक्टरी Cab P1 हानि उठा रही है परन्तु जब एक साथ अनेक विभिन्न उद्योगों मे निवेश किया जाता है तो जूतों की मार्केट का प्रसार होता है जिससे जूतों की मांग (चार गुणा) D4 बढ़ती है तथा जूतों की पूर्ति OO4 (40,000) हो जाती है। अब जूता फैक्टरी P4RST के बराबर लाभ कमाती है। इसी प्रकार अन्य उद्योग भी लाभ कमाते हैं।

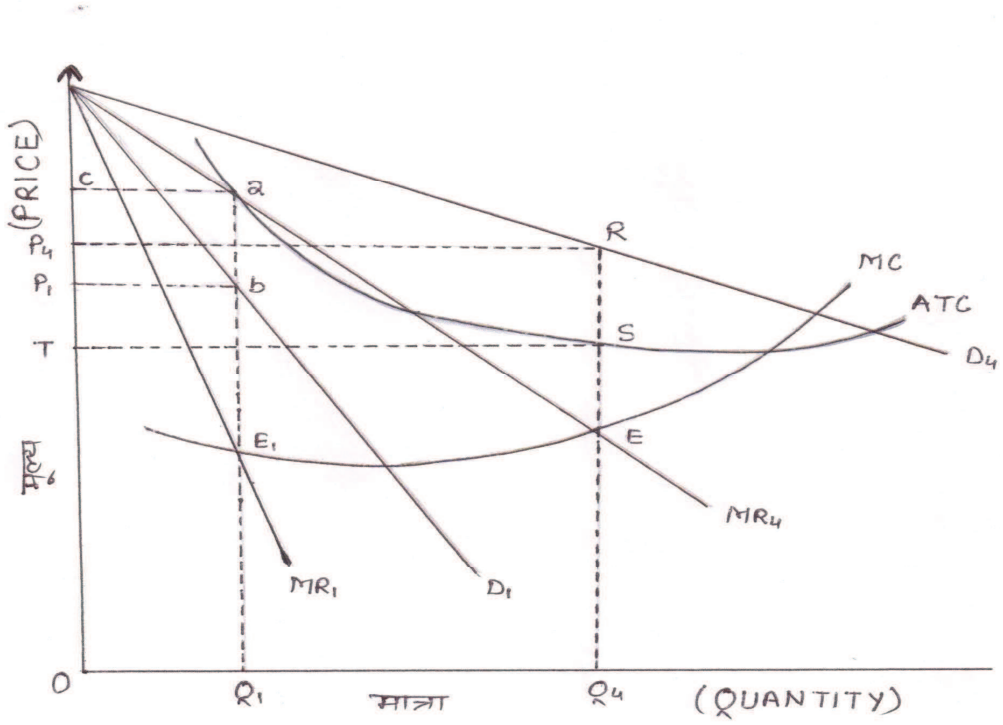

चित्र नं0 14.1

3.बचतों की पूर्ति में अविभाज्यता – रोजेन्स्टीन के सिद्धान्त में बचत की उच्च–आय–लोच तीसरी अविभाज्यता है निवेश के एक उच्च न्यूनतम आकार के लिए बचतों की उच्च मात्रा की आवश्यकता होती है। दरिद्र अल्पविकसित देशों में इसे उपलब्ध कराना आसान नहीं क्योंकि वहां आय का स्तर बहुत कम होता है। इस कठिनाई को पार करने के लिए यह आवश्यक है कि जब निवेश में वृद्धि होने के कारण आय बढ़े, तो बचत की औसत दर की अपेक्षा बचत की सीमान्त दर कभी अधिक नहीं रहे।

इन तीन अविभाज्यताओं तथा इनके द्वारा उत्पन्न बाह्य मितव्ययिताओं के दिए हुए होने पर अल्पविकसित देशों में विकास की बाधाओं को पार करने के लिए ''बड़ा प्रयास'' या न्यूनतम मात्रा का निवेश आवश्यक है। रोदान ने लिखा है, ''विकास की सफलतापूर्ण नीति के लिए आवश्यक उत्साह तथा प्रयत्न में अन्ततः अविभाज्यता का तत्व होता है।'' अकेले तथा हल्के ढंग से धीरे धीरे चलने का आर्थिक वृद्धि पर पर्याप्त प्रभाव नहीं पड़ता। जब किसी अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के भीतर एक न्यूनतम गति या मात्रा में निवेश होता है, तभी विकास का वातावरण बनता है। इस प्रकार जब एक बार विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तो यह एक साथ ही संतुलित वृद्धि के सम्बन्धों के मार्ग पर क्रियाशील होती है। ये तीन संबंध हैः **प्रथम,** सामाजिक उपरि पूंजी तथा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में संतुलन। **द्वितीय,** पूंजी वस्तु उद्योगों तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के अनुलंब संतुलन। **तृतीय,** बढ़ रही उपभोक्ता मांग में पूरकता के कारण विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में क्षैतिक संतुलन। इस प्रकार के संतुलित विकास के लिए विस्तृत प्रोग्रामिंग अपेक्षित होता है।

14.6 सिद्धान्त के गुण

यह सिद्धान्त तार्किक दृष्टि से काफी उचित जान पड़ता है क्योंकि विषम चक्रों से निकलने का एक मात्र सुसंगठित एवं शक्तिशाली ढंग से प्रयास करना है। यह सिद्धान्त कुछ बातों में स्थैतिक सन्तुलन के परम्परागत सिद्धान्त से भी श्रेष्ठ है। रोडान महोदय का यह कहना कि विकास प्रक्रिया अनेक असतत छलांगों का परिणाम है, पूर्णतया सत्य जान पड़ता है। उनकी उत्पादन फलन की अविभाज्यताओं की मान्यता भी आर्थिक जगत की एक वास्तविकता है। यह सिद्धान्त अन्य विकसित देशों में पायी जाने वाली बाजार अपूर्णताओं से सम्बन्धित निवेश का एक मार्गदर्शक सिद्धान्त है जो हमें यह बताता है कि ऐसे देशों में कीमत–यन्त्र की बजाय निवेश की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा ही आर्थिक विकास को गति प्रदान कर सकती है।

14.7 सिद्धान्त की आलोचनाएं

सिद्धान्त के इन गुणों के बावजूद प्रो0 मिन्ट, ऐडलर, हैगन, किन्डलबर्जर, एलिस, वाइनर, बाल्डविन तथा हिगिन्स द्वारा इसकी आलोचनाऐं की गयी हैं जो कि इस प्रकार है –

1.सिद्धान्त का अवास्तविक होना – यह सिद्धान्त अवास्तविक है क्योंकि अल्पविकसित देशों में निम्न आय, अल्प बचतें व पूंजीगत साधनों के अभाव के कारण बड़ी मात्रा में निवेश करना सम्भव नहीं होता।

2.मितव्यायिताओं की असम्भावना – यह सिद्धान्त उत्पादन के बड़े पैमाने की बाह्य मितव्ययिताओं पर आधारित एक सिद्धान्त है। लेकिन जैकब वाइनर का कहना है कि ये बाहरी बचतें तो विदेशी व्यापार से भी प्राप्त हो सकती हैं और फिर इतनी अधिक मात्रा में निवेश की भी आवश्यकता नहीं होगी। रोडान ने स्वयं भी इस बात को स्वीकार किया है।

3.अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा – यह सिद्धान्त पूंजीगत परियोजनाओं एवं आर्थिक संरचना के क्षेत्र में विनियोग करने पर बल देता है लेकिन कृषि एवं प्राथमिक उद्योगों में विनियोग करने की

अवलेहना करता है जो कि एक कृषि प्रधान अल्प विकसित देश के लिये उचित नहीं जान पड़ता।

4.सामाजिक उपरि पूंजी की अविभाज्यता का अतार्किक दृष्टिकोण– सामाजिक उपरि पूंजी की अविभाज्यतायें रोडान के सिद्धान्त का सबसे प्रबल तर्क है लेकिन प्रो0 मिंट का कहना है कि प्रत्येक अल्प विकसित देश में ये सामाजिक उपरि पूंजी सुविधायें कुछ न कुछ मात्रा में पायी जाती है इसलिये समस्या इन सुविधाओं के नये सिरे से विकास करने की नहीं बल्कि उनमें सुधार करने की होती है। अतः इस दृष्टि से प्रबल प्रयास के रूप में निवेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता और यदि निवेश कर भी दिया जाये तो यह जरूरी नहीं कि यह निवेश इन देशों के लिये अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सके।

5.अल्प लागतों वाले विनियोजन से नगण्य मितव्ययितायें उपलब्ध होना – प्रो0 किन्डलबर्जर का कहना है कि उपभोक्ता उद्योगों में सम्भाव्य बाहरी बचतें सीमित मात्रा में ही प्राप्त की जा सकती हैं। अत्यधिक बेलोच मांग वाली वस्तुओं में निवेश करने से प्रदा नहीं बढ़ती बल्कि लागत घटने लगती है क्योंकि बाहरी बचतें केवल भारी उद्योगों में प्रदा के विस्तार होने से उत्पन्न हो सकती है। चूंकि लागत घटाने वाले निवेश में बचतें नगण्य होती हैं इसलिये इनमें निवेश करने और उनसे बचतें प्राप्त होने का तर्क गलत सिद्ध होता है।

6.अल्प विनियोजन द्वारा प्रदा में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होना–

प्रो0 जॉन ऐडलर का मत है कि रोडान की इस थीसिस के विपरीत निवेश की साक्षेपतः कम मात्रा, प्रदा में अधिक वृद्धि कर देती है। ऐडलर के तर्क की पुष्टि भारत व अन्य एशियाई तथा दक्षिण अमेरिका के कुछ ऐसे देशों से भी होती है जहां निम्न पूंजी उत्पाद अनुपात के बावजूद प्रदा का स्तर संतोषजनक रहा है।

7.स्फीतिकारी दबावों का उत्पन्न होना – सामाजिक ऊपरी सुविधाओं पर किया गया निवेश प्रत्यक्ष रूप से न तो उत्पादन करता है और न ही इनसे शीघ्रगामी प्रतिफल ही प्राप्त हो सकते हैं। इतना ही नहीं, इन परियोजनाओं में पूंजी उत्पाद भी अधिक होता है और इनकी गर्भावधि भी लम्बी होती है। जिसके फलस्वरूप इस काल के दौरान विनियोगों के अधिक होने और उत्पादन के कम होने के कारण स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न होने लगते हैं।

8.इतिहास द्वारा पुष्टि न होना – प्रो0 हेगन के मतानुसार यह सिद्धान्त पिछड़े देशों के तीव्र विकास का एक ''जोशीला नुस्खा'' अवश्य है लेकिन भावनाप्रधान अधिक है। फिर, इसकी पुष्टि इतिहास के किसी भी चरण द्वारा नहीं होती।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्रबल प्रयास का आर्थिक विकास का सिद्धान्त किससे सम्बन्धित है?

A. सिंगर B. बाल्डविन

C. रोडान D. नक्से

2. रोजस्टीन के अनुसार बचत एवं निवेश वृद्धि हेतु आवश्यक है :

A. उपभोग वृद्धि B. आय का ऊंचा होना

C. लाभ वृद्धि D. मांग वृद्धि

3. बिग पुश सिद्धान्त की अल्पविकसित देशों के सम्बन्ध में मान्यता है कि –

A. पूंजी उत्पाद अनुपात अधिक है

B. पूंजी उत्पाद अनुपात स्थिर है

C. पूंजी –उत्पाद अनुपात कम है

D. उपरोक्त में से कोई नहीं

4. किस अर्थशास्त्री का सम्बन्ध बड़े धक्के के विचार धारा से नहीं है?

A. नेल्सन B. रोजेस्टीन

C. लीबिन्स्टीन D. लुइस

सम्य/असत्य

1. ''बिग पुश सिद्धान्त के अनुसार छोटे–छोटे विकास के कार्यक्रम एक बड़े विकास का रूप नहीं ले सकते।''
2. लुइस का सम्बन्ध बड़े धक्के की विचारधारा से है।
3. बिगपुश सिद्धान्त की ऐतिहासिक प्रामाणिकता से इस सिद्धान्त की पुष्टि नहीं होती है।
4. आर्थिक विकास प्रेरित प्रक्रिया नहीं है।

14.8 सारांश

आर्थिक विकास केवल बड़ी छलांग या बड़े धक्के के द्वारा ही संभव है। इस दृष्टि से पूंजी स्टॉक उद्योगों, मध्यम उद्योगों तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में लम्बवत सन्तुलन होना चाहिए, विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में उनकी सापेक्षिक मांग के अनुसार, 'समस्तर सन्तुलन' होना चाहिए, और पूंजीगत उद्योगों, उपभोक्ता उद्योगों तथा सामाजिक उपरि सुविधाओं के बीच, 'समस्तर सन्तुलन' बना रहना चाहिये।

रोजेन्स्टीन रोडॉन के दृष्टिकोण की सबसे प्रमुख विशेषता तथा महत्व इस तथ्य में निहित है कि इन पिछड़े देशों की आर्थिक विकास की प्रक्रिया में बहुत बड़े पैमाने पर प्रयास तथा विनियोग के साथ आर्थिक विकास में राज्य की भूमिका पर बल दिया। यह भी बात सही है कि कुछ विनियोगों के न्यून आकार हैं। (विशेष रूप से सामाजिक परिव्यय पूंजी के सम्बन्ध में) जिससे कम रहने पर वे आर्थिक रूप से लाभप्रद नहीं होंगे, जैसे सड़क, रेलवे, तथा पावर स्टेशन को चालू मांग को ही पूरा करने के लिए छोटे पैमाने पर बनाना अलाभप्रद ही नहीं बल्कि मूर्खता पूर्ण कदम होगा। पर यदि कोई देश इतने बड़े पैमाने पर सोच सके इतने बड़े पैमाने पर साधनों को जुटाकर बड़ी मात्रा में विनियोजन कर सके तथा साथ ही इस बड़े पैमाने पर औद्योगिकरण कर सके तो वह देश पिछड़ा या अल्पविकसित नही होगा।

14.9 शब्दावली

- प्रबल प्रयास– आवश्यक न्यूनतम मात्रा अर्थात उच्च मात्रा में निवेश करना।
- स्फीतिकारी दबाव– विनियोगी के अधिक होने और उत्पादन के कम होने से है।

14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न 1. C.रोडान , 2. D.मांग वृद्धि , 3. B.पूंजी उत्पाद अनुपात स्थिर है 4. D. लुइस **सम्य/असत्य** 1.सत्य , 2. असत्य , 3.सत्य ,4. असत्य

14.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो0 एम0 एल0 झिगन, '' विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन '' बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस ,दिल्ली ,2010
2. प्रो0 एस0एन0लाल ''आर्थिक विकास तथा आयोजन शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद ''1999
3. प्रो0 एस0पी0 सिह, '' आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन ''एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन ,दिल्ली ,2009
4. "External Economic and Balanced Growth" In Aggarwal and Singh (Eds.) Op. Cit.
5. Desai M. and Maxumdar, A test of the Hypothesis is of Disquised unemployment; Econometrica 1970.

14.12 सहायक उपयोगी सामग्री

1. Newes Ohthe Theory of "Big Push" in Economic Development of Latin America, Ch. III (Eds) H.S. Ellis and W.W. Wallich, 1961.
2. The Objectives of US Economic Assistance Programme, 1957.
3. Stability and Progress: The Poorer Countries Problems" in Satbillity an Progress in the World Economic, D. Hague, (Ed) 1958.
4. World Economic Growth - Retrospect and Prospect" R.E.S. , August, 1956.

14.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बृहतकाय चाप सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास हेतु यह कहां तक उपयुक्त है ?
2. आर्थिक विकास में बड़े धक्के का सिद्धान्त क्या है? किन परिस्थितियों के अन्तर्गत यह लागू होता है ?
3. रोजेन्स्टीन रोडान द्वारा प्रतिपादित प्रबल प्रयास सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए ?
4. रोजेन्स्टीन रोडान के बड़े धक्के के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। यह सिद्धान्त लीबिन्स्टीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयास से किस प्रकार भिन्न है ?
5. विकास का 'प्रबल प्रयास' सिद्धान्त क्या है ? क्या इस सिद्धान्त और सन्तुलित विकास के सिद्धान्त में कोई विवाद है ?
6. बड़े धक्के अर्थात प्रबल प्रयास सिद्धान्त पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?

इकाई–15 सन्तुलित एवं असन्तुलित वृद्धि का सिद्धान्त

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 संतुलित विकास एवं असंतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणा

15.4 संतुलित विकास सिद्धान्त की व्याख्या एवं विभिन्न अर्थशास्त्रियों के विचार

15.5 संतुलित विकास सिद्धान्त का सार

15.6 संतुलित विकास सिद्धान्त की आलोचना

15.7 असंतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणा

15.8 सामाजिक उपरिपूँजी एवं प्रत्यक्ष उत्पादक कियाओं की भूमिका

15.9 असंतुलित विकास सिद्धान्त का सार

15.10 सिद्धान्त की आलोचनायें

15.11 दोनो सिद्धान्तों की तुलना

15.12 सारांश

15.13 शब्दावली

15.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.16 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

15.17 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास की नीति क्या हो, इस सम्बन्ध में विकास अर्थशास्त्रियों में एक गहरा मतभेद है। कुछ विचारकों की राय है कि अल्प विकसित देशों को विकास की सन्तुलित पद्धति को अपनाना चाहिए तो दूसरे पक्ष की राय में असन्तुलित विकास नीति, आर्थिक विकास के लिये एक श्रेष्ठतम विकल्प है। कहने का अभिप्राय यह है कि देश का आर्थिक विकास, सन्तुलित आधार पर किया जाये अथवा असन्तुलित आधार पर, यह विचार आज भी एक विवाद ग्रस्त समस्या बनी हुई है। अतः इस दृष्टि से किसी वास्तविक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह अधिक उचित होगा कि पहले इन दोनों पद्धतियों की पूरी जानकारी प्राप्त कर ली जाये।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि–

- संतुलित वृद्धि से क्या तात्पर्य है।
- विकास में असंतुलन का क्या महत्व है।
- घरेलू तथा विदेशी व्यापार में संतुलन कैसे होता है।
- क्या सरकार संतुलित विकास के लिये कोई प्रयास करती है।
- क्या आर्थिक विकास असंतुलनों की ऋंखला द्वारा होता है।
- सामाजिक उपरिव्यय पूँजी क्या होती है।
- प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से क्या तात्पर्य है।
- संतुलित एवं असंतुलित विकास के लाभ–हानि क्या है।

15.3 संतुलित विकास एवं असंतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणा

सन्तुलित विकास शब्द का अर्थ अलग अलग अर्थशास्त्रियों ने भिन्न –भिन्न ढंग से लगाया है। एक मत के अनुसार सन्तुलित विकास का अर्थ है किसी अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रों तथा उद्योगों का समान रूप से विकास करना अर्थात उनमें एक साथ निवेश करना है। इसके विपरीत एक अन्य अर्थ में सन्तुलित विकास, उपभोक्ता उद्योगों और पूंजीगत उद्योगों के समान विकास का प्रतीक है। कुछ अन्य लोगों ने सन्तुलित विकास को निर्माणकारी उद्योगों और कृषि उद्योग का सन्तुलित विकास माना है। कुछ लोगों ने उद्योग और कृषि, तथा घरेलू क्षेत्र और निर्यातक क्षेत्र में सन्तुलन स्थापित करने के विचार को सन्तुलित विकास का नाम दिया है। एक अन्य विचारधारा के अनुसार परोक्ष उत्पाद निवेश अर्थात आर्थिक व सामाजिक उपरिसुविधाओं में निवेश तथा प्रत्यक्ष उत्पादक निवेश में सन्तुलन और अनुलम्ब तथा क्षैतिज बाहरी बचतों के बीच सन्तुलन बनाए रखने को सन्तुलित विकास की संज्ञा दी है। सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या करने की दृष्टि से नीचे कुछ परिभाषायें दी जा रही हैं

प्रो0 अलक घोष के शब्दों में –''नियोजन के साथ सन्तुलित विकास का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक ही अनुपात में विकास हो ताकि उपभोग, निवेश समान दर से बढ़ सके।''

प्रो0 रैडावे के अनुसार ''सन्तुलित विकास का अर्थ, अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में सन्तुलन प्राप्त करना है जैसे उत्पादन तथा उपभोग के ढांचे के बीच, उपभोग क्षेत्र तथा पूंजीगत क्षेत्र के मध्य, और उत्पादन की विभिन्न प्रणालियों के बीच, जिससे कि एक तरफ कच्चे माल व अर्न्तवर्ती वस्तुओं तो दूसरी तरफ औद्योगिक आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन स्थापित हो सके।''

उपयुक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते है कि – '' सन्तुलित वृद्धि से आशय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों तथा उद्योगों का एक साथ विकास करना है जिससे कि विभिन्न क्षेत्रों की उपज के लिये बाजार मिल सके और असन्तुलन उत्पन्न हो पाये।''

सन्तुलित वृद्धि का औचित्य –

सन्तुलित विकास का सिद्धान्त मुख्य रूप से समन्वित एवं सजातीय विकास की मान्यता पर आधारित है। हमारी राय में विकास की कोई भी नीति अथवा सिद्धान्त इस बात की अनुमति नहीं देता कि राष्ट्रीय विनियोग केवल निजी लाभ की भावना को दृष्टि में रखकर किये जायें अथवा केवल पूर्व उन्नत उद्योगों में ही किये जायें अथवा केवल उन्हीं उद्योगों में किये जायें जहां सम्भावित प्रतिफल अधिक होने की संभावना है। **''चूंकि देश के आर्थिक विकास का विचार किसी एक उद्योग या वर्ग विशेष के विकास का प्रश्न नहीं, बल्कि देश के सभी उद्योगों और समाज के सभी लोगों के सामूहिक व सजातीय विकास का प्रश्न हैं।'' इसलिए उपलब्ध क्षेत्रों को पूरक न बनाकर उन्हें परस्पर प्रतियोगी बनाया जाये और आर्थिक असन्तुलनों, संघर्षात्मक प्रवृत्तियों व हीन भावनाओं को उत्पन्न न होने दिया जाये।''** सन्तुलित विकास के सिद्धान्त का यही मुख्य सार है। सन्तुलित विकास की नीति निर्धनता के दुष्चक्र को तोड़ने, बाहरी बचतों को उत्पन्न करने, अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण प्राप्त करने, उत्पादकता में वृद्धि करने तथा आर्थिक विकास को तीव्रता प्रदान में सहायक होती है।

सन्तुलित विकास के प्रवर्तक एवं समर्थक – सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के प्रवर्तक के रूप में एडम स्मिथ तथा फ्रेडरिक लिस्ट का नाम लिया जा सकता है। वर्तमान समय में रोजेन्स्टीन रोडान, रागनर नकर्से, आर्थर लुईस, सिटोवास्की, रोस्टोव तथा हार्वे लिवेन्स्टीन इस विकास नीति के प्रमुख समर्थक माने जाते हैं।

15.4 संतुलित विकास सिद्धान्त की व्याख्या एवं विभिन्न अर्थशास्त्रियों के विचार

सन्तुलित विकास सिद्धान्त से सम्बंधित प्रो0 नकर्से, रोडान तथा लुईस द्वारा की गयी व्याख्या नीचे दी गयी है –

1. प्रो0 रागनर नर्कसे का विचार

नर्कसे के अनुसार अल्प विकसित देशों में निर्धनता का दुश्चक्र कार्यशील रहता है जो आर्थिक विकास में सदैव बाधा पैदा करता है। यह दुश्चक्र मांग और पूर्ति दोनों ही पक्षों में लागू होता है। पूर्ति पक्ष की दृष्टि से अल्प विकसित देशों में बचत करने की क्षमता कम होती है क्योंकि वास्तविक आय का स्तर काफी नीचा होता है। कम वास्तविक आय निम्न

उत्पादकता का परिणाम होती है जो स्वयं पूंजी के अभाव के कारण पैदा होती है। इसी प्रकार मांग पक्ष की दृष्टि से अल्प विकसित देशों में विनियोग करने की प्रेरणा शिथिल होती है क्योंकि लोगों द्वारा वस्तुओं की मांग कम की जाती है। वस्तुओं की मांग इसलिये कम होती है क्योंकि क्रय शक्ति कम होती है और क्रय शक्ति, निम्न आय के कारण कम होती है जबकि आय का निम्न स्तर स्वयं नीची उत्पादकता का परिणाम होता है। इस प्रकार अल्प विकसित देशों में निम्न उत्पादकता के कारण – कम आय – अल्प बचतें – तथा अल्प वस्तु मांग के फलस्वरूप – निवेश की प्रेरणा कम होती है **जिससे बाजार का आकार सीमित बना रहता है।**

इस दुश्चक्र को किस प्रकार तोड़ा जाए ? इसका अत्यन्त सरल व सीधा उपाय यह है कि उत्पादकता में वृद्धि की जाए। लेकिन उत्पादकता में वृद्धि तभी हो सकती है जब बड़े पैमाने पर उत्पादन अथवा पूंजी का निवेश किया जाए। और यह दोनों बातें तभी सम्भव है जब लोगों द्वारा वस्तुओं की पर्याप्त मांग की जाती हो, उनके हाथ में पर्याप्त क्रय शक्ति उपलब्ध हो। चूंकि खरीदने की क्षमता ही, सही अर्थो में, राष्ट्रीय उत्पादन करने की क्षमता है। इसलिये उत्पादकता वृद्धि का प्रश्न मुख्यतः इस बात पर निर्भर करता है कि उत्पादन में पूंजी का प्रयोग किस सीमा तक किया जा रहा है किन्तु इस निवेश सीमा का निर्धारण स्वयं बाजार के आकार पर निर्भर करता है। नर्कसे का कहना है कि कोई भी अकेला उद्योग अपने माल की मांग स्वयं पैदा नहीं कर सकता बल्कि मांग का सृजन उद्योगों की विविधता और आवश्यकताओं की विभिन्नता के कारण होता है। उन्होंने अपने तर्क की पुष्टि हेतु रोडान की तरह जूता उद्योग का उदाहरण देते हुए कहा कि मान लीजिए एक नया जूता उद्योग लगाया गया है। यदि क्रय शक्ति (उत्पादकता) के बढ़ने की दृष्टि से अर्थव्यवस्था में कोई अन्य प्रयास नहीं किये जाते तो जूता उ़द्योग की अतिरिक्त उपज की पूरी खपत बाजार में नहीं हो सकेगी और कुछ माल बिना बिके रह जाएगा। इसका कारण यह है कि एक तो इस उद्योग में लगे हुए व्यक्ति अपनी अन्य आवश्यकताओं के कारण समस्त आय जूतों पर खर्च नहीं करेंगे और दूसरे, इस उद्योग के बाहर के लोग भी प्रत्येक वर्ष जूता नहीं खरीदेंगे क्योंकि उनके पास अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पहले से ही धन का अभाव है। अतः स्पष्ट है कि यदि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो में लगे लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाने का प्रयास नहीं किया गया तो नीची वास्तविक आय पर बेलोच मांग बाजार के आकार को सीमित कर देगी जिससे निवेश की प्रेरणा घटेगी और फलस्वरूप यह 'नया उद्योग' फेल हो जायेगा।

बाजार का विस्तार किस प्रकार किया जाए ? उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस दुश्चक्र को तोड़ने के लिए बाजार का विस्तार करना अत्यावश्यक है। इसके लिए मौद्रिक प्रसार, विक्रय कला, विज्ञापन या व्यापार नियंत्रण हटाकर अथवा आर्थिक अर्द्धसंरचना का विकास करके बाजार का विस्तार किया जा सकता है। इसके अलावा कीमतें घटाकर अथवा मौद्रिक आय में वृद्धि करके भी वस्तुओं की मांग को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन इसके लिये आवश्यक है कि उत्पादकता व आय स्तर में पर्याप्त वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाये ताकि उत्पादन की लागतें कम हो सकें। एक अल्प

विकसित देश में ऐसा करना सम्भव नहीं हो पाता क्योंकि उपभोक्ता मांग लोच रहित होती है, उन्नत तकनीक व उद्यम का अभाव होता है और फलस्वरूप पूंजी निवेश की प्रेरणा के अभाव में बाजार का आकार सीमित बना रहता है।

इसलिये नर्कसे का कहना है कि इस दलदल से निकलने का एक मात्र उपाय यह है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों अर्थात विभिन्न उद्योगों में एक साथ पूंजी लगायी जाए। इसका परिणाम यह होगा कि सभी क्षेत्रों में आर्थिक क्रियाओं तथा कुशलताओं के बढ़ने के फलस्वरूप बाजार का विस्तार होने लगेगा। सन्तुलित विकास का उद्देश्य, वास्तव में पूरक उद्योगों का विकास करना है जो एक दूसरे के माल के ग्राहक बनकर पूंजी की मांग को बढ़ा देते हैं। **नर्कसे के अपने शब्दों में अनेक पूरक परियोजनाओं में अधिक और उत्तम औजारों से कामकरने वाले लोग एक दूसरे के ग्राहक बन जाते हैं। सामान्य उपभोग की वस्तुयें पैदा करने वाले अधिकांश उद्योग इसलिये एक दूसरे के पूरक होते हैं क्योंकि वे परस्पर, एक दूसरे की वस्तुओं की मांग उत्पन्न करके बाजार का विस्तार करते रहते हैं, और इस प्रकार एक दूसरे का पोषण करते हैं। अतः सन्तुलित विकास का प्रश्न 'सन्तुलित आहार' की आवश्यकता पर आश्रित है।'''**

नर्कसे का कहना कि विभिन्न उद्योगों के अंतर्गत परियोजनाओं के विस्तृत क्षेत्र में पूंजी का एक साथ तथा एक समय में किया गया निवेश आर्थिक दक्षता तथा बाजार के कुल आकार का विस्तार करता है। नर्कसे के अनुसार **''इस प्रकार का सीधा आक्रमण अर्थात अनेक विभिन्न उद्योगों में पूंजीगत निवेशों की लहर ही वास्तव में सन्तुलित विकास है।''** विस्तृत क्षेत्र वाले निवेश बाजार के आकार को बढ़ाकर बाहरी बचतें उत्पन्न करते हैं जो प्रायः एक व्यक्तिगत फर्म के लिए सम्भव नहीं होती। विभिन्न प्रकार के उद्योगों में निवेश करने से उद्योगों का अनुलम्ब तथा क्षैतिक समाकलन होता है, श्रम विभाजन अधिक श्रेष्ठ हो जाता है, कच्चा माल तथा तकनीकी ज्ञान की पूर्ति सहज हो जाती है, बाजार का आकार विस्तृत होता है और सामाजिक तथा आर्थिक उपरिव्यय पूंजी का श्रेष्ठतर उपयोग होने लगता है। कुल मिलाकर सन्तुलित विकास की नीति बाहरी बचतों को सम्भव बनाती है जो कि तीव्र आर्थिक विकास के लिये अत्यावश्यक है।

घरेलू तथा विदेशी व्यापार में सन्तुलन –

आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों में बाजार का सीमित आकार उनके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सबसे बड़ी बाधा है। पिछड़े हुए कृषि प्रधान देश निम्न उत्पादकता तथा कम क्रय शक्ति के कारण न तो आयात और न ही निर्यात करने की स्थिति में होते हैं। संतुलित विकास नीति के अंतर्गत जब विविध क्षेत्रों में निवेश किया जाता है तो इससे एक तरफ उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होने से आयातों को बढ़ावा मिलता है तो दूसरी तरफ उद्योगों की पूरकता तथा विविधता के फलस्वरूप निर्यात व्यापार बढ़ने लगते हैं। इस प्रकार संतुलित विकास की नीति घरेलू तथा विदेश व्यापार दोनों में संतुलन बनायें रखती हैं। **नर्कसे के अनुसार, ''संतुलित विकास अंतर्राष्ट्रीय विकास के लिए एक अच्छा आधार है और उसका सबसे बड़ा मित्र भी और परिवेश की रिक्तता को उभरने का श्रेष्ठतम ढंग भी**

है।'' नर्कसे ने **कृषि और उद्योग** में उचित संतुलन बनाये रखने पर जोर दिया है क्योकि यह दोनों क्षेत्र एक दूसरे के पूरक हैं।

संतुलित विकास और सरकार की भूमिका

संतुलित विकास के लिए सरकार द्वारा अर्थव्यवथा का केन्द्रिय नियोजन तथा नियमन करना जरूरी है। यद्यपि नर्कसे का यह मत रहा है कि निजी उ़द्यम मूल्य प्रेरणाओं (अर्थात कीमत यंत्र) के द्वारा पूरक उद्योगों की स्थापना करके संतुलित विकास को संभव बना सकता है। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्री कई कारणों से इस मत से सहमत नहीं हैं जिसकी विवेचना निम्नवत है –

1. निजी उद्यम लाभ भावना से प्रेरित होने के कारण सभी प्रकार के उद्योगों में निवेश करने के लिए तैयार नहीं होता।
2. निजी उद्यमियों द्वारा साधनों के दोषपूर्ण आवंटन की संभावना प्रायः बनी रहती है।
3. कीमत यंत्र पूजीगत निवेशों की परस्पर पोषक लहर उत्पन्न करने में असमर्थ रहता है।
4. तीव्र विकास के लिए भौतिक तथा मानवीय पूंजी में एक साथ निवेश करना जरूरी है और मानव पूंजी में बडे पैमाने पर निवेश केवल सरकार ही कर सकती है निजी उद्यमी नहीं।
5. सामाजिक उपरि पूंजी या अधःसंरचना का निर्माण, जो कि संतुलित विकास की पूर्व शर्त है, केवल सरकार द्वारा ही संभव है।

2.रोजेन्स्टीन रोडान का मत

नर्कसे की भांति रोडान ने भी अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास के लिये सन्तुलित विकास पद्धति का समर्थन किया है। परन्तु उनकी विचाराधारा नर्कसे से इस दृष्टि से भिन्न है कि वे सन्तुलित विकास की नीति को एक 'बड़े धक्के' के रूप में लागू करना चाहते हैं। बड़े धक्के से उनका अभिप्राय सभी क्षेत्रों में एक साथ 'आवश्यक न्यूनतम मात्रा' मे विनियोग करना है।

सन्तुलित विकास के समर्थन में एक अन्य तर्क का सहारा लेते हुए रोडान का कहना है कि आमतौर पर निवेश का 'सामाजिक सीमान्त उत्पाद' (SMP) उसके 'निजी सीमान्त उत्पाद (PMS) से भिन्न होता है और जब विभिन्न उद्योगों के एक समूह का उनकी SMPs के अनुसार एक साथ नियोजन किया जाता है तो अर्थव्यवस्था की विकास दर निश्चित ही अधिक होती है। इसका कारण यह है कि एक व्यक्तिगत उद्यमी की रूचि केवल निवेश के PMS में होती है और दूसरा उसके लिए SMP का सही–सही अनुमान लगाना बहुत कठिन होता है। रोडान ने इस बात की पुष्टि में कि निवेश का SMP उसके PMP से अधिक होता है, एक जूता फैक्टरी का उदाहरण भी दिया है। मान लीजिये एक नयी शुरू की गयी जूता फैक्टरी में 20 हजार बेरोजगार श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है। यदि ये सभी कार्यरत श्रमिक अपनी समस्त आय जूतों पर व्यय कर दें तो जूतों के लिए आवश्यक बाजार उपलब्ध होने लगेगा। लेकिन ऐसा हो नहीं पायेगा। सभी श्रमिक अपनी समस्त आय जूतों पर इसलिये खर्च नहीं करेंगे क्योंकि उन्हें अपनी अन्य

आवश्कताओं को भी पूरा करना है। हां ! इसके विपरीत यदि सभी प्रकार की उपभोगीय वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों का जाल (श्रृंखलाएं) फैला दिया जाये (जिन पर श्रमिक अपनी आय व्यय करें) तो ऐसी स्थिति में उद्योगों का विस्तार गुणक प्रक्रिया के रूप में होगा। इस प्रकार परस्पर पूरक उद्योगों का योजनाबद्ध ढंग से विकास होने पर बाजार के आकार का विस्तार होता है, माल के न बिकने की जोखिम घटती है, और औद्योगिक विकास तीव्र होने लगता है।

संक्षेप में प्रो0 रोडान द्वारा सन्तुलित विकास के पक्ष में दिये जाने वाले तर्क इस प्रकार हैं –**1.** तीव्र आर्थिक विकास के लिए जरूरी है कि परस्पर पूरक उद्योगों में एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाए। 2. सन्तुलित विकास का अर्थ है श्रम प्रधान तकनीक का अपनाया जाना। यह वह तकनीक है जिसमें पूंजी की अपेक्षा श्रम का अधिक प्रयोग किया जाता है। श्रम प्रधान तकनीक के अपनाने से रोजगार के साथ साथ क्रय शक्ति बढ़ती है जिससे **प्रभावपूर्ण मांग** में वृद्धि होकर आर्थिक विकास तेज हो जाता है। 3. विभिन्न प्रकार के उद्योगों में एक साथ विनियोग करने पर निजी क्षेत्र के लाभ कम हो जायेंगे और **सामाजिक लाभ** में वृद्धि हो जायेगी। यही आर्थिक विकास का मुख्य लक्ष्य है। **4.** सन्तुलित विकास पद्धति, बाहरी बचतों को पैदा करके अन्य क्षेत्रों में निवेश के अवसर बढ़ा देती है।

3. प्रो0 आर्थर लुइस के विचार

प्रो0 लुइस ने आर्थिक विकास के लिये सन्तुलित विकास पद्धति को ही उचित ठहराया है। उनके मतानुसार ''विकास योजनाओं में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास होना चाहिए जिससे कि कृषि एवं उद्योगों के बीच तथा घरेलू उपभोग हेतु उत्पादन और निर्यात हेतु उत्पादन के बीच एक उचित सन्तुलन बनाये रखा जा सके। हां ! यह धारणा देखनें में जितनी सरल है उतनी ही युक्तिपूर्ण भी, किन्तु फिर भी, इसे आसानी से झुठलाया नहीं जा सकता।'' सन्तुलित विकास का सबसे बड़ा गुण यह है कि विकास के मार्ग में आने वाले विभिन्न प्रकार के अवरोध स्वतः ही समाप्त होने लगते हैं। कुछ लोगों द्वारा सन्तुलित विकास की आलोचना प्रायः इस आधार पर की जाती है। सभी क्षेत्रों में समान दर से विकास करना सम्भव नहीं है। प्रो0 लुइस ने इस आलोचना का उत्तर देते हुए कहा है कि, ''सन्तुलित विकास का अर्थ, सभी क्षेत्रों का समान विकास नहीं है बल्कि विकास के वे अनुपात हैं जो विकास की भिन्न दरों की मांगों से चालित होते हैं। दूसरे शब्दों में, सभी क्षेत्रों का उनकी आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार वांछनीय दर से विकास होना, सन्तुलित विकास कहलाता है।''

15.5 संतुलित विकास सिद्धान्त का सार

1.सन्तुलित विकास का अर्थ एक साथ सभी उद्योगों में निवेश करना है। जिस प्रकार शरीर के लिए सन्तुलित भोजन की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार तीव्र आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित विकास का होना आवश्यक है।

2.सन्तुलित विकास की प्रक्रिया एक 'बड़े धक्के' से आरम्भ की जानी चाहिये। दूसरे शब्दों में, सन्तुलित विकास के लिये सभी क्षेत्रों में आवश्यक न्यूनतम निवेश किया जाना जरूरी है।

3.सन्तुलित विकास **पूरक उद्योगों** का विकास करके बाजार को विस्तृत करता है जिससे बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं।

4.यह सिद्धान्त **बहुमूल्य विकास के सिद्धान्त** की धारणा पर आधारित है।

5.यह सिद्धान्त **मांग की दृष्टि** से प्रभावपूर्ण मांग एवं पूरक मांग को उत्पन्न करने और पूर्ति की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के उद्योगों के बीच सन्तुलन बनाए रखने की आवश्यकता पर बल देता है।

6.अल्प विकसित देशों में व्याप्त **विषैले वृत्तों'** विशेषकर निर्धनता के दृश्चक्र को तोड़ने के लिये सन्तुलित विकास पद्धति को अपनाया जाना अत्यावश्यक है, ताकि उपलब्ध पूंजी का सर्वोत्तम उपयोग हो सके।

7.सन्तुलित विकास से **विदेशी व्यापार** को प्रोत्साहन मिलता है।

8.सन्तुलित विकास की पद्धति निजी उपक्रम अर्थव्यवस्था के लिये अधिक उपयोगी है, किन्तु नियोजित अर्थव्यवस्था में इसका महत्व बहुत कम है।

9.सन्तुलित विकास के अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं जिसमें अतिरिक्त बाहरी बचतें, सामाजिक लाभ में वृद्धि, जोखिम में कमी। रोजगार में वृद्धि, मूल्य स्थिरता, देश का सर्वांगीण विकास,सन्तुलित विदेशी व्यापार तथा आर्थिक नियोजन के लिए स्वस्थपूर्ण वातावरण के निर्माण इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।

15.6 सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की आलोचना

जहां सन्तुलित विकास के विचार के समर्थकों की कमी नहीं, वहां इसके आलोचकों का भी अभाव नहीं है। प्रो0 सिंगर, मार्क्स फ्लेमिंग, प्रो0 एलबर्ट तथा हर्षमैन सन्तुलित विकास सिद्धान्त के मुख्य आलोचक माने जाते हैं। सिद्धान्त की मुख्य आलोचनायें इस प्रकार हैं –

1.अल्प विकसित देशों की सामर्थ्य से बाहर – सन्तुलित विकास की तकनीक को लागू करने के लिये पर्याप्त पूंजी, तकनीकी ज्ञान, प्रबन्धकीय क्षमता व कुशल श्रम शक्ति की आवश्यकता होती है। जबकि इन सभी साधनों का अल्प विकसित देशों में अभाव होता है। ऐसी दशा में एक तरफ पर्याप्त साधनों के उपलब्ध होने की शर्त और दूसरी ओर उनका अभाव स्वयं में ही एक विरोधाभास है अर्थात् एक असंगत समीकरण है। इससे भी अजीब बात तो यह है कि जो देश (अल्प विकसित) खण्डगत विकास करने की स्थिति में नहीं होता, वह सम्पूर्ण विकास एक साथ कैसे कर सकता है। यह बात बिल्कुल ऐसी है जैसे भवन की पहली मंजिल बनाने की सामर्थ्य न रखने वाले शिल्पी को, अगली दो मंजिलें बनाने का सुझाव देना। अतः **प्रो0 हिगीन्स** का कहना है कि अल्प विकसित देशों को 'बड़ा सींचने' की सलाह देना तो अच्छा है लेकिन सामर्थ्य न होने पर 'बड़ा काम करने' इनके लिए मूर्खता का सुझाव है। सिद्धान्त की इस अव्यावहारिकता को देखते हुए प्रो0 सिंगर ने कहा है कि 'बहुमुखी विकास के लाभ अर्थशास्त्रियों के पढ़ने के लिये रोचक तो हो सकते हैं किन्तु अल्प विकसित देशों के लिए वे वास्तव में निराशाजनक समाचार है।''

2.उद्योगों के पूरक होने की दोषपूर्ण मान्यता – सन्तुलित विकास के समर्थकों की यह एक बहुत बड़ी भूल रही है कि उन्होंने विभिन्न उद्योगों को परस्पर पूरक माना है। वास्तविकता तो यह है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न उद्योगों के बीच सम्बन्ध पूरक न होकर प्रतियोगी होता है। जिसके फलस्वरूप उत्पादन लागतें बढ़ने, आर्थिक प्रेरणाओं के घटने और अपव्ययों के अधिक होने की सम्भावना बनी रहती है। प्रो0 मार्क्स एवं फ्लेमिंग का भी कहना है कि 'सन्तुलित विकास का सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि उद्योगों के बीच सम्बन्ध अधिकांशतः पूरक होता है किन्तु व्यवहार में साधनों की पूर्ति की सीमितता इस सम्बन्ध को अधिकांश रूप से प्रतिरोधी बना देती हैं।''

3.सीमित साधनों का अपव्यय – अगर थोड़ी देर के लिए सन्तुलित विकास के सिद्धान्त को स्वीकार भी कर लिया जाय, तो यह हो सकता है कि सभी क्षेत्रों में थोड़े–थोड़े पूंजीगत विनियोग के कारण किसी भी क्षेत्र में प्रगति न होने पाये। जिसका अर्थ होगा – राष्ट्र के सीमित साधनों का पूर्ण अपव्यय। वास्तव में, यह बात ठीक उसी प्रकार होगी जिस प्रकार यह कहना कि 'एक आदमी तब तक कुछ नहीं कर सकता जब तक कि वह सब कुछ करने के काबिल न हों।' सच तो यह है कि 'जो आदमी सब कुछ करने की सोचता है वह कुछ भी नहीं कर पाता। प्रो0 बैजामिन हिगीन्स का कहना है कि **''वहां सैकड़ों फूल कैसे खिल सकते हैं जहां पर एक फूल भी उचित देखभाल के अभाव में मुरझा जाता हो।''**

4.साधनों का अभाव – सन्तुलित विकास का सिद्धान्त 'से' के बाजार नियम पर आधारित है कि '' पूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न कर लेती है।' लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वस्तुओं की पूर्ति का सम्बन्ध साधनों (विशेष रूप से पूंजी) की मांग से होता है जो अपनी पूर्ति नहीं कर सकती। जब अनेक उद्योगों में एक साथ निवेश किया जायेगा तो साधनों के लिये मांग प्रतियोगी बन जायेगी। परन्तु अल्प विकसित देशों में साधनों की पूर्ति बेलोचदार होती है। इस प्रकार सिद्धान्त का प्रमुख तर्क ही गलत सिद्ध हो जाता है। आर्थिक विकास की सर्वोपयुक्त नीति यह होगी कि उपलब्ध साधनों का उन क्षेत्रों में निवेश किया जाए जो पहले से है अपेक्षाकृत विकसित हैं और जिनमें शीघ्र फल देने, जल्दी विकसित होने तथा देश की अर्थव्यवस्था को लचीला बनाने की सम्भावनाएं विद्यमान है। इसलिये डा0 सिंगर का कहना है कि **''अल्प विकसित देशों की परिस्थितियों के लिये सामने से प्रहार करने की अपेक्षा छामामार युद्ध कला अधिक उपयोगी कही जायेगी।''**

5.साधनों की लागत में वृद्धि – इस सिद्धान्त के अनुसार अनेक उद्योगों में एक साथ निवेश करने पर उत्पादन की वास्तविक तथा मौद्रिक लागतें घट जाती हैं। लेकिन सच यह है कि लागतें घटने के बजाय बढ़ती हैं। इसका कारण यह है कि नये उद्योग पुराने उद्योगों के साथ सीमित साधनों की पूर्ति के लिये प्रतियोगिता करते हैं। जिससे इन साधनों की कीमत बढ़ जाती है। इस सम्बन्ध में प्रो0 किण्डलबर्जर का कहना है कि नर्कसे मॉडल का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह नए उद्योगों की स्थापना की बात तो करता है लेकिन वर्तमान उद्योगों में उत्पादन लागत को घटाने की सम्भावना पर विचार नहीं करता है। ध्यान रहे, जब नए उद्योग स्थापित किये जाते हैं तो इससे वर्तमान फर्मो के माल की मांग कम

हो जाने से वे अलाभप्रद हो जायेंगी। यह बात तो ठीक उसी प्रकार होगी जिस प्रकार कि ''नये पौधे लगाते रहो; भले ही पुराने सूखते रहें।''

6.साधनों में व्यनुपातिक – सन्तुलित विकास नीति को लागू करने की एक बड़ी कठिनाई अल्प विकसित देशों में उत्पादन के साधनों के बीच व्यनुपातिता का पाया जाना हैं। कुछ देशों में श्रम की अधिकता होती है तो पूंजी तथा उद्यम का अभाव होता है। जबकि अन्य देशों में यह स्थिति अन्यथा हो सकती है। इस प्रकार साधनों की पूर्ति गैर–आनुपातिकता सन्तुलित विकास की नीति को सार्वभौमिक रूप से लागू करने में एक रूकावट सिद्ध होती है।

7.विकास के सिद्धान्त के रूप में असफल – एल्बर्ट हर्षमैन के मतानुसार सन्तुलित वृद्धि का सिद्धान्त आर्थिक विकास के सिद्धान्त के रूप में असफल है अर्थात इसे विकास का सिद्धान्त माना ही नहीं जा सकता। विकास से आशय है एक प्रकार की अर्थव्यवस्था को दूसरी प्रकार की उन्नत अर्थव्यवस्था में बदलना। जब कि यह सिद्धान्त इसमें असफल रहा है।

8.बाधाओं की उपेक्षा – इस सिद्धान्त का एक दोष यह है कि इसमे विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं, कमियों व आधिक्य क्षमताओं आदि की पूर्णतया उपेक्षा की है।

9.सिद्धान्त की अल्प विकसित देशों के लिये अव्यवहार्यता – हर्षमैन का कहना है कि सन्तुलित विकास का सिद्धान्त विकसित देशों के लिये तो उपयुक्त है लेकिन उसे अल्प विकसित देशों पर लागू करना गलत होगा। ''वास्तव में यह सिद्धान्त कीन्स की अल्प रोजगार स्थिति का एक अल्प विकसित देश पर निरर्थक प्रयोग है।'' इसका कारण यह है कि विकसित देशों में व्यापार चक्र के कारण आर्थिक क्रियाओं में जो एक अस्थायी शिथिलता आ जाती है। बहुविध (सन्तुलित) विकास से इस आर्थिक क्रिया का समुत्थान होना सम्भव है क्योंकि विकास की सभी शक्तियां एवं घटक जो कि अस्थायी रूप से निलम्बित होते है, फिर से विकास शुरू किये जाने की प्रतीक्षा में मौजूद रहते हैं। किन्तु अल्प विकसित देशों की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न होती है। इन देशों में आर्थिक क्रियाएं विकसित देशों की भांति अस्थायी रूप से रूकी न होकर स्थैतिक अर्थात अवरूद्ध होती है इसलिये सन्तुलित विकास का सिद्धान्त अल्प विकसित देशों पर लागू करना गलत है।

10.सफल सरकारी निदेशन तथा निवेश की दोषपूर्ण मान्यता – यह सिद्धान्त आर्थिक विकास करने का उत्तरदायित्व सरकार को सौंपता है और केन्द्रीय नियोजन तथा निर्देशन की सफलता को पहले से ही मानकर चलता है, आलोचकों ने सरकारी निर्देशन तथा निवेश की कुशलता पर सन्देह व्यक्त किया है और यह ठीक भी है क्योंकि निजी क्षेत्र की तुलना में सरकारी क्षेत्र की कुशलता से हम सभी लोग पूरी तरह से परिचित हैं। फिर केन्द्रीय नियोजन तथा सार्वजनिक निवेश तभी विकास कारक हो सकते हैं जब आर्थिक बचतें आन्तरिक बनाई जा सकें। अमितव्ययिताएं कम की जा सकें और सामाजिक लागतें समाप्त की जा सकें। चूंकि सन्तुलित विकास में इन परिणामों की आशा करना व्यर्थ है इसलिये इसकी सफलता भी सन्देहप्रद हैं।

11.बढ़ते प्रतिफल की दोषपूर्ण मान्यता – इस सिद्धान्त की यह मान्यता कि सन्तुलित ढंग से निवेश करने पर मांग में वृद्धि होती है और पैमाने के बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। किन्तु यह मान्यता दोषपूर्ण है क्योंकि ये दोनों शक्तियां विपरीत दिशाओं में जोर लगाती हैं। उदाहरण के तौर पर यदि पैमाने के प्रतिफल बहुत अधिक हो जाएं तो ऐसी दशा में एक अल्प विकसित देश उन्हीं क्षेत्रों में निवेश करने के बजाए अब दीर्घकालीन पूंजीगत परियोजनाओं में निवेश में करेगा तो इससे कच्चे माल, कीमतों, साधन न्यूनताओं इत्यादि की अड़चनें उत्पन्न होंगी, जिसका परिणाम होगा घटते प्रतिफल का प्राप्त होना। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि सन्तुलित विकास का सिद्धान्त बढ़ते प्रतिफल के स्थान पर घटते प्रतिफल प्रदान करता है।

12.आर्थिक विकास बाधाओं से प्रेरित होता है – पॉल स्ट्रीटन का कहना है कि आर्थिक इतिहास इस बात का गवाह है कि आज उन्नत कहे जाने वाले देश अपना आर्थिक विकास असन्तुलित विकास पद्धति से ही कर सकते हैं। वास्तव में संतुलित विकास नहीं बल्कि अभाव, दुर्लभताएं तथा अड़चनों ने ही आविष्कारों को जन्म दिया है और इंग्लैण्ड तथा संसार की अर्थव्यवस्थाओं में क्रान्ति पैदा की है। उन आविष्कारों ने असन्तुलन उत्पन्न किये और इस प्रकार आर्थिक विकास असाम्यों के बने रहने अथवा असन्तुलनों की श्रृंखला का परिणाम होता है।

15.7 असंतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणा

असन्तुलित विकास का सिद्धान्त सन्तुलित विकास की धारणा के बिल्कुल विपरीत है। **असन्तुलित विकास का अर्थ है किसी अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास न करके कुछ चुने हुए प्रमुख क्षेत्रों का गहन विकास करना।** असन्तुलित विकास पद्धति का 'औचित्य' इस मान्यता पर आधारित है कि अल्प विकसित देशों के पास पूंजी व अन्य आवश्यक साधन इतने नहीं होते कि सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश किया जा सके फिर उपलब्ध सीमित साधनों का सभी क्षेत्रों में समान वितरण करना न केवल अनार्थिक सिद्ध होता है बल्कि अल्प विनियोग से सभी क्षेत्रों में विकास की दर या तो शून्य बनी रहती है अथवा उसमें नाम मात्र की वृद्धि होती है। इस कारण ऐसे देशों में कुछ चुने हुए महत्वपूर्ण क्षेत्रों या उद्योगों में बड़ी मात्रा में निवेश करके विकास की गति तीव्र की जाती है और उनसे उत्पन्न होने वाली बचतों में वृद्धि होने से अन्य क्षेत्रों का भी सामाजिक विकास होने लगता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था धीरे धीरे असन्तुलित विकास से सन्तुलित विकास की ओर अग्रसर होती है। असन्तुलित विकास में विकास की शुद्ध दर, सन्तुलित विकास की औसत दर से अधिक होती है। इसको एक उदाहरण द्वारा आगे स्पष्ट किया गया है।

काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण – मान लीजिए एक पिता के तीन पुत्र हैं। बड़ा पुत्र बुद्धिमान है और उसमें प्रगति करने की क्षमता और आकांक्षायें विद्यमान हैं। इसके विपरीत मंझला डफर (मूर्ख) है और छोटा लोफर है। उदाहरण की मान्यता यह है कि पिता के पास 30 हजार रूपया है जो वह तीनों लड़कों के भविष्य निर्माण के लिये शिक्षा आदि पर खर्च करना चहता है। अगर पिता समदर्शी है अर्थात तीनों बच्चों का सन्तुलित विकास चाहता है तो यह राशि तीनों पर लगभग समान रूप से व्यय की जायेगी। फलस्वरूप बड़ा लड़का

एम0ए0 पास करता है, मंझला हाई स्कूल की सीमा पर रूक जाता है और छोटा प्राइमरी से आगे न बढ़ने के लिए दृढ प्रतिज्ञ है। इस दशा में परिवार की आर्थिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं होगा। हां ! इसके विपरीत अगर पिता यह सारा धन बड़े लड़के पर व्यय करे और उसे विदेश में जाकर अध्ययन करके विकास करने की पूर्ण सुविधा हो तो यह निश्चित है कि उसके विकास का प्रतिफल पहले वाली स्थिति से अधिक होगी। रही बात दोनों छोटे लड़कों की, यह उचित होगा कि मंझले को बिना पढ़ाई का कष्ट दिये हुए पहले से ही, साईकिल मरम्मत की दुकान खुलवा दी जाये और छोटे को सिनेमा की गेट कीपरी का उम्मीदवार बनाया जाये। धन के विनियोग की इस व्यवस्था से परिवार की आय में वृद्धि, पहले की अपेक्षा निश्चित रूप से अधिक होगी। वास्तव में, असन्तुलित विकास का भी यही अभिप्राय है। (उदाहरण को सन्तुलित विकास पर पूर्णतया लागू न किया जाये, यह तो केवल एक संकेत मात्र है)

असन्तुलित विकास के प्रवर्तक एवं समर्थक –प्रो0 हर्षमैन तथा सिंगर असन्तुलित विकास के प्रवर्तक हैं जबकि इस पद्धति का समर्थन करने वालों में मार्क्स फ्लेमिंग, बौर एवं यामी, प्रो0 रूजीना जे0 शीहान और किन्डलबर्जर जैसे अर्थशास्त्रियों का नाम उल्लेखनीय है।

नीचे हम कुछ विचारों का अध्ययन करेंगे –

प्रो0 हर्षमैन की कूट नीति –असन्तुलित विकास सिद्धान्त के प्रवर्तक प्रो0 हर्षमैन का कहना है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे निवेश ऐसे क्षेत्रों (पूंजीगत उद्योगों) में केन्द्रित किये जाने चाहिए जो आगे चलकर विकास की दर को बढ़ाने वाले हों। चूंकि **आर्थिक विकास असन्तुलनों की श्रृंखला द्वारा होता है इसलिये** ''एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार अर्थव्यवस्था का जानबूझ कर असन्तुलित किया जाना आर्थिक विकास का सबसे अच्छा तरीका है।'' असन्तुलनों को हर्षमैन ने विकास की आत्मा तथा प्रेरणा दोनों माना है। इसलिये उनका मत है कि ''सामान्यता विकास नीति का उद्देश्य असन्तुलनों को समाप्त करने के बजाय उन्हें जीवित रखने का होना चाहिए। यदि अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाते रहना है तो विकास नीति का कार्य तनाव, व्यनुपातों तथा असन्तुलनों को बनाए रखना होना चाहिए।'' एक आदर्श स्थिति वह होती है जब एक असन्तुलन ऐसे विकास को प्रेरित करे जिसके फलस्वरूप फिर उसी प्रकार का असन्तुलन उत्पन्न हो और यह क्रम इसी प्रकार निरन्तर बढ़ता रहे।

हर्षमैन के सिद्धान्त का सार यह है कि अर्थव्यवस्था को असन्तुलित करके ही विकास किया जा सकता है और यह तभी सम्भव है जब तो सामाजिक उपरि व्यय पूंजी (Social overhead capital SOC)में, तथा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (Direct productive activites, DPA)में विनियोग किया जाये, क्योंकि उपरिव्यय पूंजी बाह्य मितव्ययिताओं को पैदा करती है और प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियायें मितव्ययिताओं का पुनर्विनियोजन सम्भव बनाती है।

15.8 सामाजिक उपरिपूँजी एवं प्रत्यक्ष उत्पादक कियाओं की भूमिका

15.8.1 सामाजिक उपरिव्यय पूंजी द्वारा निर्मित असन्तुलन

सामाजिक उपरिव्यय पूंजी (SOC)से अभिप्राय उन आधारभूत सेवाओ ं से है जिनके बिना प्राथमिक, द्वितीयक, एवं तृतीयक प्रकार की उत्पादक क्रियाएं नहीं चल सकतीं। उदाहरणार्थ,

शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार, परिवहन, जल विद्युत तथा सिंचाई आदि पर किये गये निवेश को SOCकी संज्ञा दी जाती है। डॉ0 हर्षमैन का मत है कि यदि SOC में बड़ी मात्रा में निवेश किया जाये तो यह प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (DPA)में निजी निवेश को प्रोत्साहित करता है। उदाहरण के तौर पर यदि देश में विद्युत शक्ति की पूर्ति सस्ती दरों पर होने लगे अथवा यातायात की सुविधाओं का पूरा विकास हो जाये तो इससे कृषि, उद्योग एवं व्यापार के विकास को बढ़ावा मिलता है क्योंकि इससे इन क्षेत्रों में एक तरफ उत्पादकता बढ़ती है तो दूसरी ओर उत्पादन लागत घट जाती है। अतः आर्थिक विकास की व्यूह रचना का तरीका यह होना चाहिए कि SOCको बढ़ावा देकर अर्थव्यवस्था को असन्तुलित बनाया जाए ताकि आगे चलकर DPAमें निवेशों को प्रोत्साहन मिल सके। हर्षमैन ने स्वयं कहा है कि ''सामाजिक उपरिव्यय मदों में निवेश का समर्थन इसलिए नहीं किया जाता कि इससे अन्तिम उत्पादक पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता है यह तो वास्तव में, प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (DPA) को आगे बढ़ने का एक निमंत्रण है। अतः DPAनिवेश के लिये SOC निवेश का होना एक आवश्यक शर्त है।

15.8.2 प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से अर्थव्यवस्था को असन्तुलित बनाना

प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से आशय निर्माणी उद्योगों के विस्तार से है। यदि कोई सरकार SOC में निवेश करने की बजाए पहले DPA में निवेश करती है तो, इससे सामाजिक उपरिव्यय सुविधाओं के अभाव में उत्पादन की लागतें बढ़ जायेंगी और विकास की गति धीमी बनी रहेगी। हां ! यह बात अलग है कि कुछ समय पश्चात् राजनैतिक दबावों के कारण SOC में निवेश की मात्रा बढ़ा दी जाये, परन्तु इससे समय–अन्तराल के कारण उत्पन्न लागत वृद्धि प्रभाव को रोका नहीं जा सकता है।

विकास का मार्ग

उपर्युक्त दोनों स्थितियों को हर्षमैन ने विकास के दो विभिन्न मार्ग बताए हैं। पहले क्रम को उसने ''सामाजिक उपरिव्यय पूंजी की अतिरिक्त क्षमता के मार्ग से विकास'' और दूसरे को ''सामाजिक उपरिव्यय पूंजी की न्यूनता के विकास मार्ग'' की संज्ञा दी है। हर्षमैन का कहना है कि इन दोनों क्रमों में से उस क्रम को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो अपेक्षाकृत अधिक 'प्रबल आत्म प्रणोदी' हो। इसे रेखाचित्र से नीचे स्पष्ट किया गया है –

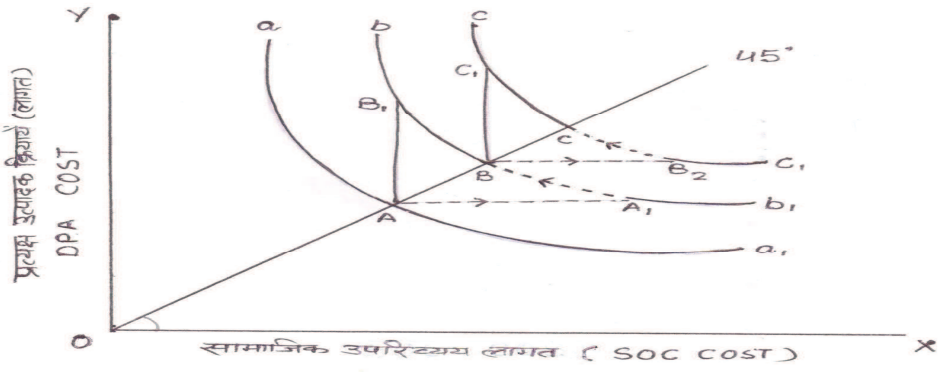

चित्र 15.1

चित्र में तीन वक्र AA1, BB1तथा CC1 सम–मात्रा वक्र हैं जो DPA और SOC के उन विभिन्न संयोगों अर्थात मात्राओं को प्रकट करते हैं जिनके किसी भी बिन्दु पर राष्ट्रीय आय की कुल मात्रा समान होगी। हां ! दायीं ओर का प्रत्येक वक्र राष्ट्रीय आय के उच्च स्तर को बतलाता है। मूल बिन्दु O से खींची गयी 45° की रेखा तीनों सम मात्रा वक्रों के अनुकूलतम बिन्दुओं को मिलाती है और साथ ही यह रेखा SOCतथा DPAकी सन्तुलित वृद्धि का दर्शाती है। हर्षमैन ने विकास प्रक्रिया नीति के लिये दो मान्यताएं मानी हैं– प्रथम SOC और DPAका एक साथ विस्तार नहीं किया जा सकता और दूसरा, विकास की वह रूप रेखा अपनाईजाये जो प्रेरित निर्णयकरण को अधिकतम कर दे।

यदि कोई देश प्रथम क्रम अर्थात SOC की 'अतिरिक्त क्षमता के मार्ग' से विकास की नीति को अपनाता है तो ऐसी दशा में अर्थव्यवस्था बिन्दुकिंत रेखा मार्ग AA_1 BB_2Cका अनुसरण करेगी। यदि SOCको A से A1 तक बढ़ाया जाता है तो इससे प्रेरित DPAनिवेश B1तक लगातार बढ़ता रहेगा जब तक कि B बिन्दु पर पुनः सन्तुलन स्थापित नहीं हो जाता। इस बिन्दु पर समस्त अर्थव्यवस्था उत्पादन के पहले से अधिक ऊंचे स्तर पर होगी। अब यदि सरकार इस बढ़े हुंए राष्ट्रीय उत्पादन से प्रेरित होकर SOC को और अधिक बढ़ाकर B से B2 पर लाती है तो इससे DPA भी बढ़कर बिन्दु C पर पहुंच जायेगा।

हां ! उपरोक्त के विपरीत यदि SOC की न्यूनता वाले विकास मार्ग को अपनाया जाये तो अर्थव्यवस्था सपाट रेखा AB1BC1Cके मार्ग से आगे बढ़ती है। जब DPA की मात्रा में B1 तक वृद्धि की जाती है तो SOC को A1 बिन्दु तक और फिर B बिन्दु तक बढ़ना पड़ता है। इसी प्रकार यदि DPA को आगे C1 बिन्दु तक बढ़ाया जाता है तो सन्तुलन से लिए आवश्यक है कि SOC भी बढ़कर C बिन्दु पर आ जाये।

अतः स्पष्ट है कि निवेश का प्रथम विकल्प अर्थात विकास की पहली नीति दूसरे की अपेक्षा अधिक निर्विघ्न एव ंसपाट है और आत्म प्रणोदी भी। हर्षमैन के अपने शब्दों में, 'न्यूनता के मार्ग से विकास की व्यूह रचना अव्यवस्थित एवं विवशताकारी अनुक्रम का प्रतीक है जबकि SOC की अतिरिक्त क्षमता का विकास मार्ग मूलतः अनुज्ञापक है।

15.8.3 अनुबन्धन या सहलग्नता प्रभाव

हर्षमैन के अनुसार अब समस्या यह उठती है कि अर्थव्यवस्था में असन्तुलन किस प्रकार उत्पन्न किए जायें अर्थात असन्तुलनों का वह ढंग ढूंढा जाय जो कि अधिकतम प्रभावशाली सिद्ध हो सके। किसी भी निवेश परियोजना के अग्रगामी अनुबन्धन प्रभाव (forward linkage effects FLE)तथा प्रतिगामी अनुबन्धन प्रभाव (back ward linkage effects , BLE)दोनों हो सकते हैं। FLE उत्पादन की आगामी अवस्थाओं में निवेश को बढावा देते है जबकि BLE उत्पादन की पिछली या 'प्रारम्भिक अवस्थाओं' में निवेश की प्रोत्साहित करते हैं। हर्षमैन का कहना है कि हमारा उद्देश्य पहले उन उद्योगों का पता लगाना होना चाहिए। जिनका 'कुल अनुबन्धन प्रभाव' (total linkage effects)अधिकतम हो। यद्यपि FLE वाली परियोजनाएं अलग अलग देशों में भिन्न भिन्न समय पर अलग

अलग हो सकती है तथापि हर्षमैन के अनुसार लौह एवं इस्पात उद्योग का FLE सबसे अधिक होता है। यही कारण है कि अल्प विकसित देश प्रायः इस्पात उद्योग को सर्वाधिक महत्व देते हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक देश में लौह इस्पात उद्योग से विकास शुरू किया जाये। इसका यह अर्थ नहीं कि अल्प विकसित देशों में परस्पर निर्भरता तथा अनुबन्ध का प्रायः अभाव होता है जैसे कृषि या खनन उद्योगों में FLE तथा BLE दोनों निर्बल होते हैं। इसलिये हर्षमैन का कहना है ''अन्तिम उद्योग पहले'' स्थापित किये जाने चाहिये क्योंकि उनमें अधोगामी अनुबन्धन अधिक होने के कारण वे अन्य उद्योगों की स्थापना को बल प्रदान करते हैं।

प्रो0 रोस्टोव के विचार

प्रो0 रोस्टोव के अनुसार 'किसी भी देश में आर्थिक विकास का कार्य कुछ अग्रगामी और आधारभूत क्षेत्रों के विकास के प्रत्यक्ष प्रभावों पर निर्भर करता है। वास्तव में, इन क्षेत्रों की उत्पादकता में होने वाली वृद्धि ही सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करती है।'' इसलिए उनका कहना है कि प्राविधिक ज्ञान, उत्पादन तकनीक और सीमान्त उत्पादकता की दृष्टि से जो क्षेत्र दूसरों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ हैं, सर्वप्रथम उन्हीं क्षेत्रों में ही विनियोग किया जाना चाहिए। असन्तुलित विकास की पद्धति अर्थ व्यवस्था के विकास को स्वयं संचालिकता प्रदान करती है।

प्रो0 सिंगर का मत

यद्यपि प्रो0 सिंगर ने कुछ दशाओं में अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास के संतुलित विकास पद्धति को ही उचित माना है, तथापि उनका कहना है कि तीव्र आर्थिक विकास का प्रश्न, मूलरूप से असन्तुलित विकास की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। मांग और पूर्ति के असन्तुलन और साधनों के बेलोचपूर्ण होने के कारण विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विकास का सन्तुलित ढंग कारगर सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये उनके मतानुसार **''एक अधिक अच्छी नीति यही मानी जा सकती है** कि उपलब्ध साधनों को उस प्रकार के निवेशों पर केन्द्रित किया जाये जो अर्थ व्यवस्था को अधिक लोचदार तथा बढ़ती हुई मांग तथा बढ़ते हुए बाजारों की प्रेरणा के अंतर्गत विकास करने के अधिक योग्य बनाते हों।'' अतः अल्प विकसित देशों को प्रारम्भ से ही असन्तुलित विकास पद्धति को स्वीकार कर लेना चाहिए।

15.9 असंतुलित विकास सिद्धान्त का सार

असन्तुलित विकास के मुख्य तत्व इस प्रकार है – 1. असन्तुलित विकास का सिद्धान्त प्रोत्साहन एवं दबाव पर आधारित है। 2. विकास की यह पद्धति बड़े धक्के के सिद्धान्त को स्वीकार करती है परन्तु यह बड़ा धक्का सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर विकेन्द्रित न होकर कुछ खास क्षेत्रों में केन्द्रित होना चाहिये। 3. असन्तुलित विकास प्रक्रिया विभिन्न प्रकार के असन्तुलनों की एक कड़ी है। अर्थ व्यवस्था में असन्तुलन की एक कड़ी दूसरी नवीन कड़ी को उत्पन्न कर देती है और यही आर्थिक प्रेरणाओं के उत्पन्न होने के मूल सार है। 4. विकास की इस पद्धति मे, निवेश सदैव कुछ विशेष क्षेत्रों में ही किये जाते हैं जिसके

फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले आर्थिक दबाव, अन्य क्षेत्रों के विकास को सरल बना देते है।
5. असन्तुलित विकास प्रक्रिया में सामाजिक ऊपरी पूंजी का विशेष महत्व है।

असन्तुलित विकास के लाभ –

1.तीव्र औद्योगिक एवं आर्थिक विकास – असन्तुलित विकास पद्धति का सबसे बड़ा लाभ देश का तीव्र आर्थिक एवं औद्योगिक विकास माना जाता है। पूंजी प्रधान तथा भारी उद्योगों की विकास दर ऊंची होती है जिससे देश प्रगति के मार्ग पर शीघ्रतः आरूढ हो जाता है।

2.आधारभूत उद्योगों की स्थापना – किसी भी देश का आर्थिक मोक्ष आधार भूत उद्योगों की स्थापना पर निर्भर करता है जो केवल असन्तुलित विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत ही पनप सकते हैं।

3.सहायक उद्योगों का विकास – असन्तुलित विकास के अंतर्गत जब भारी उद्योगों की स्थापना की जाती है तो इससे उपभोक्ता उद्योगों का विकास भी स्वतः ही होने लग जाता है।

4.आर्थिक विकास का स्थायी स्वरूप – असन्तुलित विकास के अंतर्गत जो परियोजनाएं शुद्ध की जाती है यद्यपि वे दीर्घकाल में प्रतिफल देती है लेकिन कालान्तर में चलकर ये योजनाएं देश की औद्योगिक नीव को मजबूत करके अर्थव्यवस्था को पूर्ण स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बना देती है।

5.साधनों का अधिक उपयुक्त उपयोग – अल्प विकसित देशों में पूंजी जैसे साधनों का सर्वथा अभाव होता है। जो थोड़ी बहुत पूंजी उपलब्ध होती है ,उसे छोटे–छोटे टुकड़ों में सभी क्षेत्रों में बांट देने पर पूंजी का सार्थक उपयोग नहीं हो पाता। सीमित साधनों का सर्वोपयुक्त उपयोग तभी माना जा सकता है जब उससे मिलने वाला प्रतिफल पर्याप्त हो और यह केवल असन्तुलित विकास के अंतर्गत ही सम्भव हो पाता है।

6.आर्थिक अधो–संरचना का सृदृढ़ आधार – किसी देश के आर्थिक विकास की आधार शिला उसकी अधः संरचना अर्थात यातायात, संचार, जल शक्ति, विद्युत, बैंक व बीमा आदि के विस्तार पर निर्भर करती है। चूंकि असन्तुलित विकास के अंतर्गत सामाजिक ऊपरी पूंजी के रूप में पर्याप्त विनियोग किया जाता है। जिससे इन क्षेत्रों का विधिवत विकास होने पर आर्थिक प्रगति की दर तीव्र हो जाती है।

15.10 सिद्धान्त की आलोचनायें

1.असन्तुलन प्रक्रिया की अपूर्ण व्याख्या – असन्तुलित विकास के अंतर्गत अर्थव्यवस्था में असन्तुलनों को पैदा किया जाना जरूरी समझा जाता है। लेकिन **पॉल स्ट्रीटन तथा प्रो0 मायर** का इस सम्बन्ध में कहना है कि 'महत्वपूर्ण' प्रश्न यह नहीं कि असन्तुलन पैदा किया जाए, अथवा नहीं, बल्कि यह देखना कि असन्तुलन की इष्टतम मात्रा 'क्या' हो ? तथा शीघ्र विकास के लिये 'कहॉ और 'कितना' असन्तुलन पैदा किया जाए, तथा बुद्धिशील बिन्दु कौन से हैं ? इस प्रकार यह सिद्धान्त विकास बिन्दुओं की खोज करने में असमर्थ रहा है और इसमें विकास की संरचना, दिशा व समय पर उचित ध्यान नहीं दिया जा सका।

2.प्रतिरोधों की अवहेलना – इस सिद्धान्त का एक दोष यह बताया जाता है कि यह विस्तार की प्रेरणाओं पर तो ध्यान देता है लेकिन असन्तुलित विकास के फलस्वरूप प्रतिरोधों की सर्वथा उपेक्षा करता है।

3.विकास का अपव्ययपूर्ण ढंग – असन्तुलित विकास की यह रीति अपव्यय पूर्ण है क्योंकि इसके अंतर्गत फालतू उत्पादन क्षमता को अनावश्यक रूप से बनाए रखना पड़ता है। चूंकि असन्तुलित विकास के अंतर्गत सभी क्षेत्र समान रूप से विकसित नहीं होते बल्कि कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों के मुकाबले में ऊंची दर से बढ़ते हैं। अतः कम गति से बढ़ने वाले क्षेत्रों के लिए पूंजीगत उपकरण उपलब्ध तो रहते हैं लेकिन उनका प्रयोग नहीं किया जा पाता जो कि एक प्रकार से साधनों का अपव्यय मात्र है।

4.स्फीतिकारी दबावों का उत्पन्न होना – असन्तुलित विकास की प्रक्रिया अर्थ व्यवस्था के अन्दर स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न करती है। जब अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण विकास बिन्दुओं (पूंजीगत परियोजनाओं) पर बड़ी मात्रा में निवेश किया जाता है तो उससे मौद्रिक आय बढ़ती है जो उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति की तुलना में उनकी मांग बढ़ा देती है। फलस्वरूप कीमत स्तर में स्फीतिकारी वृद्धि होती है जिससे उपभोक्ताओं को भी अतिरिक्त आर्थिक भार और मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है।

5.आधारभूत सुविधाओं का आभाव – असन्तुलित विकास पद्धति के लिये उच्चस्तरीय तकनीकी ज्ञान, पर्याप्त शक्ति व परिवहन तथा विस्तृत बाजार जैसी आधारभूत सुविधाओं की आवश्यकता होती है जिनका अल्प विकसित देशों में सर्वथा अभाव होता है।

6.अनुबन्धन प्रभाव की कम उपयुक्तता – हर्षमैन द्वारा प्रस्तुत अनुबन्धन प्रभाव विश्लेषण दोषपूर्ण है क्योंकि वह अल्प विकसित देशों के आंकड़ों पर आधारित नहीं है। इन देशों में सामाजिक उपरिव्यय सुविधाओं के पूर्णतः विकसित न होने के कारण अनुबन्ध प्रभाव काफी कमजोर होता है।

7.अल्प विकसित देशों की क्षमता से बाहर – असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार निवेश असन्तुलनों को जन्म देते हैं जिनसे आर्थिक प्रक्रिया में दबाव तथा तनाव उत्पन्न होते हैं। आलोचकों का कहना है कि अल्प विकसित देशों में दबाव तथा तनाव गम्भीर परिणाम लिए होते हैं क्योंकि ये विकास की प्रक्रिया को अवरूद्ध कर देते है। इसलिये असन्तुलनों के माध्यम से विकास करना इन देशों के लिये उचित नहीं माना जा सकता।

15.11दोनो सिद्धान्तों की तुलना

विकास की कौन सी पद्धति अधिक श्रेष्ठ है ? जहां तक इन दोनों पद्धतियों की श्रेष्ठता निर्धारण की बात है, यह कहना बहुत कठिन है कि इनमें से कौन सी पद्धति अधिक उपयुक्त समझी जाए, क्योंकि इन दोनों पद्धतियों के अपने कुछ गुण व दोष हैं। विकास की इन दोनों पद्धतियों का अन्तिम ध्येय तीव्र आर्थिक विकास करना हैं। अन्तर केवल इतना है कि विकास प्रक्रिया को क्या स्वरूप दिया जाए ? अतः प्रो0 पॉल स्ट्रीटन का कहना है कि सन्तुलित विकास और असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के बीच चुनाव सम्बन्धी विवाद उत्पन्न करना निः सन्देह एक निरर्थक विचार है। यह दोनों पद्धतियां सही अर्थों में,

प्रतियोगी न होकर पूरक हैं। इसलिए इन दोनों पद्धतियों में चुनाव करने की अपेक्षा इनके समन्वित उपयोग की चर्चा करना अधिक उपयोगी होगा।

फिर भी अल्प विकसित देशों की मूल विशेषताओं को देखते हुए अधिकांश विचारक असन्तुलित विकास नीति का ही समर्थन करते हैं क्योंकि इससे निवेश वृद्धि, आय–वृद्धि की अपेक्षा अधिक होती है और राष्टीय आय, राष्ट्रीय उपभोग की अपेक्षा ऊंची दर से बढ़ती है। दूसरा, भारी उद्योगों को अधिक महत्व दिए जाने के कारण बाह्य मितव्ययिताएं अधिक प्राप्त होती हे जो आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। चूंकि विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में असन्तुलनों का होना अनिवार्य है इस लिए प्रो0 मायर का कहना है कि ''जब विकासरत देश असन्तुलन से बच नहीं सकता भले ही वह इसे पसन्द करे या न करे, तो फिर जान–बूझकर असन्तुलन पैदा करना (अर्थात असन्तुलित विकास नीति को ही अपनाना अच्छा होगा) जिससे तीव्र विकास की सम्भावना अधिक हो सके।''

भारत में आर्थिक विकास की रणनीति के अर्न्तगत प्रथम पंचवर्षीय योजना में के कृषि को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया और प्राथमिकताओं की दृष्टि से यातायात व संचार और सामाजिक सेवाओं को क्रमशः दूसरा व तीसरा स्थान मिला। भारी उद्योगों के विकास पर कोई विशेष बल नहीं दिया जा सका जो कि इस बात का संकेत है कि **भारत की प्रथम योजना में, विकास की सन्तुलित रणनीति का अनुकरण किया गया था।** सच तो यह है कि प्रथम योजना में संसाधनों का आवंटन करते समय विकास की रणनीति के प्रश्न पर कोई विचार ही नहीं किया जा सका। योजना में जो प्राथमिकताएं निर्धारित की गई थीं वह महज अनुमान, आवश्यकता और वातारण का परिणाम थीं। इसकी पुष्टि **प्रो0 जॉन पी0 लेविस** के इन शब्दों से भी होती है कि **''भारत की प्रथम योजना किसी सुनिश्चित कूटनीति के अभाव से ग्रसित थी।''** यह योजना विभिन्न राज्यों और राजकीय परियोजनाओं का मात्र एकत्रीकरण थी जिनमें परस्पर संबद्धता भी कम रही।''

दूसरी योजना **प्रो0 महालनोबिस** के नियोजन मॉडल पर आधारित थी, सरल अर्थों में **असन्तुलित विकास की रणनीति** थी। योजना की कूटनीति थी ''भारी उद्योगों में अपेक्षाकृत अधिक निवेश द्वारा और सेवाओं पर खर्च बढ़ाकर क्रय शक्ति को बढ़ाया जाए और नई मांग उत्पन्न की जाए। नयी मांग को पूरा करने के लिए लघु एवं कुटीर उद्योगों में जहां तक सम्भव हो सके, निवेश एवं उत्पादन बढ़ाकर उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति बढ़ाई जाए।'' इस प्रकार दूसरी योजना की कूटनीति का लक्ष्य अर्थव्यवस्था के भीतर ही अधिक रोजगार के सुअवसर उत्पन्न करना, सुदृढ़ पूंजी आधार का निर्माण करना और उत्पादन की तकनीकी दक्षता को बढ़ाना था। दुर्भाग्यवश विकास की यह व्यूहरचना अधिक कारगर सिद्ध नहीं हुई और भारतीय अर्थव्यवस्था को भारी असन्तुलनों, दबावों और तनावों का सामना करना पड़ा।

फलस्वरूप योजना निर्माता अधिक सतर्क हो गए और **तीसरी योजना** के लिए विकास की **सन्तुलित नीति का चयन** कर लिया गया। इस कूटनीति का सार था ''एक साथ कृषि और उद्योग, आर्थिक और सामाजिक विकास, प्रादेशिक और राष्ट्रीय विकास की परस्पर निर्भरता पर तथा घरेलू और विदेशी संसाधन जुटाने पर बल देना।'' इस कूटनीति

का अंजाम भी सुखद नहीं रहा। सन्तुलित रणनीति के बावजूद व्यवहार में यह असन्तुलित विकास रणनीति बनी रही क्योंकि दीर्घकालीन परियोजनाओं में एकदम परिवर्तन न कर पाने के कारण निवेश ढांचा काफी हद तक भारी और पूंजी पदार्थ उद्योगों के पक्ष में बना रहा। इस कूटनीति से हमारे वित्तीय दृष्टि से लक्ष्य तो पूरे हो गए परन्तु उत्पादन एवं क्षमता के भौतिक लक्ष्य अधूरे ही बने रहे। **चौथी योजना** में भी सन्तुलित विकास की रणनीति का अनुसरण किया गया परन्तु उसके साथ साथ कृषि के प्रौद्योगिकी आधुनिकीकरण (अर्थात हरित क्रान्ति) का भी इसमें समावेश कर लिया गया।

पांचवी योजना से '' निवेश के पुनर्वितरण'' द्वारा विकास की नयी रणनीति अपनाई गयी जो नवी योजना सहित आगामी सभी पंचवर्षीय योजनाओं का आधार है। इस कूटनीति में सन्तुलित एवं असन्तुलित विकास दोनों सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है। यह कूटनीति प्रति व्यक्ति वृद्धि दर बढ़ाने के साथ साथ असीम दरिद्रता, बेरोजगारी और असमानताओं को उत्तरोत्तर कम करने पर बल देती है। स्पष्ट है कि इस रणनीति का आर्थिक संवृद्धि की दर को त्वरित करने (अर्थात असन्तुलित विकास) और दूसरी ओर असमानताओं को कम करने (अर्थात सन्तुलित विकास) की नीति से कोई टकराव नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

बहुविक्ल्पीय प्रश्न

गरीबी का दुश्चक्र तोड़ने के लिए रैगनर नर्क्स ने किस बात पर बल दिया।

A. सन्तुलित विकास B. असन्तुलित विकास

C. कृषि विकास D. औद्योगिक विकास

2. असन्तुलित विकास की रणनीति का परामर्श दियाः

A. रैगनर नर्क्स B. हर्षमैन

C. रोजेस्टीन रोडन D. एन.काल्डोर

3. निर्धनता का दुश्चक्र किस पक्ष से सम्बन्धित है?

A. मांग पक्ष B. पूर्ति पक्ष

C. उपर्युक्त दोनों D. उपर्युक्त में कोई नहीं

4. ''एक देश इसलिए दरिद्र है क्योंकि वह दरिद्र है। '' यह कथन है–

A. रैगनर नर्क्से का B. डी0 ब्राइट सिंह का

C. लेविस का D. हिक्स का

5. ''विकास मानवीय प्रयत्नों का परिणाम है।'' यह कथन हैः

A. एडम स्मिथ B. शुम्पीटर

C. लुइस D. कोलिन क्लार्क

6. निम्न में से कौन अर्थशास्त्री सन्तुलित विकास का समर्थक नहीं था।

A. नर्क्से B. रोडान

C. हर्षमैन D. लेविस

7. हर्षमैन के अनुसार निम्न उद्योग में कूल सहलग्नता उच्चतम होता हैः

A. सीमेन्ट B. चीनी

C. कपड़ा D. लोहा एवं इस्पात

8. आर्थिक आधारित उपरि संरचना आर्थिक विकास मेंः

A. आवश्यक है किन्तु अनिवार्य नहीं B.आवश्यक और अनिवार्य है

C. अनावश्यक है D. अवरोधक है

9. वाणिक वादियों के अनुसार आर्थिक विकास हैः

A. रोजगार में वृद्धि B.सोने एवं चांदी में वृद्धि

C. कुल उत्पादन मात्रा में वृद्धि D.उपरोक्त में से कोई नहीं

सत्य / असत्य

1. "Problem of Capital formation in Under Developed countries" पुस्तक को रैगनर नर्क्से ने लिखी।
2. असन्तुलनों को हर्षमैन ने विकास की आत्मा तथा प्रेरणा दोनों माना है।
3. निर्धनता का दुष्चक्र मांग पख से सम्बन्धित है।
4. गरीबी का दुष्चक्र अल्पविकसित देशों में गरीबी की संचयी प्रवृत्ति को प्रदर्शित करता है।

15.12 सारांश

संतुलित तथा असंतुलित वृद्धि के बीच वाद–विवाद बहुत अधिक बढ़ाया गया है जो कि प्रायः निरर्थर रहा है। एक विकासशील देश में संसाधनों के अभाव को दृष्टिगोचर रखते हुए, सबसे उत्तम तरीका असंतुलित वृद्धि की कूटनीति को अपनाना है। इस कूटनीति के अंतर्गत पहले SOC को विकसित किया जाए जो आगे DPA में निवेश को प्रोत्साहित करेंगे तब अर्थव्यवस्था संतुलित वृद्धि की ओर अग्रसर होगी। भारत जैसे अनेक विकासशील देशों का अनुभव यह बताता है कि जब तक विद्युत, सिंचाई, मानवशक्ति, परिवहन आदि SOC का विकास नहीं किया जाता, कृषि, उद्योग तथा वाणिज्य का विकास रूक जाता है। वास्तव में, रूस का तीव्र विकास इसी तरह हुआ है जिसमें मुख्य क्रियाओं के विकास से

अन्य क्रियाओं में विकास हुआ परन्तु वे अल्प विकसित देश जो प्रजातंत्र पर कायम हैं उन्हें विकास की इस कूटनीति पर चलते हुए स्फीति तथा विपरीत भुगतान शेषों की जुड़वां समस्याओं को नियंत्रित करना चाहिए तभी वे तीव्र आर्थिक विकास करने में सफल होंगे।

सन्तुलित विकास सिद्धान्त की मौलिक समस्या इसकी अल्पविकसित देशों की मूल तथा गम्भीर समस्या को समझने की असफलता है। सिंगर ने बताया है कि बड़े पैमाने पर सोचना अल्पविकसित देशों के लिए उचित राय है पर 'बड़े पैमाने पर कार्य करना एक बुद्धिमानीपूर्ण राय नहीं, यदि यह उनको साधनों की सीमा के बाहर जाकर प्रयास करने को कहता है।''सिंगर के अनुसार 'सन्तुलित विकास दृष्टिकोण गलत नहीं है बल्कि अपरिपक्व है। इसको स्वपोषित विकास की अगली अवस्थाओं में लागू किया जा सकता है पर गतिहीनता की स्थित को तोड़ने के लिए नहीं। अधिक अच्छी विकास नीति होगी तथा उपलब्ध संसाधनों को उन विनियोगों पर केन्द्रित किया जाय जो आर्थिक विकास को अधिक लोचदार बनाये तथा बढ़े हुए बाजार तथा बढ़ी हुई मांग से जनित प्रेरणा के संदर्भ में उसे विकसित होने के लिए अधिक सक्षम बनायें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास के लिए– कृषि एवं उद्योग क्षेत्र के बीच समन्वय, विदेशी विनिमय की बचत तथा रोजगारपरक उद्योगों पर बल दिया गया ताकि विकास सुनिश्चित हो सके योजना आयोग ने दूसरी योजना की गणनायें यह मानकर की कि जनसंख्या की वृद्धि दर 1.25 प्रतिशत वार्षिक होगी पर वास्तव में जनसंख्या की वृद्धि दर 2 प्रतिशत वार्षिक से भी अधिक रही है। इस गलत अनुमान के फलस्वरूप खाद्यान्न की मांग को कम अनुमानित किया गया, अगर ऐसा नहीं रहा होता तो कृषि को और अधिक महत्व दिया गया होता। पर क्या गलत अनुमान के कारण उत्पन्न होने वाले असन्तुलन को असन्तुलित आर्थिक विकास नीति का द्योतक मान लिया जाय, नहीं। इस प्रकार के असन्तुलन निश्चित रूप से जानबूझकर किये गये असन्तुलन से भिन्न होंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में संतुलित विकास नीति का ही अनुसरण किया गया है।

15.13 शब्दावली

असन्तुलित विकास– अर्थव्यवस्था के कुछ चुने हुए क्षेत्रों में निवेश किया जाना।

सामाजिक उपरि–पूंजी– सड़क, बन्दरगाह, रेलों, बिजली, सिंचाई सुविधा जैसे स्थायी सामाजिक महत्व के व्यय।

प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाएं– निर्माणी उद्योगों के विस्तार से है।

15.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविक्ल्पीय प्रश्न

1.असन्तुलित विकास,2.रैगनर नर्क्स , 3.उपर्युक्त दोनों **4.** रैगनर नर्क्स , 5. कोलिन क्लार्क ,6. नर्क्स, 7. लोहा एवं इस्पात, 8. आवश्यक और अनिवार्य है। , 9. कुल उत्पादन मात्रा में वृद्धि

सत्य / असत्य 1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4.सत्य

15.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो0 एम0 एल0 झिगन, '' विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन '' बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस ,दिल्ली ,2010
2. प्रो0 एस0एन0लाल ''आर्थिक विकास तथा आयोजन शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद ''1999
3. प्रो0 एस0पी0 सिह, '' आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन ''एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन ,दिल्ली ,2009

15.16 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

- Vakil and Branmanand Planning for in Expanding Economy.
- Second Five Year Plan.
- External Economic and Balanced Growth" in Aggarwal and Singh (Eds.) op. cit,.
- A.O. Hirschman, *The Strtegy of Economic Development,.*
- *H.W. Siger, Economic Progress in Undeveloped Countries..*
- Increasing Returns and Economic Progress, Economic Journal vol. 38, 1928.
- Scitovsky "Two Concepts of External Economices" Journal of Political Economy. Vol. LXII. – 1954

15.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'संतुलित आर्थिक वृद्धि की धारणा को समझाइए और अल्पविकसित देशों में इसकी रूकावटों को बताइए।
2. आर्थिक विकास के लिए संतुलित वृद्धि की धारणा के पक्ष एवं विपक्ष मे तर्क दीजिए।
3. 'संतुलित विकास' के सम्बन्ध में नर्कसे और असंतुलित विकास के संबंध में हर्षमैन तथा रोस्टोव के विचारों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
4. संतुलित बनाम असंतुलित वृद्धि पर एक टिप्पणी लिखिए।
5. 'संतुलित आर्थिक वृद्धि' की असंतुलित आर्थिक वृद्धि से भिन्नता प्रकट कीजिए। इन दोनों में भारतीय स्थिति के लिए कौन सी अधिक उपयुक्त है ?
6. संतुलित बनाम असंतुलित वृद्धि के विवाद को समझाइए। आप कौन सी तकनीक को श्रेष्ठ मानते हैं ?
7. 'चूंकि संतुलित विकास के लिए साधन सम्पन्नता आवश्यक है जो एक सामान्य अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के पास नहीं होती है, इसलिए इनके विकास के लिए आयोजित असंतुलित ही एक आवश्यक शर्त है।' विवेचना कीजिए।
8. हर्षमैन के असंतुलित वृद्धि के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

इकाई 16 सामाजिक एवं तकनीकी द्वैतवाद विश्लेषण

इकाई संरचना

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त

17.3.1 सामाजिक द्वैतवाद से अभिप्राय

17.3.2 पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त की द्वैतीय समाज में अप्रयोज्यता

17.3.3 समीक्षात्मक मूल्यांकन

17.3.4 निष्कर्ष

17.4.: तकनीकी द्वैतवाद

17.4.1: तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय

17.4.2: समीक्षात्मक मूल्यांकन

17.4.3: तकनीकी द्वैतवाद के दोष

17.5: सारांश

17.6: शब्दावली

17.7: अभ्यास हेतु प्रश्न

17.8: संदर्भ सहित ग्रन्थ

17.9: उपयोगी सहायक ग्रन्थ

17.10:निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

द्वैतीय आर्थिक संरचना वर्तमान अल्पविकसित देशों की एक सामान्य विषेषता है जिसमें दो परस्पर विरोधी अर्थव्यवस्थाओं का सह–अस्तित्व पाया जाता है। अल्पविकसित देशों में एक ओर आधुनिक अर्थव्यवस्था तथा दूसरी ओर परम्परागत अथवा पिछडी अर्थव्यवस्था की विषेषताएं रहा होता है। इन दो परस्पर विरोधी अर्थव्यवस्थाओं के सह–अस्तित्व के कारण "द्वैतवाद की समस्या" उत्पन्न होती है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा "द्वैतवाद की समस्या" का अध्ययन करने के लिए अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया जिनमें जे0एच0 बूके द्वारा प्रतिपादित "सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त" एवं हिग्गिन्स द्वारा प्रतिपादित "तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त" महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

17.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि –

1.सामाजिक द्वैतवाद एवं तकनीकी द्वैतवाद क्या है?

2. द्वैतीय समाज की क्या विशिष्टताएं है?

3.बूके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएं क्या हैं?

4.सामाजिक द्वैतवाद एवं तकनीकी द्वैतवाद में क्या प्रमुख अन्तर है?

5.हिग्गिन्स द्वारा प्रतिपादित तकनीकी द्वैतवाद के सिद्धान्त के प्रमुख दोष क्या हैं?

17.3 सामाजिक द्वैतवाद का सिद्धान्त(Theory of Social Dualism)

हॉलैण्ड के अर्थशास्त्री प्रोफेसर जे0एच0 बूके ने एक विशिष्ट सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो केवल अल्पविकसित देशों पर ही लागू होता है। उसका ''सामाजिक द्वैतवाद'' का सिद्धान्त अल्पविकसित देशों के आर्थिक तथा सामाजिक विकास का एक सामान्य सिद्धान्त है जो प्रमुख रूप से उनके इण्डोनेशियाई अर्थव्यवस्था के अध्ययनों पर आधारित है।

17.3.1 सामाजिक द्वैतवाद से अभिप्राय (Meaning of Social Dualism)__

बूके के अनुसार आर्थिक दृष्टिकोण से किसी समाज की तीन विशिष्टताएं होती हैं–

1.सामाजिक भावना,

2.संगठनात्मक रूप तथा

3.व्याप्त तकनीक

इनकी परस्पर निर्भरता तथा परस्पर संबंध को सामाजिक प्रणाली या सामाजिक ढंग कहते है। वह समाज सजातीय होता है जिसमें केवल एक सामाजिक प्रणाली पाई जाती हो। परन्तु किसी समाज में दो या अधिक प्रणालियां एक–साथ विद्यमान हो सकती है। तब वह द्वैत या बहु–संख्यक समाज होता है। बूके ने ''द्वैत समाज' शब्द का प्रयोग ''ऐसे समाजों'' के लिए किया है, जो दो समसामयिक एवं पूर्णतः विकसित सामाजिक प्रणालियों का स्पष्ट विभाजन प्रकट करती है; जो (प्रणालियां) सजातीय समाजों के स्वाभाविक, ऐतिहासिक क्रम–विकास में संक्रमणकालीन रूपों द्वारा एक–दूसरी से अलग कर दी जाती हैं। उदाहरण के लिए, शुरू के पूँजीवाद द्वारा पूर्व–पूंजीवाद तथा उच्च पूंजीवाद।'' उन्नत

आयातित पश्चिमी प्रणाली तथा स्वदेशीय पूर्व–पूंजीवादी कृषि सम्बन्धी प्रणाली का पाया जाना इस प्रकार के द्वैत समाज की विशिष्टता होती है।

प्रथम प्रणाली अर्थात् उन्नत आयातित पश्चिमी प्रणाली पश्चिमी प्रभाव तथा देखरेख में होती है, जो उन्नत तकनीकों का प्रयोग करती है और जिसमें जीवन का औसत स्तर ऊंचा होता है। दूसरी स्वदेशी होती है जिसमें तकनीकी, आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण के स्तर नीचे होते हैं। बूके ने इसे ''सामाजिक द्वैतवाद'' कहा है और इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है : ''यह एक आयातित सामाजिक प्रणाली की दूसरी ढंग की स्वदेशीय सामाजिक प्रणाली से भिडन्त है। प्रायः आयातित सामाजिक प्रणाली उच्च पूंजीवाद होती है। पर यह समाजवाद या साम्यवाद भी हो सकती है या फिर दोनों का मिश्रण भी।''

17.3.2 द्वैतीय समाज की विशिष्टताएं (Characteristics of Dualistic Society)

दो परस्पर विरोधी सामाजिक प्रणालियों की आर्थिक अन्तः– क्रियाओं के वर्णन तथा स्पष्टीकरण के लिए बूके ने ''द्वैतीय समाज'' का आर्थिक सिद्धान्त दिया है जिसे उन्होनें ''द्वैतीय अर्थशास्त्र'' या ''पूर्वीय अर्थशास्त्र'' की संज्ञा दी है। बूके का सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई अनुभव पर आधारित है।

द्वैतीय अर्थव्यवस्था के पूर्वीय क्षेत्र की कुछ विशिष्टताएं है जो उसे पश्चिमी समाज से पृथक करती हैं। पूर्वीय समाज की आवश्यकताएं सीमित होती हैं। यदि लोगों की तात्कालिक आवश्यकताएं पूरी हो जाएं तो वे संतुष्ट हो जाते हैं। ''जब नारियल की कीमत अधिक हो जाती है, तो संभावनाएं ये हैं कि थोड़ी वस्तुएं विक्रय के लिए आएंगी; जब मजदूरी बढ़ाई जाती है तो संपदा का प्रबन्धकर्ता यह जोखिम मोल लेता है कि पहले से थोड़ा कम काम होगा; यदि किसी कृषक के परिवार की आवश्यकता के लिए तीन एकड़ काफी हैं, तो वह छः की काश्त नहीं करेगा; जब रबड़ की कीमतें गिरती हैं तो वाटिका का मालिक वृक्षों को अधिक गहनता से उपयेाग का निर्णय करता है। जबकि उंची कीमतों का मतलब है कि वह उपयोगिता वृक्षों के थोड़े बहुत भाग को बिना उपयोग के छोड़ देता है।'' ऐसा इसलिए कि लोग आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं। वस्तुओं का मूल्यांकन प्रयोग– मूल्य की अपेक्षा प्रतिष्ठा–मूल्य के अनुसार होता है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि पीछे की ओर ढालू प्रयत्न तथा जोखिम का पूर्ति वक्र पूर्वीय अर्थव्यवस्था की विशिष्टता है।

स्वदेशी उद्योग लगभग संगठनरहित, पूँजीहीन, तकनीक की दृष्टि से विवश और मार्केट से अनभिज्ञ होता है। लोग लगातार लाभ देने वाले उद्योगों की अपेक्षा सट्टा–क्रियाओं में अधिक लगे रहते हैं। वे जोखिम वाले निवेशों में विश्वास नहीं करते। उनमें उस उपक्रम तथा संगठनात्मक कुशलता का अभाव होता है, जोकि द्वैत समाज के पश्चिमी क्षेत्र की विशेषता है। ये भाग्यवादी होते हैं और आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने में झिझकते हैं। श्रम ''असंगठित, निष्क्रिय, शान्त, आकस्मिक'' तथा अकुशल होता है। आप्रवासन तथा देश के भीतर एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाना राज्य–हस्तक्षेप के माध्यम से होता हैं। देहाती जीवन की लागत पर शहरी विकास होता है। पूर्वीय समाज में विदेशी

व्यापार का प्रमुख लक्ष्य निर्यात है जो पश्चिमी समाज के लक्ष्य से बिल्कुल भिन्न है, जहां वह आयात को संभव बनाने वाला साधन मात्र है।

17.3.3 पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त की द्वैतीय समाज में अप्रयोज्यता

(Inapplicability of Western Economic Theory to Dualistic Soceity)

पूर्वीय समाज की ये महत्वपूर्ण विशिष्टताएं पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त को अल्पविकसित देशों के लिए पूर्णतया अव्यवहार्य बना देती हैं। बूके के अनुसार, पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त पूँजीवादी समाज की व्याख्या के लिए है, जबकि पूर्वीय समाज पूर्व–पूँजीवादी है। पहला, असीमित आवश्यकताओं, मौद्रिक अर्थव्यवस्था तथा विभिन्न प्रकार के सहकारी संगठनों पर आधारित है। फिर, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में साधनों की अगतिशीलता के कारण, साधनों के विभाजन अथवा आय के वितरण की व्याख्या के लिए वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को लागू करना गलत है। इसलिए प्रोफेसर बूके ने चेतावनी दी है कि ''अच्छा यही है कि हम पश्चिमी सिद्धान्त के कोमल, कमजोर, कांच–गृह के पौधों को उष्णदेशीय धरती में प्रतिरोपित करने का प्रयत्न न करें, जहां कि शीघ्र मृत्यु उनकी प्रतीक्षा करती है।'' इस प्रकार, समस्त अर्थव्यस्था पर एक ही नीति लागू करना संभव नहीं है क्योंकि जो एक समाज के लिए हितकर है, वह दूसरे के लिए अहितकर हो सकती है।

पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति द्वैतीय होने के कारण पश्चिमी ढंग से उनकी पूर्व–पूंजीवादी कृषि के विकास का प्रयत्न निष्फल ही नहीं होगा बल्कि ह्रास भी ला सकता है। आधुनिक कृषि तकनीकों का प्रचलन करने के लिए लोगों की मानसिक वृत्तियों में परिवर्तन आवश्यक है अन्यथा उनके परिणमस्वरूप होने वाली धन में वृद्धि, जनसंख्या में और वृद्धि लाएगी। फिर, यदि पश्चिमी प्रौद्योगिकी फेल हो जाए तो ऋणग्रस्तता बढ़ जाएगी। इसलिए उनकी वर्तमान कृषि व्यवस्था को नहीं छेड़ना चाहिए क्योंकि उसमें सुधार कर सकना कठिन है।

जहाँ तक **औद्योगिक क्षेत्र** का प्रष्न है उसमें पूर्वीय उत्पादक अपने को प्रौद्योगिकीय, आर्थिक अथवा सामाजिक रूप से पश्चिमी प्रारूप के अनुकूल नहीं ढाल सकता। यदि पूर्वीय उत्पादक पश्चिम की नकल करेगा तो नुकसान उठाएगा। अपने तर्क की पुष्टि में बूके ने इण्डोनेशिया का उदाहरण दिया, जहां इण्डोनेशियाई अर्थव्यवस्था का औद्योगीकरण करने के लिए प्रौद्योगिकी के अपनाने से आत्मनिर्भरता की मंजिल को और भी दूर कर दिया है तथा उसके छोटे उद्योग का नाश किया है।

बूके ने अल्पविकसित देशों में पाँच प्रकार की बेरोजगारी की ओर संकेत किया हैः ''सामयिक (ऋतुकालिक), आकस्मिक, नियमित श्रमिकों की बेरोजगारी, बाबू लोगों की बेरोजगारी तथा यूरेशियाईयों की बेरोजगारी।'' वह समझते है कि "उन्हें दूर करना सरकार के वष की बात नहीं क्योंकि इससे वित्तीय भार पड़ेगा तथा वह सरकर के साधनों से अधिक होगा।''

अल्पविकसित देशों में सीमित आवश्यकताएं तथा सीमित क्रय–शक्ति पूरे आर्थिक विकास में रूकावट पैदा करती हैं। खाद्य आपूर्ति अथवा उद्योग–वस्तुओं की वृद्धि मार्केट में पदार्थों की भरमार कर देगी जिससे बाद में कीमतों में कमी होगी और मंदी आएगी। इसका

यह अभिप्राय नहीं है कि बूके पूरी तरह से औद्योगीकरण और कृषि–सुधारों के विरूद्ध हैं बल्कि वह तो औद्योगीकरण तथा छोटे पैमाने पर कृषि–विकास की धीमी प्रक्रिया के पक्ष में है, जोकि पूर्वीय समाज के द्वैतीय ढांचे के अनुकूल ढाल ली गई हो। विकास की प्रेरणा स्वयं लोगों के भीतर से आए। नए नेता प्रकट हों, जो आर्थिक विकास के लक्ष्य के लिए विश्वास, निष्कपटता और धैर्य से प्रत्यन करें।

17.3.4 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

बूके की विचारधारा कुछ हद तक अव्यवहारिक है प्रोफेसर बैंजामिन हिग्गिन्स का मानना है कि बूके का सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई अनुभव पर आधारित है जिसे सभी अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं किया जा सकता है। उन्होंने निम्नलिखित आधार पर बूके के द्वैतीय विकास के सिद्धान्त की बहुत कड़ी आलोचना की है :

1 : आवश्यकतायें सीमित नहीं होतीं (Wants are not limited)

स्वयं इण्डोनेशिया का अनुभव बूके के इस कथन का समर्थन नहीं करता कि अल्पविकसित देशों में लोगों की आवश्यकताएं सीमित होती हैं अथवा प्रयत्न तथा जोखिम का पूर्ति वक्र पीछे की ओर ढालू होता है। वहां सीमान्त उपभोग तथा आयात प्रवृतियां दोनों ही ऊंची है। लोगों की आवश्यकताएं सीमित नहीं है बल्कि घरेलू तथा आयातित अर्द्ध–विलास वस्तुओं की मांग बहुत है। भारत में यदि अच्छी फसल हो जाए तो रेडियो, ट्रांजिस्टरों और घडियों आदि के आर्डरों की बाढ आ जाती है।

2 : आकस्मिक श्रम असंगठित नहीं (Causal labour is not unorganized)

बूके का पूर्वीय आकस्मिक श्रमिक को असंगठित, निष्क्रिय, शान्त तथा आकस्मिक बताना ''इण्डोनेशिया और भारत में तथा अन्यत्र संगठित श्रम की बढ़ती हुई शक्ति से मेल नहीं खाता।'' इस प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में आकस्मिक श्रम कृषि में भले ही संगठित न हो परन्तु चाय, कॉफी तथा रबड बागान में ट्रेड यूनियन आन्दोलन प्रबलतम होता है।

3 : पूर्वीय श्रम अगतिशील नहीं (Eastern labour is not immobile)

बूके का यह विचार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं में लोग अपने ग्रम समुदाय नहीं छोडना चाहते। वास्तव में अपने सिनेमा, दुकानों, होटलों, खेल प्रतियोगिताओं आदि के समस्त आकर्षणो से युक्त शहरी जीवन ने हमेशा देहाती क्षेत्रों से स्थानान्तरण कराया है। बडे–बडे शहरों में जो भीड़–भाड़, बेरोजगारी और अनुपयुक्त आधारभूत सुख सुविधाएं मिलती हैं, वे इसी का परिणाम हैं। इसके अतिरिक्त आय प्रेरणा से भी श्रम एक बागान से दूसरे में और यहां तक कि आकस्मिक श्रम फसल के दिनों में देहाती क्षेत्रों में चले जाते हैं। प्रोफेसर हिग्गिन्स लिखते हैं, ''मुझे इसका कोई प्रमाण दिखाई नहीं देता कि पूर्वीय श्रम आन्तरिक रूप में पश्चिमी श्रम की अपेक्षा अधिक अगतिशील है।''

4 : पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की ही विशेषता नहीं(Not peculiar to eastern-economies)

बूके ने अपने सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त को केवल पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं से सम्बद्ध किया है, परन्तु वह स्वयं भी यह मानते है कि अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका की अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में भी सामाजिक द्वैतवाद विद्यमान है। यह केवल अल्पविकसित क्षेत्रों की ही विशेषता नहीं है वरन इटली, केनेडा और यहां तक कि संयुक्त राज्य

अमेरिका में भी यह विद्यमान है। बल्कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था ''प्रौद्योगिकीय उन्नति की विभिन्न कोटियों के अनुसार पृथक–पृथक क्षेत्रों में विभक्त की जा सकती है।

5 :पश्चिमी समाजों पर भी लागू (Applicable to western societies also)

पूर्वीय समाज की जिन खास विशिष्टताओं का बूके ने वर्णन किया है, उनमें से अनेक पश्चिमी समाजों पर भी लागू की जा सकती हैं। पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं में जब कभी दीर्घकालिक स्फीति आती या आने लगती है, तो लोग दीर्घकालीन निवेशों की अपेक्षा सट्टा–सम्बन्धी लाभों को अधिमान देते हैं। प्रोफेसर हिग्गिन्स के अनुसार, ''पश्चिमी अर्थशास्त्रियों ने 'तरलता अधिमान' तथा 'सुरक्षा अधिमान' से सम्बन्धित विश्लेषण के पूरे क्षेत्र का हाल ही में विकास किया है ताकि सारी दुनिया में निवेशकों के जोखिम या अतरलता उठाने की अनिच्छा और उनके पूंजी को सुरक्षित तथा तरल रूप में रखने के प्रबल अधिमान का हिसाब लगाया जा सके।''

6 : प्रतिष्ठा–मूल्य (Prestige Value)

बूके का यह कथन कि पूर्वीय अर्थव्यवस्था में लोग वस्तुओ को उनके प्रयोग–मूल्य की अपेक्षा प्रतिष्ठा–मूल्य के कारण खरीदते हैं, पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं पर भी समान रूप से लागू होता है। यदि ऐसा न होता, तो वैब्लन (टमइसमद) अमेरिकी समाज के लिए ''प्रत्यक्ष उपभोग'' शब्द न गढ़ता।

7 : पीछे की ओर ढालू प्रयत्न का पूर्ति वक्र
(Backward sloping supply curve of effort)

पीछे की ओर ढालू प्रयत्न का पूर्ति वक्र भी पूर्वीय अर्थव्यवस्थाओं की ही विलक्षणता नहीं है। आस्ट्रेलिया ने युद्धोत्तर काल में और संयुक्त राज्य अमेरिका ने वर्तमान शताब्दी के पांचवें दशक के वर्षों में इसे अनुभव किया था।

8 : सिद्धान्त नहीं वरन् विवरण(Not a theory but description)

बूके अल्पविकसित देशों के लिए विशिष्ट आर्थिक तथा सामाजिक सिद्धान्त देने में विफल रहे हैं। उनका द्वैतीय सिद्धान्त पूर्वीय समाज का विवरण मात्र है जिसमें वह पूर्वीय समाज के उन विलक्षण तत्वों का प्रदर्शन करता है, जिनका पश्चिमी ढंग से विकास नहीं होना चाहिए। बूके का यह कथन है कि पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त पूर्वीय समाजों पर लागू नहीं होता। वह नव–क्लासिकी सिद्धान्त पर आधारित है जिसकी व्यवहार्यता पश्चिमी जगत में भी सीमित है।

9 : पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त के औजारों का पूर्वीय समाजों में प्रयोग
(Tools of western economic theory used in eastern societies)

मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियो के मूल में निहित पश्चिमी आर्थिक सिद्धान्त के कुछ औजार और भुगतान– शेष के असंतुलन को दूर करने वाले साधन थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ पूर्वीय समाजों पर भी लागू होता हैं। प्रोफेसर हिग्गिन्ज़ का विश्वास है कि ''उपयुक्त संस्थानिक धारणाओं से परिभाषित मॉडल के भीतर आर्थिक तथा सामाजिक विश्लेषण के परिचित औजारों का व्यवहार करके'' अल्पविकसित देशों की समस्या का हल ढूंढा जा सकता है।

10 : बेरोजगारी की समस्या का हल नहीं सुझाता

(Does not provide solution to the problem of development)

बूके के द्वैतवाद में यह एक बड़ी कमी है कि यह बेरोजगारी की समस्या का कोई हल नहीं सुझाता । बूके का द्वैतवाद आर्थिक की अपेक्षा सामाजिक–सांस्कृतिक पक्षों पर अधिक केन्द्रित है। वह विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी को, सरकार के बस की बात नहीं मानता और अल्प–रोजगार की बात ही नहीं करता, जो घनी आबादी वाली अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख विशेषता है।

17.3.6 निष्कर्ष (Conclusion)

वास्तव में द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं की बड़ी समस्या यह है कि वर्तमान तथा संभावित अल्प–विकसित श्रम–शक्ति को उचित रोजगार की सुविधाएं प्रदान की जाएं। इसी कारण प्रोफेसर हिग्गिन्स ने प्रौद्योगिकी द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जो ''दो क्षेत्रों में साधन–सम्पन्नताओं तथा उत्पादन फलनों में भेदों को 'प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद' का आधार मानता है जिसका परिणाम यह हुआ है कि उत्पादक रोजगार के लिए अपर्याप्त संख्या में मार्ग पाए जाते हैं।'' यह बूके की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी द्वैतीय सिद्धान्त है क्योंकि यह सिद्धान्त विकास के आदर्श पर द्वैतीय समाज के प्रभावो का विश्लेषण करता है।

17.4 तकनीकी द्वैतवाद (Technological Dualism)

बूके के सामाजिक द्वैतवाद के विकल्प के रूप में प्रोफेसर हिग्गिन्स ने तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जो बूके की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी माना जाता है।

17.4.1: तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्रायः

तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा पंरापरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक या तकनीकी बेरोजगारी तथा देहाती क्षेत्र में अल्प–रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिग्गिन्स का प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद का सिद्धान्त ऐकॉस (R.S. Eckaus) द्वारा विवेचित साधन अनुपातों की समस्या को शामिल करता है ओर उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से संबंध रखता है, जो बाजार की अपूर्णताओं, विभिन्न सीमित साधन–सम्पन्नताओं तथा उत्पादन फलनों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पाई जाती है।

वास्तव में, अल्पविकसित देशों की एक विशिष्टिता साधन स्तर पर संरचनात्मक असंतुलन है। साधन स्तर पर असंतुलन या तो इस कारण उत्पन्न हेाता है कि एकल साधन विभिन्न प्रयोगों में विभिन्न प्रतिफल प्राप्त करता है या इसलिए कि साधनों के बीच कीमत संबंध साधन प्राप्यताओं से मेल नहीं खाते। डॉ0 ऐकॉस के अनुसार, ऐसे असंतुलन से अल्पविकसित देशों में दो प्रकार से बेरोजगारी या अल्प–बेरोजगारी होती है। प्रथम, कीमत प्रणाली में अपूर्णताओं या कु–कार्यकरण से। दूसरे, वर्तमान औद्योगिकी या माँग की संरचना में बाधाओं से, जो अति जनंसख्या वाले पिछड़े हुए देशों में अतिरेक श्रम का कारण बनती है। अतः एक अल्पविकसित देश में संरचनात्मक बेरोजगारी का संबंध अतिरेक

श्रम से होता है, जो साधनों के कुवितरण, माँग की संरचना और प्रौद्योगिकीय रूकावटों से उत्पन्न होता है।

बैंजामिन हिग्गिन्स ने अपने सिद्धान्त का निर्माण दो वस्तुओं, उत्पादन के दो साधनों और दो क्षेत्रों के आधार पर उनके साधन सम्पन्नता तथा उत्पादन–फलनों से किया है। इन दो क्षेत्रों में से एक औद्योगिक क्षेत्र बागानों, खानों, तेल–क्षेत्रों, रिफाइनरियों या बड़े पैमाने के उद्योगों में प्रवृत्त रहता है यह पूंजी–गहन होता है और तकनीकी गुणांक इसे विशिष्टता प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में, साधनों की तकनीकी स्थानापन्नता नहीं होती और उन्हें स्थिर अनुपातों में मिलाया जाता है। दूसरा, ग्रामीण क्षेत्र खाद्य वस्तुओं के उत्पादन, दस्तकारी या बहुत छोटे उद्योगों में प्रवृत्त रहता है। इसके उत्पादन के तकनीकी गुणांक परिवर्ती होते हैं ताकि यह तकनीकों के विस्तृत क्षेत्र और श्रम तथा पूंजी (जिसमें सुधारी हुई भूमि भी शामिल है) के वैकल्पिक संयोगों से एक ही वस्तु का उत्पादन कर सके।

दो क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों के दिए हुए होने पर प्रोफेसर हिग्गिन्स ने उस प्रकिया का विश्लेषण किया है जिसके परिणामस्वरूप तकनीकी द्वैतवाद ने द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी और अदृश्य बेरोजगारी बढ़ाई है। दो क्षेत्रों में से, औद्योगिक क्षेत्र विदेशी पूंजी की सहायता से विकास तथा विस्तार करता है। इस प्रकार, औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप पूंजी–संचय की दर से बहुत अधिक जनसंख्या की वृद्धि हो जाती है क्योंकि यह क्षेत्र पूँजी–गहन तकनीकों और स्थिर तकनीकी गुणांकों का प्रयोग करता है, इसलिए यह उसी दर से रोजगार के अवसर उत्पन्न नहीं कर सकता जिससे जनसंख्या बढ़ती है। बल्कि यह भी हो सकता है कि औद्योगीकरण "उस क्षेत्र में कुल रोजगार के अनुपात में सापेक्ष कमी ला दे।" इस प्रकार, अतिरेक श्रम के पास इसके सिवाय कोई चारा नहीं कि वह ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार ढूंढ़े।

विकास प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से पहले, ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन के साधनों की न तो प्रचुरता होती है और न ही दुर्लभता। शुरू में तो यह सम्भव है कि अधिक भूमि को काश्त में लाकर अतिरिक्त श्रम शक्ति को खपा लिया जाए। इसके परिणामस्वरूप श्रम तथा पूँजी (सुधारी हुई भूमि) के अनुकूलतम संयोग बनते हैं क्योंकि उत्पादन बढ़ता है। उस क्षेत्र में श्रम का उपलब्ध पूँजी से अनुपात धीरे–धीरे बढ़ता जाता है और क्योंकि तकनीक गुंणाक उपलब्ध है, इसलिए इस क्षेत्रें में तकनीकें उत्तरोत्तर परिवर्ती बनती जाती हैं। उदाहरणार्थ, कई एशियाई देशों में परिवर्ती शुष्क धान खेती के स्थान पर जलयुक्त धान खेती स्थानापन्न कर दी गई है। अन्ततः बहुत अधिक श्रम–गहन तकनीकों द्वारा समस्त उपलब्ध भूमि काश्त हो जाती है और श्रम की सीमान्त उत्पादकता गिरकर शून्य या शून्य से भी कम हो जाती है। इस प्रकार जनसंख्या की निरंतर वृद्धि होने पर, अदृश्य बेरोजगारी प्रकट होने लगती है। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत, कृषकों के लिए कोई प्रेरणा नहीं होती कि वे अधिक पूँजी लगाएं अथवा श्रम–बचत तकनीकें अपनाएं। इसके अतिरिक्त न तो प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने की कोई तकनीक उपलब्ध है और न ही श्रम की ओर से अपने आप उत्पादन बढ़ाने का कोई प्रोत्साहन होता है। परिणाम यह होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन की तकनीकें, श्रम–घण्टा उत्पादकता तथा सामाजार्थिक कल्याण एक निम्न स्तर पर रहते हैं।

दीर्घकाल में प्रौद्योगिकीय प्रगति अदृश्य बेरोजगारी को दूर करने में सहायक नहीं होती बल्कि उसे बढ़ाती है। प्रोफेसर हिगिन्स का मत है कि पिछली दो शताब्दियों में देहाती क्षेत्र में बहुत थोड़ी या नहीं के बराबर प्रौद्योगिकीय प्रगति हुई है, इससे अदृश्य बेराजगारों की संख्या बढ़ी है। ट्रेड यूनियन क्रियाओं अथवा सरकार की नीति के परिणामस्वरूप मजदूरी की कृत्रिम ऊंची दरों ने इस स्थिति को ओर भी अधिक गम्भीर बना दिया है। क्योंकि उत्पादकता की सापेक्षता में ऊंची औद्योगिक मजदूरी दरें उद्यमियों को इस बात के लिए प्रेरित करती हैं कि वे श्रम–बचत तकनीकें अपनाएं, जिसका परिणाम यह होता है कि अतिरेक श्रम को खपा सकने की औद्योगिक क्षेत्र की क्षमता और भी कम हो जाती है। इसलिए ये साधन अल्पविकसित देशों में औद्योगिकीय द्वैतवाद की प्रवृत्ति बनाए रखते हैं।

17.4.2 : समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

प्रोफेसर हिग्गिन्स ने आधुनिक तथा परम्परागत क्षेत्रों का ऐतिहासिक विकास– क्रम प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जिसके कारण पहले क्षेत्र में धीरे–धीरे बेराजगारी बढ़ती जाती है। प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। यह यथार्थिक है क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि द्वैतीय समाजों के ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी धीरे–धीरे कैसे बढ़ती जाती है।

17.4.3: तकनीकी द्वैतवाद के दोष (Defects of Technological Dualism)

तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त में अनेक गुण होने के उपरान्त भी यह कुछ दोषों से परिपूर्ण है इसके प्रमुख दोष निम्नवत् हैं –

1.औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी गुणांक स्थिर नहीं होते हैं।

(Technological Coefficients are not fixed in industial sector)

बिना किसी प्रमाण के यह मानना सही नहीं है कि औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी गुणांक स्थिर पाए जाते हैं क्योंकि जहां ग्रामीण क्षेत्र में परिवर्ती तकनीकी गुणांकों से उत्पादन हुआ है, वहां यह सन्देहास्पद है कि औद्योगिकीय क्षेत्र में उत्पादन वास्तव में स्थिर गुणांकों से होता रहा है।

2.श्रम खपाने वाली तकनीकों की अवहेलना

(Neglect of the use of labour absorbing techniques)

हिग्गिन्स का यह कथन, कि औद्योगिक क्षेत्र में प्रयोग के लिए अत्यन्त पूँजी गहन प्रक्रियाएं आयात की जाती हैं, श्रम खपाने वाली अन्य तकनीकों के प्रयोग की पूर्णरूप से अवहेलना करता है। सब आयातित तकनीकें श्रम की बचत करने वाली नहीं होती। उदाहरणार्थ, जापान का कृषि विकास पूंजी–गहन तकनीकों के कारण नहीं हुआ है बल्कि यह अच्छे बीजों, सुधरी हुई खेती के ढंगों, उर्वरकों के अधिक प्रयोग आदि के कारण हुआ है।

3.संस्थानिक साधनों की उपेक्षा (Neglect of institutional factors)

हिग्गिन्स ने ऐसे अनेक संस्थानिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों की उपेक्षा की है जो साधन अनुपातों को भी प्रभावित करते हैं।

4.साधन कीमतें साधन सम्पन्नताओं पर निर्भर नहीं करती

(Factor prices do not depend upon factor endowments)

यह सिद्धान्त इस ओर संकेत करता है कि किस कारण साधन सम्पन्नताओं एवं विभिन्न उत्पादन फलनों ने ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी को जन्म दिया है। यह साधन कीमतों के ढंग से महत्वपूर्ण रुप से सम्बद्ध है। परन्तु साधन कीमतें केवल साधन सम्पन्नताओं पर ही निर्भर नहीं करतीं।

5.अदृश्य बेरोजगारी की प्रकृति एवं आकार को स्पष्ट नहीं किया

(Nature and size of disguised unemployment not clarified)

हिग्गिन्स ने ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी तथा औद्योगिक क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम–पूर्ति की प्रकृति को स्पष्ट नहीं किया है और न ही उन्होंने तकनीकी द्वैतवाद से उत्पन्न होने वाली अदृश्य बेरोजगारी की वास्तविक सीमा की चर्चा की है।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रोफेसर जे. एच. बुके किस देश से सम्बन्धित हैं ?
2. Economics and Economic Policy of Dual Societies नामक पुस्तक किसने लिखी ?
3. सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया ?
4. तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया?
5. प्रो. बुके के अनुसार प्रत्येक समाज में कितनी विशेषताएं पायी जाती हैं ?
6. सामाजिक द्वैतवाद से क्या अभिप्राय है ?
7. तकनीकी द्वैतवाद से क्या आषय है ?
8. पूर्वीय क्षेत्र की क्या प्रमुख विशेषताएं हैं ?
9. स्वदेशी उद्योग की विशेषताएं बताइये।

बहुविकल्पीय प्रश्न

10. सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया ?

अ) गुन्नार मिर्डल ब) एच0मिन्ट

स) जे0एच0बूके द) इनमें से कोई नहीं

11.तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया?

अ) बैन्जामिन हिगिन्स ब) एच0मिन्ट

स) जे0एच0बूके द) इनमें से कोई नहीं

सत्य / असत्य लिखिएः

12. बूके के अनुसार आर्थिक दृष्टिकोण से किसी समाज की तीन विशिष्टताएं होती हैं।

14. तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा पंरापरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है।

14. जे. एच. बुके अमेरिकन अर्थशास्त्री हैं ?

17.5 सारांश

आर्थिक विकास के सिद्धान्तों में द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं के विश्लेषण का महत्वपूर्ण स्थान है। द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख समस्या वर्तमान एवं सम्भावित अल्पविकसित श्रम शक्ति को उचित रोजगार की सुविधाएं प्रदान करने की है। दो परस्पर विरोधी प्रणालियों की आर्थिक अन्तः क्रियाओं की व्याख्या एवं विश्लेषण करने हेतु प्रो. जे. एच. बूके ने सामाजिक द्वैतवाद

के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो केवल अल्पविकसित देशों पर लागू होता है। बूके का सिद्धान्त अधिकतर इण्डोनेशियाई अनुभव पर आधारित है।

किसी समाज में दो या अधिक प्रणालियां एक–साथ विद्यमान हो सकती है। तब वह द्वैत या बहु–संख्यक समाज होता है। बूके ने ''द्वैत समाज' शब्द का प्रयोग ''ऐसे समाजों'' के लिए किया है, जो दो समसामयिक एवं पूर्णतः विकसित सामाजिक प्रणालियों का स्पष्ट विभाजन प्रकट करती है; जो (प्रणालियां) सजातीय समाजों के स्वाभाविक, ऐतिहासिक क्रम–विकास में संक्रमणकालीन रूपों द्वारा एक–दूसरी से अलग कर दी जाती हैं। प्रथम प्रणाली अर्थात् उन्नत आयातित पश्चिमी प्रणाली पश्चिमी प्रभाव तथा देखरेख में होती है, जो उन्नत तकनीकों का प्रयोग करती है और जिसमें जीवन का औसत स्तर ऊंचा होता है। दूसरी स्वदेशीय पूर्व–पूंजीवादी कृषि सम्बन्धी प्रणाली होती है जिसमें तकनीकी, आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण के स्तर नीचे होते हैं। बूके ने इसे ''सामाजिक द्वैतवाद'' कहा है।द्वैतीय अर्थव्यवस्था के पूर्वीय क्षेत्र की कुछ विशिष्टताएं है जो उसे पश्चिमी समाज से पृथक करती हैं।

बुके के सामाजिक द्वैतवाद के विकल्प के रूप में बैन्जामिन हिगिन्स ने तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा पंरापरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक या तकनीकी बेरोजगारी तथा देहाती क्षेत्र में अल्प–रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिगिन्स का तकनीकी द्वैतवाद का यह सिद्धान्त आर. एस. रेकॉस द्वारा विवेचित साधन अनुपातों की समस्या को शामिल करता है एवं उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से सम्बन्ध रखता है जो बाजार की अपूर्णताओं, विभिन्न साधन सम्पन्नताओं एवं उत्पादन फलनों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पायी जाती है। प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। यह यथार्थिक है क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि द्वैतीय समाजों के ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी धीरे–धीरे कैसे बढ़ती जाती है। तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त में अनेक गुण होने के उपरान्त भी यह अनेक दोषों से परिपूर्ण है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष के रुप में यह कहा जा सकता है कि बूके के सामाजिक द्वैतवाद एवं हिगिन्स के तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त का आर्थिक विकास के सिद्धान्तों के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि दोनों के अपने–अपने गुण एवं दोष हैं तथापि द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। तकनीकी द्वैतवाद का विचार सामाजिक द्वैतवाद की तुलना में कुछ अधिक आधुनिक प्रतीत होता है। इसमें अदृश्य या छिपी बेरोजगारी की समस्या को समझाने का प्रयास किया गया है।

17.6 शब्दावली

द्वैत अर्थव्यवस्था (Dual Economy) – दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें दो क्षेत्र (Sectors) होते हैं : प्रथम, कृषि क्षेत्र अथवा जीवन– निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र तथा द्वितीय, उद्योग क्षेत्र अथवा पूंजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र। ऐसी अर्थव्यवस्था

में जहाँ कुछ क्षेत्रों में पूंजी गहन तकनीक का प्रयोग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है।

पूंजीवादी क्षेत्र (Capitalist Sector) – पूंजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूंजी का प्रयोग करता है तथा पूंजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है।

जीवन–निर्वाह क्षेत्र(Subsistence Sector)–यह अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूंजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन–निर्वाह क्षेत्र में पूंजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।

काली मुद्रा (Black Money)– ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी, करों की चोरी, काला–बाजारी आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है। इनसे प्राप्त आय पर कोई भी कर नहीं चुकाया जाता। काले धन से की गई खरीद व बिक्री से प्राप्त मुनाफे पर कोई आय कर नहीं चुकाया जाता, इस कारण इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

पूंजी निर्माण (Capital Formation)– कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि, सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढानें हेतु लगाया जाता है।

श्रम की सीमांत उत्पादकता (Marginal Productivity of Labour) – श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि । प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।

बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy) – एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल नहीं होती है।

अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment)– यह बेरोजगारी प्रकट रूप में दिखाई नहीं देती है। इस दशा में श्रमिक काम में लगा हुआ प्रतीत होता है किन्तु उत्पादन में उसका योगदान नगण्य या शून्य होता है अर्थात् श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है।

सीमान्त भौतिक उत्पादकता(Marginal Physical Productivity) – जब सीमान्त उत्पादकता को उत्पादन (वस्तुओं) की भौतिक मात्राा में होने वाली वृद्धि के रूप में व्यक्त किया जाता है तो उसे सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहते हैं अर्थात् यह किसी साधन की अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि को व्यक्त करती है।

पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scales)जब उत्पादन के किसी एक साधन या अनेक साधनों को जिस अनुपात में बढ़ाया या घटाया जाता है यदि उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि या कमी हो तो उसे पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति कहते हैं।

बाह्य घटक (Exogenous Factor) एक ऐसा घटक जो मॉडल के कार्य को प्रभावित तो करता है किन्तु मॉडल में दिये गये सम्बन्धों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हॉलैण्ड , 2. जे. एच. बुके , 3. जे. एच. बुके ,4. बैन्जामिन हिगिन्स , 5. तीन
9. स) जे0एच0बूके , 11. अ) बैन्जामिन हिगिन्स ,12. सत्य,13. सत्य ,14. असत्य

17.8 संदर्भ सहित ग्रन्थ

- झिंगन,एम0एल0 : "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, दिल्ली, 2003
- सिंह, योगेष कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार : "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008
- सिन्हा,वी0सी0 : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपर बैक्स, नौएडा, 2007
- Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
- Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

17.9 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

- **Bocke , J.H.** : "Economics and Economic Policy of Dual Societies"1953, "Three Forms of Disintegration in Dual Societies" , Indonesia, April, 1954 and "Western Influence on the growth of Eastern Population", Economics Internazionale , May,1954.
- **Higgins Benjamin** : "The Dualistic Theory of Underdeveloped Areas", Economic Development and Cultural Change , January, 1956.
- **Meier ,G.M.:** "Leading Issues in Economic Development" ,Oxford University Press , Delhi ,1989

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. "पूर्वी तथा पश्चिमी अर्थव्यवस्था में इन भेंदों के कारण पाश्चात्य आर्थिक सिद्धान्त अल्पविकसित क्षेत्रों में पूर्णतया अप्रयोज्य हैं।'' (बूके) व्याख्या कीजिए।
2. तकनीकी द्वैतवाद सिद्धांत की व्याख्या कीजिए। यह सिद्धांत सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धांत से क्यों कर श्रेष्ठ माना जाता है?
3. प्रो0 बूके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. तकनीकी द्वैतवाद क्या है? यह सामाजिक द्वैतवाद से किस प्रकार भिन्न है? व्याख्या कीजिए।
5. सामाजिक द्वैतवाद क्या है? इसकी प्रमुख विषेषताओं की व्याख्या कीजिए तथा इसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
6. हिगिन्स के तकनीकी द्वैतवाद सिद्धांत की विवेचना कीजिए। इसकी क्या सीमाएं हैं?

इकाई 17 आर्थर लुइस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त

इकाई संरचना

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 आर्थर लुइस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त

17.3.1 दोहरी (द्वैत) अर्थव्यवस्था

17.3.2 असीमित श्रम पूर्ति

17.4 लुइस मॉडल के तत्व

17.4.1 केन्द्रीय समस्याः श्रमशक्ति को एकत्र करना

17.4.2 समस्या का समाधान :श्रमशक्ति का उचित उपयोग

17.4.3 पूंजीवादी अतिरेक

17.4.4 पूंजी निर्माण पूंजीवादी अतिरेक पर निर्भर करता है

17.4.5 अर्जित लाभ एवं पूंजी निर्माण

17.4.6 राज्य तथा निजी पूंजीपतियों की भूमिका

17.4.7 बैंक साख द्वारा पूंजी निर्माण

17.4.8 विकास प्रक्रिया का अंत

17.5 लुइस मॉडल की श्रेष्ठता

17.6 लुइस मॉडल की आलोचनाएं

17.7 सारांश

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.10 संदर्भ सहित ग्रन्थ

17.11 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

17.12 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

अल्पविकसित देषों की विकास प्रक्रिया की व्याख्या करने हेतु विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित माडलों में आर्थर लुइस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त का विषेष स्थान है। प्रतिष्ठित अर्थषास्त्रियों की भाँति लुइस ने भी यह माना है कि अल्पविकसित देषों में जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी पर श्रम की असीमित पूर्ति उपलब्ध होती है। अतः श्रम को निर्वाह क्षेत्र से हटाकर पूंजीवादी क्षेत्र में लगाकर आर्थिक विकास को सम्भव किया जा सकता है।

17.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि

1. अल्पविकसित देषों के विकास में श्रम की असीमित पूर्ति का क्या योगदान है?
2. लुइस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त क्या है?
3. लुइस का विकास मॉडल किन तत्वों पर आधारित है?
4. लुइस का मॉडल प्रतिष्ठित अर्थषास्त्रियों के मॉडल से किसप्रकार श्रेष्ठ है?
5. लुइस के विकास मॉडल की किन आधारों पर आलोचना की गई है?

17.3 आर्थर लुइस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त

सन् 1954 में प्रकाशित अपने प्रसिद्ध लेख 'श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास' (Economic Development with Unlimited Supplies of Labour) में प्रो0 डब्लू आर्थर लुइस (W. Arthur Lewis) ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को भारत जैसे श्रम बाहुल्य वाले देशों की विकास प्रक्रिया पर लागू किया और रिकार्डो के दो–क्षेत्रीय विकास मॉडल को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया। लुइस मॉडल को दो–क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल (Dualistic Economy Model) भी कहा जाता है क्योंकि उसका मॉडल द्वैत–अर्थव्यवस्था–(अ) जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थात् कृषि तथा (ब) पूंजीवादी क्षेत्र अर्थात् उद्योग पर आधारित है।

17.3.1 दोहरी (द्वैत) अर्थव्यवस्था (Dual Economy)

लुइस अपने मॉडल की व्याख्या एक 'दोहरी–अर्थव्यवस्था' (द्वैत अर्थव्यवस्था (Dual Economy) की मान्यता से आरम्भ करते हैं। इस दोहरी अर्थव्यवस्था में दो क्षेत्र (Sectors) हैं:

(1) कृषि क्षेत्र अथवा जीवन निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र, तथा

(2) उद्योग क्षेत्र अथवा पूंजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र।

इनमें पूंजीवादी क्षेत्र वह है जिसमें 'पुनरूत्पादनशील पूंजी' (Reproductible Capital) का प्रयोग किया जाता है। पूंजी के प्रयोग का नियंत्रण पूंजीपति करता है। यह श्रम की सेवाओं को किराये पर लेता है। लुइस के अनुसार पूंजीवादी क्षेत्र के अन्तर्गत 'प्लांटेशन तथा खनन' भी आ जाते हैं। यहां पूंजीपति, श्रमिकों को अपने लाभ के लिए किराये पर लेता है।

जीवन निर्वाह क्षेत्र (अथवा पोषण क्षेत्र अथवा कृषि क्षेत्र) वह क्षेत्र है जिसमें पुनरुत्पादनशील पूंजी का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसे घरेलू परम्परागत क्षेत्र (Indigenous Traditional Sector) भी कहा जा सकता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में 'प्रति व्यक्ति उत्पादन' (GNP Per Capita) और /अथवा प्रतिव्यक्ति आय (Per Capita Income) पूंजीवादी क्षेत्र से काफी कम होती है।

17.3.2 असीमित श्रम पूर्ति (Unlimited Supply of Labour)

लुइस विकास मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि जीवन निर्वाह के क्षेत्र में 'श्रम की असीमित पूर्ति' है। इस असीमित श्रम अथवा श्रमाधिक्य (Surplus Labour) को जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी पर किसी दूसरी जगह रोजगार में लिया जा सकता है। यहां श्रमिकों की असीमित पूर्ति का अर्थ है जीवन निर्वाह (अथवा कृषि) क्षेत्र में श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता जीवन–निर्वाह मजदूरी से काफी नीचे है जिसके परिणामस्वरुप कृषि क्षेत्र से श्रमिकों को निकाल लेने पर श्रम के औसत उत्पादन में कमी नहीं आयेगी।

लुइस की असीमित श्रम पूर्ति की आवश्यकता को रेखाचित्र 17.1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र में भूमि की स्थिर मात्रा पर श्रम की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयां लगायी गयी है।

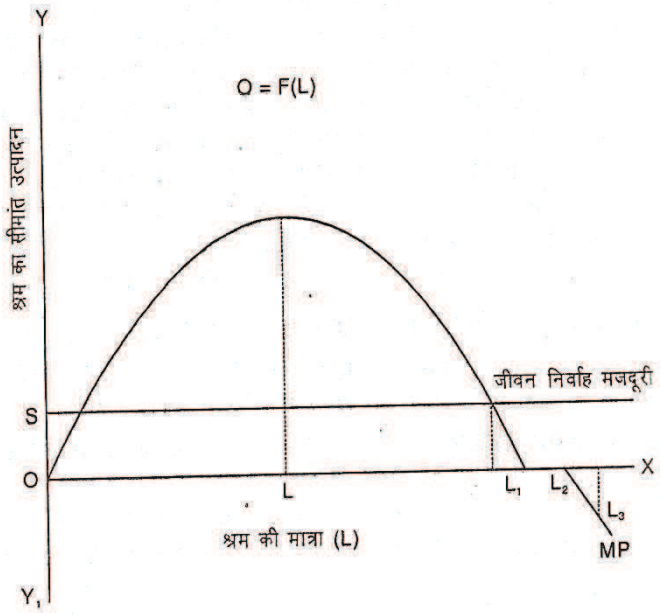

चित्र रू 17.1

OL श्रम के बाद श्रम की सीमांत उत्पादन में गिरावट शुरू हो जाती है और जब इसकी मात्रा OL_1 होती है तो इसका मूल्य जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी के बराबर हो जाता है। L_1 L_2 तक श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य है और L_2 के बाद ऋणात्मक हो जाती है। इस प्रकार OL_1 के बाद जितने भी श्रमिक कृषि क्षेत्र में लगेंगे वे सभी अतिरिक्त श्रमिक होंगे।

प्रो0 लुइस के अनुसार कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त श्रमिकों (रेखा चित्र 17.1 में OL_1 के बाद श्रमिकों) की सेवाओं को उद्योगपति जीवन निर्वाह मजदूरी के बराबर अथवा इससे कुछ अधिक देकर किराये पर प्राप्त कर सकता है। उद्योगपति (अथवा पूंजीपति) दी हुई मजदूरी पर जितने श्रमिक चाहे उतने क्रय कर सकता है। इस तरह, औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति की लोच पूर्णतया लोचदार (Perfectly Elastic) होगी।

17.4 लुइस मॉडल के तत्व (Elements of Lewis Model)

लुइस मॉडल का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

17.4.1 केन्द्रीय समस्याः श्रमशक्ति को एकत्र करना

(Central Problem: Collection of Labour Force)

लुइस ने अपना मॉडल इस मान्यता से प्रारम्भ किया है कि अल्प–विकसित देशों में प्रचलित मजदूरी की दरों पर श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है। श्रम की यह असीमित पूर्ति अर्थव्यवस्था के निर्वाह क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक मात्रा में लगे श्रमिकों, कृषि पर बढ़ती हुई निर्भरता एवं अदृश्य बेरोजगारी के रूप में देखी जा सकती है।

श्रम–शक्ति को एकत्र करने के लिए निम्न उपाय किये जाते हैं:–

(अ)सर्वप्रथम अर्द्धविकसित देशों में काम न करने वाली महिलाओं को श्रमिकों की पूर्ति में सम्मिलित करना होगा। बहुत–सी महिलाएं गृह–कार्यों में लगी रहती हैं, परंतु उनकी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है।

(ब)हमें उन व्यक्तियों को भी रोजगार में लगाना होगा, जो अदृश्य रूप से बेरोजगार हैं या अर्द्ध–बेरोजगारी से पीड़ित हैं तथा जो छोटे व्यापारियों, घरेलू और वाणिज्यिक सेवकों के रूप में कार्य कर रहे हैं।

(स)इसी श्रम–शक्ति में देश की बढ़ती हुई जनसंख्या से फलित अतिरिक्त, श्रम–शक्ति को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

परंतु उपर्युक्त सभी व्यक्ति अकुशल श्रम की श्रेणी में आते हैं, जबकि आर्थिक विकास और पूंजीवादी क्षेत्र के लिए कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इस संबंध में लुइस का कथन है कि कुशल श्रमिकों का अभाव एक अस्थायी गतिरोध ही होता है, जिसे अकुशल श्रमिकों की शिक्षा और प्रशिक्षण आदि की सहायता से दूर किया जा सकता है।

17.4.2 समस्या का समाधान :श्रमशक्ति का उचित उपयोग

(Solution of Problem : Proper Utilization of Labour Force)

अतः अर्द्धविकसित देशों की प्रमुख समस्या इस अतिरिक्त श्रम शक्ति का उचित ढंग से उपयोग करने की है।

प्रो0 लुइस ने एक अर्थव्यवस्था को दो भागों में बांटा है–पूंजीवादी क्षेत्र और जीवन–निर्वाह क्षेत्र। पूंजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूंजी का प्रयोग करता है तथा पूंजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है। इसके दूसरी ओर जीवन–निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूंजी का प्रयोग नहीं करता है जीवन–निर्वाह क्षेत्र में पूंजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।

अतः लुइस के मतानुसार आवश्यकता इस बात की है कि जीवन–निर्वाह–क्षेत्र से श्रमिकों को हटाकर और उन्हें पूंजीवादी क्षेत्र में लगाकर, नये उद्योगों की स्थापना की जाये या वर्तमान उद्योगों का विस्तार किया जाये ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके। इस प्रकार निर्वाह–क्षेत्र से बाहर इस अतिरिक्त श्रम–शक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना, राष्ट्रीय आय के बढ़ाने का अचूक साधन है।

17.4.3 पूंजीवादी अतिरेक(Capitalist Surpus)

(पूंजीवादी–मजदूरी तथा जीवन–निर्वाह मजदूरी के अन्तर के रूप में)

अब प्रश्न यह उठता है कि 'जीवन निर्वाह मजदूरी दर' (जिस पर 'पूंजीवादी–क्षेत्र' में अतिरिक्त श्रम उपलब्ध होता है) का निर्धारण किस प्रकार होता है? संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि यह जीवन–निर्वाह के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पूंजीवादी क्षेत्र में मजदूरी का स्तर निर्वाह क्षेत्र में प्राप्त होने वाली आय पर निर्भर करता है। सामान्यतः मजदूरी का यह स्तर निर्वाह क्षेत्र में श्रमिक की औसत उपज से कम नहीं हो सकता लेकिन कुछ परिस्थितियों में (जब किसान को लगान देना हो या खाने पर अधिक व्यय होता हो या उनकी दृष्टि में कर के प्रति अधिक मोह हो) मजदूरी दर श्रम की औसत उत्पादन से भी अधिक हो सकती है। प्रो0 लुइस के अनुसार 'जीवन–निर्वाह' क्षेत्र में श्रमिकों को प्राप्त होने वाली आय पूंजीवादी क्षेत्र में मजदूरी की न्यूनतम सीमा को निर्धारित करती है, किन्तु व्यवहार में मजदूरियों का इससे अधिक होना आवश्यक है और पूंजीवादी मजदूरी तथा जीवन–निर्वाह मजदूरी में सामान्यतः 30 प्रतिशत या उससे अधिक का अन्तर होता है। पूंजीवादी क्षेत्र में मजदूरी की दर के ऊंचे होने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:

(अ) निर्वाह क्षेत्र या पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होने के परिणामस्वरूप वास्तविक आय में वृद्धि होने के कारण श्रमिकों के द्वारा पूंजीवादी क्षेत्र में काम करने के लिए अधिक मजदूरी का मांगा जाना।

(ब) निर्वाह क्षेत्र से श्रमिकों को हस्तांतरित करने पर यदि उत्पादन की मात्रा में कमी नहीं होती है तो उस क्षेत्र में बचे कार्यरत श्रमिकों की औसत वास्तविक आय में वृद्धि के कारण पूंजीवादी क्षेत्र में हस्तांतरित होने वाले श्रमिक वर्ग द्वारा भी अधिक मजदूरी पर जोर दिया जाना।

(स) जीवन–स्तर की बढ़ती हुई लागतों और मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण सेवायोजकों द्वारा वास्तविक मजदूरी में वृद्धि कर देना।

(द) राज्य–द्वारा श्रमसंघों को प्रोत्साहन देना, जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग की सौदा करने की शक्ति में वृद्धि हो जाना।

इस प्रकार पूंजीवादी मजदूरी की तुलना में पूंजीवादी क्षेत्र की ऊंची सीमांत उत्पादकता के परिणाम स्वरूप है पूंजीवादी अतिरेक उत्पन्न होता है।

17.4.4 पूंजी निर्माण पूंजीवादी अतिरेक पर निर्भर करता है

(Capital Formation depends upon Capitalists Surplus)

पूंजीवादी क्षेत्र में अतिरेक श्रम की सीमांत उत्पादकता उसकी जीवन निर्वाह मजदूरी एवं पूंजीवादी मजदूरी दोनों से अधिक होती है जिसके परिणामस्वरूप पूंजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त आय या अतिरेक उदय होती है। इस अतिरेक को नयी परिसम्पत्तियों में निवेश करने पर पूंजी का निर्माण होता है जिससे अधिक लोगों को रोजगार पर लगाया जाता है। इस क्षेत्र में जैसे–जैसे रोजगार बढ़ता जाता है वैसे–वैसे पूंजीवादी अतिरेक भी बढ़ता जाता है और उसके साथ ही साथ पूंजी निर्माण अर्थात् आर्थिक विकास का चक्र शुरू हो जाता है। यह प्रक्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक कि कुल अतिरेक श्रम को रोजगार प्राप्त नहीं हो जाता। पूंजी श्रम अनुपात नहीं बढ़ जाता और श्रम की पूर्ति लोचरहित नहीं बन जाती। इस प्रकार लुइस के अनुसार आर्थिक विकास का मूल्य पूंजी निर्माण के लिए आवश्यक पूंजीवादी अतिरेक के उत्पन्न होने पर उसके पुनर्निवेश में निहित है। इस प्रक्रिया को रेखाचित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया गया है।

चित्र 17.2 में, OX अक्ष पर श्रमिकों की संख्या एवं OY अक्ष पर मजदूरी की दर व सीमांत उत्पादकता को दर्शाया गया है।

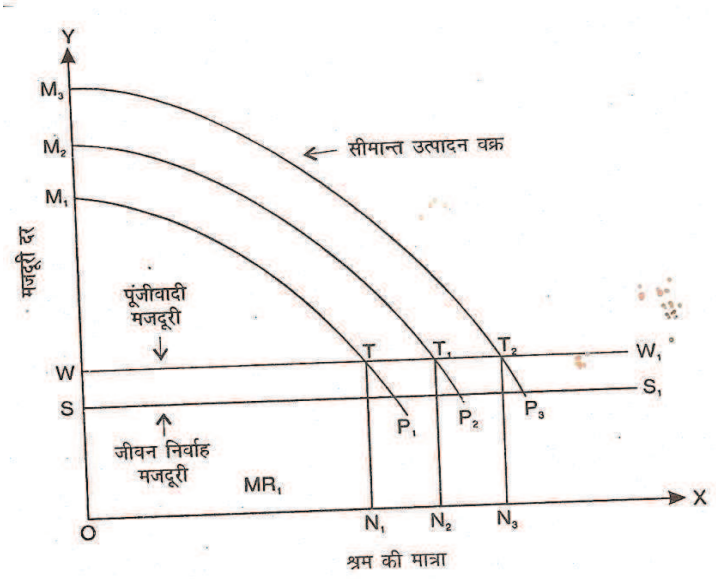

चित्र 17.2

कृषि क्षेत्र में व्यापक बेरोजगारी व अदृश्य बेरोजगारी पाये जाने के कारण पूंजीवादी या औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है।अतः औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम पूर्ति वक्र WW_1 है जो Y.अक्ष के समानांतर एक सीधी रेखा के रूप में दर्शाया गया है। मजदूरी की प्रचलित दर (पूंजीवादी मजदूरी) OW कृषि में प्रचलित जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी OS से थोड़ी अधिक है।

उद्योगों में पूंजीपति लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से कार्य करते हैं और इस प्रकार वे दी हुई मजदूरी OW को श्रम की सीमांत उत्पादकता के बराबर करेंगे।

जब मजदूरी की दर OW है तो सीमांत उत्पादकता वक्र M_1P_1 उसे T बिन्दु पर काटती है जो यह प्रदर्शित करती है कि इस बिन्दु पर मजदूरों की सीमांत उत्पादकता मजदूरी दर के बराबर है। अतः जब मजदूरी की दर OW है तो पूंजीपति ON_1 श्रमिकों की मांग करेंगे और रोजगार उपलब्ध करायेंगे।

श्रमिकों की ON_1 मात्रा से कुल औद्योगिक उत्पादन OM_1TN_1 के बराबर है तथा मजदूरी का भुगतान $OWTN_1$ के बराबर होगा। अतः WM_1T क्षेत्र के बराबर पूंजीपतियों को लाभ प्राप्त होगा। इन लाभों के विनियोग से अधिक पूंजी निर्माण होगा।

अधिक पूंजी के उपलब्ध होने पर श्रम का सीमांत उत्पादन ;डच्द्ध वक्र दायीं ओर विवर्तित होकर M_2P_2 हो जायेगा परन्तु मजदूरी की दर पूर्ववत् OW रहने पर श्रमिकों की प्रयुक्त मात्रा बढ़कर ON_2 हो जायेगी और पूंजीपतियों का लाभ बढ़कर WM_2T_1 के बराबर हो जायेगा। इन लाभों को पूंजीपति अधिक पूंजी निर्माण के लिए प्रयोग करेंगे।

इस प्रकार आगे भी लाभों के विनियोग से अधिक पूंजी निर्माण होगा। डच वक्र दायीं ओर विवर्तित होता जायेगा जिससे रोजगार व उत्पादन में वृद्धि होती जायेगी। यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि श्रम–अतिरेक (Labour Suplus) समाप्त नहीं हो जाता। श्रम–अतिरेक की समाप्ति के पश्चात मजदूरी दर बढ़ने लगेगी जिससे उद्योगों में अर्जित लाभ घटने लगेंगे और लाभ की दर कम होती जायेगी। फलतः विकास की गति घट जायेगी परन्तु लुइस के अनुसार तब तक विकासशील देशों में खुली बेरोजगारी तथा अदृश्य बेरोजगारी समाप्त हो चुकी होगी।

17.4.5 अर्जित लाभ एवं पूंजी निर्माण(Earned Profit and capital Formation)

इस प्रकार प्रो0 लुइस ने अपने विकास माडल में पूंजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ में से ही पूंजी निर्माण की सम्भावना को स्पष्ट किया है। लुइस के अनुसार पूंजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ (Earned Profit) से पूंजी निर्माण किया जायेगा और पूंजी निर्माण आर्थिक विकास को बढ़ावा देगा। इस तरह अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति विकास की बाधा न हो कर पूंजी निर्माण में सहायक सिद्ध होती है। प्रो0 लुइस के अनुसार, "आर्थिक विकास के सिद्धान्त में केन्द्रीय समस्या उस प्रक्रिया को समझने की है जिसके द्वारा अपनी राष्ट्रीय आय का 4 प्रतिशत या 5 प्रतिशत बचत तथा विनियोग करने वाला एक समाज किस प्रकार अपने आपको 12 प्रतिषत से 15 प्रतिशत अथवा इससे भी अधिक ऐच्छिक बचत करने वाले समाज में बदल सकता है।"

17.4.6 राज्य तथा निजी पूंजीपतियों की भूमिका(Role of State and Private Capitalists)

प्रो0 लुइस के अनुसार राज्य पूंजीपतियों (अर्थात् सार्वजनिक उपक्रम एवं सरकार) और देशीय निजी पूंजीपतियों (Indigenous Private Capitalists) को बढ़ावा दिया जाना चाहिए क्योंकि पूंजी निर्माण का कार्य केवल इनके द्वारा अर्जित लाभों में से ही हो सकता है। यद्यपि इनमें राज्य पूंजीपति के निर्माण की क्षमता अधिक होती है क्योंकि वह समाज से अतिरिक्त कराधान और/अथवा अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण के द्वारा अधिक राजस्व ;त्मअमदनमद्ध जुटा पाने में सफल रहता है। लुइस के अनुसार जब पूंजी के उत्पादक

सम्बन्धी उपयोग के अवसर तेजी से बढ़ते हैं तो पूंजी अतिरेक, पूंजीनिर्माण व आर्थिक विकास भी क्रमशः तेजी से बढ़ते हैं।

प्रो0 लुइस के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में पूंजी की मात्रा कम होती है क्योंकि

(i) अर्थव्यवस्था की बचतें कम होती हैं क्योंकि पूंजीवादी लाभ का राष्ट्रीय आय में अनुपात कम होता है। उदाहरण के लिए वेतन व मजदूरी प्राप्त करने वाला वर्ग मुश्किल से राष्ट्रीय आय का 3 प्रतिशत या 4 प्रतिशत भाग ही बचा पाता है।

(ii) अर्थव्यवस्था की बचतें कम होती हैं क्योंकि बड़े व्यापारी, राजघराने, भूपति आदि उत्पादन निवेश करने के बजाय अनावश्यक उपभोग में अधिक रूचि रखते हैं।

(iii) अर्द्धविकसित देश में 'उत्पादन निवेश' के कम होने में निकासी (Withdrawls) बहुत महत्वपूर्ण है। व्यवहार में इसे काली मुद्रा (Black Money)] समानांतर अर्थव्यवस्था (Parallel Economy) आर्थिक भ्रष्टाचार (Economic Corruption) आदि नामों से पुकारा जाता है। अर्थशास्त्री इसे पूंजी रिसाव (Capital Leakage) कहते हैं। यह पूंजी उत्पादन कार्य में न लग कर विलासिता व शान–ओ–शौकत जैसे उपभोग कार्य में लगी रहती है।

अतः अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक है कि ;पद्ध जो अधिक बचत कर सकते हैं उनके द्वारा अर्थव्यवस्था में 'बचत क्षमता' को बढ़ाया जाये, तथा ;पपद्ध सम्पूर्ण बचत को उत्पादन कार्य में विनियोग किया जाये। बचत का कोई भी अंश पूंजी रिसाव के रूप में उपभोग में न लगने दिया जाये।

यह उल्लेखनीय है कि राज्य पूंजीपति की पूंजी संचय की क्षमता निजी पूंजीपति की अपेक्षा अधिक होती है। कारण यह है कि राज्य पूंजीवादी क्षेत्र के लाभ का उपयोग करने के अतिरिक्त निर्वाह क्षेत्र में से कुछ न कुछ अतिरेक कराधान के रूप में प्राप्त करने में सफल रहता है। इस प्रकार लुइस का मत है कि जब पूंजी के उत्पादकीय उपयोग के अवसर तीव्र गति से बढ़ते हैं तो अतिरेक भी तेजी से बढ़ता है और उसके साथ–साथ पूंजीपति वर्ग का भी विकास होने लगता है।

17.4.7 बैंक साख द्वारा पूंजी निर्माण (Capital Formtion through bank Credit)

लुइस का विचार है कि यद्यपि अर्द्धविकसित देशों में पूंजीवादी क्षेत्र में उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा पूंजी–निर्माण हो सकता है, किन्तु साख–सृजन (मुद्रा–स्फीति) द्वारा भी पूंजी निर्माण में योगदान लिया जा सकता है और उत्पादन तथा रोजगार का स्तर बढ़ाया जा सकता है। लुइस का मत है कि यद्यपि इससे मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियों को जन्म मिल सकता है, परन्तु दीर्घकाल में इससे कोई हानि नहीं होगी, क्योंकि पूंजी निर्माण के लिए मुद्रा–प्रसार स्वयं विनाशक या समाप्त हो जाने वाला ै;मसि स्पुनपकंजपदहद्ध होता है। इसके उन्होंने निम्न कारण बतायेः (अ) प्रारंभिक अवस्था में आय तो बढ़ेगी किंतु उपभोग

वस्तुओं का उत्पादन प्रारंभ होने से मूल्य गिरने प्रारंभ हो जायेंगे, (ब) राज्य की करारोपण से आय बढ़ जायेगी और सरकार को बाद में हीनार्थ प्रबंधन नहीं करना पड़ेगा।

17.4.8 विकास प्रक्रिया का अंत (End of Growth Process)

इस प्रकार, ज्यों–ज्यों पूंजी निर्माण होता जाता है, उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होती जाती है, जिसके परिणामस्वरूप लाभ की मात्रा में वृद्धि होती है जिन्हें विनियोजित करके पुनः पूंजी निर्माणको बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार आर्थिक विकास का क्रम भी चलता रहता है। परंतु विकास की यह प्रक्रिया अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती है। लुइस के अनुसार विकास की यह प्रक्रिया निम्न परिस्थितियों में रूक जाती है :

(i) जब पूंजी निर्माण के परिणामस्वरूप अतिरिक्त श्रम नहीं बचते।

(ii) जबकि पूंजीवादी क्षेत्र का विस्तार इतनी तीव्रगति से हो जिससे 'पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र या निर्वाह क्षेत्र' में जनसंख्या बहुत कम रह जाने से इसकी सीमांत उत्पादकता बढ़ जाये जिसके फलस्वरूप निर्वाह क्षेत्र और पूंजीवादी क्षेत्र दोनों में मजदूरी का स्तर ऊंचा हो जाये।

(iii) जबकि निर्वाह क्षेत्र में उत्पादन की नयी प्रविधि अपनायी जाये जिससे पूंजी क्षेत्र में भी वास्तविक मजदूरी बढ़ जाये।

(iv) जबकि पूंजीवादी क्षेत्र का निर्वाह क्षेत्र की तुलना में तेजी से विस्तार होने पर खाद्यान्नों आदि की कीमतें बढ़ जाने के कारण व्यापार की शर्तें पूंजीवादी क्षेत्र में प्रतिकूल हो जायें और उन्हें श्रमिकों को अधिक मजदूरी देनी पड़े।

(v) निर्वाह क्षेत्र में श्रम की औसत उत्पादकता इतनी बढ़ जाय (क्योंकि इस क्षेत्र की उपज के हिस्सेदार कम हो चुके हैं) कि पूंजीवादी क्षेत्र में भी मजदूरी बढ़ानी पड़ जाय और फलस्वरूप लाभकी मात्रा कम हो जाये।

(vi) इस क्षेत्र में श्रमिक पूंजीवादी जीवन व्यतीत करने का ढंग अपना ले, तो इन सभी परिस्थितियों में पूंजी अतिरेक कम हो जायेगा जिसके फलस्वरूप पूंजी निर्माण व आर्थिक विकास का कार्य रूक जायेगा।

उपर्युक्त परिस्थितियों में पूंजीवादी क्षेत्र का आधिक्य, जो अर्द्धविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति के कारण उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है और पूंजी निर्माण की दर कम हो जाती है। लुइस के शब्दों में, ''विकास की यह प्रक्रिया उस समय समाप्त हो जायेगी और यह नीति उस समय प्रभावपूर्ण नहीं होगी जबकि पूंजी निर्माण की वृद्धि, मात्रा व दर, जनसंख्या की वृद्धि दर के बराबर हो जायेगी। अगर मजदूरी बढ़ने दी गयी तो यह नीति और पहले ही प्रभावहीन हो जायेगी।''

प्रो0 लुइस का मत है कि यदि उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण पूंजी निर्माण की दर कम हो और विकास की प्रक्रिया में गतिरोध उत्पन्न हो जाये तो निम्न दो तरीकों से पूंजी निर्माण की प्रक्रिया को बनाये रखा जा सकता है:

(अ) बड़े पैमाने पर श्रमिकों का आवास (Mass Immigration of Labour) किया जाय। परन्तु ऐसी स्थिति में सभी प्रकार के श्रमिकों की मजदूरी का स्तर नीचे गिरता है। अतः श्रम संघों द्वारा इसका कड़ा विरोध किया जाता है।

(ब) दूसरा उपाय यह है कि ऐसे देशों को पूंजी का निर्यात किया जाये जहां–निर्वाह मजदूरी के स्तर पर पर्याप्त मात्रा में श्रम शक्ति उपलब्ध हो। इससे पूंजी–निर्यात करने वाले देश में श्रम की मांग कम हो जाती है और मजदूरी की दर गिरने लगती है।

17.5 लुइस मॉडल की श्रेष्ठता (Superiority of Lewis Model)

लुइस के अनुसार उनका मॉडल प्रतिष्ठित मॉडल से श्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध में वे निम्नलिखित तर्क देते है:

(i) उनका मॉडल प्रयोग करने पर उपभोग को कम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती (जैसा कि नवप्रतिष्ठित मॉडलों में किया गया है) और न ही उपभोग को बढ़ाने की आवश्यकता है (जैसा कि कीन्स का मत है) इस प्रकार लुइस बलात् बचतों के स्थान पर बलात् पुनः वितरण के विकल्प को स्वीकार करते हैं।

(ii) लुइस के मॉडल में मुद्रा–स्फीति स्वयं समाप्त होने वाली है क्योंकि वह हीनार्थ प्रबन्धन रहित और उत्पादन प्रेरित है।

(iii) लुइस के मॉडल में लाभ–वित्त–व्यवस्था और साख–वित्त–व्यवस्था दोनों ही विकास प्रेरक हैं।

17.6 लुइस मॉडल की आलोचनाएं(Criticism of Lewis Model)

प्रो0 लुइस के विकास मॉडल की निम्न आधारों पर आलोचनाएं की जाती हैं:

1. **पूंजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम का स्थानान्तरण सरल नहीं है** (Transfer of surplus labour to capitalist area is not easy): लुइस के मॉडल को कार्यान्वित करने में जो महत्वपूर्ण कठिनाई आती है वह यह है कि निर्वाह–क्षेत्र से पूंजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम–शक्ति का स्थानान्तरण सरल नहीं है, क्योंकि अर्द्धविकसित देशों में जाति व धर्म बन्धनों के कारण एक ओर तो व्यावसायिक गतिशीलता कम रहती है और दूसरी ओर भाषा, आवास की समस्या, उत्साह की कमी, स्थान व वातावरण से प्रेम आदि के कारण भौगोलिक गतिशीलता भी कम रहती है।
2. **जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी सम्भव नहीं है** (Wage equal to subsistance level is not possible): आज जब हम कल्याणकारी समाज की स्थापना की बात करते हैं और श्रम आंदोलन व श्रम संघ सुदृढ़ होते जा रहे हैं, सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया काल में श्रमिक–जीवन निर्वाह मजदूरी पर कार्य नहीं करेगा। वह भी बढ़ती हुई महंगाई के तदनुरूप अपनी मजदूरी बढ़ाने की मांग करेगा और बढ़ते हुए लाभ में अपना हिस्सा मांगेगा। इन परिस्थितियों में 'जीवन–निर्वाह' के बराबर मजदूरी देते रहकर पूंजी निर्माण करके विकास करना सम्भव नहीं होगा।

3. **उचित प्रशिक्षण** (Proper training): प्रो0 लुइस के सिद्धांत का आधार यह है कि अर्द्धविकसित देशों में पर्याप्त मात्रा में अकुशल श्रम–शक्ति होती है और कुशल श्रमिकों का अभाव एक अस्थायी गतिरोध उपस्थित करता है, जिसे श्रमिकों के प्रशिक्षण आदि के द्वारा किया जा सकता है। वास्तव में पर्याप्त मात्रा में श्रम–शक्ति के उचित प्रशिक्षण आदि में काफी समय लगता है। इसलिए कुशल और तकनीकी श्रमिकों का अभाव एक बहुत बड़ी कठिनाई उपस्थित करता है।
4. **साहसी वर्ग का अभाव** (Lack of entrepreneur class): इस सिद्धांत में यह मान लिया गया है कि अल्प–विकसित देशों में पर्याप्त मात्रा में पूंजीपति वर्ग और साहसी वर्ग मौजूद रहते हैं। परन्तु वास्तव में अधिकांष अर्द्धविकसित देशों में इनका सर्वथा अभाव रहता है और जब ये साहसी नहीं होंगे तो अतिरेक श्रम–शक्ति का उपयोग करके विकास करना सम्भव नहीं होगा।
5. **विनियोग गुणक क्रियाशील न होना** (Not functioning of multiplier): लुइस ने अपने मॉडल में ऐसे पूंजीपतियों की कल्पना की है जो अधिक लाभ कमाकर उसे पुनः विनियोजित करके पूंजी का संचय करते हैं। इसका अर्थ यह है कि यहां विनियोग गुणक क्रियाशील रहता है, किन्तु वस्तुतः अर्द्धविकसित देशों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता।
6. **बचतकर्ताओं की गलत व्याख्या** (Wrong interpretation of savers): लुइस की यह धारणा कि बचत केवल अधिक आय वाले लोग (पूंजीवादी क्षेत्र के लोग) ही करते हैं, गलत है। कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं। योजना आयोग के एक अध्ययन के अनुसार भारत में 53 प्रतिषत भाग घरेलू बचत से प्राप्त होता है। अतः कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं।
7. **विषमताओं को बढ़ावा** (Encouragement to disparity): प्रो0 कुजनेट्स का विचार है कि लुइस का मॉडल स्वीकार करने पर अर्द्धविकसित देशों में आय का वितरण और भी असमान हो जायेगा। मायर एवं बाल्डविन का भी कथन है कि आय की असमानता, उत्पादक विनियोग में प्रत्याशा से कहीं कम वृद्धि कर पाती है। अतः आय वितरण की असमानता उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।
8. **मॉडल की अव्यावहारिकता** (Impracticability of model): प्रो0 ए.एन. खुसरो का विचार है कि लुइस ने अदृश्य बेरोगारी के रूप में सम्भाव्य बचतों का उपयोग करके औद्योगीकरण की जो नीति तैयार की है वह पूर्णतया अव्यावहारिक है क्योंकि इस प्रक्रिया में अनेक ऐसे रिसाव हैं जो सदैव रिसते रहते हैं, जैसे–पूर्ति का मूल्य बेलोचदार होना, कृषकों व व्यापारियों द्वारा स्टाक जमा करने की प्रवृत्ति का पाया जाना इत्यादि।
9. **पूंजीवादी स्फीतिकारी प्रभाव की अस्थायी प्रकृति** (Temporary nature of capitalist inflationary effect): लुइस का यह तर्क कि पूंजीवादी क्षेत्र में मूल्य वृद्धि अस्थायी होती है और इसका अन्त स्वजनित घटकों से स्वतः होता है, गलत है।

10. **श्रम की सीमांत उत्पादकता का शून्य न होना** (Marginal productivity of labour not zero) -यह कहना ठीक नहीं है कि जीवन–निर्वाह क्षेत्र में श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता शून्य अथवा नहीं के बराबर होती है। यदि ऐसा होता तो जीवन निर्वाह मजदूरी भी शून्य होनी चाहिए थी, किन्तु ऐसा नहीं है इसलिए शून्य सीमांत उत्पादकता की मान्यता अवास्तविक है।
11. **सीमित क्षेत्र** (Limited scope) इस सिद्धांत का क्षेत्र सीमित है, क्योंकि यह सिद्धांत अर्द्धविकसित देशों में असीमित मात्रा में श्रम की पूर्ति पर आधारित है। जबकि दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के कई देशों में ऐसी परिस्थितियां नहीं पायी जाती हैं।
12. **अकुशल कर प्रशासन** (Inefficient tax administration):- लुइस का यह कथन कि कराधान बढ़ती हुई आय को इकट्ठा करेगा, माना नहीं जा सकता क्योंकि अल्पविकसित देशों में कर प्रशासन इतना कुशल और विकसित नहीं होता कि वह पूंजी–संचय के लिए पर्याप्त मात्रा में कर इकट्ठा कर सके।

17.7 सारांश

प्रो0 डब्लू आर्थर लुइस (W. Arthur Lewis) का श्रम की असीमित पूर्ति मॉडल बहुत ही स्पष्ट एवं सरल शब्दों में अल्पविकसित देशों की विकास प्रक्रिया की व्याख्या करता है। लुइस ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को भारत जैसे श्रम बाहुल्य वाले देशों की विकास प्रक्रिया पर लागू किया और रिकार्डो के दो–क्षेत्रीय विकास मॉडल को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया।

लुइस मॉडल को दो–क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल (Dualistic Economy Model) भी कहा जाता है क्योंकि यह मॉडल द्वैत–अर्थव्यवस्था–(अ) जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थात् कृषि तथा (ब) पूंजीवादी क्षेत्र अर्थात् उद्योग पर आधारित है। पूंजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूंजी का प्रयोग करता है तथा पूंजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है। इसके दूसरी ओर जीवन–निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूंजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन–निर्वाह क्षेत्र में पूंजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है। अपने दो–क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल द्वारा लुइस ने यह सिद्ध किया है कि अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति विकास की बाधा न हो कर पूंजी निर्माण में सहायक होती है। श्रम को निर्वाह क्षेत्र से हटाकर पूंजीवादी क्षेत्र में लगाकर आर्थिक विकास को सम्भव किया जा सकता है।

अतः लुइस के मतानुसार आवश्यकता इस बात की है कि जीवन–निर्वाह–क्षेत्र से श्रमिकों को हटाकर और उन्हें पूंजीवादी क्षेत्र में लगाकर, नये उद्योगों की स्थापना की जाये या वर्तमान उद्योगों का विस्तार किया जाये ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके। इस प्रकार निर्वाह–क्षेत्र से बाहर इस अतिरिक्त श्रम–शक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना, राष्ट्रीय आय के बढ़ाने का अचूक साधन है।

निष्कर्ष के रुप में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त अनेक आलोचनाओं के होते हुए भी श्रम की असीमित पूर्ति वाले अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लुइस के माडल की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है।

17.8 शब्दावली

द्वैत अर्थव्यवस्था – दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें दो क्षेत्र ;मबजवतेद्ध होते हैं : प्रथम, कृषि क्षेत्र अथवा जीवन– निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र तथा द्वितीय, उद्योग क्षेत्र अथवा पूंजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र। ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ कुछ क्षेत्रों में पूंजी गहन तकनीक का प्रयोग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है।

पूंजीवादी क्षेत्र – पूंजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूंजी का प्रयोग करता है तथा पूंजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है।

जीवन–निर्वाह क्षेत्र– यह अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूंजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन–निर्वाह क्षेत्र में पूंजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।

काली मुद्रा – ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी, करों की चोरी, काला–बाजारी आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है। इनसे प्राप्त आय पर कोई भी कर नहीं चुकाया जाता। काले धन से की गई खरीद व बिक्री से प्राप्त मुनाफे पर कोई आय कर नहीं चुकाया जाता, इस कारण इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

पूंजी निर्माण– कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि, सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढानें हेतु लगाया जाता है।

श्रम की सीमांत उत्पादकता – श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि । प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।

17.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अतिरिक्त श्रम की अवधारणा को समझाइए।
2. द्वैत अर्थव्यवस्था किसे कहते है?
3. पूंजीवादी क्षेत्र से क्या आशय है?
4. जीवन–निर्वाह क्षेत्र से क्या आशय है?
5. पूंजी रिसाव किसे कहते है?
6. जीवन–निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो.....का प्रयोग नहीं करता है।
7. लुइस का 'श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास'(Economic Development with Unlimited Supplies of Labour) नामक प्रसिद्ध लेख कब प्रकाशित हुआ?
8. लुइस की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम बताइए।
9. आर्थर लुइस को अर्थशास्त्र का नोबल प्राइज किस वर्ष में दिया गया।
10. लुइस ने अर्थव्यवस्था को कितने क्षेत्रों में बांटा हैं?

उत्तर 6. पुनरूत्पादकीय पूंजी, 7. सन् 1954 में, 8. Theory of Economic Growth
9. 1971 ,10. दो

17.10 संदर्भ सहित ग्रन्थ

1. झिंगन,एम0एल0 : "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, दिल्ली, 2003
2. सिंह, एस0पी0 : "आर्थिक विकास एवं नियोजन" ,एस0चन्द एण्ड कं0 लि0, नई दिल्ली, 2010
3. सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार : "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008
4. सिन्हा,वी0सी0 : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 2007
5- Agarwal ,R. C. : "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
6- Taneja,M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

17.11 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

1. Lewis, W. Arthur **: "**Economic Development with Unlimited Supplies of Labour" (1954) Reprinted in A.N.Agrawal and S.P.Singh (ed.) –"The Economics of Underdevelopment" (1969)
2. Misra, S.K.& Puri, V.K. : "Economic Development and Planning"

17.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लुइस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।
2. "लुइस माडल विकास सिद्धान्तों के ऐसे परिवार का प्रतिनिधि है जो असीमित श्रम शक्ति की मान्यता पर आधारित है।"व्याख्या कीजिए।
3. अतिरिक्त श्रम की अवधारणा को समझाइए। निम्न आय वाले देषों में श्रम अतिरेक को किस प्रकार पूंजी निर्माण में लगाया जा सकता है ?
4. आर्थर लुइस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की विवेचना अल्पविकसित देषों के संदर्भ में कीजिए।
5. लुइस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। इसकी प्रमुख आलोचनाओं का वर्णन कीजिए ।
6. असीमित श्रम पूर्ति की परिस्थिति में आर्थिक विकास की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
7. आर्थर लुइस द्वारा प्रस्तुत 'असीमित श्रम पूर्ति से पूंजी निर्माण' की व्याख्या के संदर्भ में पूंजीवादी क्षेत्र एवं निर्वाहवादी क्षेत्र में अन्तर कीजिए। यह कहाँ तक एक व्यवहार्य नीति है?
8. अतिरिक्त श्रम पूर्ति सिद्धान्त को समझाइये और बताइये कि इसे किस प्रकार अल्पविकसित देशों में पूंजी निर्माण में लगाया जा सकता है ?

इकाई –18 फाई एवं रेनिस विकास प्रारूप

इकाई संरचना

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 मुख्य भाग

18.4 सिद्धांत की मान्यताएं

18.5 दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धांत

18.6 रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

18.7 संतुलित विकास

18.8 सिद्धांत के गुण

18.9 सिद्धांत की आलोचनाएं

18ण्10 सारांश

18.11 शब्दावली

18.12 अभ्यास प्रश्न

18.13 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ

18.14: उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

18.15: निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

लुईस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की कमियों को दूर करते हुए फाई एवं रेनिस ने एक नया विकास प्रारूप प्रस्तुत किया जिसमें एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की संक्रमण प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है और गतिहीनता की स्थिति से आत्मपरक विकास की अवस्था में जाने की प्रक्रिया की व्याख्या की गई है। फाई एवं रेनिस ने अपने विकास प्रारूप में इस तथ्य की व्याख्या की है कि एक दोहरी अर्थव्यवस्था में विकास की प्रक्रिया का आरम्भ अतिरिक्त श्रम के कृषि क्षेत्र से गैर – कृषि क्षेत्र में स्थानान्तरण के साथ होता है। विकास का केन्द्र अतिरिक्त श्रम के धीरे – धीरे कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरण में निहित है। इस प्रकार यह लुईस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त से श्रेष्ठ है एवं उस पर एक सुधार माना जाता है।

18.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम निम्नलिखित तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं–

1.फाई एवं रेनिस का विकास प्रारूप किन मान्यताओं पर आधारित है ?

2.श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास की तीन अवस्थाएं कौन सी हैं ?

3.सन्तुलित विकास की अवस्था में कृषि एवं उद्योग दोनों ही क्षेत्राों में एक साथ विनियोग क्यों आवश्यक है ?

4.यह विकास मॉडल लुईस के मॉडल से किस प्रकार श्रेष्ठ है ?

5.इस मॉडल की प्रमुख आलोचनाएं किन आधारों पर की गयी हैं ?

18.3 मुख्य भाग

फाई–रेनिस ने अपने लेख 'A Theory of Economic Development' में एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की संक्रमण प्रक्रिया ;ज्तंदेपजपवद च्तवबमेद्ध का विश्लेषण किया है तथा यह व्याख्या की है कि किस प्रकार अर्द्धविकसित देश की गतिहीनता की स्थिति (Stagnation) आत्मजनक विकास (Self Sustained Growth) की ओर जाने की आशा करती है। उन्होंने प्रोफेसर आर्थर लुईस (A. Lewis) द्वारा प्रस्तुत असीमित श्रम पूर्ति सिद्धांत में निहित कमियों को दूर करते हुए अतिरिक्त श्रम वाली अर्थव्यवस्था के विकास के दो क्षेत्रा–मॉडल (दो सेक्टर मॉडल) से अपना विश्लेषण प्रारंभ किया है। इसके अतिरिक्त, जनसंख्या वृद्धि तथा वास्तविक संसार की अन्य जटिलताओं को अपने विकास माडल में शामिल करते हुए रेनिस एवं फाई ने आवश्यक न्यूनतम प्रयास (Critical Minimum Effort) के विचार को 'आत्म स्फूर्ति अवस्था' के संदर्भ में अध्ययन करने का प्रयास किया है।

18.4 सिद्धांत की मान्यताएं (Assumptions)

फाई व रेनिस का विकास प्रारूप निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

1. **दोहरी अर्थव्यवस्था की विद्यमानता :** जिसमें परंपरागत तथा गतिहीन कृषि क्षेत्र के साथ एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र विद्यमान होता है।

2.दोनों क्षेत्रों में श्रमिक केवल कृषि वस्तुओं का उपभोग करते हैं।

3.कृषि क्षेत्र का उत्पादन केवल भूमि तथा श्रम का फलन है।

4.भूमि के सुधार के अतिरिक्त कृषि में पूंजी का संचय नहीं होता है।
5.कृषि कार्य में पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाये जाते हैं।
6.यदि जनसंख्या उस मात्रा से अधिक होती है जहां श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य बन जाती है, तो श्रम को कृषि उत्पादन में हानि किये बिना औद्योगिक क्षेत्रा में स्थानांतरित किया जा सकता है।
7.औद्योगिक क्षेत्र का उत्पादन केवल पूंजी तथा श्रम का फलन है। भूमि की उत्पादन के साधन के रूप में कोई भूमिका नहीं है।
8.जनसंख्या की वृद्धि को एक बाह्य घटक ;म्गवहमदवनेद्ध तत्त्व के रूप में माना गया है।
9.औद्योगिक क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी स्थिर रहती है। यह कृषि क्षेत्र की प्रारंभिक वास्तविक आय के बराबर होती है। वे इसे संस्थानिक(प्देजपजनजपवदंसद्ध मजदूरी कहते हैं।
10.भूमि की पूर्ति स्थिर है।

इस सिद्धांत का संबंध श्रम अतिरेक (Labour Surplus) और संसाधनहीन (Resource Poor) ऐसे अर्द्धविकसित देश से है जिसमें अधिकांश जनसंख्या कृषि में कार्यरत है, बेरोजगारी की स्थिति गंभीर है तथा जनसंख्या की वृद्धि दर ऊँची है। कृषि अर्थव्यवस्था भी गतिहीन है और लोग पारंपरिक कृषि व्यवसायों में संलग्न हैं। यद्यपि गैर–कृषि व्यवसाय भी पाये जाते हैं परंतु उनमें पूंजी का अल्प उपयोग होता है। इसमें एक सक्रिय तथा गत्यात्मक औद्योगिक क्षेत्र भी विद्यमान रहता है।फाई और रेनिस के मतानुसार विकास से अभिप्राय कृषि अतिरेक श्रमिक जिनका कृषि उत्पादन में योगदान शून्य अथवा नगण्य है उनको औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित करना है। जहां वे कृषि में संस्थानिक मजदूरी(Institutional Wage) के बराबर मजदूरी पर उत्पादक बन जाते हैं। इस प्रकार विकास में तीन बातें सम्मिलित हैं :

1.कृषि क्षेत्र में श्रमिकों की अधिकता रहती है, फलतः कृषि उत्पादन में उनका योगदान शून्य अथवा नगण्य रहता है।
2.अर्थव्यवस्था में एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र है, जिसमें अतिरेक श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित किया जाता है।
3.अतिरेक श्रमिकों का कृषि क्षेत्र में उत्पादन में योगदान शून्य या नगण्य होता है। परंतु औद्योगिक क्षेत्रा में इन्हें संस्थानिक मजदूरी प्राप्त होती है, फलतः ये उत्पादक बन जाते हैं।

18.5 : दोहरी अर्थव्यवस्था का सिद्धांत(Theory of Double Economy)

विकास की अवस्थाएं(Phases of Growth)

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर फाई तथा रेनिस ने श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास की निम्नलिखित तीन अवस्थाएं प्रस्तुत की हैं:

1. प्रथम अवस्था (First Stage) : इस अवस्था में अदृश्य बेरोजगार श्रमिक जो कृषि उत्पादन में कोई योगदान नहीं दे रहे हैं, उनको स्थिर संस्थानिक मजदूरी की दर पर, औद्योगिक क्षेत्रा में स्थानांतरित कर दिया जाता है।

2. द्वितीय अवस्था (Second stage) : इस अवस्था में कृषि श्रमिक जो कृषि उत्पादन वृद्धि तो करते हैं परंतु उनकी उपज का मूल्य संस्थानिक मजदूरी से कम होता है, ऐसे श्रमिकों को भी औद्योगिक क्षेत्रा में भेज दिया जाता है। यदि

इस प्रकार के श्रमिकों का औद्योगिक क्षेत्र की ओर निरंतर स्थानांतरण किया जाता रहता है तो अंततः ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब कृषि श्रमिकों के उत्पादन का मूल्य संस्थानिक मजदूरी के बराबर हो जाता है।

3. तृतीय अवस्था (Third stage) : द्वितीय अवस्था से ही तीसरी अवस्था का शुभारंभ होता है अर्थात् द्वितीय अवस्था आत्मस्फ्र्ति ;जंम वद्धि की अंतिम स्थिति होती है और यहीं से आत्मपोषित विकास ;मसि नेजंपदमक ळतवूजीद्ध शुरु होता है। जबकि खेतिहर मजदूर संस्थानिक मजदूरी से अधिक उत्पादन करने लगते हैं। इस अवस्था में श्रम अतिरेक समाप्त हो जाता है, और कृषि का व्यावसायीकरण हो जाती है।

18.6 : रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण(Diagrammatic Representation)

रेखाचित्र 18.1(A) कृषि की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है, जहां पर श्रम तथा भूमि द्वारा वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। चित्र में OX अक्ष पर श्रम (W)

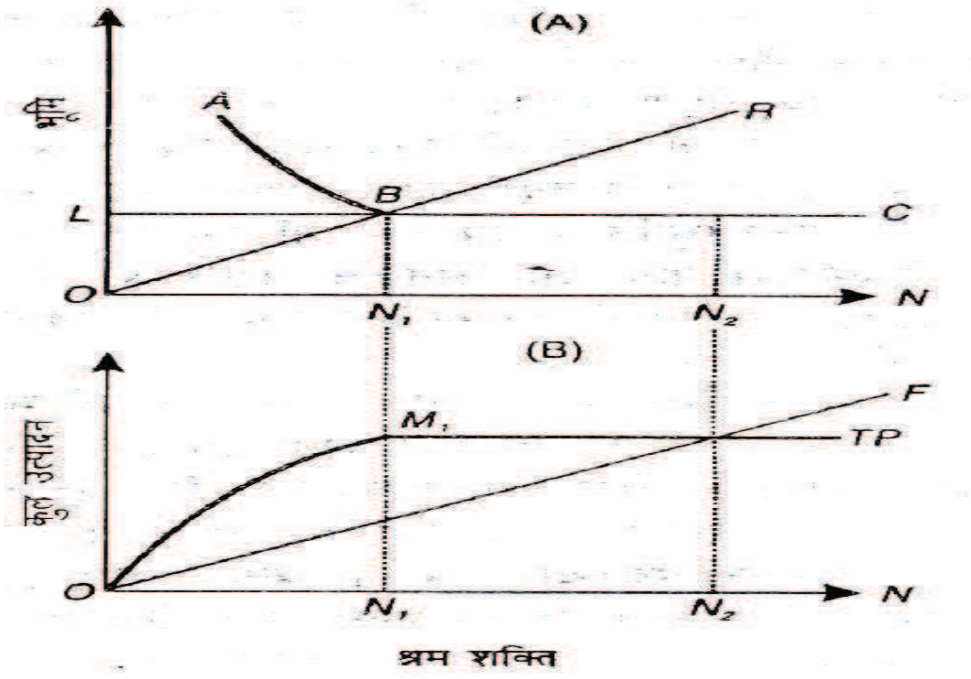

व OY अक्ष पर भूमि (L) को दर्शाया गया है। उत्पादन की अवस्थाओं को ORरेखा द्वारा प्रदर्शित किया गया है। ABC वक्र कृषि वस्तुओं की उत्पादन परिधि रेखा है। भूमि को OL पर स्थिर मान कर व्ब1 श्रम के द्वारा अधिकतम उत्पादन किया जा सकता है।

चित्र B में TP वक्र श्रम की कुल उत्पादकता को दर्शाता है। यदि भूमि OL के साथ ON1 से अधिक श्रम लगाया जाता है, तो उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होगी क्योंकि वक्र TP पर M1 बिंदु के बाद श्रम की कुल उत्पादकता स्थिर हो जाती है।यदि यह मान लिया जाये कि कृषि में कार्यरत श्रम की मात्रा ON2 है, तथा ON1 कार्यरत श्रमिक हैं और N1, N2 अतिरेक बेरोजगार श्रमिक हैं, तो इस का अर्थ यह होगा कि N1, N2 श्रमिकों की संख्या का उत्पादन में कोई योगदान नहीं है, और उनका सीमान्त भौतिक उत्पादकता वक्र TP बिंदु M1 के आगे शून्य की ओर चला जाता है, अर्थात् M1 बिंदु के आगे उनकी सीमांत उत्पादकता शून्य हो जाती है। इस प्रकार के श्रमिक अदृश्य बेरोजगार कहलाते हैं। आर्थिक विकास तब होता है जब उन अदृश्य बेरोजगारों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर तीन अवस्थाओं में स्थानांतरित किया जाता है। आर्थिक विकास की इन तीन वर्णित अवस्थाओं को चित्र 18.2 द्वारा दर्शाया गया है।

रेखाचित्र 18.2 के (A) भाग में औद्योगिक क्षेत्र को और (B) तथा (C) भाग में कृषि क्षेत्र को दर्शाया गया है।

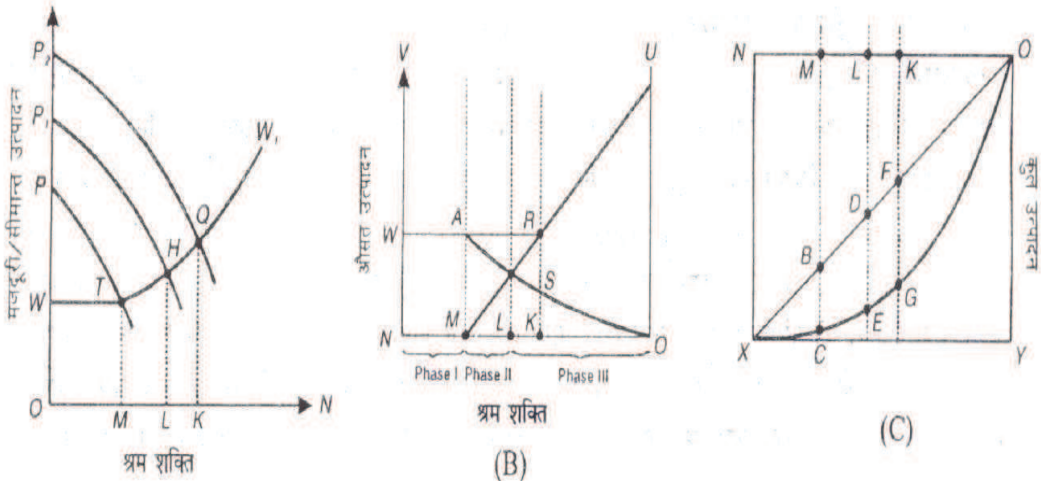

चित्र के C भाग में कृषि क्षेत्र में श्रम शक्ति को दायीं ओर से बायीं ओर क्षैतिज अक्ष ON पर तथा कृषि उपज को O से नीचे की ओर अनुलंब अक्ष OYपर मापा गया है। OXC वक्र कृषि क्षेत्र की कुल भौतिक उत्पादकता का वक्र TPP है CX वक्र का सामानांतर भाग यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र में कुल उत्पादकता स्थिर है, तथा MN श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य है अर्थात् MN अतिरेक श्रम की मात्रा है,जिसे औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित करने पर कृषि उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यदि यह मान लिया जाये कि संपूर्ण श्रम शक्ति ON कृषि क्षेत्र में लगी हुई है, तो वह NX कुल कृषि उत्पादन करेगी। यह मानते हुए कि कुल कृषि उपज NX को कुल श्रम शक्ति ON द्वारा उपभोग कर लिया जाता है तो वास्तविक मजदूरी NX/ON के बराबर होगी। इस मजदूरी को संस्थानिक (Institutional Wages) कहते हैं।

आत्म स्फूर्ति के दौरान स्थानांतरण की तीन अवस्थाओं को चित्र B द्वारा दर्शाया गया है। जहाँ कुल श्रम शक्ति को दायीं ओर से बायीं ओर अनुलंब अक्ष ON पर तथा औसत उत्पादन को क्षैतिज अक्ष छट पर दर्शाया गया है। वक्र NMRU श्रम की सीमांत भौतिक उत्पादकता MPP को दर्शाता है। NW संस्थानिक मजदूरी है जिस पर कि मजदूरों को इस क्षेत्र में लगाया जाता है।प्रथम अवस्था में अदृश्य बेरोजगार श्रमिकों की मात्राा NM हैं और सीमांत उत्पादकता शून्य है जिसे चित्र के B भाग में NMRU वक्र के अंश NM द्वारा दर्शाया गया है अथवा चित्र के C भाग में TPP वक्र के अंश CX द्वारा दर्शाया गया है। इस अतिरिक्त श्रम शक्ति छड जिसे चित्र भाग (A) के OM में दर्शाया गया है, उसे संस्थानिक मजदूरी OW =NW पर औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित किया गया है।

द्वितीय अवस्था में MPP वक्र NMRU पर MK कृषि मजदूरों की सीमांत भौतिक उत्पादकता MR रेन्ज में धनात्मक है लेकिन यह संस्थानिक मजदूरी KR = N̄ जो वे प्राप्त करते हैं, उससे कम है जैसा कि चित्र के B भाग में दर्शाया गया है। अतः वे कुछ सीमा तक अदृश्य बेरोजगार हैं जिनको औद्योगिक क्षेत्र में स्थानांतरित किया जा सकता है परंतु इस द्वितीय अवस्था में सामान्य मजदूरी औद्योगिक क्षेत्र में संस्थानिक मजदूरी के बराबर नहीं होगी इसका कारण यह है कि श्रम के औद्योगिक क्षेत्र में रूपांतरण से कृषि उत्पादन कम होता है जिसके परिणामस्वरूप कृषि वस्तुओं का अभाव हो जाता है। फलतः औद्योगिक वस्तुओं की सापेक्षता में कृषि वस्तु की कीमतों में वृद्धि हो जाती है। कृषि वस्तुओं की कीमतें बढ़ने से औद्योगिक क्षेत्र की व्यापार की शर्तें खराब हो जाती हैं जिसके कारण औद्योगिक क्षेत्र में सामान्य मजदूरी में वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है। सामान्य मजदूरी OW से LH तथा KQ तक संस्थानिक मजदूरी से अधिक बढ़ जाती है। यह श्रम के पूर्ति वक्र WT से H तथा Q से ऊपर W1 तक जाते हुए भाग (A) में दर्शाया गया है, जब ML तक LK मजदूर धीरे–धीरे औद्योगिक क्षेत्रा में स्थानांतरित हो जाते हैं। T से ऊपर की ओर श्रम के पूर्ति वक्र WTW1 पर गति ही लुईस का मोड़ बिंदु (Lewis Turning Point) है।

जब तीसरी अवस्था (Third Phase) शुरु होती है तो कृषि मजदूरों का उत्पादन बढ़ कर संस्थानिक मजदूरी के बराबर हो जाता है और अंततः उनका उत्पादन संस्थानिक मजदूरी से अधिक हो जाता है अर्थात् वे संस्थानिक मजदूरी से अधिक प्राप्त करते हैं। यह स्थिति आत्म स्फूर्ति का अंत है और आत्म जनक (Self-Generating) आर्थिक विकास का शुभारंभ है। इस तथ्य को चित्र के B भाग में MPP वक्र के बढ़ रहे भाग RU से दर्शाया गया है जो कि संस्थानिक मजदूरी KR = NW से अधिक है परिणामस्वरूप KO श्रम को चित्र के भाग 1 में KQ से ऊपर बढ़ती हुई सामान्य मजदूरी पर कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित कर दिया जाता है। KO श्रम जो कृषि क्षेत्र में अतिरेक श्रम था जब उसे औद्योगिक क्षेत्र की ओर भेज दिया जाता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि कृषि क्षेत्र में अब

श्रम अतिरेक (Labour Surplus) नहीं है और कृषि का व्यावसायीकरण हो गया है। फाई और रेनिस के अनुसार इस अतिरेक श्रम की

समाप्ति को श्रम शक्ति की भौतिक कमी की अपेक्षा एक बाजार तत्त्व (Market Phenomenon) के रूप में देखना चाहिए जिसे वास्तविक मजदूरी में वृद्धि द्वारा व्यक्त किया जाता है।

फाई तथा रेनिस का मत है कि जब कृषि श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है तो कृषि वस्तुओं का अतिरेक प्रारंभ हो जाता है। इससे कृषि क्षेत्र में कुल कृषि अतिरेक (Total Agricultural Surplus or TAS) हो जाता है। संस्थानिक मजदूरी पर कृषि शक्ति का उपभोग आवश्यकता से अधिक कुल कृषि उत्पादन का अतिभाग (TAS) कहा जाता है। TAS की मात्रा विकास प्रक्रिया की प्रत्येक अवस्था में औद्योगिक क्षेत्र में भेजे गये श्रमिकों की संख्या का फलन है।

TAS को चित्र 18.2 के भाग C में OX रेखा तथा TPP वक्र OCX के बीच की अनुलंब दूरी (Vertical Distance) से मापा गया है। प्रथम अवस्था में जब NM श्रम को स्थानांतरित किया जाता है तो BC के बराबर TAS है।द्वितीय अवस्था में जब ML तथा LK के श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र की ओर भेजा जाता है तो TAS की DE तथा FG मात्रा उत्पन्न होती है। TAS को कृषि संसाधनों के रूप में देखना चाहिए, जिन्हें बाजार में कृषि मजदूरों के पुनः आवंटन द्वारा छोड़ा गया है। ऐसे संसाधनों को भूमिपति वर्ग की विनियोग क्रियाओं अथवा सरकार की कर नीति द्वारा एकत्रीकरण करके नयी औद्योगिक वस्तुओं के लिए उपयोग किया जा सकता है।इसके अतिरिक्त औसत कृषि अतिरेक (AAS) का भी सृजन होता है। औसत कृषि श्रमिक (AAS) से तात्पर्य औद्योगिक क्षेत्र को आवंटित प्रति श्रमिक को उपलब्ध कुल कृषि अतिरेक से हैं। इसको इस प्रकार ज्ञात किया जा सकता है जैसा कि प्रत्येक आवंटित श्रमिक अपने निर्वाह का भाग स्वयं उठाता है। (AAS) वक्र को चित्र के B भाग को WASO वक्र द्वारा दर्शाया गया है। अवस्था I में (AAS) वक्र संस्थानिक मजदूरी के वक्र (WA) के साथ समरूप है। अवस्था II में जब (MK) श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है, तब AAS चित्र के भाग B में A से S तक गिरने लगता है, जबकि TAS भाग (C) में BC से DE से FG तक बढ़ता जाता है।अवस्था III में AAS अधिक तेजी से भाग B में S से O तक होता है और भाग C में क्षेत्र FG से O तक संकुचन से TAS भी कम हो जाता है। AAS तथा TAS दोनों में कमी कृषि श्रमिकों को MPP संस्थानिक मजदूरी से अधिक बढ़ने के कारण है, जो कि अंततः बचे हुए अतिरिक्त श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में ले जाती है।

फाई तथा रेनिस ने अवस्था I तथा अवस्था II के बीच की सीमा को 'दुर्लभता बिंदु' (Shortage Point) कहा हैं।जब कृषि वस्तुओं की कमी प्रारंभ होती हैं तो AAS (WASO) वक्र का AS भाग न्यूनतम संस्थानिक मजदूरी (NW) से नीचे गिरता हुआ दर्शाया गया है। अवस्था II तथा अवस्था III के बीच की सीमा व्यावसायीकरण बिंदु

(Commercialisation Point) है जो कि कृषि में संस्थानिक मजदूरी तथा MPP के बीच समानता के शुभारंभ को व्यक्त करती है। इसप्रकार लुईस का मोड़ बिंदु फाई तथा रेनिस के दुर्लभता बिंदु के समान होता है तथा औद्योगिक मजदूरी की वृद्धि व्यवसायी करण बिंदु पर तीव्र होती है।फाई तथा रेनिस यह प्रदर्शित करते हैं कि यदि कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है तो दुर्लभता बिंदु औरव्यावसायीकरण बिंदु आपस में मिल जाते हैं। इसका कारण यह है कि कृषि की उत्पादकता में वृद्धि के कारण (MRP) में वृद्धि हो जाती है। (MRP) में वृद्धि उत्पादन को संस्थानिक मजदूरी के स्तर तक अधिक शीघ्रता से बढ़ने के योग्य बनाती है।

चित्र 18.2 B में इसे (MRU) वक्र के ऊपर बायीं तरफ स्थानांतरित होते समझा जा सकता है। इसकी तरफ कुल भौतिक उत्पादकता में वृद्धि के साथ (AAS) भी बढ़ता है। जिसका अर्थ यह है कि चित्र 18.2 B में ASO वक्र दायीं ओर ऊपर स्थानांतरित हो जाता है। यदि उत्पादकता में वृद्धि पर्याप्त है, तो चित्र 18.2 B में MRU वक्र तथा ASO वक्र इस प्रकार ऊपर की ओर स्थानांतरित हो जायेंगे कि दुर्लभता बिंदु A और व्यावसायीकरण बिंदु R आपस में मिल जाएंगे और इस प्रकार द्वितीय अवस्था समाप्त हो जायेगी।जहां तक औद्योगिक क्षेत्र का प्रश्न है कृषि उत्पादकता की वृद्धि का प्रभाव यह होता है कि मोड़ बिंदु के बाद यह औद्योगिक पूर्ति वक्र को ऊपर उठा देगी। चित्र 18.2 । में इसे WTWI के नीचे दायीं ओर बिंदु T के नीचे दिखाया जा सकता है।फाई तथा रेनिस के अनुसार द्वितीय अवस्था के समाप्त होने का आर्थिक महत्त्व यह है कि यह अर्थव्यवस्था को आत्मजनक विकास (Self Sustained Growth) में सरलता से चलने की योग्यता प्रदान करती है।

18.7 : संतुलित विकास (Balanced Growth)

फाई तथा रेनिस के अनुसार उनका मॉडल आत्म स्फूर्ति प्रक्रिया के दौरान की शर्तों को पूरा करता है। संतुलित विकास की अवस्था में कृषि और उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में एक साथ विनियोग आवश्यक है।संतुलित विकास की अवस्था को चित्र 18.3 द्वारा दर्शाया गया है

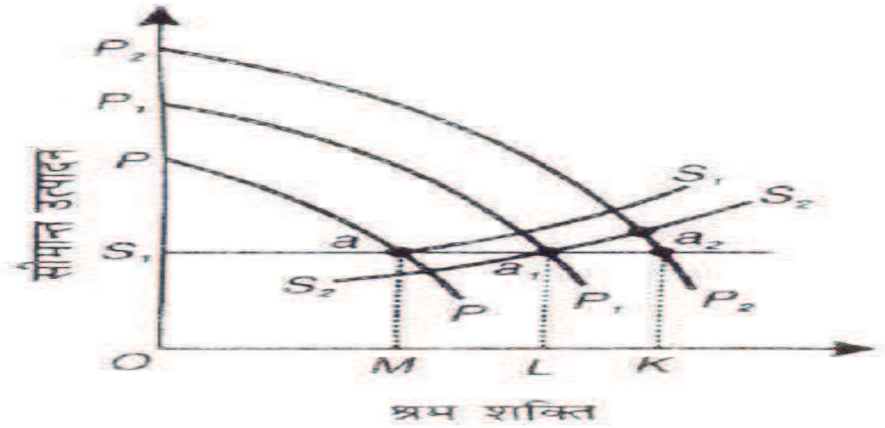

चित्र 18.3 में PP श्रम का प्रारंभिक मांग वक्र तथा S1S1 प्रारंभिक पूर्ति वक्र हैं। ये दोनों एक दूसरे को जिस बिंदु पर काटते हैं वहां औद्योगिक क्षेत्र में OM श्रम शक्ति काम में लगी है।रोजगार के इस स्तर पर औद्योगिक क्षेत्र S1aP क्षेत्र के बराबर लाभ कमाता है। यह लाभ आत्म स्फूर्ति प्रक्रिया के दौरान अर्थव्यवस्था का उपलब्ध कुल निवेश कोष है। कुल निवेश कोष का एक भाग कृषि क्षेत्र को आवंटित किया जाता है जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है और श्रम पूर्ति वक्र औद्योगिक क्षेत्र में नीचे दायीं ओर S1S1 से स्थानांतरित होकर हो S2S2 हो जाता है। कुल निवेश का शेष भाग औद्योगिक क्षेत्र को आवंटित किया जाता है जो औद्योगिक मांग वक्र को ऊपर दायीं ओर PP से स्थानांतरित करके P1P1 कर देता है।

संतुलित विकास पथ S1a3 पर स्थित बिंदु a1 पर वक्र S2S2 तथा P1P1 काटते हैं। कृषि क्षेत्र को निवेश कोष के आवंटन के कारण कृषि उत्पादकता में वृद्धि होने से जो कृषि क्षेत्र द्वारा श्रम शक्ति ML छोड़ी गयी है वह a1 पर औद्योगिक क्षेत्र द्वारा काम में लगायी जाती है।चित्र 18.3 में दर्शायी गयी औद्योगिक क्षेत्र में लगायी हुई श्रम शक्ति ML चित्र 18.2 B में कृषि क्षेत्र से स्थानांतरित की गयी श्रम शक्ति ML के बिल्कुल बराबर है। इस प्रकार जब काल पर्यंत कुल विनियोग कोष को कृषि और उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में निरंतर आवंटित किया जाते हैं तो अर्थव्यवस्था संतुलित विकास पथ पर चलती रहती है परंतु इस बात की भी संभावना रहती है कि वास्तविक विकास
पथ संतुलित पथ से विचलित हो जाये। फिर भी ये विचलन इस प्रकार की संतुलन शक्तियों को जन्म देता है जो इसे पुनः संतुलित विकास पथ पर लाने की प्रवृत्ति रखती है। वस्तुतः यह पथ संतुलित विकास पथ के आसपास घूमने की संभावना रखता है। उदाहरण के लिए, यदि औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग की मात्रा अधिक हो जाने के कारण श्रम मांग वक्र स्थानांतरित हो कर P2P2 हो जाता है और a2 पर श्रम पूर्ति वक्र S2S2 को काटता है तो वास्तविक विकास पथ संतुलित विकास पथ से ऊपर होगा इससे कृषि वस्तुओं में कमी आयेगी तथा औद्योगिक क्षेत्र की व्यापार शर्तों में गिरावट आयेगी और औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरी की दर बढ़ेगी। परिणामस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग हतोत्साहित होगा तथा कृषि क्षेत्र में विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा जिसके कारण वास्तविक विकास तथा संतुलित विकास पथ a3 के स्तर पर आ जायेगा।

18.8 सिद्धांत के गुण(Merits of the Theory)

फाई तथा रेनिस के मॉडल को लुईस के मॉडल पर एक सुधार माना गया है जिसके निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं :

1.लुईस का मॉडल अपना ध्यान केवल औद्योगिक क्षेत्र पर ही केंद्रित करता है जिसके फलस्वरुप यह मॉडल कृषि क्षेत्र में विकास का संतोषजनक विश्लेषण कर पाने में असमर्थ रहा है।

2.फाई व रेनिस का मॉडल लुईस के मोड़ बिंदु (Lewis turning point) को अधिक वास्तविक ढंग से समझाता है।

3. फाई व रेनिस का यह मॉडल अर्द्धविकसित देशों में पूंजी के संचय के लिए कृषि वस्तुओं के महत्त्व को प्रकट करता है।

4.यह सिद्धांत अर्द्धविकसित देशों के कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों के परस्पर प्रभावों की विकास प्रक्रिया का आत्मस्फूर्ति से आत्मजनक विकास तक व्यवस्थित ढंग से विश्लेषण करता है।

18.9 : सिद्धांत की आलोचनाएं (Criticism of the Theory)

उपर्युक्त अनेक गुणों के होते हुए भी फाई व रेनिस के सिद्धांत की निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर आलोचनाएं की जाती हैं :

1.स्थिर संस्थानिक मजदूरी (Fixed institutional wage) रू इस सिद्धांत की धारणा है कि कृषि उत्पादकता में वृद्धि होने के बावजूद भी विकास की प्रथम और द्वितीय अवस्थाओं में संस्थानिक मजदूरी स्थिर रहती है। परन्तु यह मान्यता वास्तविक अनुभव से मेल नहीं खाती है क्योंकि सामान्यतया जैसे जैसे कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है कृषि में मजदूरी भी बढ़ती जाती है।

2.सीमांत भौतिक उत्पादकता का अधिक होना (High MPP) : यह मॉडल इस धारणा पर आधारित है कि विकास प्रक्रिया की अवस्था I तथा II के दौरान संस्थानिक मजदूरी स्थिर होती है तथा सीमांत भौतिक उत्पादकता ;डच्द्ध से ऊंची होती है। इस मान्यता के पक्ष में कोई आनुभाविक प्रमाण नहीं है। वास्तव में श्रम अतिरेक अल्पविकसित देशों में कृषि श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी MPP से काफी कम होता है।

3.शून्य सीमांत भौतिक उत्पादकता (Zero MPP) : फाई तथा रेनिस की यह धारणा है कि भूमि की स्थिर मात्रा के साथ जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा होता है जिसका उत्पादन में कोई योगदान नहीं होता है अर्थात् उनकी MPP शून्य या नगण्य होती है। प्रो. शूल्ज इस मत से सहमत नहीं हैं कि श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्थाओं में MPP शून्य होती है क्योंकि यदि ऐसा होता तो संस्थानिक मजदूरी भी शून्य होती। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक मजदूर को न्यूनतम मजदूरी मिलती है जो नकद रूप में या वस्तु के रूप में होती है। अतः यह कहना सर्वथा गलत है कि कृषि क्षेत्र में MPP शून्य होती है।

4.कृषि का व्यावसायीकरण (Commercialisation of agriculture) : इस सिद्धांत के अनुसार जब कृषि क्षेत्र तीसरी अवस्था में प्रवेश करता है तो उसका व्यावसायीकरण हो जाता है। परंतु अर्थव्यवस्था की आत्मजनक विकास की ओर जाने की संभावनाएं नहीं रहतीं क्योंकि अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जब अनेक श्रमिक कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित हो जाते हैं तो कृषि क्षेत्र में श्रमिकों की कमी अनुभव होने लगती

है। इसी दौरान संस्थानिक मजदूरी श्रमिकों की डच्च के बराबर होती है तथा इस प्रकार कृषि वस्तुओं की कमी हो जाती है। ये सभी तत्त्व अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न करते हैं।

5.स्थिर भूमि की पूर्ति (Supply of fixed land) : यह मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि विकास की प्रक्रिया के दौरान भूमि की पूर्ति स्थिर रहती है परंतु यह धारणा सही नहीं है क्योंकि दीर्घकाल में फसल एकड़ उत्पत्ति का अध्ययन करने पर यह पाया गया है कि भूमि की मात्रा स्थिर नहीं रहती है। उदाहरण के लिए, भारत में फसल क्षेत्र का निर्देशांक (आधार वर्ष 1881–82) 1870–71 में 96.3 था जो 2000–01 में बढ़ कर 102.0 हो गया।

6.बंद अर्थव्यवस्था (Closed economy) : यह मॉडल बंद अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है जिसमें विदेशी व्यापार नहीं होता। आलोचकों के अनुसार यह धारणा अवास्तविक है क्योंकि इसमें अर्थव्यवस्था के विकास में विदेशी व्यापार की भूमिका को नकारा गया है। वर्तमान जगत में कोई भी देष बाहरी विष्व की सहायता के बिना उन्नति नहीं कर सकता है। विदेषी पूंजी , सहायता एवं सहयोग किसी भी अर्द्धविकसित देश के विकास के लिए आवष्यक माने जाते हैं। अतः वर्तमान अर्द्धविकसित देश बंद अर्थव्यवस्थाएं न हो कर खुली अर्थव्यवस्थाएं हैं जहां कमी आने पर वस्तुओं को विदेषों से आयात किया जाता है।

18.10 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि फाई एवं रेनिस का विकास प्रारूप वास्तविकता से परे है तथा अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। किन्तु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि अर्द्धविकसित देश सामान्यतः जनसंख्या वृद्धि की समस्या का सामना कर रहे हैं और ऐसी दशा में अतिरेक श्रम एक वास्तविक समस्या है जिस पर फाई एवं रेनिस के विकास प्रारूप में प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार विकास का यह प्रारूप श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के संदर्भ में अप्रासंगिक नहीं है तथा यह लुईस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त पर एक सुधार है। लुईस का सिद्धान्त कृषि क्षेत्र के विकास को ध्यान में रखते हुए केवल औद्योगिक क्षेत्र पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है जबकि फाई– रेनिस मॉडल विकास को प्रारम्भ तथा तीव्र करने में कृषि एवं औद्योगिक दोनों क्षेत्रों के परस्पर प्रभाव को व्यक्त करता है। यद्यपि इस मॉडल की अनेक आलोचनाएं की गई हैं किन्तु इनसे इसका महत्व कम नहीं होता है। अतिरेक श्रम की समस्या को हल करने के लिए नीति निर्धारकों द्वारा फाई एवं रेनिस के विकास प्रारूप को कुछ संषोधनों के साथ प्रयोग किया जा सकता है।

18.11 : शब्दावली

बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy) – एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल नहीं होती है।

द्वैत अर्थव्यवस्था (Dual Economy) – दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें पोषण क्षेत्र तथा द्वितीय, उद्योग क्षेत्र अथवा पूंजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र। ऐसी

अर्थव्यवस्था में जहाँ कुछ क्षेत्रों में पूंजी गहन तकनीक का प्रयोग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है।

बाह्य घटक (Exogenous Factor) – एक ऐसा घटक जो मॉडल के कार्य को प्रभावित तो करता है किन्तु मॉडल में दिये गये सम्बन्धों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

पैमाने के स्थिर प्रतिफल(Constant Returns to Scale) –जब उत्पादन के किसी एक साधन या अनेक साधनों को जिस अनुपात में बढ़ाया या घटाया जाता है यदि उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि या कमी हो तो उसे पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति कहते हैं।

अदृश्य बेरोजगारी(Disguised Unemployment)–यह बेरोजगारी प्रकट रूप में दिखाई नहीं देती है। इस दशा में श्रमिक काम में लगा हुआ प्रतीत होता है किन्तु उत्पादन में उसका योगदान नगण्य या शून्य होता है अर्थात् श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है।

सीमान्त भौतिक उत्पादकता(Marginal Physical Productivity)– जब सीमान्त उत्पादकता को उत्पादन (वस्तुओं) की भौतिक मात्रा में होने वाली वृद्धि के रूप में व्यक्त किया जाता है तो उसे सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहते हैं अर्थात् यह किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि को व्यक्त करती है।

आत्म–स्फूर्ति की अवस्था(Take- off Stage):–आत्म–स्फूर्ति अविकसित अवस्था और विकास की चरम सीमा के बीच एक मध्यान्तर की अवस्था है। इसमें पुरानी बाधाओं तथा प्रतिरोधों पर पूरी तरह से काबू पा लिया जाता है। आर्थिक विकास की उत्प्रेरक षक्तियाँ सक्रिय हो जाती हैं। विकास एक सामान्य प्रक्रिया का रुप ले लेता है संचयी विकास समाज की आदतों एवं उसके संस्थानिक ढाँचे का अभिन्न अंग बन जाता है। प्रति व्यक्ति आय में दीर्घकाल तक एक निष्चित दर से वृद्धि होती है तथा इसके लिए आवष्यक निवेष स्वतः होने लगता है।

श्रम की सीमांत उत्पादकता (Marginal Productivity of Labour) – श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि । प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।

18.12: अभ्यास प्रश्न

1.(A theory of Economic Development) ए थ्योरी ऑफ इकोनोमिक डेवलपमेन्ट नामक लेख किसके द्वारा लिखा गया ?

2.फाई–रेनिस का विश्लेषण ..... क्षेत्र मॉडल पर आधारित है।

3.फाई एवं रेनिस के अनुसार कृषि ..... क्षेत्र है।

4.फाई–रेनिस का सिद्धान्त ..... अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है।

5.फाई–रेनिस सिद्धान्त की क्या मान्यताएं हैं ?

6.फाई–रेनिस सिद्धान्त के प्रमुख गुण बताइए।

7.फाई–रेनिस सिद्धान्त की आलोचना किन आधारों पर की गई है ?

8.फाई–रेनिस के सिद्धान्त में मोड़ का बिन्दु (turning point) क्या है ?

9.फाई एवं रेनिस के सिद्धान्त का सम्बन्ध किस प्रकार की अर्थव्यवस्था से है?

10.फाई एवं रेनिस के अनुसार औद्योगिक क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी.....रहती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

11.द्ध ए थ्योरी ऑफ इकोनोमिक डेवलपमेन्ट नामक लेख किसके द्वारा लिखा गया :

अ) गुन्नार मिर्डल ब) एच0मिन्ट

स) जे0एच0बूके द) फाई एवं रेनिस

12. फाई–रेनिस का विश्लेषण किस मॉडल पर आधारित हैः

अ) दो क्षेत्र मॉडल ब) तीन क्षेत्र मॉडल

स) चार क्षेत्र मॉडल द) इनमें से कोई नहीं

सत्य / असत्य लिखिएः

13.फाई तथा रेनिस ने श्रम अतिरेक अर्थव्यवस्था के विकास की तीन अवस्थाएं प्रस्तुत की हैं।

14. फाई–रेनिस विकास मॉडल खुली अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है।

15. फाई–रेनिस विकास मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि विकास की प्रक्रिया के दौरान भूमि की पूर्ति स्थिर रहती है।

16. अर्थव्यवस्था में एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र है, जिसमें अतिरेक श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित किया जाता है।

उत्तर1. फाई एवं रेनिस, 2. दो ,3. परम्परागत एवं गतिहीन ,4. बन्द ,10. स्थिर

11. द) फाई एवं रेनिस ,12. अ) दो क्षेत्र मॉडल ,13. सत्य ,14. असत्य ,15. सत्य ,16. सत्य

18.13 संदर्भ सहित ग्रन्थ

1. सिंह, एस0पी0 : "आर्थिक विकास एवं नियोजन" ,एस0चन्द एण्ड कं0 लि0, नई दिल्ली, 2010
2. **झिंगन,एम0एल0** : "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, दिल्ली, 2003
3. **सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार** : "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2008
4. **सिन्हा,वी0सी0** : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 2007
5- **Agarwal ,R. C. :** "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 2007
6- **Taneja,M.L. & Myer R.M.:** "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 2010

18.14 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

- **Fei, John C.H. and Ranis Gustav;** " Development of the Labour Surplus Economy : Theory and Policy ", 1864

- **Ranis Gustav and Fei, John C.H.** ; " A Theory of Economic Development ", American Economic Review. Vol. 51, Sept. 1861
- **Meier ,G.M.:** "Leading Issues in Economic Development" ,Oxford University Press , Delhi ,1889
- **Lewis, W. Arthur : "**Economic Development with Unlimited Supplies of Labour" (1854) Reprinted in A.N.Agrawal and S.P.Singh (ed.) –"The Economics of Underdevelopment" (1869)

18.15 : निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. फाई तथा रेनिस के दोहरी अर्थव्यवस्था के सिद्धांत की संक्षेप में व्याख्या कीजिए। यह लुईस के असीमित पूर्ति सिद्धांत से किस प्रकार श्रेष्ठ है ?
2. फाई तथा रेनिस के सिद्धांत में मोड़ बिंदु क्या है ? क्या यह सिद्धांत लुईस के सिद्धांत का एक सुधरा हुआ रूप है ? विवेचना करो ।
3. फाई तथा रेनिस के विकास मॉडल की प्रासंगिकता का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई – 19 एच0 मिन्ट एवं गुन्नार मिर्डल का अल्पविकास विश्लेषण

इकाई संरचना

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 मुख्य भाग

19.3.1 : वित्तीय द्वैतवाद का सिद्धांत

19.3.1.1 : वित्तीय द्वैतवाद का अर्थ

19.3.1.2 : वित्तीय द्वैतवाद के प्रभाव

19.3.1.3 : वित्तीय द्वैतवाद को कम करने हेतु सुझाव

19.3.2: मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत

19.3.2.1 : प्रादेशिक असमानताएं

19.3.2.2 : देशांतर, पूंजीगतियों तथा व्यापार के अतिनिर्यात प्रभाव

19.3.2.3 : अंतर्राष्ट्रीय असमानताएं

19.3.2.4 : सिद्धांत के दोष

19.4 सारांश

19.5 शब्दावली

19.6 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं उत्तर

19.7 संदर्भ सहित ग्रन्थ

19.8 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

19.9 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के सिद्धान्तों में प्रोव मिंट (Myint) का वित्तीय द्वैतवाद का सिद्धांत तथा गुन्नार मिर्डल का अल्पविकास विश्लेषण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धांत में प्रोव मिंट ने एक अल्पविकसित राष्ट्र के मुद्रा बाजार में विद्यमान वित्तीय द्वैतवाद के उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या की तथा उन्हें कम करने हेतु उपयुक्त सुझाव भी दिये है। जबकि मिर्डल के मतानुसार आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धांत राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से उत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने अतिनिर्यात प्रभाव एवं प्रसरण प्रभाव की धारणाओं का उपयोग किया है।

19.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम निम्नलिखित बिन्दुओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं:

1. वित्तीय द्वैतवाद क्या है?
2. वित्तीय द्वैतवाद के एक अल्पविकसित राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ते हैं?
3. अल्पविकसित राष्ट्रों में वित्तीय द्वैतवाद के प्रभावों को कैसे कम किया जा सकता है?
4. प्रो0मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत क्या है?
5. अतिनिर्यात प्रभाव एवं प्रसरण प्रभाव क्या है?
6. प्रादेशिक एवं अंतर्राष्ट्रीय असमानताएं क्या हैं?
7. मिर्डल के चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत के गुण एवं दोष क्या हैं?

19.3 मुख्य भाग

19.3.1 : वित्तीय द्वैतवाद का सिद्धांत

19.3.1.1: वित्तीय द्वैतवाद का अर्थ (Meaning of Financial Dualism)

वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन प्रो0एच0 एम0 मिंट द्वारा किया गया । वित्तीय द्वैतवाद से अभिप्राय है– अल्प विकसित राष्ट्रों में संगठित और गैर–संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरों का सहअस्तित्व। पारम्परिक क्षेत्र के असंगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें आधुनिक क्षेत्र के संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं।

मिंट के अनुसार संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें कम एवं प्रचुर मात्रा में साख सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। इसमें केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, सहकारी समितियां और बैंक, विदेशी बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं जिनमें कृषि सम्बन्धी वित्त निगम (भारत में नाबार्ड), औद्योगिक वित्त निगम (भारत में आई.एफ.सी.आई) बीमा कम्पनियां (भारत में एल. आई.सी.;जी.आई.सी.इत्यादि) और विकास बैंक (भारतमें आई.डी.बी.आई,सिडबी इत्यादि) शामिल होते हैं।

इसके विपरीत गैर–संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं। इसमें देशी बैंकर्स, साहूकार, पैशेवर और गैर–पेशेवर व्यापारी,

सौदागार, जमींदार, मित्र और सगे–सम्बन्धी अधिव्यवसायी, निधियां और चिटफंड आदि शामिल होते हैं।

गैर संगठित–मुद्रा बाजार की विशेषताएं हैं:

(i) साहूकारों और ऋणकर्त्ताओं के बीच निजी सम्बन्ध;

(ii) साहूकारों द्वारा ऋणकर्त्ताओं में अनौपचारिक लेन–देन;

(iii) ऋणों के लेन–देन में लचीलापन;

(iv) ऋण देने की गतिविधियों में विविधता अर्थात् ऋण देने की सुविधा के साथ व्यापार जैसी अन्य आर्थिक गतिविधियों में भी सहायक होना;

(v) ब्याज–दरों की विविधता : ऋणी की आवश्यकता, ऋण की राशि, ऋण लौटाने का समय और प्रतिभूति के स्वरूप के अनुरुप ब्याज दरों में भिन्नता;

(vi) खातों के रख–रखाव की दोषपूर्ण पद्धति–पुनः अदा किए गए मूलधन और उस पर लिये गये ब्याज के लिए प्राप्तियां (रसीदें) जारी किया जाना; और

(vii) ऋण देने की प्रक्रियाओं और खातों के रखरखाव में अत्यधिक गोपनीयता।

19.3.1.2: वित्तीय द्वैतवाद के प्रभाव (Effects of Financial Dualism)

एक अल्पविकसित राष्ट्र के मुद्रा बाजार में इस प्रकार के वित्तीय द्वैतवाद के विद्यमान होने से उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं:

1.विरोधी वित्त नीतियां (Inimical public policies)

अल्पविकसित राष्ट्रों में पारम्परिक क्षेत्र के पिछड़ने का कारण यह है कि सार्वजनिक सेवाओं पर किया जाने वाला व्यय ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों पर अधिक किया जाता है। परिवहन, संचार और विद्युत शक्ति जैसी सार्वजनिक सेवाएं पारम्परिक क्षेत्र की अपेक्षा आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र में सरलता से और आसान शर्तों पर उपलब्ध हैं।

कुछ अल्पविकसित राष्ट्रों की सरकारों ने कृषि बैंकों, सहकारी ऋण समितियों आदि की स्थापना करके और सूदखोरी कानूनों को समाप्त करके ऋण सुविधाओं की स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया है। परन्तु इससे सहकारी समितियो द्वारा अपने कुछ खास 'मॉडल गांवों' को रियायती दरों पर सीमित ऋण राशि उपलब्ध कराई जाती है। देखने में प्रभावी प्रतीत होने वाली इन प्रदर्शन सुविधाओं का शेष पारम्परिक क्षेत्र में प्रचलित उच्च ब्याज दर को कम करने में कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है जिसके परिणामस्वरूप बैंक ऋणों का उपयोग भी कम हुआ है। मिंट के अनुसार साहूकारों की गतिविधियों पर अंकुश लगाने तथा व्यापारिक बैंकों और सहकारी समितियों के द्वारा पारम्परिक क्षेत्र में सस्ता ऋण सुलभ कराने के प्रयास निम्नलिखित कारणों से विफल हो गए हैं: (क) ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापारिक बैंकों के अधिकारी एवं कर्मचारियों के वेतन–भत्ते एंव उपरिलागत का अधिक होना; (ख) उधार प्राप्त करने के कड़े नियमों के अनुसार छोटे उधारकर्ताओं के साथ लेनदेन में लालफीताशाही ; (ग) प्रधान

कार्यालय और शाखाओं में समन्वय का अभाव; और (घ) ग्रामीण क्षेत्रों के अपने कुछ खास क्षेत्रों में सहकारी ऋण समितियों द्वारा रियायती दरों के ऋण की सीमित उपलब्धता।

2.ब्याज दर में भिन्नता (Interest rate differences)

वित्तीय द्वैतवाद के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के संगठित और गैर संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरें प्रचलित रहती हैं। पारम्परिक क्षेत्र के असंगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें आधुनिक क्षेत्र के संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं। गैर–संस्थागत ऋण ऊंची ब्याज दरों पर उपलब्ध होता हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि पारम्परिक क्षेत्र में बचतों की वस्तुतः कमी है, क्योंकि बचतों का बड़ा हिस्सा सोने और आभूषणों के रूप में जमा किया जाता है। यद्यपि इस गैर–संगठित मुद्रा बाजार की अपूर्णताओं के अन्य सहायक पहलू भी हैं। ग्रामीण दुकानदार, जमींदार, साहूकार और व्यापारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनुकूल स्थान रखते हैं और किसानों पर एकाधिकार शक्तियां स्थापित कर लेते है। इसका प्रमुख कारण यह है कि उक्त समुदाय ऋण के लेने–देन में लचीलापन और वस्तुओं की बिक्री जैसे क्रिया–कलापों को ऋण देने के साथ शामिल करके ऋण लेने वालों से निजी और अनौपचारिक सम्बन्ध बना लेते हैं। मिंट के अनुसार "किसानों द्वारा अदा की जाने वाली ब्याज की ऊंची दरें न केवल औपचारिक ब्याज खर्चे ;बींतहमेद्ध हैं अपितु इसका बड़ा भाग वह छिपा हुआ भार है जो किसानों द्वारा खरीदी अथवा बेचे जाने वाली वस्तुओं की कीमतों में हेरा–फेरी कर प्राप्त किया जाता है। छिपा हुआ भार स्थानीय दुकान से ऋण शर्तों पर वस्तुओं की ऊंची कीमतों के रूप में अथवा फसल कटाई के समय निर्धारित फसल की मात्रा सहित ऋण राशि जमींदार को अदा करने के रूप में हो सकता है।"

दूसरी ओर अल्पविकसित राष्ट्रों के संगठित बाजार में ब्याज दरें कम और ऋण–सुविधाएं पर्याप्त होती हैं। संगठित मुद्रा बाजार में व्यावसायिक बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं होती हैं जो निर्यात उद्योगों में बड़े विदेशी स्वामित्व वाले उद्यमियों, सरकार और बड़े पैमाने के आधुनिक वस्तुओं का निर्माण करने वाले उद्यमियों को कम ब्याज दर पर थोड़े समय के लिए ऋण प्रदान करते हैं।

3.मुद्रास्फीति और भुगतान संतुलन दबाव (Inflation and balance of payment pressures)

अल्पविकसित राष्ट्रों को दीर्घकालिक घरेलू मुद्रास्फीति और भुगतान संतुलन सम्बन्धी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप पारम्परिक क्षेत्र के किसानों, छोटे व्यापारियों, हथकरघा उत्पादकों जैसे छोटे कारोबार वाली इकाइयों को न केवल ऊंची ब्याज दर अपितु विदेशी विनिमय और आयातों का अभाव भी झेलना पड़ता है। अल्पविकसित राष्ट्रों के अपने केन्द्रीय बैंकों की स्थापना से उन्हें मौद्रिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है। अब इन राष्ट्रों में विदेशी मुद्रा नियन्त्रणों की शुरूआत हो गई है और विदेशी व्यावसायिक बैंकों द्वारा निधियों के हस्तांतरण और लाभ अपने यहां ले जाने की गतिविधियों पर अंकुश लगा है। इसके फलस्वरूप अल्पविकसित राष्ट्रों के संगठित मुद्रा बाजारों का सम्बन्ध विश्व पूंजी बाजार से टूट सा गया है। उक्त नीतियों के साथ–साथ अल्पविकसित राष्ट्र सस्ती मुद्रा नीति को अपना रहे हैं। इससे विरोधाभास वाली ऐसी स्थिति उत्पन्न हो

गई है जिसमें पूंजी दुर्लभ अल्पविकसित राष्ट्रों के केन्द्रीय बैंक बहु–पूंजी विकसित राष्ट्रों में प्रचलित ब्याज दरों की तुलना में कम ब्याज दर रखे हुए हैं। इससे उनकी विनिमय दर का अधिमूल्यन (overvaluation) हो जाता है। अल्पविकसित राष्ट्रों को भय होता है कि मुद्रा के अवलमूल्यन से उनकी मुद्राओं का पुनः अवमूल्यन एवं स्फीति दबाव हो जायेंगे। इस प्रकार, अल्पविकसित राष्ट्रों को मुद्रा स्फीतिक दबावों, विदेशी मुद्रा आरक्षित निधियों में गिरावट और भुगतान संतुलन के दबावों जैसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः अधिमूल्यक मुद्रा दरों पर विदेशी मुद्रा की दीर्घकालीन अतिमांग पाई जाती है। इन समस्याओं पर नियन्त्रण पाने के लिए अल्पविकसित राष्ट्रों ने विदेशी मुद्रा और आयात नियन्त्रणों तथा मौद्रिक एवं राजकोषीय उपायों एवं प्रत्यक्ष नियन्त्रणों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

4. राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के प्रतिकूल प्रभाव
(Adverse effects of fiscal and monetary policies)

वित्तीय द्वैतवाद के परिणामस्वरुप पारम्परिक क्षेत्र एवं आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के मध्य आर्थिक द्वैतवाद में वृद्धि हुई है। राजकोषीय और मौद्रिक नीतियां पारम्परिक क्षेत्र की तुलना में आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र के पक्ष में अग्रसर हुई हैं। सस्ती मुद्रा नीति अपनाकर बड़ी औद्योगिक इकाइयों को कृत्रिम रूप से कम ब्याज दर एवं अनुकूल शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराया गया है। कम ब्याज दर से न केवल विदेशों से आने वाली पूंजी निधियों के प्रवाह और देश के भीतर होने वाली बचतों में कमी हुई है अपितु विभिन्न ऋणों के लिए मांग अधिक हुई है। इस प्रकार घरेलू बचतों का बड़ा भाग कम ब्याज दर पर आधुनिक औद्योगिक क्षेत्रों को प्राप्त हुआ है। इससे पारम्परिक लघु उद्योगों और कृषि क्षेत्रों को पूंजी की आपूर्ति में कमी हुई है और उक्त क्षेत्रों को ऊंची ब्याज दरों पर पूंजी जुटानी पड़ती है। इसके परिणामस्वरूप मौद्रिक लेन–देनों की मात्रा में कमी हुई है और गैर–मौद्रिक लेन–देनों में निरन्तर बढ़ोतरी हुई है।

5. नियन्त्रणों के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse effects of controls)

प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करने के लिए विदेशी मुद्रा और आयातों पर नियन्त्रण लगाने से पारम्परिक क्षेत्र की तुलना में आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र को लाभ हुआ है। सामान्य तौर से उपलब्ध विदेशी मुद्रा का बड़ा भाग आधुनिक क्षेत्र को आवंटित किया जाता है और विनिर्माण उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाता है ताकि वे उत्पादन के अति पूंजी गहन तरीके अपनायें। इसका कारण यह है कि आयातित पूंजी–वस्तुएं अतिमूल्य विनिमय दरों पर सस्ते में प्राप्त की जाती हैं। इस प्रकार घरेलू श्रम की बजाय अपेक्षाकृत सस्ती आयातित पूंजी वस्तुओं को अपनाने की प्रबल प्रेरणा मिलती है।

कृषि और छोटे पैमाने के क्षेत्रों के विदेशी मुद्रा के अभाव और आयात नियन्त्रणों से ग्रसित होने के दो मुख्य कारण हैः प्रथम, उन्हें आयातित उपभोक्ता वस्तुएं ऊंची कीमतों पर मिलती हैं और दूसरे, वे अल्प विकिसित राष्ट्रों में लालफीताशाही और भ्रष्टाचार व्याप्त होने के कारण विदेशी मुद्रा और आयात परमिट सरलता से नहीं प्राप्त कर पाते हैं।

दुर्लभ पूंजी की आपूर्ति पर सरकारी नियन्त्रण से अल्पविकसित राष्ट्रों में वित्तीय बिचौलियों के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। इन नियन्त्रणों से बड़ी विनिर्माण इकाइयों और बैंकों को लाभ होता है। इसके अलावा वे उन छोटे उधारकर्ताओं ओर साहूकारों से भेदभाव करते हैं जो कि छोटे उधारकर्ताओं को ऋण प्रदान करते हैं। सरकार का मानना है कि केवल टिकाऊ पूंजीगत वस्तुओं और आधुनिक मशीनरी में निवेशित पूंजी निधियां ही उत्पादक हैं, जबकि कृषि और व्यापारिक गतिविधियों में निवेश किया गया धन गैर–उत्पादक होता है।

6. पूंजी–बाजार के विकास का धीमा होना (Retardation of the growth of capital market)

वित्तीय द्वैतवाद से आधुनिक और पारम्परिक क्षेत्रों में संसाधनों का गलत आवंटन हुआ है और अल्पविकसित राष्ट्रों में एकीकृत घरेलू पूंजी बाजार के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। सरकारी नियन्त्रणों की विविधता से ऋण का मुक्त बाजार **काला बाजार** के रूप में विकसित हो गया है। अतिमूल्यक विनिमय दरों सहित घरेलू मुद्रा स्फीति के कारण आन्तरिक पूंजी का विदेशों में सट्टात्मक हस्तांतरण हुआ है। जिन अल्पविकसित राष्ट्रों ने ऐसी गतिविधियों को रोकने का प्रयास किया है, वहां पूंजी निधियों को स्वर्ण, आभूषण, वास्तविक सम्पदा और सट्टा गतिविधियों में लगाया गया है। इसका कारण यह है कि सस्ती मुद्रा नीति के अन्तर्गत निधियों के धारकों को निवेश करने पर कम ब्याज दर प्रदान की जाती है। इससे प्रभावी मुद्रा बाजार के विकास में बाधा आती है।

इसके अलावा, अल्पविकसित राष्ट्रों के एकीकृत पूंजी बाजार के विकास में व्यापारिक गतिविधियों के विरूद्ध ऋण भेदभाव भी रूकावट बन जाता है। पर्याप्त पूंजी–निधियों की अनुपलब्धता और धारक स्टाकों की ऊंची लागतों के कारण व्यापारियों को वस्तुओं का बहुत कम भण्डार और प्रचल पूंजी अपने पास रखनी पड़ती है। इसके परिणाम स्वरूप थोक और खुदरा कीमतों का अंतर बढ़ जाता है।

19.3.1.3 : वित्तीय द्वैतवाद को कम करने हेतु सुझाव
(Suggestions to Reduce Financial Dualism)

अल्पविकसित राष्ट्रों में वित्तीय द्वैतवाद को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं:

1. अधिक एकीकृत घरेलू पूंजी बाजार का निर्माण
(Creation of a more integrated domestic capital market)

प्रो0 मिंट ने यह सुझाव दिया है कि अल्पविकसित राष्ट्रों में अधिक एकीकृत घरेलू पूंजी बाजार का निर्माण किया जाए ताकि आधुनिक और पारम्परिक दोनों क्षेत्रों को पूंजी निधियां समान शर्तों पर एवं सरलता से उपलब्ध हों सकें। इससे दोनों क्षेत्रों में संसाधनों के गलत आवंटन में भी कमी होगी। सहकारिताओं और साहूकारों दोनों को समान शर्तों पर ऋण निधियों की असीमित आपूर्ति प्रदान करके पारम्परिक क्षेत्र में ब्याज दर कम की जाए ताकि वे छोटे उधारकर्ताओं से कम ब्याज दरें लेने के लिए प्रतिस्पर्द्धा कर सकें।

2. संगठित और गैर–संगठित मुद्रा–बाजारों का एकीकरण
(Integration of organised and unorganised money markets)

वित्तीय द्वैतवाद को कम करने के लिए संगठित और गैर–संगठित मुद्रा बाजारों का एकीकरण किया जाना चाहिए। इसके लिए व्यापारिक बैंकों को प्रेरित किया जाए कि वे अपनी शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में खोलें। भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और अग्रणी बैंकों की स्थापना द्वारा ऐसा किया गया है।

3. सहकारिता का सुदृढ़ीकरण (Strengthening of cooperatives)

सहकारी समितियों और सहकारी बैंकों को सुदृढ किया जाए ताकि ये साहूकारों और देशी बैंकरों से अधिक प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्द्धा कर सकें।

4. बहु–एजेन्सी दृष्टिकोण (Multi-agency approach)

गैर–संगठित ग्रामीण क्षेत्र में बहु–एजेन्सी दृष्टिकोण अपनाया जाए और ऐसे क्षेत्रों में ऋण, बीज, खाद, उपकरण, पशु इत्यादि उपलब्ध कराये जाएं तथा विपणन और व्यापार सुविधाएं भी प्रदान की जाएं।

5. शासकीय ब्याज–दर में वृद्धि (Raising official interest ratè)

प्रो0 मिंट ने सुझाव दिया है कि ऐसे राष्ट्रों द्वारा अपनी मौजूदा पूंजी निधियों के अभाव को दर्शाने के लिए अपने संगठित ऋण बाजारों की शासकीय ब्याज दरों को काफी ऊंचा बढ़ाया जाए। इससे एकीकृत घरेलू पूंजी बाजार के विकास को प्रोत्साहन मिलेगा और इस प्रक्रिया से देश के भीतर और विदेश से बचतों को प्रभावपूर्ण ढंग से आकर्षित किया जा सकता है। इससे साहूकारों द्वारा गैर–संगठित ऋण बाजार को पुनः उधार देने हेतु बचतों की उपलब्ध पूर्ति को ऋणों की मांग, जिसमें निधियों की मांग भी शामिल है, के बराबर करने में सहायता मिलेगी।

19.3.2 मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत

नोबल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो0गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक श्म्बवदवउपब जीमवतल ंदक न्दकमत.कमअमसवचमक त्महपवदेश में अर्द्धविकसित देशों के अल्पविकास के कारणों की व्याख्या एक नये दृष्टिकोण से की। जिसके अनुसार चक्रीय संचयी कार्यकारण तथा अतिनिर्यात प्रभाव(Backwash Effect) के कारण अर्द्धविकसित और विकसित देशों के बीच एक दुश्चक्र (Vicious Circle) पैदा हो जाता है जो अर्द्धविकसित तथा विकसित देशों के बीच आय की असमानता के अंतराल को बढ़ाता रहता है।

प्रो0मिर्डल ने अपने चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत के आधार पर स्पष्ट किया कि असमानताओं के सम्बन्ध में प्राचीन सैद्धांतिक स्थिर संतुलन की मान्यता सर्वथा गलत है। प्रो0 गुन्नार मिर्डल का यह मत है कि वास्तविक जगत में इस प्रकार की स्थिति नहीं पायी जाती। यह आवश्यक नहीं है कि अर्थव्यवस्था में सदैव संतुलन स्थापित होता रहे। वास्तविकता यह है कि अर्थव्यवस्था में जब एक बार संतुलन भंग हो जाता है तो अर्थव्यवस्था निरंतर संतुलन से दूर हटती चली जाती हैं, क्योंकि असंतुलन का उदय करने वाले घटकों का संचयी प्रभाव होता है।

विकास को प्रभावित करने वाले आकस्मिक घटकों में परस्पर संबंध एवं परस्पर निर्भरता होती है। ये घटक चक्राकार रूप में संचयी प्रवृत्ति लिये रहते हैं जिसके फलस्वरूप जब इनमें किसी एक घटक में कोई परिवर्तन होता है तो उसके प्रभावों से अन्य घटकों में

परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार एक परिवर्तन दूसरे परिवर्तन का कारण एवं प्रभाव बन जाता है।

प्रो0 गुन्नार मिर्डल ने अपने चक्राकार सिद्धांत तथा संचयी कारण एवं परिणाम के सिद्धांत को अमेरिका की नीग्रो समस्या की सहायता से स्पष्ट किया है। उन्होंने बताया है कि गोरे लोगों द्वारा पक्षपात के कारण नीग्रो लोगों के साथ अनेक विभेदात्मक नीतियों को विभिन्न क्षेत्रों में अपनाया जाता है। दूसरे नीग्रों लोगों का निम्न जीवन स्तर गोरे लोगों द्वारा अपनायी गयी विभेदात्मक नीतियों का ही परिणाम है फलतः नीग्रो लोगों में पायी जाने वाली गरीबी, अंधविश्वास, अज्ञानता, शिष्ट व्यवहार का अभाव इत्यादि के कारण उनके प्रति गोरे घृणा का ही दृष्टिकोण रखते हैं। दोनों बातों में परस्पर धनात्मक सह–संबंध है। इस प्रकार गोरे लोगों का पक्षपात और नीग्रो लोगों की गरीबी दोनों एक–दूसरे के कारण हैं। इस अवस्था को हम किसी प्रकार स्थिर संतुलन की अवस्था नहीं कह सकते। इन परिस्थितियों में यदि उपयुक्त दो बातों में से किसी एक में बाह्म परिवर्तनों या अन्य कारणों से परिवर्तन होने शुरू हो जाते हैं तो यह प्रक्रिया धीरे–धीरे संचयी रूप प्राप्त कर लेती है ऐसी स्थिति में संपूर्ण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होता है।

अतः मिर्डल का यह मत है कि विकास की इस प्रक्रिया में आर्थिक तथा सामाजिक सभी शक्तियां क्रियाशील होती हैं जो असंतुलन को जन्म देती तथा बढ़ाती हैं।

19.3.2.1 मिर्डल की थीसिस (The Myrdal's Thesis)

मिर्डल का विचार है कि आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धांत राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से अत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने निम्नलिखित दो धारणाओं का उपयोग किया है:

(i) अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effects)

(ii) प्रसरण प्रभाव (Spread Effects)

मिर्डल ने **अतिनिर्यात प्रभाव** के अंतर्गत उन सभी प्रभावों को सम्मिलित किया है जो श्रम के देशांतरण,पूंजी प्रवाह तथा व्यापार के माध्यम से उत्पन्न होते हैं तथा आर्थिक व अनार्थिक सभी साधनों के मध्य चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होते हैं। ये प्रभाव आर्थिक विकास के प्रतिकूल होते हैं। आर्थिक विकास विस्तार केंद्रों से अन्य क्षेत्रों की ओर विस्तारशील गति से कुछ उपकेंद्र **प्रसरण प्रभावों** को प्रदर्शित करते हैं। प्रसरण प्रभाव आर्थिक विकास के अनुकूल होते हैं। मिर्डल के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं का प्रमुख कारण अर्द्धविकसित देशों में प्रबल अतिनिर्यात प्रभाव तथा दुर्बल प्रसरण प्रभाव रहे हैं।

19.3.2.2:प्रादेशिक असमानताएं (Regional Inequalities)

मिर्डल के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं की उत्पत्ति का आधार गैर– आर्थिक होता है। यह पूंजीवादी व्यवस्था से संबंध रखता है जो लाभ के उद्देश्य से संचालित होती है। लाभ के उद्देश्य के कारण उन क्षेत्रों का विकास होता है जहां लाभों की प्रत्याशाएं अधिक होती हैं, जबकि अन्य क्षेत्र अर्द्धविकसित रह जाते हैं। बाजार शक्तियां प्रादेशिक असमानताओं को घटाने के बजाय बढ़ाती है। मिर्डल के शब्दों में, ''यदि बात बाजार शक्तियों पर ही छोड़ दी

जाये और उन्हें किन्हीं नीति हस्तक्षेपों से न रोका जाय" तो औद्योगिक उत्पादन, व्यापार, बैंकिग, बीमा, नौवहन और वास्तव में वे सभी आर्थिक क्रियाएं जो विकासशील अर्थव्यवस्था को औसत से अधिक प्रतिफल प्रदान करती हैं कुछ स्थानों तथा प्रदेशों में एकत्रित हो जाती हैं और देश के शेष भागों को अनदेखा छोड़ देती हैं। ऐसी स्थिति में आर्थिक विषमता घटने के स्थान पर बढ़ती है।

19.3.2.3: देशांतर, पूंजीगतियों तथा व्यापार के अतिनिर्यात प्रभाव
(The Backwash Effects of Migration, Capital Movements and Trade)

मिर्डल के अनुसार श्रम देशांतर, पूंजी प्रभाव एवं अंतर्क्षेत्रीय व्यापार विकसित तथा अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के बीच असमानताओं को कम नहीं करते बल्कि बढ़ाते हैं। उन्होंने अपनी थीसिस में यह बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार श्रम का देशांतर, पूंजी प्रभाव व व्यापार के अतिनिर्यात प्रभाव पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास में बाधा डालते हैं और साथ ही संपूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास को धीमा करते हैं।

मिर्डल के चक्रीय तथा संचयी प्रक्रिया के अतिनिर्यात तथा प्रसरण प्रभाव एवं विषमताओं मे वृद्धि को एक सरल उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना A और B दो क्षेत्र हैं जो विकास की दृष्टि से बराबर हैं अर्थात् दोनों में प्रति व्यक्ति आय, श्रम की उत्पादकता और मजदूरी बराबर है। श्रम तथा पूंजी व उत्पादन के अन्य साधनों का आवागमन A और B क्षेत्र के बीच स्वतंत्र रूप से होता है। दोनों क्षेत्रों के बीच व्यापार पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं है और एक ही मुद्रा प्रचलित है।

माना A क्षेत्र में लोहा व कोयला मिल जाने के कारण B क्षेत्र की अपेक्षा विकास तीव्र गति से होता है। फलतः असंतुलन का जन्म होता है। मिर्डल के अनुसार जब एक बार इस तरह की असंतुलन की प्रक्रिया जन्म ले लेगी तो कुछ ऐसी आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियां क्रियाशील हो जायेंगी जो इस असंतुलन को और बल देंगी। फलतः लाभ प्राप्तकर्ता A क्षेत्र में संचयी विस्तार की प्रक्रिया शुरू हो जायेगी जबकि B क्षेत्र जो अलाभकारी स्थिति में है निरंतर संचयी रूप से पिछड़ता जायेगा। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया दूसरे देश अर्थात् B क्षेत्र को क्षति पहुंचा कर ही होगी। मिर्डल के मतानुसार यह मानना सर्वथा गलत होगा जैसा कि स्थैतिक विश्लेषण में हम मानते हैं कि असंतुलन अस्थायी होता है और कालांतर में संतुलन स्थापित हो जाता है। मांग एवं पूर्ति की शक्तियां परस्पर इस प्रकार से क्रियाशील होंगी कि संतुलन पुनः स्थापित नहीं होगा बल्कि संचयी रूप से संतुलन दूर हटता जायेगा।

मिर्डल के सिद्धांत को रेखाचित्र 19.1 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र में A क्षेत्र विकसित और B क्षेत्र पिछड़ा हुआ है। प्रारंभ में A क्षेत्र में मजदूरों का मांग वक्र D_A और पूर्ति वक्र S_A है। दोनों वक्र एक दूसरे को E बिंदु पर काटते हैं। अतः

W_A मजदूरी की दर है। B क्षेत्र में मजदूरों की मांग वक्र DB व पूर्ति वक्र SB है जो

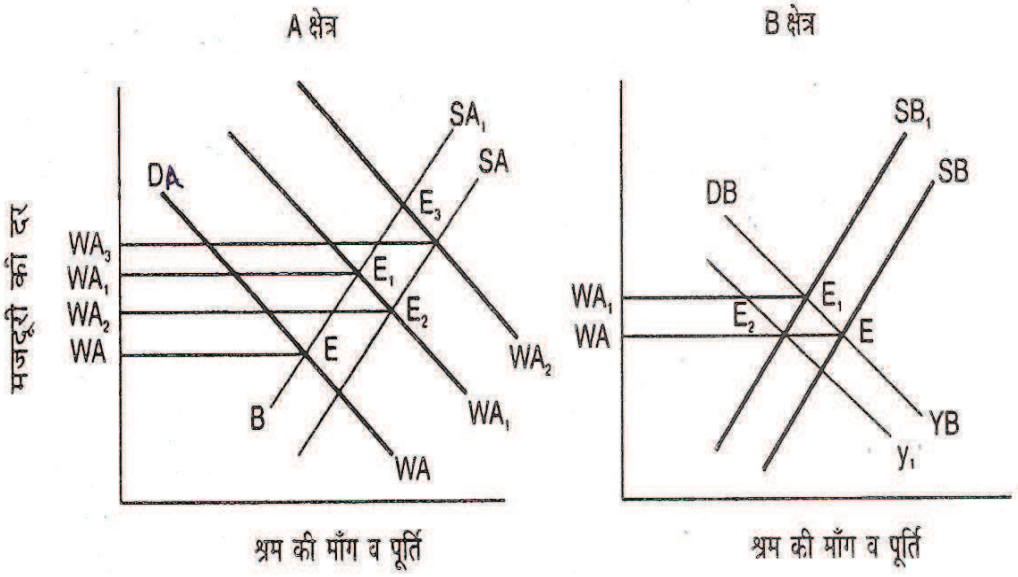

चित्र–19.1

एक दूसरे को E बिंदु पर काटते हैं, अतः B क्षेत्र में मजदूरी W_B है। शुरू में दोनों क्षेत्रों में मजदूरी की दर बराबर है।

अर्थव्यवस्था में विनियोग बढ़ने के कारण A क्षेत्र में मजदूरों की मांग बढ़ जाती है। फलतः मांग वक्र विवर्तित होकर D_A हो जाता है और वह पूर्ति वक्र S_A को बिंदु E_1 पर काटता है जिससे । क्षेत्र में मजदूरी की दर बढ़कर W_{A1} हो जाती है। A क्षेत्र में बढ़ी हुई मजदूरी W_{A1} की लालच में B क्षेत्र से मजदूरों का देशांतर A क्षेत्र की ओर होने लगेगा और B क्षेत्र में मजदूरों की पूर्ति कम हो जाने के कारण पूर्ति वक्र S_{B1} हो जायेगा। यह पूर्ति वक्र (S_{A1}) मांग वक्र (DB) को E1 बिंदु पर काटता है फलतः B क्षेत्र में मजदूरी की दर बढ़कर W_{B1} हो जायेगी। दूसरी ओर A क्षेत्र में श्रम की पूर्ति बढ़ने से पूर्ति वक्र S_{A1} हो जाता है जो मांग वक्र D_{A1} को E_2 बिंदु पर काटता है। परिणामस्वरूप मजदूरी दर W_A से कम होकर W_B हो जायेगी।

स्थैतिक विश्लेषण की स्थिति में दोनों देशों में मांग व पूर्ति की शक्तियां परस्पर समायोजित हो जायेंगी और संतुलन की स्थिति पुनः $W_A = W_B$ पर कायम हो जायेगी। परंतु मिर्डल की संचयी प्रक्रिया की धारणा के अनुसार पूर्ति में परिवर्तन मांग को इस प्रकार तथा इस सीमा तक प्रभावित करेगी कि पुनः संतुलन की संभावना समाप्त हो जायेगी।

B क्षेत्र से श्रमिकों का A क्षेत्र में स्थानांतरण हो जाने से B क्षेत्र में वस्तुओं व सेवाओं की मांग कम होने लगती है जिससे मांग वक्र नीचे को सरक कर D_{A1} हो जाता

है जो पूर्ति वक्र S_{B1} को E_1 बिंदू पर काटता है और श्रमिकों को सिर्फ न्यनूतम मजदूरी W_A मिलने लगती है।

अब A क्षेत्र में वस्तुओं व सेवाओ की मांग पहले से अधिक हो जाती है। फलतः इस क्षेत्र में कार्यरत उद्यमियों को नया उत्साह मिलता है। वस्तुओं की मांग बढ़ने से मांग वक्र D_{A1} से ऊपर सरक कर D_{A2} हो जाता है। जो पूर्ति वक्र S_{B1} को बिन्दु E_2 पर काटने से इस क्षेत्र में W_{A3} के बराकर मजदूरी का निर्धारण होता है।

उपर्युक्त पूरी प्रक्रिया A व B क्षेत्रों में संचयी रूप से चलती रहेगी और A क्षेत्र की स्थिति उत्तरोत्तर अच्छी तथा B क्षेत्र की स्थिति उत्तरोत्तर खराब होती जायेगी। इस प्रकार A क्षेत्र का आर्थिक विकास B क्षेत्र को हानि पहुंचाकर होगा और दोनों के बीच अंतराल बढ़ता जायेगा। अतः एक बार जब दोनों क्षेत्रों के बीच विकास संबंधी अंतर शुरू होगा तो विस्तार की संचयी प्रक्रिया लाभप्रद स्थिति वाले क्षेत्र (अर्थात् A क्षेत्र) के पक्ष में होती चली जायेगी और उसका दूसरे क्षेत्र के ऊपर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा उसे मिर्डल ने अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect) कहा है और इसके कारण दोनों क्षेत्रों के बीच विषमता का अंतराल बढ़ता जायेगा।

इसी प्रकार पूंजी का प्रवाह भी संचयी प्रक्रिया को और बल देकर प्रादेशिक विषमता को बढ़ाता है क्योंकि जो प्रदेश विकसित हो जाते हैं उनमें बढ़ी हुई मांग, विनियोग एवं पुनर्वियोग को प्रेरणा प्राप्त होती है तथा पूंजी की मांग भी बढ़ती है। ऐसी स्थिति में मांग एवं आय दोनों ही बढ़ती है। यह क्रम चलता रहता है तथा दूसरी ओर पिछड़े क्षेत्रों में पूंजी विनियोग की और कमी आ जाती है। फलतः पिछडे क्षेत्र और पिछड़ जाते हैं।

इसी प्रकार व्यापार भी पिछड़े क्षेत्रों की तुलना में विकसित क्षेत्रों को अधिक लाभ पहुंचाता है तथा पिछडे क्षेत्रों में केवल पिछड़ा कृषि क्षेत्र रह जाता है जबकि विकसित क्षेत्र में पूंजी, उद्योग, सेवा तीनों क्षेत्रों का तेजी से विकास होता है। मिर्डल के अनुसार, ''व्यापार निर्धन देशों के सामने स्फीतिकारी अंतराल एवं दबाव, गरीबी में वृद्धि, भुगतान संतुलन की कठिनाई, उपभोक्ता वस्तुओं की कमी तथा गुणक प्रभाव के अभाव जैसी समस्या उत्पन्न कर देते हैं तथा पहले से विद्यमान छोटे–मोटे उद्योगों का गला घोटे देते हैं।''

मिर्डल के अनुसार प्रसरण प्रभाव आर्थिक विस्तार के केन्द्रों के निकट के क्षेत्रों में फैल जाने की प्रवृत्ति रखते हैं। जिसके निम्नलिखित अनुकूल प्रभाव पडते हैं:

(i)उस क्षेत्र के औद्योगिक विस्तार से कच्चे मालों व कृषि उपजों की मांग में वृद्धि होती है।

(ii) पिछड़े क्षेत्रों से प्रवाहित श्रम शक्ति को विकसित क्षेत्रों में अधिक आय प्राप्त होती है जिसका कुछ भाग पिछड़े क्षेत्रों को भेज दिया जाता है।

(iii) तकनीकी ज्ञान का विस्तार भी पिछड़े क्षेत्रों की ओर होने लगता है।

मिर्डल का मानना है कि उपर्युक्त प्रसरण प्रभाव अर्द्धविकसित देशों में कमजोर होते हैं और उनमें अतिनिर्यात प्रभावों का प्रतिरोध करने की क्षमता कम रहती है। अतः अर्द्धविकसित

देशों के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण दुर्बल व कमजोर प्रसरण प्रभाव तथा प्रबल अतिनिर्यात प्रभाव रहे हैं जिससे संचयी प्रक्रिया में ''निर्धनता स्वयं अपना कारण बन जाती है।''

राज्य की भूमिका : मिर्डल ने निर्धनता के इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए राज्य की भूमिका को महत्व दिया है। उनके अनुसार अर्द्धविकसित देशों की सरकारों को चाहिए कि वे ऐसी समतावादी नीतियां अपनाएं जो अतिनिर्यात प्रभावों को दुर्बल बनाये और प्रसरण प्रभावों को शक्ति दे ताकि प्रादेशिक असमानताएं दूर हों और सतत् आर्थिक प्रगति की आधरशिलाएं मजबूत हों।

19.3.2.4: अंतर्राष्ट्रीय असमानताएं (International Inequalities)

मिर्डल के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार** के भी अतिनिर्यात प्रभाव होते हैं। मिर्डल ने कहा है कि ''व्यापार धनवान एवं प्रगतिशील क्षेत्रों के पक्ष में तथा कम विकसित देशों के विपक्ष में कार्य करता है।'' विकसित तथा अर्द्धविकसित देशों के बीच स्वतंत्र व्यापार पहले प्रकार के देशों को मजबूत बनायेगा तथा दूसरे प्रकार के देशों को गरीब बनायेगा। क्योंकि धनी देशों में प्रबल प्रसरण प्रभावों वाले निर्माणी उद्योगों का विस्तृत आधार होता है। औद्योगिक देशों का निर्यात माल सस्ता होने के कारण दस्तकारी देशों के निर्यातों को प्रतियोगिता में पीछे धकेल देंगे। ऐसी स्थिति में अर्द्धविकसित देश केवल प्राथमिक वस्तुओं के निर्यातक बन कर रह जाते हैं क्योंकि निर्यात बाजार में प्राथमिक वस्तुओं की मांगें लोचरहित होती हैं। अर्द्धविकसित देश विश्व बाजार कीमतों के उतार–चढ़ावों का लाभ भी प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

अर्द्धविकसित देशों में **पूंजी प्रवाह** भी अंतर्राष्ट्रीय असमानताओं को रोकने में असफल रहता है। अर्द्धविकसित देशों में संरचनात्मक ढांचे की कमी, असुरक्षा एवं लाभ की अनिश्चितता के कारण निवेशकर्ताओं में भी प्रेरणा की कमी रहती है जबकि पूंजीवादी एवं विकसित देशों में लाभ एवं सुरक्षा के कारण निवेशकर्ता प्रोत्साहित होते हैं राष्ट्रवाद के बढ़ते हुए वर्तमान युग में पूंजी का अंतरण भी कठिन सा होता जा रहा है।

श्रम देशांतर (Labour migration) : अर्द्धविकसित देशों में श्रम का देशांतर भी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सामंजस्यों की प्राप्ति के क्षेत्र में कोई सफलतम उपाय नहीं रहा है क्योंकि श्रम का देशांतर राष्ट्रवाद एवं राजनैतिक कारणों से दिनोदिन कठिन होता जा रहा है। वस्तुतः जिन घटकों ने विकसित देशों को उन्नत बनाया था वे ही घटक आज अर्द्धविकसित देशों में अतिनिर्यात प्रभावों का सृजन कर रहे हैं।

वर्तमान में प्रत्येक देश में आंतरिक दुर्बलताएं भी प्रसरण प्रभावों को प्रबल नहीं होने दे रही हैं। उदाहरण के लिए भारतवर्ष में आज बहुराष्ट्रीय कंपनियां, बड़े घराने, आयात अनिवार्यता तथा राजनैतिक भ्रष्टाचार प्रसरण प्रभावों के मार्ग में बहुत बड़े गतिरोधक हैं।

प्रो0 मिर्डल ने अर्द्धविकसित देशों में व्याप्त मजबूत अतिनिर्यात प्रभावों का कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को माना है ऐसी स्थिति में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धांत की अवधारणा पर भी पुनः विचार की आवश्यकता है। मिर्डल के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में व्यापारिक नीति विकसित देशों की व्यापारिक नीतियों से भिन्न होनी

चाहिए। अर्द्धविकसित देशों को निर्यात में सहायतायुक्त स्वतंत्र व्यापारी एवं आयातों में प्रतिबंधवादी बनना चाहिए।

19.3.2.4: समीक्षात्मक मूल्यांकन

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुन्नार मिर्डल का सिद्धांत अल्प–विकास के अन्य सिद्धांतों की तुलना में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह *प्रथम,* आर्थिक विकास संबंधी विस्तृत, क्रमबद्ध और विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के गहन अध्ययन तथा विश्लेषण पर आधारित है। *दूसरे,* यह स्पष्ट करता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से किस प्रकार विकसित देश विकासशील देशों से लाभ प्राप्त कर रहे हैं। *तीसरे,* इस तथ्य पर भी प्रकाश डालता है कि अर्द्धविकसित देशों में प्रसरण प्रभाव किस प्रकार अतिनिर्यात प्रभावों के दुष्प्रभावों से मंद हो जाते हैं। *चौथे,* इससे इस तथ्य का भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि किस प्रकार एक देश की असमानता दूसरे देश को प्रभावित कर रही है।

19.3.2.5: सिद्धांत के दोष : उपर्युक्त गुणों के होते हुए भी मिर्डल के सिद्धांत की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाएं की जाती है :

(i) इस सिद्धांत में केवल पूंजी प्रवास एवं व्यापार को ही असमानता का आधार बनाया है जबकि असमानता के लिए अन्य तत्व भी उत्तरदायी है।

(ii) मिर्डल ने आंतरिक एवं बाह्म असमानताओं के अनुपात का समावेश नहीं किया कि कितनी मात्रा में इनका प्रभाव पड़ता है।

(iii) यह सिद्धांत अर्थव्यवस्था में ह्रासमान प्रतिफल नियम की उपस्थिति को ध्यान में नहीं रखता है।

19.4 : सारांश

प्रोव मिंट तथा गुन्नार मिर्डल के अल्पविकास के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है अल्प–विकास के सिद्धांतों में वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धांत तथा गुन्नार मिर्डल के चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रोव मिंट ने वित्तीय द्वैतवाद के सिद्धांत में एक अल्पविकसित राष्ट्र के मुद्रा बाजार में वित्तीय द्वैतवाद के विद्यमान होने से उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या की तथा इन्हें कम करने हेतु उपयुक्त सुझाव भी दिये। मिर्डल के मतानुसार आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धांत राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से उत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने अतिनिर्यात प्रभाव एवं प्रसरण प्रभाव की धारणाओं का उपयोग किया है। अनेक गुणों के होते हुए भी मिर्डल के सिद्धांत की आलोचनाएं भी की जाती है ।

19.5 शब्दावली

वित्तीय द्वैतवाद : वित्तीय द्वैतवाद से अभिप्राय है– अल्प विकसित राष्ट्रों में संगठित और गैर–संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरों का सह–अस्तित्व। पारम्परिक क्षेत्र के

असंगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें आधुनिक क्षेत्र के संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं।

मुद्रा बाजार : मुद्रा बाजार वह बाजार अथवा क्षेत्र है जहाँ अल्पकालीन ऋणों का लेनदेन होता है। मुद्रा बाजार संगठित या असंगठित हो सकता है।

संगठित मुद्रा बाजार : संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें कम एवं प्रचुर मात्रा में साख सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। इसमें केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, सहकारी समितियां और बैंक, विदेशी बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं जिनमें कृषि सम्बन्धी वित्त निगम, औद्योगिक वित्त निगम ,बीमा कम्पनियां और विकास बैंक शामिल होते हैं।

गैर–संगठित मुद्रा बाजार : गैर–संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें संगठित मुद्रा बाजार की ब्याज दरों से काफी अधिक होती हैं। इसमें देशी बैंकर्स, साहूकार, पैशेवर और गैर–पेशेवर व्यापारी, सौदागार, जमींदार, मित्र और सगे–सम्बन्धी अधिव्यवसायी, निधियां और चिटफंड आदि शामिल होते हैं।

काला बाजार (Black Market) जब सरकारी हस्तक्षेप के परिणामस्वरुप किसी वस्तु की कीमत उसके साम्य स्तर से काफी नीचे तय का दी जाती है तथा विक्रेताओं को निर्धारित कीमत पर ही बेचने के लिये विवष किया जाता है तो पूर्ति की अपेक्षा मांग के आधिक्य के कारण अनधिकृत रुप से वह वस्तु काले बाजार में काफी ऊँची कीमत पर बिकनी प्रारंभ हो जाती है। ऐसी दषा में विक्रेता वस्तु को निर्धारित कीमत पर न बेचकर काले बाजार में बेचकर भारी लाभ कमाते हैं।

काली मुद्रा (Black Money)– ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी, करों की चोरी, काला–बाजारी आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है। इनसे प्राप्त आय पर कोई भी कर नहीं चुकाया जाता। काले धन से की गई खरीद व बिक्री से प्राप्त मुनाफे पर कोई आय कर नहीं चुकाया जाता, इस कारण इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

पूंजी निर्माण (Capital Formation) – कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि, सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढानें हेतु लगाया जाता है।

पूंजी बाजार : पूंजी बाजार में शेयरों, ऋण–पत्रों तथा अन्य प्रकार की वित्तीय प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है। इसमें व्यक्तियों, संस्थाओं, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त विदेषी निवेषकों तथा बैंकों की सहभागिता होती है। नये शेयरों का निर्गम भी प्रायः मर्चेंट बैंकरों द्वारा पूंजी बाजार के माध्यम से ही किया जाता है।

अतिनिर्यात प्रभाव :– अतिनिर्यात प्रभाव के अंतर्गत उन सभी प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है जो श्रम के देशांतरण,पूंजी प्रवाह तथा व्यापार के माध्यम से उत्पन्न होते हैं तथा आर्थिक व अनार्थिक सभी साधनों के मध्य चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होते हैं। ये प्रभाव आर्थिक विकास के प्रतिकूल होते हैं।

प्रसरण प्रभाव :– आर्थिक विकास विस्तार केंद्रों से अन्य क्षेत्रों की ओर विस्तारशील गति से कुछ उपकेंद्र प्रसरण प्रभावों को प्रदर्शित करते हैं। प्रसरण प्रभाव आर्थिक विकास के अनुकूल होते हैं।

19.6 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं उत्तर

1. 'वित्तीय द्वैतवाद' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया ?
2. केन्द्रीय बैंक किस मुद्रा बाजार का अंग है ?
3. मिर्डल के अनुसार अल्प विकसित देशों में अतिनिर्यात प्रभाव ..... होता है।
4. मिर्डल के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं की उत्पत्ति का आधार ..... होता है।
5. 'एशियन ड्रामा' नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं।
6. प्रसरण प्रभाव से क्या अभिप्राय है ?
7. अतिनिर्यात प्रभाव से क्या आशय है ?
8. संगठित मुद्रा बाजार से आप क्या समझते हैं ?
9. गैर–संगठित मुद्रा बाजार से क्या आशय है ?

बहुविकल्पीय प्रश्नः

10. "Economic Theory and the Underdeveloped Countries"नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं :

अ) गुन्नार मिर्डल ब) एच0मिन्ट
स) जे0एच0बूके द) इनमें से कोई नहीं

11.'Economic Theory and Under-developed Regions'नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं

अ) गुन्नार मिर्डल ब) एच0मिन्ट
स) जे0एच0बूके द) इनमें से कोई नहीं

सत्य / असत्य लिखिएः

12. 'वित्तीय द्वैतवाद' के सिद्धान्त का प्रतिपादन गुन्नार मिर्डल द्वारा किया गया था ?

13. वित्तीय द्वैतवाद से अभिप्राय है– अल्प विकसित राष्ट्रों में संगठित और गैर–संगठित मुद्रा बाजारों में विभिन्न ब्याज दरों का सहअस्तित्व।

14. चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत का प्रतिपादन गुन्नार मिर्डल ने किया था?

उत्तर–

1. एच0मिन्ट ,2. संगठित मुद्रा बाजार ,3. प्रबल ,4. गैर आर्थिक ,5. गुन्नार मिर्डल
10. ब) एच0मिन्ट ,11. अ) गुन्नार मिर्डल ,12. असत्य ,13. सत्य ,14. सत्य

19.7 संदर्भ सहित ग्रन्थ

1. **झिंगन,एम0एल0** : "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, दिल्ली, 1903
2. **सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमार** : "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1908
3. **सिन्हा,वी0सी0** : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 1907
4. **Agarwal ,R. C. :** "Economics of Development and Planning" , Lakshmi Narayan Agarwal , Agra 1907

5- **Taneja,M.L. & Myer R.M.:** "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co.,Delhi, 1910

19.8 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

- **Myrdal , G.:** 'Economic Theory and Under-developed Regions'1957
- **Myint ,H.M.:** "Economic Theory and the Underdeveloped Countries"
- **Meier ,G.M.:** "Leading Issues in Economic Development" ,Oxford University Press , Delhi ,1989
- **Lewis, W. Arthur : "**Economic Development with Unlimited Supplies of Labour" (1954) Reprinted in A.N.Agrawal and S.P.Singh (ed.) –"The Economics of Underdevelopment" (1969)
- **Meier and Baldwin :** "Economic Development"
- **Kindleberger C.P**.: "Economic Development"
- **Misra, S.K.& Puri, V.K**. : "Economic Development and Planning"

19.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वित्तीय द्वैतवाद से आप क्या समझते हैं? वित्तीय द्वैतवाद के एक विकासशील अर्थव्यवस्था पर कौन–से कुप्रभाव पड़ते हैं? उनकी व्याख्या कीजिए और दूर करने के उपाय सुझाए।
2. मिंट के वित्तीय द्वैतवाद सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
3. मिर्डल के चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. मिर्डल द्वारा प्रतिपादित अतिनिर्यात एवं प्रसरण प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
5. चक्रीय कार्यकारण के सम्बन्ध में मिर्डल के विचारों की व्याख्या कीजिए।
6. मिर्डल के मॉडल का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 20– पूंजी और आर्थिक विकास

इकाई की संरचना

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 विदेशी पूंजी का भारत जैसे अल्पविकसित देशों के विकास में योगदान

20.4 विदेशी पूंजी का आर्थिक विकास पर प्रभाव

20.5 विदेशी पूंजी से होने वाले सम्भावित खतरें

20.6 विदेशी पूंजी का सीमाएँ

20.7 विदेश पूंजी से होने वाली हानियाँ

20.8 पूँजी से सम्बन्धित सावधानियाँ

20.9 सारांश

20.10 शब्दावली

20.11 संदर्भ ग्रन्थ

20.12 सहायक उपयोगी सामग्री

20.13 लघु उत्तरीय प्रश्न

20.14 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

विश्व के प्रायः सभी विकसित एवं विकासशील देश किसी न किसी सीमा तक विदेशी पूंजी एवं विदेशी सहायता पर निर्भर रहे हैं। विदेशी पूंजी ने आर्थिक विकास और औद्योगिकीकरण में महत्वपूर्ण भाग अदा किया है। इसके अभाव में कोई भी देश उन्नत नहीं कर सकता।

प्रत्येक देश के पास घरेलु साधन इतने पर्याप्त नहीं होते कि आर्थिक विकास में पूर्ण हो सकें।बड़ी–बड़ी योजनायें घरेलु बचतों के अलावा विदेशी पूंजी की सहायता भी लेते है। प्रायः प्रत्येक विकासशील राज्य ने अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में अपने सीमित बचत के पूरक के रूप में विदेशी पूंजी की सहायता ली है।

17वी व 18वी शताब्दी में विश्व के अनेक देशों को ऋण प्रदान किया। वहीं अमरीका ने 19वी शताब्दी में भारी मात्रा में ऋण लिया और 20वी शताब्दी में सबसे बड़ा ऋण देना वाला राष्ट्र बना।

20.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् हमे यह जान सकेगे कि–

- विदेशी पूंजी का भारत जैसे अल्पविकसित देशों के विकास में क्या योगदान रहा
- विदेशी पूंजी का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है
- विदेशी पूंजी के आगमन से क्या खतरे हो सकते है
- विदेशी विनियोग के मार्ग में क्या कठिनाइयां है और इससे क्या हानि हो सकती है।

20.3 दिशी पूंजी का भारत जैसे अल्पविकसित देशों के विकास में योगदान

(Contribution of foreign capital in the development of less developed countries like India)

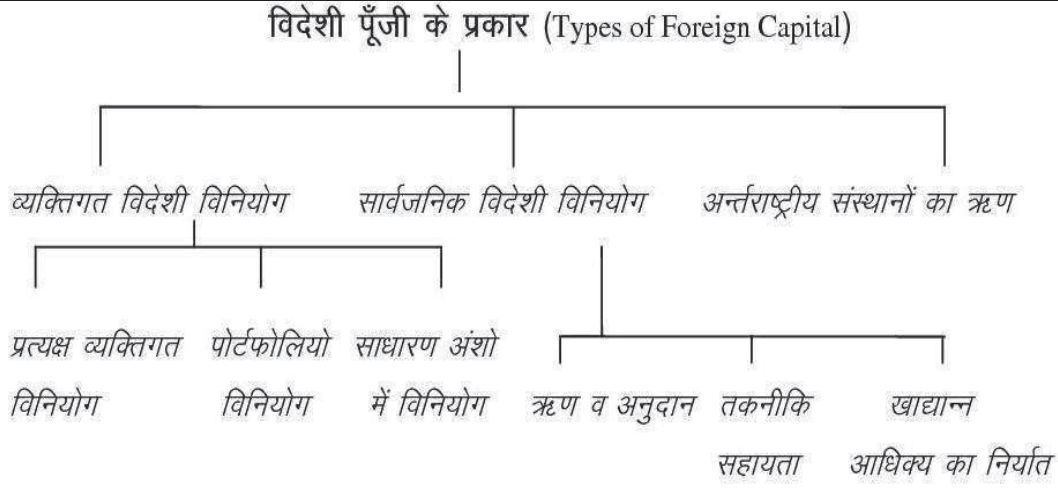

1.विदेशी राष्ट्रों से वास्तविक साधनों की प्राप्ति (Procurement of real real resources from foreign countries)-विकास के कार्यों में जहां घरेलू एवं बाहर साधन अपर्याप्त होते है उन्हे विदेशी सहायता से पूर्ण किया जा सकता है। कर, ऋण या मुद्रा प्रसार से बचत तो प्राप्त होती है परन्तु इससे वास्तवकि साधनों के उपयोग से वंचित

रहना पड़ता है। अतः राष्ट्रीय अतिरिक्त विनिमय द्वारा वित्तीय साधन जुटाकर वस्तुओं को प्राप्त करके उपभोग कर सकती है।

2.बाह्य मितव्ययियताओं का सृजन (Creation of external economies)- आमतौर पर तो बाह्य मितव्ययिताओं होने पर ही विदेशी पूंजी का आगमन होता है, परन्तु कभी कभी स्वयं विदेशी पूंजी भी देश की बाह मितव्ययिताओं के सृजन करने में सहायता प्रदान करती है। तथा विदेशी विनियोगों को आकर्षित करती है।

3.विनियोग कमी को पूर्ण करेन हेतु (To meet investment requirements)-– जिन देशों में आय का सृजन निम्न होता है, वहां घरेलु बचत भी कम होती है। ऐसे में करो एवं आन्तरिक ऋणों से जो राशि प्राप्त होती है वह विनियोग की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये अपर्याप्त होती है। ऐसी स्थिति में बाह्यय साधनों से सहायता लेना श्रेयस्कर होता है।।

4.लाभ अर्जित करना (To earn profits)– विदेशी विनियोजक अपने साथ कुशल विशेषज्ञ लाते है जिससे अविकसित एवं अर्द्ध विकसित देशों को लाभ प्राप्त होते है। इन कुशल विशेषज्ञों से प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान होती है। कालास्तर में यही विकसित देश अपने देश में विकास की योजनाएं बनाकर आर्थिक विकास करते है।

5.आर्थिक विकास की गति को बढ़ना (Accelerating the pace of economic progress)-– अद्धविकसित देश जो बिना बाह्य व्यापारी के प्र्याप्त मात्रा में विदेशी विनिमय अर्जित नही कर सकता, विदेशी पूंजी के माध्यम से विदशी विनिमय अपलब्ध कराके नवीन योजनाओं के प्रारम्भ को प्रत्साहित करती है।

6.स्वस्थ परम्परा का निमार्ण (Formation of healthy tradition)-– विदेशी पूंजी के विनियोजन से देश में स्वस्थ परम्परा का निमार्ण होता है। उससे आगमन से उद्योग प्रोत्साहित होते है और लाभ प्राप्त करते है जिससे विदेशी विनियोजन की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

7.सरकारी आय में वृद्धि (Increase in public revenue)-– विदेशी विनियोजन से प्राप्त होने वाले लाभ पर सरकार कर अन्य कर प्राप्त करती है जिससे सरकार की आय में वृद्धि होती है। अससे सरकारी न्याय में वृद्धि होता है जिससे देश के आर्थिक विकास में लगाया जा सकता है।

8.घरेलु अर्थव्यवस्था पर भार में कमी (Reduction in the strain of the domestic econmy)-– जब विदेशी पूंजी का प्रवेश नहीं हुआ होता है तो राष्ट्र की आय कम होने से विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विनियोग के साधन को जुटाने के लिये आन्तरिक उपयोग करना पड़ता है जिसका जनता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। परन्तु विदेशी पूंजी की सहायता से उपभोग को उच्चतम स्तर पर रखा जा सकता है। उपभोग ऊँचा होने से उत्पादन में वृद्धि होती है।

9.विदेशी उपयोगी वस्तुएं उपलब्ध होना (Availability of essential foreign goods) विदेशी विनियोजन से जनता को विदेशी उपयोग वस्तुएं सस्ते मूल्य पर सुविधापूवर्क उवलब्ध हो जाती है।

10.जीवन स्तर में वृद्धि करने हेतु(Increase in the standard of living)-– विकसित एवं अर्द्धविकसित देशो के मनुष्यों के जीवन स्तर में काफी अंतर होता है जो विश्वशान्ति के लिये एक खतरा है। अतः अर्द्धसिकसित देशों का तीव्र विकास होना आवश्यक है। बचत की दर कम न कर विदेशी पूंजीकी सहायता से जीवन स्तर में वृद्धि की ला सकती है।

11.भुगतान संतुलन की कमी को दूर करने हेतु (To remove the disequilibrium in the balance of payment)-– अर्द्ध विकसित देशों में तीव्र विकास से भुगतान संतुलन की कमी को उत्पन्न करता है। आर्थिक विकास व प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालने के अतिरिक्त अग्रांकित ढंगों से प्रत्यक्ष प्रभाव भी डालता है।

- विकास कार्यक्रमों को पूर्ण करेन के लिये भारी मात्रा में सामग्री की आयात किया जाता है।
- बहुत से कच्चे पदार्थ, जो पहले निर्यात किये जाते थे, अब उनका उपयोग देश में होने लगा है जिससे निर्यात में कमी व भुगतान संतुजन विपक्ष हो जाते है।

12.स्फीति रहित विकास (Development without inflation)-– विदेशी पूंजी सहायता से देश का मुद्र स्फीति रहित विकास किया जा सकता है। विदेशी पूंजी के अभाव में ही नार्थ प्रबन्धन करके विनियोजन के साधन जुटाया जाता है परन्तु इससे मुद्र प्रसार की स्थिति बन जाता है। विदेशी विनियोजन से विनियोग की कमी को पूर्ण किया जा सकता है। तथा स्फीतिक परहस्थतियों से बचा जा सकता है।

13.प्राविधिक ज्ञान, प्रबन्धकीय योग्यता आदि की कमी को पूर्ण करना (To fulfil the deficiency of technical and managerial ability)-– विदेशी पूंजी आमत्रंण करेन से प्राविधिक ज्ञान आदि की उपलब्धता भी हो जाती है। तकनीकि ज्ञान प्राप्त होने से औद्याोगिक उन्नतिसंभव हो जाती है।

14.जोखिम उठाना (Risk taking)-– विदेशी पूंजीपति जोखिम उठाकर नई उद्योग की स्थापना करते है। असफल होने पर यही पूंजी हानि सहन करने का साहस करता है। सफल होने पर घरेलु पूंजीपति भी उसी व्यवसाय को आरम्भ करके लाभ उठाते है।

15.अन्य लाभ (other merits) – अन्य लाभ जैसे रोजगार प्राप्त होना, उपभोग व बचत में वृद्धि होना, उत्पादन एवं लाभर को बढ़ाना आदि भी विदेशी पूंजी के आने से मिलता है।

20.4 विदेशी पूंजी का आर्थिक विकास पर प्रभाव
(Effect of foreign capital on economic development)

आर्थिक विकास के त्वरण हेतु विदेशी पूंजी का प्रवाह अनिवार्य है। यह औद्यौगिकीकरण, आर्थिक उपरिपूंजी व अधिक रोजगार के सुअवसर उत्पन्न करने में सहायता देती है। आर्थिक विकास पर विदेशी पूंजी के प्रभाव निम्न हैः–

1.**प्राविधिक ज्ञान का विस्तार** (Extension of technical knowledge)-– विदेशी सहायता से प्राविधिक ज्ञान में विस्तार होता है तथा देश के आर्थिक विकास में सहायता प्राप्त होती है। इसका विस्तार इन माध्यम से किया जा सकता है–

a *अर्द्धविकसित राष्ट्रों में रहने वाले कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर*

b *अर्द्धविकसित राष्ट्रों में नवीन शोध एवं प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना करके*

c *विदेशों के कुशल तकनीकि व्यक्तियों की सेवाएं प्राप्त करके।*

2.**घरेलु पूंजी को प्रत्साहन** (Promotion to domestic capital)-– विदेशी पूंजी से प्रोत्साहन पाकर देश में पूंजी निमार्ण को अभिप्रेरणा मिलती है जिसकी सहायता से नवीन उद्योगों की स्थापना की जा सकती है एवं आर्थिक विकास की गति को बढ़ाया जा सके।

3.**प्रारम्भिक व्यापारिक जोखिम** (Initial trade risk)-– अर्द्धविकसित राष्ट्रों के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में प्रायः उद्याोग की स्थापना में बहुत जोखित रहती है, जिसे विदेशी पूंजी के विनियोग से विदेशी पूंजीपतियों द्वारा सहन किया जाता है। व्यवसाय के सफल हो जाने पर बाद में देशी उद्योगपति धन विनियोग करके लाभ अर्जित करते है।

4.**रोजगार जीवन स्तर में वृद्धि** (Increase in employment and standard of living)– विदेशी पूंजी के प्रयोग न ही उत्पादन में वृद्धि होती है बल्कि रोजगार के नवीन अवसर भी खुल जाते है जिससे प्रतिव्यक्ति आय बढ़ती है और परिणामस्वरूप जीवन सतर में वृद्धि होती है।

5.**विदेशी विनियोक्ताओं को लाभ** (Advantages to foreign investor)-– विदेशी विनियोजकों को भी विदेशी पूंजी से लाभ प्राप्त होता है। अर्द्धविकसित राष्ट्रों में पूंजी विनियोजन के अधिक अवसर होते है। इसके लाभदायक उद्योग में पूंजी का विनियोजन सम्भव हो जाता है। साथ ही इन अर्द्धविकसित राष्ट्रों द्वारा आयात करके देश के उद्योगों को सदृढ़ बनाया जा सकता है।

6.**प्राकृतिक साधनों का पूर्ण विदोहन** (Full utilization of natural resources)-– अर्द्धविकसित राष्ट्रों में प्राकृतिक साधनों की अधिकतम दोहन नही हो पाता। विदेशी पूंजी की सहायता से कार्य संभव हो सकता है तथा देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से किया जा सकता है।

7.**पूंजीगत वस्तुओं से आयात की सुविधा** (Facilities to import capital goods)-– अर्द्धहवकसित राष्ट्रों में आर्थिक विकास के लिये भारी मात्रा में पूंजीगम वस्तुओं की आवश्यकता होती है जो विदेशों से आयात की जाती है और जिसके लिये भारी मात्रा में विदेशी मुद्र की आवश्यकता होती है तो विदेशी पूंजी की सहायता से ही प्राप्त की जा सकती है।

8.**स्थायी सम्पत्तियों का निमार्ण** (Formation of fixed assets)-– विदेशी पूंजी की सहायता से देश में बिजलीधर, सिचांई के साधनों, बांध आदि के रूप में स्थायी सम्पत्तियों का निमार्ण हो जाता है और लाभ में से भविष्य में पूंजी का भुगतान कर दिया जाता है।

9.**मुद्रा स्फीति पर रोक** (Check in inflation)-– विदेशी पूंजी मशीनों एवं तकनीकी सहायता के रूप में प्राप्त होने पर देश में मुद्र स्फीति के प्रभावों को रोका ला सकता है। इसका जनता एवं देश के आर्थिक विकास पर अच्छा प्रभाव डालते है।

10.**आन्तरिक स्थायित्व** (Internal stability)-– आन्तरिक स्थायित्व लाने में विदेशी पूंजी सहायक सिद्ध होती है। विकसित अर्थव्यवस्था में बचत से अधिक विनियोजन होने से उत्पादन की मात्रा बढ़ती है एवं आय में वृद्धि होती है। अर्द्धविकसित राष्ट्रों में बचत कम होने से विनियोजन कम होता है एवं आन्तरिक अर्थव्यवस्था में स्थायित्व का अभाव बना रहता है। विदेशी पूंजी आन्तरिक स्थायित्व लाकर देश के आर्थिक विकास को तीव्र करती है।

20.5 विदेशी पूंजी से होने वाले सम्भावित खतरें (Potential threats of foreign capital)

विदेशी पूंजी आयात करने से आयात करने वाले देश को निम्नलिखित खतरे उत्पन्न होने की सम्भावना होती है।

- **घरेलु पूंजी को खतरा** (Danger to domestic capital)-– अर्द्धविकसित राष्ट्रों से उपलब्ध होता है जिनका व्यावसायिक प्राविधक स्तर अपेक्षाकृत काफी ऊँचा रहता है। इस कारण घरेलु पूंजी को खतरा हो जाता है क्योंकि वह विदेशी पूंजी से प्रतिर्स्पद्धा में नही टिक पाती।
- **देश की सुरक्षा को खतरा** (Danger to country's defence)-– विदेशी पूंजी पर निर्भर रहना देश के लिये खतरा उत्पन्न कर सकता है क्योंकि संकट की स्थिति में जब कभी देश को अधिक पूंजी की आवश्यकता होगी, ऐसे में विदेशी पूंजीपति अपनी पूंजी की रक्षा करने के लिये उसे विदेश सें वापस ले जाने का प्रयास करते है। सरकार के कठोर नियन्त्रण न होने पर समस्त पूंजी विदेश में वापस चली जाने का भय होता है। यदि विदेशी पूंजी देश की आधारभूत उद्योग और परियोजनाओं में विनियोजन है तो स्थिति अत्यन्त गंभीर हो जाती है।
- **आथिक मूल्य वसूल करना** (Realizing high price)-– विकसित राष्ट्र अक्सर अर्द्धविकसित देशों कर मजबूती का लाभ उठाते है जो अपनी परियोजनाओं और विनियोग के लिये विदेशी पूंजी और उनके प्राविधिक ज्ञान पर निर्भर रहते है। ऐसे में विकसित देश इन मशीनों और प्राविधिक सेवाओं का अधिक मूल्य वसूल करने का प्रयास करते है जिससे देश में अन्य वस्तुओं के मूल्य अनावश्यक रूप में बढ़ जाते है।
- **पक्षपात एवं भेदभावपूर्ण नीति** (Policy of discrimination)-– विदेशी पूंजी के सहयोग से स्थागित औद्योगिक संस्थाओं में उच्च पद पर प्रायः विदेशी को ही नियुक्त किया जाता है जौ सदैव पक्षपात एवं भेदभावपूर्ण नीति का अनुसरण करते है तथा देश के कर्मचारियों को प्रशिक्षण एवं अनुभव से वंचित रहना पड़ता है।
- **राजनैतिक प्रभुत्व** (Political pressure)-– व्यापार के साथ ध्वजा चलती है, यह कथन विश्व के अनेक राष्ट्रों का इतिहास बताती है कि विदेशी पूंजी के आयात से देश आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से पराधीन हो गये। अतः देश के राजनैतिक प्रभुत्व पर एक खतरा उत्पन्न हो जाता है।

- **पूंजी निमार्ण को खतरा** (Danger to capital formation)-– जब विदेशी पूंजी आती है तो बहुत सा धन ब्यांज व लाभ के भुगतान के रूप में विदेशों को चला जाता है जिससे देश में पूंजी निमार्ण का अभाव बना रहता है। पूंजी निमार्ण न होने पर विकास कार्यक्रम को आगे नही बढ़ाया जा सकेगा।
- **देश का असन्तुलित विकास** (Unbalanced growth of country)-– विदेशी पूंजी का मूलतः प्रयोग अर्द्धविकसित देशो में उद्योगों में विनियोजन के रूप में किया जाता है निमें लाभ की मात्रा अधिक होती है। फलस्वरूप, देश के आवश्यक व आधारभूत उद्योगों की उपेक्षा की जाती है। इससे देश की औद्यौगिक विकास असन्तुलित रह जाता है।
- **आर्थिक शक्ति का विदेशियों के हाथों में केन्द्रीयकरण** (Concentration of economic powers in the hands of foreigners)-– विदेशी पूंजी के आगमन से देश के उद्योग धन्धों पर विदेशियों का ही प्रभुत्व हो जाने से लाभ की आशा से उद्योगों का संचालन किया जाता है जिससे देश के हितो की अवलेहना की जाती है। इससे आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण विदेशियों के हाथों में आ जाता है और वे अपनी इच्छानुसार मनमानी ढंग से उद्योग का उत्पादन करके शोषण करने का प्रयास करमे है। इससे देश का विकास देश के हित में न होकर विदेशियों के हित में किया जाता है।

20.6 विदेशी पूंजी का सीमाएं (Limitations of Foreign capital)

जिन देशों में विदेशी पूंजी के शक्ति का उपयोग करने का सामर्थ्य नही होता था फिर अभाव होता है वहां विदेशी पूंजी सहायक सिद्ध लही है। पाती किसी भी अर्द्ध विकसित राष्ट्र में विदेशी पूंजी का रखने का अभाव अनेक कारणों से हो सकता है।

1 यदि राष्ट्र में पूर्व सुनियोजित एवं पहले से सोची हुयी सुनिश्चित योजना का अभाव हो
2 विदेशी पूंजी को उनभोग करने वाले उचित, कुशल प्रशासकों, प्रबन्धक एवं प्राविधिक ज्ञान का सर्वथा अभाव रहा हो।
3 यदि घरेलु श्रमिकों के लिये प्रशिक्षण देना कठिन हो या उन्हे उद्योग के अनुरूप बनाना कठिन हो।
4 देश की सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाएं उत्पादन की नवीन प्रणाली को अपनाने में असमर्थ हो।
5 देश में परिवहन व संचार के साधनों के अलावा विद्युत, एवं अन्य ज्ञनोपयोगी सेवाओं की कमी के कारण विदेश पूंजी का उत्पादक व भारी उद्योग में विनियोग करना सम्भव न हो।

20.7 विदेश पूंजी से होने वाली हानियां (Disadvantages of foreign capital)

विदेशी पूंजी से जहां अनेकों लाभ प्राप्त होते है, वहीं उससे होने वाली हानियां भी कम नहीं है।

1.सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की विदेशी विनियोजकों पर निर्भरता (Dependency of the entire economy on the foreign investors)- देशवासी अपने निवार्ह के लिये विदेशियों की पूंजी पर निर्भर हो जाती है। पूंजी उधार देने वाले राष्ट्र के व्यापार चक्र का प्रभाव ऋण लेने वाले राष्ट्र पर भी पड़ता है।

2.घरेलु नियोक्ताओं को बाहर करने का भय (Danger of expelling the internal investors)-– अनियन्त्रित स्वतन्ा देने पर डर बना रहता है कि विदेशी विनियोक्ता घरेलु विनियोक्ताओं को क्षेत्र से बाहर न कर दें क्योंकि घरेलु ऐतिहासिक कारणो से अधिक होती है, परन्तु यदि समान सुविधाएं दी जाती है। ''विनियोक्ता विदेशी पूंजीपति से कम कुशल होते है। विदेशी विनियोक्ता की कार्यकुशला तो घरेलु विनियोक्ता भी विदेशी विनियोक्ताओं के समकक्ष हो सकते है।

3.विदेशी पूंजी राष्ट्र का शोषण करना (Exploitation of the country through foreign capital)-– भूतकाल में विदेशी पूंजी ने देश का शोषण किया और प्राप्त लाभो को विनियोग करने वाले देशों को दे दिया गया। प्रायः यह देखा गया है कि विदेशी पूंजी का विनियोग अर्द्धविकसित देशों में एसै उद्योगों में प्रयोग किया जाता जिससे कच्चा माल का उत्पादन अधिक बढ़ सके जिसे विदेशी देशों के उद्योगों के लिये निर्यात किया जा सके। विदेशी पूंजी द्वारा राष्ट्र का शोषण किया गया जिसमें उनके महज स्वार्थ की भावना ही दिखाई दी। अविकसित देशों का विकास पिछड़ा ही रह गया। अर्थ विकसित देशों की अर्थव्यवस्था प्रायः दोहरी आर्थिक संरचना की कठनाइयां उपस्थित करती है, एक ओर निर्यात के लिये उत्पादन किये जाने वाले बाजार के उत्पादन के लिये निम्न उत्पादकता वाला क्षेत्र है।

4.विदेशी विनियोग का खातों आदि में विकेन्द्रीकरण (Concentration of foreign investment in mines. etc)-– विदेशी पूंजी प्रायः खानों आदि जैसे व्यवसायों में ही केन्द्रित रही क्योंकि इसके उत्पादन निर्यात किये जाते है जिससे विदेशी मुद्र अर्जित की जाती है और इनमें प्राप्त लाभ विदेशों पूंजी का विनियोग ऐसे उद्योग में किया जाय जिसका माल घरेलु बाजार में बिकता हो तो आयात पर विर्भरता कम हो जायेगी और विदेशी विनिमय की बचत होगी। विदेशी पूंजी को निर्यात उद्योगों में केन्द्रित करने से एक तरफा विकास संभव हो सकेगा।

5.विदेशी पूंजी का नियतिक उद्योगों में विनियोग (Investment of foreign capital in export industries)-– विदेशी शासक का यह स्वार्थ होता है कि वे नियति उद्योागों में ही विदेशी पूंजी लगाये क्योंकि परिवहन साधनों का विकास बन्दगाह और मुख्य व्यापारिक केन्द्रों पर उनका ध्यान आकृष्ट रहता है न कि देश के आन्तरिक भाग में परिवहन के साधनों पर। रेल का विकास, भारत में इस बात की पुष्टि करता है। अंग्रेजो को कच्चामाल ले जाने तथा निर्मित माल का आयात करना अति सुविधाजनक हो गया। इससे ब्रिटिश उद्योगों के विकास को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता रहा है।

6.विदेशी पूंजी का बुरा अनुभव (Bad experience of foreign capital)-– भूतकाल में विदेशी पूंजी का खराब अनुभव रहा है जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा है। यह राष्ट्रीय सरकार विदेशी पूंजी को विनियोजित एवं नियन्त्रित ढंग से आमन्त्रित करे तो बुरे प्रभावों से बचा जा सकता है, परन्तु इसके साथ ही इस बात पर भी ध्यान देना है कि देश में ऐसे नियम न बना दिया जाये जिससे विदेशी पूंजी के आगमन पर एकदम रोक लग जाय और देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़े।

7.देश की राजनीति में हस्तक्षेप (Interference in the Politics of Country**)**–यदि विदेशी पूंजी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तो इससे देश की राजनीति पर प्रभाव अवश्य पड़ेगा। राजनीति पार्टियों को चन्दा देकर भी राष्ट्रों को गुट में मिलाने का प्रयास किया जाता है। व्यापार के साथ–साथ ध्वजा भी आने से राजनीति हस्तक्षेप बढ़ जाता है।

8. घरेलू विनियोजकों के क्षेत्र में ह्रास (decline in the domestic investors**)**–विदेशी पूंजी को देश के सर्वाधिक लाभदायक कार्यों में विनियोग किया जाता है। जिससे घरेलू विनियोजकों को पूंजी के विनियोग करने का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता। इससे देश में उद्योगों के विकास को पूर्ण अवसर प्राप्त नहीं हो पाते है और देश पिछड़ जाता है।

9.भेदभावपूर्ण व्यवहार (discriminatory treatment **)**– विदेशी पूंजीपति देश के श्रमिकों एवं योग्य व्यक्तियों को अपने राष्ट्र के लाभार्थ उपयोग करते है। इससे देश के उद्योगों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता और वे पिछड़ जाते है।

10.घरेलू मांग सम्बन्धी माल का उत्पादन न करना (non production of goods for domestic demand**)**–_विदेशी पूंजी का उपयोग प्रायः घरेलू मांग सम्बन्धी माल की पूर्ति हेतु नहीं किया जाता है, जबकि इन उद्योगों को लघु पैमाने व छोटी मात्रा की पूँजी से ही प्रारम्भ किया जा सकता है। विदेशी पूँजीपति इन उद्योगों में पूँजी लगाने की नहीं सोचता। यह राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए हानिकारक हो सकती है। इसका मुख्य कारण स्थानीय बाजार का अभाव था।

11.लाभ की ऊँची दर (High Rate of Profit**)**–विदेशी पूँजी जिन उद्योगों में विनियोजित की जाती है उनकी लाभ की दर काफी ऊँची होती है। जबकि अन्य उद्योगों में लाभ की दर इतनी अधिक नहीं होती। लाभ की ऊँची दर रखने से वस्तुओं के उत्पादन की लागत बढ़ जाती है और इसके परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते है और देशवासियों को हानि उठानी पड़ती है।

इस प्रकार *''विदेशी व्यापारिक उपक्रम देश के विकास में किस सीमा तक सहायता करता है, यह इस बात पर निर्भर नहीं होता कि यह कार्य नियति के लिये है या घरेलु उपयोग के लिये। यह इस बात पर अधिक निर्भर करता है कि यह श्रमिक व अन्य स्थानीय साधनों की कितनी मांग बढ़ाता है, अपने लाभों को कितना पुर्नीविनियोग करता तथा अन्य घटकों का इस पर प्रभाव पड़ता है।''*

20.8 पूँजी से सम्बन्धित सावधानियाँ (Precautions relared to Foreign Capital)

विदेशी पूँजी जितना देश के आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होती है उतनी ही उससे होने वाली हानियां खतरा उत्पन्न कर सकती है। अतः विदेशी पूंजी को आमन्त्रित करने से पहले कुछ सावधानियां बरत लेनी चाहिए जिससे वे खतरे देश के आर्थिक विकास में बाधक न बनें।

(1) आन्तरिक बचत में योगदान एवं प्रोत्साहन मिल सके।

(2) विदेशी पूंजी का उपयोग अपने देश की विधि व कानून द्वारा ही होना चाहिए।

(3) विदेशी पूंजी का उपयोग करते समय देश का आर्थिक विकास ध्यान में होना चाहिए।

(4) विदेशी पूंजी का उपयोग देश की आवश्यकताओं के अनुरूप ही होना चाहिए ताकि जनता की

आवश्यकता को शीघ्रता से पूर्ण किया जा सके।

(5) देश को वर्तमान में लाभ हो सके और भविष्य में दीर्घकाल तक उस पर निर्भरता न बनी रहे यह भी

ध्यान देना चाहिए।

(6) विदेशी पूंजी का आगमन उपभोक्ता सामग्री एवं प्राविधिक सहयोग के रूप में प्राप्त करने का प्रयास

किया जाना चाहिए।

(7) उन देशों को अधिकाधिक निर्यात किया जाना चाहिये जिनसे भारी मात्रा में विदेशी पूँजी ली गयी हो

जिससे जल्द–जल्द चुकाया जा सके।

(8) विदेशी पूंजी लेने वाले राष्ट्र को ऋण व ब्याज दोनो को वापस करने सम्बन्धी उचित प्रबन्ध करने

का प्रयास करना चाहिये जिससे अदायगी सरलता से की जा सके।

20.9 सारांश

भारत जैसे अल्पविकसित देश में पूंजी की कमी रही है। विकास की गति तीव्र करने के लिये पूंजी की अवश्यकता में वृद्धि हुयी है और चूंकि आप की वृद्धि के साथ बचत में तदनुरूप वृद्धि नहीं होती, इसलिये विदेशी पूंजी इस कमी की पूर्ति कर सकती है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि विदेशी पूंजी ने आर्थिक विकास और औद्योगिकीकरण में महत्वपूर्ण भाग अदा किया है। लेकिन विदेशी पूंजी की उपलब्धता से आर्थिक विकास संभव नहीं हो सकता। इसके लिये देश की बचतें होना भी आवश्यक है। आर्थिक विकास के लिये अत्यावश्यक परियोजनाओं (Project) के लिये वित्त प्रबन्ध करने के उद्देश्य से घरेलू बचतें जुटानी कठिन हो जाती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में स्वयं पूंजी बाजार ही अल्पविकसित होता है। इस अवधि में, जबकि पूंजी बाजार में सुधार हो रहा हो, अस्थाई उपाय के रूप में विदेशी पूंजी अत्यावश्यक होती है। विदेश पूंजी के

साथ कई दुर्लभ उत्पादक तत्व जैसे तकनीकि जानकारी, व्यापारिक अनुभव और जान भी प्राप्त होते है, जो आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते है।

20.10 शब्दावली

a) सृजन	Creation
b) प्रबन्धकीय योग्यता	Managerial Ability
c) विनियोजक	Inventor
d) आन्तरिक स्थायित्व	Internal Stability
e) शोषण	Exploitation
f) हस्तक्षेप	Interference

20.11 संदर्भ सहित ग्रन्थ

1) डॉ. जे.पी. मिश्रा संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र *साहित्य भवन पब्लिकेशन्स,* आगरा 2012

2) दत्त एवं सुन्दरम भारतीय अर्थ व्यवस्था, *एस. चंद पब्लिकेशन्स,* नईदिल्ली, 2012

3) एल.एन. कोली भारतीय अर्थव्यवस्था *लक्ष्मी नारायन अग्रवाल,* आगरा 2007

4) कुमार सर्वेश भारतीय अर्थव्यवस्था, *सार्थक प्रकाशन,*दिल्ली, 2011

5) डा0 जे0सी0 पन्त एवं जे0पी0 मिश्रा अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

20.12 सहायक उपयोगी सामग्री

- Bimal Jalan : India's Economic Policy : Preparing for the Twenty-First Century *Penguin Books India* , 2000
- Waquar Ahmed, Amitabh Kundu, Richard Peet: India's New Economic Policy: *Taylor &Francis* US, 2010
- Prem Sagar Gupta: Foreign capital in India, People's Pub. House, 1952
- R. K. Uppal: Economic Reforms in India: A Sectoral Analysis
- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India.
- Singh, S.P.((2010)EconomicsofDevelopment & Planing theory & practice ,S&Chand Publishing House .
- Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons.

- Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya.

20.11 लघुउत्तरीय प्रश्न

1) विदेशी पूंजी किसे कहते है
2) विदेशी पूंजी क्यों आवश्यक है
3) विदेशी पूंजी राष्ट्र का किस प्रकार शोषण कर सकती है

20.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक अर्द्धविकसित देश के आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी की भूमिका की समीक्षा कीजिये।
2. आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी की भूमिका की व्याख्या की कीजिये इसके प्रयोग में क्या–क्या सावधानियां बरतनी चाहिए।

इकाई –21. मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास

इकाई की संरचना

21.1 प्रस्तावना

21.2 उद्देश्य

21.3 मानव पूँजी निर्माण की अवधारणा

21.4 शिक्षा, शोध एवं ज्ञान की आर्थिक विकास में भूमिका

21.5 मानव पूँजी निर्माण अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण का महत्व

21.5.1 शोध एवं विकास

21.5.2 बौद्धिक पूँजी निर्माण

21.5.3 बौद्धिक पूँजी निर्माण अथवा कौशल निर्माण के स्त्रोत

21.6 मानव पूँजी निर्माण के उपाय

21.7 मानव पूँजी में विनियोग की सीमाएँ

21.8 भारत में मानव संसाधन विकास अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण

21.9 आर्थिक विकास में मानवीय पूँजी की भूमिका

21.10 राष्ट्रीय पोषण नीति

21.11 भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक

21.12 सारांश

21.13 शब्दावली

21.14 संदर्भ सहित ग्रन्थ

21.15 सहायक उपयोगी सामग्री

21.16 लघु उत्तरीय प्रश्न

21.17 निबन्धात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पूँजी संसाधन एवं आर्थिक विकास के मध्य सम्बंधों को दर्शाया। आर्थिक विकास न मात्र पूँजी निर्माण द्वारा प्रभावित होता है वरन् मानव संसाधन भी आर्थिक विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते है। प्रस्तुत इकाई इसी पर प्रकाश डालेगी।

आर्थिक विकास एक यान्त्रिक क्रिया मात्र ही नहीं वरन् अंतिम रूप से यह एक मानवीय उपक्रम है। मानव संसाधन विकास, मानव पूँजी निर्माण अथवा कौशल निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानव शक्ति के विकास हेतु प्रचुर मात्रा में मुद्रा निवेश किया जाता है ताकि देश की मानव शक्ति तकनीकी ज्ञान योग्यता एवं कुशलता की दृष्टि से विशिष्टता प्राप्त कर सके।

यदि किसी देश की जनसंख्या उसके आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप है और उसके निवासी विवेकशील परिश्रमी, शिक्षित व कार्य दक्ष है तो निःसन्देह अन्य बातों के समान रहने पर उस देश का आर्थिक विकास अधिक रहेगा। इस प्रकार मानव पूँजी निर्माण, मानव में विनियोजन और उसके सृजनात्मक तथा उत्पादक साधन के रूप में विकास से सम्बद्ध है।

21.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह ज्ञात कर सकेंगे कि–

(1) मानव संसाधन की क्या अवधारणा है।
(2) बौद्धिक पूँजी निर्माण की आवश्यकता क्यों है
(3) शिक्षा, शोध एवं ज्ञान की आर्थिक विकास में क्या भूमिका है
(4) मानव पूँजी निर्माण का क्या महत्व है
(5) मानव पूँजी निर्माण के क्या स्त्रोत है
(6) मानवीय विनियोग के क्या क्षेत्र है
(7) मानव पूँजी निर्माण के क्या उपाय है
(8) मानव पूँजी में विनियोग की सीमाएं
(9) भारत में मानव संसाधन विकास

21.3 मानव पूँजी निर्माण की अवधारणा

मानव पूँजी निर्माण से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों को प्राप्त करना तथा उनकी संख्या में वृद्धि करना है जो कुशल, शिक्षित तथा अनुभवी हों, जिनकी देश के आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिये नितान्त आवश्यकता होती है। इस प्रकार मानव पूँजी निर्माण, मानव में विनियोजन और उसके सृजनात्मक तथा उत्पादक साधन के रूप में विकास से सम्बद्ध है। सरल शब्दों में यदि कहा जाय तो ऐसा कोई भी विनियेाग जो मानव शक्ति की शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण, कार्यकुशलता तथा जीवन स्तर में वृद्धि करता है उसे मानव संसाधन के विकास अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण में किया गया सक्रिय विनियोग समझा जाता है। मानव संसाधन जन समुदाय की कुशलता, गुणों एवं प्रवृत्तियों से परिभाषित होता है।

पर्याप्त व श्रेष्ठतम मानव पूँजी उपलब्ध होने से देश की भौतिक पूँजी भी अधिक उत्पादक बन जाती है। वहीं विपरीत परिस्थिति में जब किसी देश में मानव पूँजी का अभाव

है तब भौतिक पूँजी का भी लाभपूर्ण उपयोग नहीं हो पाता, मशीने रूक जाती है, उपकरणों की घिसावट समय से पहले होने लगती है और परिणामस्वरूप उपज की किस्म व उत्पादकता का स्तर गिर जाता है।

बैबलन के अनुसार, प्रौद्योगिकीय ज्ञान तथा कुशलता समाज की *''अभौतिक उपकरण तथा अमूर्त सम्पत्ति ''* है जिसके बिना भौतिक पूँजी उत्पादकपूर्वक प्रयोग में नहीं लायी जा सकती। अल्पविकसित देशों में धीमी वृद्धि के लिये उत्तरदायी मानव पूँजी में निवेश की कमी है। आर्थिक पिछड़ापन दूर करने और प्रगति, क्षमताएँ व प्रोत्साहन उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि लोगों के ज्ञान व कुशलता में वृद्धि की जाय। वास्तव में मानव साधन के गुण में सुधार किये बिना अल्पविकसित देशों में कोई प्रगति सम्भव नहीं।

संकुचित अर्थ में बौद्धिक पूँजी निर्माण का अर्थ है, मानव की शिक्षा तथा प्रशिक्षण पर व्यय करना जबकि विस्तृत अर्थ में, खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा समस्त सामाजिक सेवाओं पर किये जाने वाले व्यय से लगाया जाता है।

21.4 शिक्षा, शोध एवं ज्ञान की आर्थिक विकास में भूमिका

किसी देश का आर्थिक विकास उसकी कार्यकुशलता, शिक्षित एवं प्रशिक्षित श्रम शक्ति पर निर्भर करता है। विवेकशील, परिश्रमी, शिक्षित व कार्यदक्ष निवासी होने पर किसी भी देश का आर्थिक विकास सकारात्मक होगा। कुशल मानव पूँजी के अभाव में भौतिक पूँजी का समुचित उपयोग न हो सकेगा जिससे लाभ पूर्ण रूप से नहीं मिल सकेगा। ऐसा इस कारण है कि मशीनें रूक जाती है उपकरण समय से पूर्व घिसने लगते है और उपज की किस्म व उत्पादकता का स्तर गिर जाता है। मानव साधन के गुणों में सुधार करके, उनके ज्ञान व कुशलता में वृद्धि करके आर्थिक पिछड़ेपन को दर किया जा सकता है, प्रगति, क्षमताएं व प्रोत्साहन बनाये रखने के लिये शिक्षा, शोध एवं ज्ञान में वृद्धि परम आवश्यक है।

अतितदास गुप्त के अनुसार, ''शिक्षा को आबण्टित किये गये साधन उत्पादकीय क्षमता को बढ़ाने में सहायक होते है, अतः शिक्षा तथा अन्य आधार संरचना निवेश सिद्धान्त के आवश्यक अंग है।''

आर्थिक विकास के लिये शिक्षा एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। **प्रो0 मिर्डल** के शब्दों में *''बहुत बड़ी जनसंख्या को निरक्षर छोड़कर राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम शुरू करने की बात मुझे निरर्थक मालूम पड़ती है।''*

कुशल श्रमिक एवं अकुशल श्रमिक में यह अंतर है कि एक अकुशल श्रमिक द्वारा अधिक देर तक काम करने से उनकी प्रति व्यक्ति आय कम होगी। निरक्षर तथा अप्रशिक्षित व्यक्तियों से जटिल मशीनों की देखरेख नहीं करानी चाहिये।

जैफ रनेज ने यह लक्ष्य किया है कि आर्थिक प्रगति के लिये प्रयासरत देश जब विकसित देशों से आधुनिक तकनीक व नवीनतम मशीनरी का आयात करते है और विशालकाय प्लाण्टों को खड़ा करते है, तो भी उत्पादन प्रायः सन्तोषजनक नहीं होते। इसके पीछे स्पष्ट कारण है कि प्रबन्धक तथा श्रमिक अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित होते है और साथ ही अनुभवहीन थी।

प्रो0 सिंगर के अनुसार जो विनियोग शिक्षा एवं ज्ञान पर किया जाता है वह विनियोग केवल उत्पादक ही नहीं वरन् बढ़ता हुआ प्रतिफल भी देता है। विकसित देशों द्वारा शिक्षा, अनुसन्धान पर अधिक महत्व दिया जाने के पीछे यही कारण है। नवप्रर्वतनों की भूमिका का अंदाजा यहीं से लगा लिया जाता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील देशों द्वारा योग्य एवं प्रशिक्षित श्रमिकों तथा तकनीकशियनों पर बल देने से आर्थिक विकास सम्भव हो सका है। अमेरिकी अर्थशास्त्रियों जैसे **शुल्ज, हार्बिन्सन, डैनिसन, कैण्ड्रिक व कुजनेट्स** आदि के अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था की तीव्र वृद्धि के लिये मुख्य रूप से शिक्षा पर किया गया विनियोग ही उत्तरदायी है। शिक्षा पर खर्च किया गया एक डालर अपेक्षाकृत कई गुना वृद्धि करता है।

इस तरह विकास की प्रक्रिया में शिक्षा का महत्व एक गैर विवाहित सत्य है। आज विश्व के देशों में मानव पूँजी में निवेश हेतु उच्च प्राथमिकता दी जाती है। मानव पूँजी में निवेश से तात्पर्य संकुचित अर्थों में शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर व्यय करना है, जबकि व्यापक अर्थों में, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सभी सामाजिक सेवाओं पर व्यय करने से लगाया जाता है। शिक्षा सम्बन्धी विनियोग मुख्यतः निम्न तीन क्षेत्रों में किये जा सकते हैः–

(1) कृषि विस्तार सेवाओं की व्यवस्था करने

(2) औद्योगिक कौशल को उन्नत करने तथा

(3) प्रशासकीय एवं प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि करने हेतु

निष्कर्ष रूप में, यह कह सकते है कि मानव पूँजी में विनियोग के औचित्य व महत्व को आज निर्विवाद रूप में स्वीकार किया जा चुका है, परन्तु अल्पविकसित देशों में मानवीय विनियोग की अपनी कुछ सीमाएं हैं, जिनके कारण इन देशों में वांछित दर से कौशल निर्माण नहीं हो पाता।

21.5 मानव पूँजी निर्माण अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण का महत्व (Importence of Human Capital Formation or Intellectual Capital Formation)

किसी देश की जनसंख्या का जितना अधिक हिस्सा शिक्षित, कुशल एवं प्रशिक्षित होकर रोजगार में लगा हुआ है, वह देश उतना ही तेजी से विकास करेगा। जैसा कि प्रो0 गेलब्रेथ का विचार है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास में अनेक साधनों के अलावा शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय का सर्वाधिक योगदार रहा है। उन्हीं के शब्दों में ''अब हमें अपनी औद्योगिक वृद्धि का एक बड़ा भाग अधिक पूँजी के विनियोग से नहीं मिलता है बल्कि वह मनुष्यों में निवेश और परिष्कृत मनुष्यों द्वारा किये गये सुधारों के कारण प्राप्त होता है।'' इस तरह आर्थिक विकास की दृष्टि से भौतिक पूँजी की अपेक्षा मानव पूँजी को कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि मानवीय साधनों की कुशलता एवं दक्षता पर ही आर्थिक विकास का ढांचा खड़ा किया जा सकता है।

व्यापक अर्थों में पूँजी निर्माण से आशय श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि करना है। कुजनेट्स ने इसकी पुष्टि करते हुये व्यक्त किया कि मुख्य पूँजीगत स्टॉक लोगों का प्रशिक्षण, चरित्र एवं कार्यकुशलता है। **एडम स्मिथ** ने भी इस विषय में कहा, *''पूँजी के*

स्टॉक में सब निवासियों की अर्जित तथा उपयोगी योग्यताओं को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये।'' अर्थशास्त्री **मार्शल** ने भी व्यक्त किया, *''सबसे मूल्यवान पूँजी वह है जो मानव मात्र में विनियोजित की जाय।''*

यह कहना उचित है कि किसी देश के सर्वागीण विकास के लिये वहाँ के मनुष्यों का निपुण, ज्ञानी और बुद्धिमान होना आवश्यक होता है। अविकसित मानव संसाधन ही अल्पविकसित राष्ट्र के विकसित होने में बाधक है। इनके मानव संसाधन न कौशल में निपुण, न चातुर्य में जिस कारण आधुनिक भौतिक पूँजी का समुचित उपयोग उत्पादन में प्रयुक्त नहीं हो पाता। मानव संसाधन के विकास पर ध्यान न देकर भौतिक साधनों पर ही ध्यान देना श्रेयस्कर नहीं होगा। अतः मनुष्य में निवेश करना उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि भौतिक पूँजी में।

श्रेष्ठतम मानव पूँजी की उपलब्धता उस देश की भौतिक पूँजी को भी उत्पादक बना देती है। अल्पविकसित देशों को विकसित बनने के लिये भौतिक संसाधनों के साथ–साथ मानव संसाधन का विकास भी करना होगा। आज के युग में मानव पूँजी में विनियोग अथवा मानव संसाधन का विकास आर्थिक विकास की एक प्रमुख शर्त एवं पूर्व आवश्यकता बन चुकी है।

21.5.1 शोध एवं विकास

प्रो0 शुम्पीटर के अनुसार प्राविधिक प्रगति से आशय, अर्थव्यवस्था में उत्पादन साधनों के ऐसे संयोग का प्रवेश है जो पहले सम्भव नहीं था अथवा प्रयुक्त नहीं किया था। वह एक ऐसी वस्तु है जिसे आन्तरिक साधन के रूप में प्रवेश दिया जाता है और जो अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर आर्थिक संक्रान्ति की प्रक्रिया के लिये उत्तरदायी होती है।''

शोध, प्राविधिक परिवर्तन आर्थिक प्रगति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। **प्रो0 किण्डलबर्गर** के शब्दों में *''प्राविधिक प्रगति का अर्थ किसी व्यवसाय में प्रयुक्त ज्ञान और वास्तविक उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन है।''* तकनीकी प्रगति में योगदान देने वाले विभिन्न तत्वों के सापेक्ष महत्व और स्वयं प्रगति की रफ्तार भी विभिन्न देशों में उनकी विकास अवस्थाओं तथा सामाजिक, आर्थिक शक्ति के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है।

तकनीकी प्रगति के चार मुख्य स्त्रोत निम्नलिखित है–

(1) देश की जनता की अन्वेषणकारी तथा नवप्रवर्तनकारी क्रियाएँ

(2) विदेशी व्यापार, विदेशी सहायता अथवा सम्पर्क आदि विभिन्न माध्यमों से विदेशी से सुधारी हुयी तकनीकों का आयात

(3) **'करने द्वारा सीखना' (Learning By Doing)** अर्थात् देश के श्रमिकों, प्रबन्धकों, मालिकों का उत्पादन कार्यों में व्यावहारिक अनुभव और सीख।

(4) मानवीय पूँजी में निवेश अर्थात् देश की जनता तथा श्रमिकों की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा निपुणता में सुधार।

शुम्पीटर के अनुसार प्रगति रचनात्मक विनाश की प्रक्रिया का परिणम है। विदेशी तकनीको को आत्मसात करके देश का विकास किया जा सकता है। इसे **''सांस्कृतिक विकरण प्रक्रिया''** कहा जाता है। आज के विकसित समाज की प्रमुख विशेषता तकनीकी

प्रगति है इस बहुमुखी प्रक्रिया के अन्तर्गत नयी तकनीकें, नयी मशीनें, परिवर्तित कार्यकुशलता तथा उत्पादकता आदि सम्मिलित है। **प्रो0 कुजनेट्स ने तकनीकी विकास के विभिन्न सोपानों को निर्धारण इस प्रक्रार किया है:–**

(1) वैज्ञानिक खोज अथवा तकनीक में वृद्धि

(2) आविष्कार

(3) आविष्कार का आर्थिक उत्पादन में प्रयोग

(4) नव प्रवर्तन का अधिकाधिक प्रसार एवं उसमें सुधार।

आज के आधुनिक अर्थव्यवस्था में विकसित होने की प्रक्रिया में देश शामिल है और निरन्तर सुधार की प्रक्रिया में लगे है। शोध एवं अन्वेषण आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक का आधार है और आधुनिक तकनीक आर्थिक प्रगति का आधार है।

21.5.2 बौद्धिक पूँजी निर्माण (Intellectual Capital Formation)

एक विवेकशील मानव पूँजी देश की अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गतिशील बनाने तथा उपलब्ध संसाधनों का युक्तिपरक विदोहन करने में सक्षम होती है। अधिक शिक्षित, एवं तकनीक ज्ञान से युक्त जनसंख्या से देश का विकास तेजी से होता है। बौद्धिक सम्पदा के रूप में इंजीनियर, तकनीकी प्रशिक्षक, प्रबन्धकीय और शासकीय सेविवर्ग, वैज्ञानिक, चिकित्सक व कृषि विशेषज्ञ होने पर भौतिक पूँजी अधिक उत्पादक बन जाती है। इन्हीं कारणों से वर्तमान में समस्त देश अपने उपलब्ध संसाधनों की सहायता से बौद्धिक पूँजी निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न है। मुद्रा का नागरिकों की क्षमता एवं कुशलता में वृद्धि करने हेतु निवेश किया जा सकता है। इससे बौद्धिक पूँजी निर्माण होता है।

वैबलन के अनुसार, प्रौद्योगिकीय ज्ञान तथा कुशलता समाज के अभौतिक उपकरण तथा अमूर्त सम्पत्ति है जिसके बिना भौतिक पूँजी उत्पादकतापूर्वक प्रयोग में नहीं लाई जा सकती है। इसी कारण अल्पविकसित देश पर्याप्त मात्रा में मानव पूँजी में निवेश न करने के कारण धीमी गति से प्रगति करते है।

21.5.3 बौद्धिक पूँजी निर्माण अथवा कौशल निर्माण के स्त्रोत

(Sources Of Intellectual Capital Formation Or Skill Formation)

मानव विकास के दो मुख्य स्त्रोत है–

(a) **आन्तरिक स्त्रोत (Internal Source):–** किसी भी देश की आत्मनिर्भरता वहाँ के घरेलु तकनीक एवं संसाधनों के विकसित होने पर निर्भर करता है। आयातित तकनीक दीर्घकाल के लिये हितकारी नहीं होता। देश यथासंभव आन्तरिक संसाधनों पर निर्भर रहकर कौशल निर्माण कर सकते है। (1) विशिष्ट तकनीकी संस्थाओं की स्थापना करके तथा (2) औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना कर उनमें प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था करना।

(b) **बाह्य स्त्रोत (External Source):–** बाह्य स्त्रोत से तात्पर्य है विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों की सहायता लेना अथवा घरेलु श्रम शक्ति को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने के

लिये विदेशी तकनीकी संस्थाओं एवं विशेषज्ञों के ज्ञान का उपयोग करना। विदेशी कौशल के आयात के मुख्य रूप से चार रूप हो सकते है–

(1) विदेशी तकनीकीशियनों को स्थायी अथवा अस्थायी रूप से देश में नियुक्त करना

(2) घरेलु श्रमिकों को प्रशिक्षण देने के लिये कुछ समय के लिये विदेशी विशेषज्ञों को आमन्त्रित करना

(3) देश के श्रमिकों को तकनीकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण हेतु विदेशों में भेजना

(4) तकनीकी विशेषता प्राप्त विदेशी श्रमिकों को देश में प्रवास हेतु प्रोत्साहित करना आदि।

21.6 मानव पूँजी निर्माण के उपाय
(Measures For Human Capital Formation)

मानव पूँजी के विकास के लिये निम्न उपायों का प्रयोग किया जाता हैः–

(a) अनिवार्य शिक्षा (Compulsary Education)– शिक्षा वह अस्त्र है जिसका कुशलतापूर्वक प्रयोग करके व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता में वृद्धि कर सकता है। एक शिक्षित व्यक्ति देश के आर्थिक विकास में एक सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। अतः माध्यमिक स्तर तक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। प्रो0 लुईस का इस मुद्दे पर अपना यह मत है कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही आर्थिक एवं सामाजिक विकास के ध्वजवात्मक तथा अनायुक्त अधिकारी (Non Commissioned Officer) है।

(b) तकनीकी शिक्षा पर अधिक बल (More emphasis on Technical Education)– विभिन्न व्यावसाया में शिक्षित एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों के रूप में मानव पूँजी की आवश्यकता इसलिये अधिक होती है क्योंकि वे जटिल विधियों एसं उपकरणें का प्रयोग करते है। क्रांतिक कुशलता (Critical Skill) वाले व्यक्तियों की अधिक आवश्यकता होती है। जैसे–डॉक्टर, इंजीनियर, व्यापार प्रबन्धक, वैज्ञानिक, तकनीशियन आदि।

(c) शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन (Change in Educational System)– निरक्षरता दूर करने के साथ–साथ उच्च शिक्षा मात्र योग्य व्यक्तियों के लिये ही होनी चाहिये। व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा के विकास पर बल देना चाहिये। विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सामन्य स्नातक स्तर तक शिक्षा करने मात्र से मानव पूँजी का निर्माण नहीं होता, केवल शिक्षित बेरोजगारी ही बढ़ती है। इससे सामाजिक असन्तोष बढ़ता है, उत्पादकता घटती है।

(d) प्रौढ शिक्षा (Adult Education)– प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को कृषकों, कृषि अनुसन्धान केन्द्रों तथा प्रयोगशालाओ जोड़ा जाना चाहिये। इससे कृषकों का दृष्टिाकोण बदलेगा। उनकी बौद्धिक क्षमता विकसित होगी रूढ़ियों एवं प्रथाओं के सम्बंध में अधिक विवेकशील होंगे।

(e) समुचित प्रेरणा– हार्बिन्सन के अनुसार, तीव्र आर्थिक विकास तभी सम्भव है जब मानव इस बात के लिये समुचित प्रेरणा दी जाय कि वे उत्पादक क्रियाओं में रत

रहे। आधुनिकीकरण के लिये यह परम आवश्यक है। ऐसी संस्थाओं का पथप्रदर्शन किया जाना चाहिये जिससे वे प्रशिक्षित किया जा सके।

21.7 मानव पूँजी में विनियोग की सीमाएँ (Limitation of Investment in Human Capital)

मानव पूँजी आर्थिक विकास के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस औचित्य को स्वीकृत करने में कोई शंका नहीं है। अल्पविकसित देशों के संदर्भ में मानव पूँजी का समुचित विकास नहीं हो सका। इसका कारण है कि इन देशों में गरीबी और पूँजी के अभाव में इस क्षेत्र में पर्याप्त विनियोग नहीं हो सका। यही कारण है कि इन देशों में कौशल निर्माण की गति धीमी रहती है।

निम्नलिखित कारणों से मानव पूँजी अथवा मानव संसाधन में निवेश जोर नहीं पकड़ रहा है।

(1) इन देशों में मानव संसाधनों के विकास हेतु पूँजी का अभाव रहता है।

(2) कौशल निर्माण के लिये विदेशी तकनीकी ज्ञान का आयात करना पड़ता है। परन्तु इन देशों में विदेशी विनिमय कोषों का अभाव रहता है जिससे आयात करने में कठिनाई होती है।

(3) अधिकांश अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं कृषि प्रधान होती है और कृषि के अन्तर्गत नव प्रवर्तन और कौशल निर्माण की सम्भावना कम रहती है।

(4) इन देशों के सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक संगठनों तथा रूढ़िवादी विचारों के कारण भी प्राविधिक ज्ञान को अपनाने व लागू करने में कठिनाई बनी रहती है।

(5) इन देशों में लोग विकास, ज्ञान तथा कौशल के प्रति उदासीनता प्रदर्शित करते है। इससे मानव पूँजी में विनियोग को प्रोत्साहन नहीं मिलता।

(6) अल्पविकसित देशों में वित्तीय साधनों का अभाव पाया जाता है। इस कारण जो भी साधन उपलब्ध होते है वे या तो मानवीय साधनों के विकास पर व्यय किया जाय या फिर भौतिक साधनों के विकास में। एक को विकसित करने में दूसरे का समुचित विकास नहीं हो पाता। इससे त्वरित आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

(7) कौशल निर्माण एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। मानव संसाधनों के विकास की यह एक प्रक्रिया है जो निरन्तर किये जाने वाले प्रयासों के फलस्वरूप दीर्घकाल में ही फलीभूम होती है। कौशल निर्माण के प्रमुख तीन तत्व है– शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुभव को साकार रूप प्रदान करने के लिये एक लम्बे समय तक विनियोग करना पड़ता है। अतः न मात्र विनियोग अपितु सतर्कता और असीमित धैर्य की परम आवश्यकता भी पड़ती है।

21.8 भारत में मानव संसाधन विकास अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण (Human Resource development in India or Intellectual capital formation in India)

मानव संसाधन की आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने की आवश्यकता को भारत देश में स्वीकार किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा में स्पष्ट किया गया कि, *''आर्थिक क्षेत्र में तेजी से विकास करने, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उन्नति करने तथा स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय और समान अवसर के सिद्धान्त पर आधारित समाजवादी समाज की*

स्थापना के लिये यदि कोई एक तत्व सबसे महत्वपूर्ण है तो वह है शिक्षा, स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण। भारत के भावी निर्माण में राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक अंग में ये क्षेत्र सुनियोजित विकास के केन्द्र बिन्दु रहेंगे।''

ऊपर दिये गये तत्व शिक्षा, जन स्वास्थ्य और चिकित्सा पर भारत में मात्र 5 से 10 प्रतिशत के बीच व्यय किया जाता है। यह प्रतिशत मानव संसाधन के विकास के लिये पर्याप्त नहीं है। विकासवादी अर्थशास्त्रियों का यह मानना है कि कम से कम 30 से 40 प्रतिशत मानव संसाधन विकास पर अवश्य व्यय करना चाहिये।

विश्व बैंक रिपोर्ट 1999–2000 में यह स्पष्ट लिखा है कि, *''अन्य सभी विकास प्रयासों अथवा उद्यमों (Endeavours) की ही भाँति शिक्षा और स्वास्थ्य भी अंतर सम्बन्धित है और यह समग्र विकास प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते है। मानव विकास का पथ अंततः आर्थिक विकास की ओर जाता है। विकासशील देशों को इस सच्चाई को जानना बहुत आवश्यक है।''*

भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के विस्तार पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। पढ़ने वाले बच्चों की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। नये प्राथमिक विद्यालय, महाविद्यालय आदि खुलते जा रहे है। इसके साथ ही स्वास्थ्य का स्तर जो इस बात का भी द्योतक है कि व्यक्ति कितने समय तक निर्माण कार्य में संलग्न रहकर देश के उत्थान में योगदान कर सकता है। उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है और यह सत्य है कि सपा और कमजोर जनता देश की आर्थिक प्रगति में योगदान नहीं देंगे वरन् बाधक ही सिद्ध होते हैं। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार पर अधिकाधिक जोर दिया जा रहा है। अस्पतालों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में वृद्धि हो रही है। महामारी और अन्य बीमारियों पर नियन्त्रण पा लिया गया है। यद्यपि इतना सब कुछ प्रयास किया जा रहा है फिर भी इस क्षेत्र अब भी और विकास सम्बन्धित सुविधाओं की आवश्यकता है। मृत्यु दर जो वर्तमान में 8 प्रति हजार है को कम करने की आवश्यकता है वहीं जीवन प्रत्याशा को भी बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है।

21.9 आर्थिक विकास में मानवीय पूँजी की भूमिका (Role of Human Capital in Economics Development)

किसी भी राष्ट्र की जनसंख्या, उसके मानव संसाधन उस राष्ट्र की सम्पत्ति है। देश की मानव पूँजी उस राष्ट्र की उन्नति में सहायक है। मानवीय संसाधनों को संगठित करके उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि लाई जा सकती है। यदि जन शक्ति का समुचित दोहन नहीं किया गया तो यह रोजगार के अभाव में देश के लिये एक भारत बन जायेगा।

मानव संसाधन राष्ट्र के लिये एक सम्पत्ति है।

(1) प्राकृतिक संसाधनो का विदोहन (Utilization of natural resources)– मानव पूँजी द्वारा ही प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन सम्भव हो पाता है। जनसंख्या वास्तव में राष्ट्र की सम्पत्ति है।

(2) राष्ट्र की रक्षा– रक्षात्मक कार्य भी देश की जनसंख्या के द्वारा ही सम्भव हो पाता है।

(3) विस्तृत बाजार– अधिक जनसंख्या होने से विस्तृत बाजार मिल पाता है और विलोमशः।

(4) अनुसंधान एवं विकास– मानव संसाधन के द्वारा ही अनुसंधान एवं विकास कार्य होता है। यह बताया जाता है कि देश में कौन–कौन से खनिज व अन्य पदार्थ देश में उपलब्ध है तथा उनका उपयोग किन–किन कार्यों के लिये किया जा सकता है।

(5) श्रम विभाजन के लाभ– पर्याप्त जनसंख्या होने से उद्योगों में श्रम विभाजन की नीति अपनाकर लाभ प्राप्त किये जा सकते है।

राष्ट्र को जनसंख्या के विकास हेतु अपने दायित्व का निर्वाह निम्न उपायों से करना चाहिये।

(1) खाद्यान्नों की पूर्ति– भोजन, कपड़ा व मकान की पूर्ति करना जनसंख्या की आधारभूत आवश्यकताओं हेतु किया जाना चाहिये। यह एक गम्भीर दायित्व है।

(2) आवास समस्या– मकान, पार्क, सड़कें आदि निर्मित करना राष्ट्र के दायित्वों में आता है।

(3) स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएँ– इससे कुपोषण जनसंख्या नहीं रहेगी तो कार्यक्षमता में वृद्धि होगी।

(4) शिक्षा सुविधाएँ– उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था करना राष्ट्र की जिम्मेदारी है। इससे मानव संसाधन की गुणवत्ता बढ़ती है।

(5) रोजगार सुविधाएँ–राष्ट्र का दायित्व है कि जनसंख्या को रोजगार की सुविधाएँ प्रदान करे।

(6) परिवहन एवं संदेशवाहन सुविधाएँ– राष्ट्र द्वारा इन सुविधाओं को प्रदान करने से आर्थिक क्रियाओं का भी विकास सम्भव हो सकेगा।

(7) शान्ति एवं सुरक्षा– एक सुदृढ़ प्रशासन का यह भी उत्तरदायित्व है कि वह देश में शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखे।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है, ''मानव संसाधन जहाँ एक ओर आर्थिक विकास के लिये आवश्यक तत्व है वहाँ दूसरी ओर एक दायित्व भी है। सामान्यतया सीमित जनसंख्या की स्थिति में कोई विशेष दायित्व नहीं है, लेकिन जब जनसंख्या काफी बढ़ जाती है तो उत्तरदायित्व में वृद्धि हो जाती है जो आगे चलकर देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न कर सकती है।''

21.10 राष्ट्रीय पोषण नीति (National Nutrition Policy)

वर्ष 1993 में घोषित राष्ट्रीय पोषण नीति के अन्तर्गत सन् 2000 तक निम्नलिखित लक्ष्यों को प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया है–

(1) स्कूल पूर्व के बच्चों में अत्याधिक कुपोषण के आपात के स्तर को 50 प्रतिशत तक घटाना

(2) चिरकालीन अल्प पोषण को घटाना और जन्म पर कम वनज वाले बच्चों के आपात ाक कम करके 10 प्रतिशत तक लाना

(3) सूक्ष्म पोषकों के अभाव (Micro nutrient deficiencies) को समाप्त करना।

(4) वृद्धावस्था पोषण पर अधिक बल देन

(5) खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ाकर 2500 लाख टन करना।

(6) गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों द्वारा पारिवारिक खाद्य सुरक्षा को उन्नत करना और उचित एवं स्वस्थ जीवन शैली को प्रोन्नत करना

(7) निःसन्देह राष्ट्रीय पोषण नीति अपने घोषित लक्ष्यों की पूर्ति नहीं कर सकी।

21.11 भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक (Indication of Human Development in India)

भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा, साक्षरता दर, जन्म दर, मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर को सम्मिलित कियाा जाता है।

परिवार कल्याण सेवाओं की सुलभता और स्वास्थ्य के प्रति सचेत होने से अखिल भारतीय मृत्यु दर, जन्म दर तथा शिशु मृत्यु दर में गिरावट आयी है तथा साक्षरता के स्तर में सुधार हुआ है। इसी सब के फलस्वरूप भारत का मानव विकास सूचकांक ऊपर उठा है। देश में आर्थिक विकास के फलस्वरूप सामान्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार आया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि देश में मानव संसाधन का निर्माण अभी प्राथमिक अवस्था है अतः देश की आर्थिक विकास को गति प्रदान के लिये देश में स्वस्थ नागरिकों, कुशल श्रमिकों, तकनीशियनों वैज्ञानिकों तथा प्राविधिकों की संख्या में वृद्धि करनी होगी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के मतानुसार *''भारत प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से पूर्णतया सम्पन्न राष्ट्र है तथा इसके नागरिक प्रतिभाशाली एवं शक्तिमान है। उनमें विकास एवं पुर्ननिर्माण की उत्कृष्ट अभिलाषा विद्यमान है– आवश्यकता है तो केवल उसे गति एवं व्यावहारिकता प्रदान करने की। यह उत्तरदायित्व अब विश्वविद्यालयों एवं तकनीकी संस्थाओं का है कि वे ज्ञान का सृजन करके नूतन मस्तिष्कों को प्रशिक्षित करें ताकि प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों का समन्वित एवं सन्तुलित ढ़ंग से उपयोग किया जा सके।''*

दसवीं पंचवर्षीय योजना ने मानव विकास की गुणवत्ता में वृद्धि हेतु आत्मनिर्भरता प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित किया। यह एक सकारात्मक पहल है।

21.12 सारांश

मानव शक्ति के विकास हेतु प्रचुर मात्रा में मुद्रा निवेश किया जाता है ताकि देश की मानव शक्ति तकनीकी ज्ञान योग्यता एवं कुशलता की दृष्टि से विशिष्टता प्राप्त कर सके। मानव पूँजी निर्माण, मानव में विनियोजन और उसके सृजनात्मक तथा उत्पादक साधन के रूप में विकास से सम्बद्ध है। श्रेष्ठतम मानव पूँजी उपलब्ध होने से देश की भौतिक पूँजी भी अधिक उत्पादक बन जाती है। कुशल मानव पूँजी के अभाव में भौतिक पूँजी का समुचित उपयोग न हो सकेगा जिससे लाभ पूर्ण रूप से नहीं मिल सकेगा।यह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील देशों द्वारा योग्य एवं प्रशिक्षित श्रमिकों तथा तकनीकशियनों पर बल देने से आर्थिक विकास सम्भव हो सका है।आज विश्व के देशों में मानव पूँजी में निवेश हेतु उच्च प्राथमिकता दी जाती है। मानव पूँजी में निवेश से तात्पर्य संकुचित अर्थों में शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर व्यय करना है, जबकि व्यापक अर्थों में, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सभी सामाजिक सेवाओं पर व्यय करने से लगाया जाता है।

आर्थिक विकास की दृष्टि से भौतिक पूँजी की अपेक्षा मानव पूँजी को कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि मानवीय साधनों की कुशलता एवं दक्षता पर ही आर्थिक विकास का ढांचा खड़ा किया जा सकता है। अतः मनुष्य में निवेश करना उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि भौतिक पूँजी में।तकनीकी प्रगति में योगदान देने वाले विभिन्न तत्वों के सापेक्ष महत्व और स्वयं प्रगति की रफ्तार भी विभिन्न देशों में उनकी विकास अवस्थाओं तथा सामाजिक, आर्थिक शक्ति के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है।शोध एवं अन्वेषण आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक का आधार है और आधुनिक तकनीक आर्थिक प्रगति का आधार है।मानव विकास के दो मुख्य स्त्रोत है–आन्तरिक स्त्रोत, बाह्य स्त्रोत।

अल्पविकसित देशों के संदर्भ में मानव पूँजी का समुचित विकास नहीं हो सका। इसका कारण है कि इन देशों में गरीबी और पूँजी के अभाव में इस क्षेत्र में पर्याप्त विनियोग नहीं हो सका। यही कारण है कि इन देशों में कौशल निर्माण की गति धीमी रहती है। मानव पूँजी के विकास के लिये निम्न उपायों का प्रयोग किया जाता हैः–अनिवार्य शिक्षा, तकनीकी शिक्षा पर अधिक बल, प्रौढ शिक्षा, समुचित प्रेरणा आदि। विकासवादी अर्थशास्त्रियों का यह मानना है कि कम से कम 30 से 40 प्रतिशत मानव संसाधन विकास पर अवश्य व्यय करना चाहिये।भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के विस्तार पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। पढ़ने वाले बच्चों की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। नये प्राथमिक विद्यालय, महाविद्यालय आदि खुलते जा रहे है। मानव संसाधन राष्ट्र के लिये एक सम्पत्ति है। मानव संसाधन जहाँ एक ओर आर्थिक विकास के लिये आवश्यक तत्व है वहाँ दूसरी ओर एक दायित्व भी है।

21.13 शब्दावली

(1) मानव संसाधन	–	Human Resource
(2) भौतिक पूँजी	–	Physical Capital
(3) प्रशिक्षण	–	Training
(4) वर्द्धमान प्रतिफल	–	Increasing Return
(5) पोषण युक्त	–	Nutritions
(6) तकनीकी संस्थाएं	–	Technical Institutions
(7) सूक्ष्म पोषक	–	Micro Nutrient

21.14 संदर्भ सहित ग्रन्थ

1) डॉ. जे.पी. मिश्रा– संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र *साहित्य भवन पब्लिकेशन्स*, आगरा 2012

2) एल.एन. कोली– भारतीय अर्थव्यवस्था *लक्ष्मी नारायन अग्रवाल*, आगरा 2007

3) कुमार सर्वेश – भारतीय अर्थव्यवस्था, सार्थक प्रकाशन,दिल्ली, 2011

4) डा0 जे0सी0 पन्त एवं जे0पी0 मिश्रा – अर्थशास्त्र, *साहित्य भवन पब्लिकेशन*, आगरा 2012

5) डॉ. जे.पी. मिश्रा – अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, *साहित्य भवन पब्लिकेशन्स,* आगरा 2012

21.15 सहायक उपयोगी सामग्री

- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India.
- Singh, S.P.((2010)EconomicsofDevelopment & Planing theory & practice ,S&Chand Publishing House .
- Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons.
- Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya.

21.16 लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) बौद्धिक पूँजी की अवधारणा को समझाइये?

(2) शिक्षा सम्बन्धी विनियोग कौन से तीन क्षेत्रों में किये जा सकते है?

(3) राष्ट्रीय पोषण नीति कब घोषित की गयी?

(4) मानव विकास के प्रमुख स्त्रोत क्या है?

उत्तर

(2) कृषि विस्तार सेवा, औद्योगिक कौशल को उन्नत करने प्रशासकीय तथा प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि करने हेतु

(3) 1993 (4) आन्तरिक स्त्रोत तथा बाह्य स्त्रोत

21.17 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) मानव पूँजी निर्माण से आप क्या समझते हैं? आर्थिक विकास में मानव पूँजी निर्माण की क्या भूमिका है?

(2) ''एक विकासशील अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण की अपेक्षा मानवीय संसाधनों के विकास को उच्चतर प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिये।'' क्या आप इस कथन से सहमत है?

(3) मानव पूँजी निर्माण की आवश्यकता एवं महत्व को समझाइये?

इकाई 22 अधोसंरचना एवं आर्थिक विकास

इकाई की संरचना

22.1 प्रस्तावना
22.2 उद्देश्य
22.3 अधोसंरचना सुविधाओं के उपादान
22.4 स्वतंत्रता के पश्चात आधार संरचना का विकास
22.5 ऊर्जा या शक्ति संसाधन
- 22.5.1 परम्परागत साधन
- 22.5.2 गैर परम्परागत साधन
- 22.5.3 भारत में ऊर्जा संकट के कारण एवं उनके समाधान हेतु सुझाव
- 22.5.4 भारत सरकार द्वारा ऊर्जा को विकास करने की नीति

22.6 भारत में परिवहन साधन
- 22.6.1 आर्थिक विकास में परिवहन का महत्व
- 22.6.2 सड़क परिवहन के साधन
- 22.6.3 भारत में रेल परिवहन
- 22.6.4. जल परिवहन
- 22.6.5. वायु परिवहन
- 22.6.6. संचार
- 22.6.7. बैंक, बीमा एवं वित्त

22.7 आधार संरचना में निजी निवेशः दृष्टि और भविष्य
22.8 सारांश
22.9 शब्दावली
22.10 संदर्भ सहित ग्रन्थ
22.11 सहायक उपयोगी सामग्री
22.12 लघु उत्तरीय प्रश्न
22.13 निबन्धात्मक प्रश्न

22.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास के परस्पर सम्बंध का अवलोकन किया गया। प्रस्तुत इकाई में आधार संरचना सुविधाओं के अन्तर्गत आर्थिक विकास से सम्बंध को समझाया गया है। कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिये आधार संरचना का विस्तार करना आवश्यक है। क्योंकि किसी भी देश की समृद्धि एवं विकास उस देश के कृषि एवं उद्योग के विकास पर निर्भर करती है।

जहाँ कृषि उत्पादन के लिये संचालन शक्ति (Power) वित्त एवं परिवहन सुविधाओं आदि की आवश्यकता होती है वहीं औद्योगिक उत्पादन के लिये केवल मशीनरी एवं संयंत्र ही नहीं चाहिये बल्कि कुशल श्रम शक्ति, प्रबन्ध, ऊर्जा, बैंकिंग एवं बीमा सुविधाओं की भी जरूरत होती है। साथ ही साथ विपणन सुविधाओं, परिवहन सेवाओं की भी आवश्यकता होती है जिनमें रेलवे, जहाज, संचार सुविधाएँ आदि शामिल की जाती है। ऐसे सभी सुविधाओं एवं सेवाओं को सामूहिक रूप में आधार संरचना (Infrastructure) अथवा अधोसंरचना कहा जाता है।

औद्योगिक एवं कृषि क्रान्ति के कारण परिवहन एवं संचार क्रान्ति फलीभूत हुयी। जहाँ ऊर्जा का स्त्रोत पहले कोयला, बाद में तेल और विद्युत हुआ वहीं वित्त जुटाने के लिये बैंकिंग, बीमा एवं अन्य वित्त संस्थानों का भी विकास होता गया।

22.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह ज्ञात कर सकेंगे किः–

(1) आधार संरचना में किन उपादानों को सम्मिलित किया जाता है

(2) स्वतंत्रता के पश्चात आधार संरचना का कितना विकास हुआ

(3) ऊर्जा संसाधन के परम्परागत एवं गैर परम्परागत स्त्रोत क्या है एवं इनको भारत में कितना विकास हुआ

(4) परिवहन के अंतर्गत सड़क एवं रेल एवं वायु परिवहन का आर्थिक विकास से सम्बंध

(5) अन्य वित्तीय संस्थाओं के विस्तार का भारत के आर्थिक विकास में भूमिका

(6) अधोसंरचना का आर्थिक विकास में क्या महत्व है।

22.3 अधोसंरचना सुविधाओं के उपादान

अधोसंरचना सुविधाओं को प्रायः आर्थिक एवं सामाजिक उपरि व्यय (Economic & Social Overheads) भी कहा जाता है।

इनमें निम्नलिखित उपादानों को सम्मिलित किया जाता हैः–

(1) ऊर्जा– कोयला, बिजली, खनिज तेल और अन्य गैर–परम्परागत स्त्रोत–सौर ऊर्जा, अणु शक्ति, वायु एवं गैस आदि।

(2) परिवहन– रेल, सड़के, जहाजरानी और नागरिक उड्डयन

(3) संचार– डाक एवं तार, टेलीफोन, टेली संचार (Telecommunication) आदि।

(4) बैंकिंग, वित्त एवं बीमा

(5) मानव संसाधन विकास– शिक्षा एवं स्वास्थ्य

22.4 स्वतंत्रता के पश्चात आधार संरचना का विकास

इस कथन से कदापि इंकार नहीं किया जा सकता कि अधोसंरचना के विकास के अभाव में देश का विकास सम्भव नहीं है। इसी कारण भारत की आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया में अधोसंरचना के विकास पर बल दिया गया। 62 वर्षों की नियोजन प्रक्रिया में आधार संरचना का अच्छा विकास हुआ। 11 पंचवर्षीय योजनाएं, तीन वार्षिक योजनाएं व तीन वर्ष का अन्तरकाल का नियोजन इस बात की पुष्टि भी करता है।

भारत में अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में योजना व्यय का लगभग 50 प्रतिशत आधारभूत संरचना पर व्यय किया है। परिणामस्वरूप भारत का आधारभूत संरचना उपलब्ध हो सका। यह एक विडम्बना ही है कि आधारभूत संरचना की उपलब्धता मात्र शहरों एवं नगरों में ही उपलब्ध है और गाँवों में इनका विकास तुलनात्मक दृष्टि से नहीं हो सका। इसी कारण जनसंख्या का पलायन गाँवों से शहरों की ओर हो रहा है और परिणामस्वरूप शहरों की जनसंख्या बढ़ती जा रहीं है।

निम्नलिखित तालिका से यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता पश्चात भी भारत में आधारभूत संरचना का काफी विकास हुआ है।

विवरण	इकाई	वर्ष	वर्ष
		1950–51	2008–09
1) ऊर्जा या शक्ति			
1.कोयले का उत्पादन	लाख टन में	322	
2.विद्युत का उत्पादन	विलियन kwh में	5	4933
3.कच्चे तेल का उत्पादन	लाख टन में	3	746.6
2) परिवहन			
1.रेलों की लम्बाई	1000 km में	53.6	335
2.सड़कों की लम्बाई	लाख km में	4	63.3
3. जहाजों की क्षमता	लाख GRT में	3.7	33.4
3) संचार			
1.डाकखाने	हजार में	3.6	115.3
2.टेलीफोन	करोड़	0.017	30.05
4) बैंक एवं वित्त			
1.बैंक	कार्यालय	2600	76885

अब हम एक करके सभी मदों का विस्तार से उल्लेख करेंगें।

22.5 ऊर्जा या शक्ति संसाधन (Power Resources)

जिस देश में सस्ते व पर्याप्त माँग में शक्ति संसाधन उपलब्ध होते है वह देश अपना विकास आसानी से व तीव्र गति से कर सकता है। इसका कारण है कि सभी क्षेत्रों– कृषि, उद्योग, परिवहन आदि में शक्ति संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। इसके विपरीत जिस देश में शक्ति संसाधन अपर्याप्त होते है या अविकसित होते है वह देश अन्य सभी आवश्यक सुविधाओं के होते हुये भी विकास मन्द गति से कर पाता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश अपनी आर्थिक योजनाएं बनाते समय शक्ति संसाधनों के विकास पर विशेष जोर देता है।

यह माना जाता है कि जिस देश में शक्ति संसाधन की प्रति व्यक्ति खपत जितनी अधिक होगी उस देश में प्रति व्यक्ति आय भी उतनी ही अधिक होगी। इस दृष्टि से देखा जाय तो भारत दोनों में ही पीछे है। यहाँ प्रति व्यक्ति शक्ति संसाधनों की खपत भी कम है और प्रति व्यक्ति आय भी कम है।

भारत में विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, लेकिन यहाँ पर कुल विश्व खपत की 1.5 प्रतिशत शक्ति ही खर्च होती है। आर्थिक सर्वेक्षण 2008–09 के अनुसार यहाँ प्रति व्यक्ति खपत लगभग 90.4 KWH वार्षिक है जो बहुत कम है।

भारत में शक्ति संसाधन कई है, जैसे मनुष्य, पक्षी, लकड़ी, कोयला, वायु, जल, परमाणु, खनिज तेल, आदि इन संसाधनों को दो प्रकार में विभाजित किया जा सकता है।

(1) परम्परागत साधन

a) कोयला b) विद्युत c) खनिज तेल या पेट्रोलियम

(2) गैर परम्परागत साधन

a) परमाणु शक्ति b) वायु शक्ति c) सूर्य शक्ति d) गैस भाप विद्युत गृह आदि।

22.5.1 परम्परागत साधन

1.कोयला–कोयला को ईंधन का बादशाह माना जाता है। औद्योगिक क्रान्ति की शक्ति का माध्यम कोयला को ही माना जाता है। चाहे मानव सभ्यता का विषय हो या कियी देश के आर्थिक विकास का प्रथम चरण कोयला का स्थान सर्वोपरि है। इसी कारण से इसे काला सोना (Black Gold) या काला हीरा (Black Diamond) का नाम दिया गया है।

कोयले के उपयोग में न मात्र शक्ति उत्पादन बल्कि ईंधन का रूप भी उतना ही महत्व रखता है। इससे निकले कई रासायनिक पदार्थ जैसे– तेल, बेजोल, नेफ्था का प्रयोग रासायनिक उद्योगों में होता है। बिजली उपकरणों के निर्माण में भी कोयले का प्रयोग किया जाता है। कोलतार भी बनाया जाता है जिससे सड़क का निर्माण होता है। इससे डायल भी बनाया जा सकता है जिससे अमोनिया द्रव निकलता है जो खाद बनाने वाले कारखानों के काम आता है।

भारत में कोयले के कुल 264.54 करोड़ टन के भण्डार है। यह विश्व के कुल कोयला भण्डार का 8 प्रतिशत ही है। तीसरे स्थान की श्रेणी में भारत के पास मात्र 2

प्रतिशत ही बढ़िया किस्म का कोयला है जबकि 7 प्रतिशत मध्यम किस्म और 91 प्रतिशत गैर कोंकिंग (Non Coking) किस्म का।

भारत में मात्र तीन क्षेत्र ही है जो कोयला उत्पादन क्षेत्र में आते है– पश्चिम बंगाल एवं झारखण्ड, एवं अन्य छुटपुट क्षेत्र। पश्चिम बंगाल एवं झारखण्ड कुल मिलाकर 61 प्रतिशत कोयला का उत्पादन करते है। आज भारत में 22 प्रतिशत कोकिंग कोयला व 78 प्रतिशत गैर कोकिंग कोयला का उत्पादन हो रहा है।

विद्युत– किसी भी देश का आर्थिक विकास विद्युत शक्ति के बिना सम्भव नहीं है। चाहे गाँव हो या शहर, उद्योग हो या खेत, शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र है जहाँ विद्युत की आवश्यकता न हो। एक आवश्यक इनपुट के रूप में विद्युत का उपयोग पीने के पानी के लिये, परिवहन साधनों को चलाने के लिये, संचार सुविधाओं के लिये घरों व सड़कों पर रोशनी के लिये किया जाता है। विकसित देशों की तीव्र विकास के पीछे विद्युत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।

विद्युत का उत्पादन पानी, कोयला, डीजल, परमाणु शक्ति से होता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विद्युत का उत्पादन भारत में 1900 से प्रारम्भ हुआ। पहला पन बिजलीघर कर्नाटक राज्य में शिवसमुद्रम में बनाया गया हालाँकि इसके पश्चात अनेक पन बिजलीघर बनाये गये परन्तु यह शहरी क्षेत्र तक ही सीमित थे।

1950–51 में विद्युत की **कुल उत्पादन क्षमता** 22 लाख टन थी जबकि 2008–09 में बढ़कर 1750 लाख KW हो गयी। वहीं 1950–51 में इसकी **कुल वास्तविक उत्पादन** 7 विलियन KWH थी जो 2008–09 में बढ़कर 842 विलियन KWH हो गयी।

विकसित देशों की तुलना में भारत में विद्युत का **प्रति व्यक्ति उत्पादन** 55 KW वार्षिक ही है जबकि अमेरिका में 7998 KW है। यहाँ तक कि इटली में 2186 KW है।

विद्युत शक्ति के उत्पादन का 37.6 प्रतिशत भाग उद्योगों द्वारा खपत किया जाता है जबकि 21.7 प्रतिशत भाग कृषि द्वारा खपत किया जाता है। विद्युत शक्ति का विकास सम्पूर्ण भारत में समुचित रूप से हुआ है। हिमाचल प्रदेश, जम्मू व काश्मीर, कर्नाटक, केरल व मेघालय मुख्य रूप से जल विद्युत पर निर्भर है। दिल्ली, बिहार व पश्चिम बंगाल कोयले द्वारा उत्पादित बिजली पर निर्भर है तो वहीं आन्ध्र प्रदेश, असम, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु व उत्तर प्रदेश को जल विद्युत व कोयला से उत्पादित विद्युत दोनों ही मिलती है।

अब तक भारत के गाँवों का लगभग 84 प्रतिशत विद्युतीकरण हो चुका है।

खनिज तेल या पेट्रोलियम

यह मात्र शक्ति साधन के रूप में ही नहीं वरन् बहुत से उद्योगों के लिये आधार भी है।

पेट्रोलियम दो शब्दों से मिलकर बना है– पेट्रो + ओलियम। पेट्रो का अर्थ है–चट्टान एवं ओलियम शब्द का अर्थ है–तेल। अर्थात् चट्टान का तेल (Rock Oil)। भूरे या पीले या हरे रंग का यह पदार्थ तरल रूप में होता है एवं गहरे कुएं से निकले अशोधित तेल को Crude Oil कहते है।

भारत में खनिज तेल भण्डार 35 करोड़ टन का है। यह भण्डार असम, गुजरात, नाहरकटिया, रवम्भात, अंकलेश्वर, डिगबोई, सूरमाघाटी, कच्छ की खाड़ी, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, केरल, बंगाल की खाड़ी, बाम्बे हाई आदि में पाये जाते है।

भारत में तेल के स्त्रोत सर्वप्रथम 1866 में देखे गये थे और 1867 में सर्वप्रथम असम में तेल निकाला गया। डिगबोई क्षेत्र की स्थापना के साथ ही 1895 में असम ऑयल कम्पनी ने इसका कार्य भार सम्भाल लिया। 1956 में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग की स्थापना की गयी। तत्पश्चात निजी क्षेत्र के लिये भी यह क्षेत्र खोल दिया गया जिसके फलस्वरूप Relience व Easer Group इस ओर अग्रसर हुये। जहाँ 1950–51 में भारत का खनिज तेल का उत्पादन 3 लाख टन था वही, 2008–09 में 335 लाख टन रहा।

इस समय देश में 13 करोड़ 25 लाख टन तेल शोधन क्षमता के 18 तेलशोधक कारखाने है। इनमें मान 1 निजी क्षेत्र में है जो कि Refiners Reliance Industries limited, Jamnagar में स्थित है।

22.5.2 गैर परम्परागत साधन

(1) परमाणु शक्ति–होमी जहाँगीर भाभा को भारत में परमाणु शक्ति का विकास करने का श्रेय जाता है। इन्होंने 1945 में TIFR (Tata Institute of Fundamental Research) टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान की स्थापना की। 1948 में परमाणु ऊर्जा आयोग का गठन किया गया। 1954 में केन्द्र सरकार द्वारा परमाणु ऊर्जा विभाग स्थापित किया गया जिसका नाम डॉ0 भाभा की मृत्यु के पश्चात् ''भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र'' पर रखा गया। इस केन्द्र में चार अनुसन्धान रिऐक्टर है–**(a) अप्सरा, (b) साइकस, (c) जरलीना, (d) ध्रुव, (e) कामिनी।**

आज देश में परमाणु विद्युत केन्द्र तारापुर परमाणु केन्द्र (महाराष्ट्र), रावतमाड़ा परमाणु शक्ति केन्द्र (राजस्थान), कलपक्कम परमाणु केन्द्र (तमिलनाडु), नरौरा परमाणु शक्ति केन्द्र (उत्तर प्रदेश), का करपारा परमाणु शक्ति केन्द्र (गुजरात) तथा कैगा परमाणु केन्द्र (कर्नाटक) में स्थित है।

भारत में परमाणु शक्ति का विकास–

भारत में इस समय 2225 मेगावाट परमाणु शक्ति की उत्पादन क्षमता के परमाणु विद्युत गृह है जो अपनी पूरी क्षमता पर उत्पादन कर रहे हैं।

परमाणु शक्ति के विकास की परम आवश्यकता है क्योंकि देश के आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त मात्रा में सस्ती शक्ति की जरूरत होती है। जहाँ पर जल शक्ति अपर्याप्त है वहाँ परमाणु शक्ति इस कमी को पूरा करने में समर्थ है। कोयले के विकल्प के रूप में परमाणु शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि कोयले के भण्डार सीमित है। भाखड़ा नागल, चम्बल आदि योजनाओं से भारी जल की आवश्यकता पूरी करके परमाणु शक्ति को उत्पन्न किया जा सकता है।

2. वायु शक्ति (Wind Energy)– इस शक्ति का भी प्रयोग देश के विकास के लिये किया जा सकता है। नीदरलैण्ड जैसे देशों ने इसका उपयोग पवन चक्कियां लगाकर किया

है। हालाँकि भारत के गाँवों में किसानों द्वारा अनाज को भूसे से अलग करने के लिये इस शक्ति का प्रयोग किया जाता है परन्तु अभी तक वृहत रूप से इसका उपयोग नहीं किया गया है। राष्ट्रीय वैज्ञानिक अनुसंधानशाला बंगलौर के अनुसार भारत में भी वायुशक्ति का उपयोग बिजली उत्पन्न करने के लिये किया जा सकता है।

भारत अपनी 45000 मेंगावाट वायु शक्ति की क्षमता का महज 13000 मेगावाट का ही उपयोग कर पा रहा है। विश्व में इसका स्थान पाँचवा है– जर्मनी, अमेरिका, डेनमार्क व स्पेन।

3. सूर्य शक्ति (Solar Energy)–सूर्य से प्राप्त शक्ति, शक्ति का ऐसा साधन होगा जो कभी समाप्त नहीं होगा।भारत का प्रथम सौर ऊर्जा बिजलीघर लद्दाख के छोंग्लेश्वर नामक गाँव में स्थापित किया गया जो विश्व में इस प्रकार की बिजली का दूसरा गाँव है। भारत में BHEL कम्पनी की हरिद्वार स्थित कैन्टीन में सूर्य शक्ति का प्रयोग धोने के लिये गर्म पानी के लिये किया जाता है। वहीं आनन्द (गुजरात) स्थित अमूल फैक्टरी में इसका प्रयोग सूखा दूध बनाने के लिये किया जाता है। भावनगर (गुजरात) में पीने का पानी इसी शक्ति से साफ किया जाता है। दिल्ली के सुपर बाजार व उत्तर प्रदेश में भी सूर्य शक्ति के हीटर बेचे जा रहे है।

4. गैस भाप विद्युत गृह–भारत का पहला गैस भाप विद्युत गृह राजस्थान में कोटा के पास अन्त में बनाया गया है जिसमें गैस से विद्युत बनना प्रारम्भ हो गया है। भारत का इस सम्बंध में यह पहला परीक्षण है।

22.5.3 भारत में ऊर्जा संकट के कारण एवं उनके समाधान हेतु सुझाव

ऊर्जा संकट का अर्थ है ऊर्जा के साधनों का अभाव। देश के आर्थिक विकास में ऊर्जा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। यह संकट मात्र भारत तक ही सीमित नहीं है वरन् विश्वव्यापी है। हालाँकि भारत में 1950–51 से लेकर वर्तमान तक की अवधि में विद्युत कोयला एवं कच्चे तेल के उत्पादन पर्याप्त वृद्धि हुयी है। फिर भी यह संकट विद्यमान है। बढ़ती हुयी ऊर्जा की माँग हर क्षेत्र में बनी हुयी है, चाहे वह क्षेत्र औद्योगिक हो या कृषि। संक्षेप में ऊर्जा संकट के **मुख्य कारण** निम्नलिखित है–

(1) तीव्र गति से होता हुआ औद्योगिक विकास

(2) गाँवों के विद्युतीकरण एवं कृषि का बढ़ता हुआ यन्त्रीकरण

(3) कोयले का समय पर भारी मात्रा में उपलब्ध न होने के कारण रेलों आदि में तेल का उपयोग बढ़ गया। देश में इसका उत्पादन 335 लाख टन वार्षिक है जबकि इसकी खपत 1000 लाख टन वार्षिक पहुँच गयी है। यह आयात द्वारा पूरा किया जाता है।

(4) कोयले का बढ़ता हुआ अभाव जिससे ताप विद्युत गृहों को समय पर उपलब्ध नहीं हो पाता है।

(5) जल विद्युत उत्पादन में कमी के कारण जल विद्युत योजनाओं को कार्यरूप में परिणत होने में देर हो जाती है और उनके निर्धारित लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाते।

(6) आवश्यक पदार्थ, तकनीक आदि होते हुये भी भारत के परमाणु शक्ति का विकास धीमी गति से हो रहा है।

(7) विद्युत उत्पादन की चोरी से वित्त का बहुत नुकसार हो जाता है जिसका उपयोग विद्युत उत्पादन की क्षमता बढ़ाने में किया जा सकता है। भारत में लगभग 1/3 उत्पादन की चोरी हो जाती है जिससे करीब 24000 करोड़ रूपये प्रति वर्ष का नुकसान हो जाता है। यदि यह उत्पादन में लगाया जाय तो 5000 मेगावाट की क्षमता वाली विद्युत उत्पादन क्षमता प्रति वर्ष बढ़ाई जा सकती है।

सुझाव

(1) पेट्रोलियम पदार्थों का उत्पादन बढ़ाना एवं आन्तरिक उपभोग को कम करना।

(2) गैस का उत्पादन बढ़ाना एवं नवीन स्थानों की खोज करना जहाँ इसकी मिलने की सम्भावना हो।

(3) विद्युत उत्पादन के चार साधन– कोयला, तेल, पानी व परमाणु शक्ति में परमाणु शक्ति का विकास होने के समय लग सकता है। कोयले एव तेल की भारी मात्रा में माँग के कारण इसकी उपलब्धता कम होती जा रही है। ऐसे में मात्र जल विद्युत का उपयोग ही सम्भव है जो वर्षा के पानी को रोककर नदियों का पानी प्रयोग कर बनायी जा सकती है।

(4) विद्युत ग्रहों की पूर्ण क्षमता के उपयोग को बढ़ाने की आवश्यकता है।

(5) विद्युत की बरबादी एवं चोरी में कमी से 1/3 उत्पादन का भी समुचित प्रयोग किया जा सकता है।

(6) कोयले के उत्पादन को बढ़ाने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिये जिससे तेल के स्थान पर उससे विद्युत उत्पादित हो सके।

(7) गैर परम्परागत ऊर्जा के विकास जैसे परमाणु ऊर्जा, वायु ऊर्जा, सौर ऊर्जा, गोबर गैस ऊर्जा व ज्वारीय ऊर्जा के विकास से तेल एवं कोयले दोनों की ही बचत हो सकती है।

22.5.4 भारत सरकार द्वारा ऊर्जा को विकास करने की नीति

1981 में केन्द्र सरकार द्वारा एक ऊर्जा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग के तीन मुख्य कार्य है– (a) ऊर्जा के नये एवं पुराने स्त्रोतों को विकसित करने के लिये विभिनन कार्यक्रम एवं नीतियां बनाएं, (b) इनसे सम्बन्धित अनुसंधान और विकास कार्यो में तीव्रता लाये, (c) ऊर्जा के इन स्त्रोतो के बारे में सरकार की नीति को क्रियान्वित करें।

22.6 भारत में परिवहन साधन

परिवहन को परिभाषित करते हुये अमरीकी विद्वान **फेयर एवं विलियम्स** (Fair & Williams) के अनुसार, *''परिवहन का अर्थ मनुष्यों अथवा सम्पत्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन (Movement) से है।''*

परिवहन मनुष्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की सुविधा प्रदान करती है। सस्ते और शीघ्रगामी साधन को आधुनिक परिवहन की संज्ञा दी जाती है जिसके अन्तर्गत रेल, मोटर, पानी के जहाज, हवाई जहाज आदि आते है।

परिवहन का देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देखा जा सकता है। इससे कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि, विविधकरण एवं विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता

है। इससे व्यापार का ही विस्तार नहीं होता बल्कि मूल्यों में भी स्थिरता आती है। देश की सुरक्षा एवं रक्षा को बढ़ावा मिलता है एवं सरकारी आय भी बढ़ती है।

22.6.1 आर्थिक विकास में परिवहन का महत्व

(1) **कृषि क्षेत्र में**– परिवहन के माध्यम से किसान अपने उत्पादन को शहरों में बेचने के लिये जा सकते है। ऐसे कई उत्पाद जैसे– तरकारी, फल, डेरी उत्पाद, मछली आदि को शहर में बेचने के लिये परिवहन की सुविधा लाभप्रद होती है। इन साधनों के विकास से कृषि उत्पादन बढ़ता है क्योंकि शहरों से अच्छे बीज रासायनिक खादें व कृषि यन्त्र प्राप्त किये जा सकते है।

(2) **औद्योगिक क्षेत्र में**– परिवहन साधनों का विकास होने से उन स्थानों पर नये–नये कारखाने स्थापित हो पाते है जो सड़कों, रेलों, बन्दरगाहों आदि से जुड़ जाते है। इसी के कारण खान उद्योग व वन उद्योगों का विकास हुआ है। ये साधन श्रम में गतिशीलता ला देते है। इससे उद्योगों को श्रमिक उचित मात्रा में मिल जाते है।

(3) **व्यापारिक क्षेत्र में**– परिवहन साधन के विकास से व्यापारिक क्रियाओं में वृद्धि होती है, साथ ही साथ विदेशी व्यापार में भी वृद्धि होती है। मूल्यों के उतार चढ़ावों में कमी हो जाती है।

(4) **सामाजिक क्षेत्र में**– परिवहन साधन की सुविधा से विभिन्न क्षेत्र के लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आते है जिससे संस्कृतियों के सम्बन्ध में ज्ञान की वृद्धि होती है। इससे अन्धविश्वास व रूढ़िवादिता को कम करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है एवं भाईचारे की भावना पनपती है।

(5) **राजनीतिक क्षेत्र में**– देश में शान्ति व सुरक्षा के लिये द्रुतगामी परिवहन साधनों की आवश्यकता होती है। सीमा क्षेत्र व विदेशों से रक्षा के लिये भी परिवहन साधन चाहिये।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि परिवहन साधनों के विकास से देश का आर्थिक विकास प्रभावित होता है।

सभी देशों के विकास के लिये परिवहन साधन का विकास महत्वपूर्ण है।

परिवहन साधन को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) सड़क परिवहन (Road Transport)

(2) रेल परिवहन (Railways)

(3) जल परिवहन (Water Transport)

(4) वायु परिवहन (Air Transport)

22.6.2 सड़क परिवहन के साधन (means of road Transport)

(a) सिर पर बोझा

(b) लट्ट पशु

(c) बैलगाड़ी

(d) मोटर ट्रक

(e) नल– नलों का प्रयोग खनिज तेलों व गैस उत्पादन केन्द्रों से वितरण केन्द्रों तक पहुँचाने के लिये किया जाने लगा है।

भारत में सड़को का विकास

स्वतंत्रता पश्चात् भारत में सड़कों के विकास पर काफी ध्यान दिया गया।

योजना	करोड़ रूपये का व्यय
1–3 वर्षीय योजना	1135
4–6 '' ''	9295
7 '' ''	6180
8 '' ''	15843
9 '' ''	17748.82
10 '' ''	62124.94

पिछले 58 वर्षों में सड़कों की लम्बाई आठ गुनी से अधिक हो गयी है परन्तु गम्भीर बात यह है कि आज भी भारत में सड़कें अन्य देशों की तुलना में कम है। करीब 54% के लगभग सड़कें कच्ची ही है। 25 दिसम्बर, 2000 से केन्द्रीय सरकार में प्रधानमंत्री सड़क योजना की शुरूआत की है जिसके अन्तर्गत 60,000 करोड़ रूपये व्यय होने का अनुमान है। इस योजना का लक्ष्य अगले तीन वर्षों में एक हजार की आबादी वाले सभी गाँवों को अगले तथा 500 की आबादी वाले हर गाँव को सात वर्षों के भीतर पक्की सड़कों से जोड़ दिया जायेगा।

भारत में सड़कों का वर्गीकरण

राष्ट्रीय राजमार्ग | **राज्य राजमार्ग** | **जिला राजमार्ग** | **ग्रामीण सड़के**

भारत में सड़क परिवहन का विकास

भारत में सड़क परिवहन के प्रमुख साधनों में बैलगाड़ियों, साइकिल तथा मोटन गाड़ियों को सम्मिलित किया जाता है। जहाँ भारत में 1947–48 में 3.61 लाख साइकिलें थी वहीं आज देश में प्रतिवर्ष 197 लाख साइकिलें बनती है।

भारत में प्रथम मोटनगाड़ी 1898 में आयात की गयी जहाँ 1920–21 में 37 हजार मोटरगाड़ियाँ थी, वहीं वर्तमान में 858.96 लाख हो गयी है। 1991 के बाद उदारीकरण के साथ ही आटोमोबाइल्स क्षेत्र में उत्पादकों की संख्या बढ़ी है। पैसेन्जर कारों का बहुउपयोगी वाहनों का, वाणिज्यिक वाहनों का दुपहिया व तिपहिया वाहनों का उत्पादन करने वाली कम्पनियां यहाँ तक की ट्रैक्टर का उत्पादन करने वाली कम्पनियां विकसित होती गयी है।

1950–51 में सड़क यातायात कुल यातायात का 11% माल ढोता था जो वर्तमान में बढ़कर 60% हो गया। इसी प्रकार 2 यात्री यातायात में 1950–51 में यह 20% यात्री ले जाता था जो वर्तमान में बढ़कर 80% हो गया।

22.6.3 भारत में रेल परिवहन (rail transport in India)– पहली रेल सेवा भारत में 1853 में बम्बई से थाना तक 21 मील मार्ग का सफर तय किया था। 1 अप्रैल 1951 के प्रथम पंचवर्षीय योजना से अब तक रेल के क्षेत्र में भी काफी विकास हो गया है। तब से अब तक यात्रियों की संख्या 128 करोड़ प्रतिवर्ष से 572 करोड़ प्रतिवर्ष के ऊपर चली गयी। मालगाड़ी द्वारा ढोये जाने वाले की मात्रा 9.3 करोड़ टन से 74.5 करोड़ टन हो गयी है। लगभग 58145 करोड़ रूप्ये से अधिक की पूँजी की मात्रा भी लगायी जा चुकी है। विद्युत रेलमार्ग 388 कि0मी0 से बढ़कर 17,786 कि0मी0 हो गया।

रेलवे विकास के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

(1) **विद्युतीकरण**– वर्तमान में विद्युत रेलमार्ग की दृष्टि से, भारत का एशिया में दूसरा व विश्व में ग्यारहवां स्थान है। कुछ ही वर्षों में देश के प्रमुख सात मुख्य मार्गों पर विद्युतीकरण का कार्य भी पूरा हो जायेगा।

(2) **इंजन**– वर्तमान में रेलवे के पास 44 भाप इंजन, 4793 डीजल इंजन व 3188 बिजली के इंजन है

(3) **संदेशवाहन व्यवस्था**– रेलवे ने Super high frequency & Channelling System पर आधारित सूक्ष्म तरंग पद्धति (Microwave System) लागू की है जो वर्तमान में 16,000 कि0मी0 रेलमार्ग पर अपनायी जा रही है।

(4) **सिग्नल व्यवस्था में सुधार**– पहले के यन्त्रीकृत सिग्नल की अपेक्षा अब बिजली सिग्नलो के प्रयोग में लाया जा रहा है जो अधिक विश्वसनीय है।

(5) **रेलों की गति में वृद्धि**– सुपर एक्सप्रेस राजधानी एक्सप्रेस जैसे सुपरफास्ट एकसप्रेस रेलगाड़ियों के चलाने से रेलों को गति मिल गयी है। अब कई हजार किलोमीटर की यात्रा भी चन्द घण्टों में पूरी की जा सकती है। 20 रेलगाड़ियाँ शताब्दी एक्सप्रेस के नाम से चलायी जा रही है। 16 इण्टरसिटी जन शताब्दी एक्सप्रस 1 जुलाई, 2002 से चलाई गयी है।

(6) **रेल निर्माणक इकाईयां**– रेल परिवहन के उपकरण, इन्जनों व डिब्बों के बनाने के लिये भारत में निम्न चार प्रमुख कारखाने है जिनकी स्थापना स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही हुयी है।

(a) चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, कोलकाता– 1950 में स्थापित इस कारखाने में भाप के इंजन बनाये जाते थे परन्तु अब बिजली व डीजल इन्जन बनने लगे है। वर्तमान में इसकी क्षमता लगभग 170 बिजली इन्जन व 81 डीजल इन्जन वार्षिक है।

(b) इण्टीग्रल कोच फैक्टरी, पैराम्बूर (तमिलनाडु)– डब्बा बनाने से लेकर सजाने तक का काम भी इस कारखाने के सुपुर्त है। पहला डिब्बा 1955 में तथा पहला सुसज्जित डिब्बा 1975 में बनकर निकला। वर्तमान में इसकी क्षमता 1600 डिब्बे प्रतिवर्ष है।

(c) इण्टीग्रल कोच फैक्ट्ररी कपूरथला

(d) डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, वाराणसी

(7) माल परिवहन व्यवस्था में उन्नति– इसका भी विकास क्रमशः होता गया। शीघ्रता से माल पहुँचाने के लिये प्रमुख शहरों के मध्य सीधी ''सुपर एक्सप्रेस मालगाड़ियों'' चलायी जा रही है। 1969 में ''फ्रेट फारवर्ड स्कीम'' लागू की गयी है जिसके अन्तर्गत ये छोटे–छोटे सामान को एकत्रित कर रेलवे को वैगन माल के रूप में देता है।

रेल परिवहन का आर्थिक महत्व

(1) कृषि का विकास– रेल परिवहन के विकास से अब किसान अपनी आवश्यकता के फसल के अतिरिक्त उन उत्पादों का भी उपज करता है जिसका वह निर्यात कर सकता है। जैसे– चाय, तम्बाकू, कपास आदि।

(2) नाशवान वस्तुओं की ब्रिकी– ऐसी वस्तुओं जैसे फल, तरकारी दूध, मक्खन, घी, गन्ना, मछलियाँ आदि जो नाशवान प्रकृति की होती है, रेल द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान भेजना आसान हो गया है जिससे इनके उत्पादन एवं बिक्री में भी वृद्धि हुयी है।

(3) अकालों पर नियन्त्रण– रेल विकास ने इस प्राकृतिक आपदा पर नियन्त्रण का कार्य किया है। रेलों द्वारा खाद्यान्न एक स्थान से दूसरे स्थान पर अति शीघ्र भेजना सम्भव हो गया है।

(4) मूल्यों में स्थिरता– मूल्यों की विषमता को रेल का विकास ने बहुत हद तक सीमित कर दिया है। आसानी से सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने से मूल्यों की अस्थिरता पर नियन्त्रण लग गया है।

(5) उद्योगों का विकास– आज रेलें कोयला, लोह–इस्पात, सीमेण्ट, जूट, सूती वस्त्र आदि उद्योगों के विकास में योगदान दे रही। कच्चे माल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने से उद्योगों के विकास में सहायता मिली है।

(6) नगरों में वृद्धि– रेलों की स्थापना एवं इनके विकास से सैकड़ों गाँव व कस्बे नगरों में परिणत हो गये है, समुद्री बन्दरगाहों का विकास हुआ है। एक ज्वलन्त उदाहरण के रूप में कानपुर का नाम लिया जा सकता है जो एक छोटा सा कस्बा था परन्तु जिसकी आबादी 27.17 लाख तक पहुँच गयी। यह रेलों के विकास के कारण ही सम्भव हो सका।

(7) डाक सेवा– डाक सेवा का विकास रेल विकास पर निर्भर करता है। संदेशवाहन एवं संचार व्यवस्था में वृद्धि भी रेलों द्वारा सम्भव हो सका है।

(8) निर्यात संवर्द्धन– रेलों के द्वारा निर्यात होने वाली वस्तुएँ बन्दरगाहों के स्टेशनों तक आसानी से पहुँच जाता है।

(9) पर्यटन को प्रोत्साहन– रेलवे द्वारा सरकुलर टुअर टिकट बेचे जाते है जो अधिकाधिक 90 माह की अवधि के होते है। इससे रमणीक, धार्मिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक स्थानों का भी विकास हुआ है।

(10) श्रम की गतिशीलता– रेलों के विकास से श्रमों की गतिशीलता भी प्रभावित हुयी है जिससे उनके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

22.6.4. जल परिवहन (water transport)–जल परिवहन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उस समय एक महत्वपूर्ण साधन था जब रेलों का जन्म भी नहीं हुआ था। उस समय वायु परिवहन का कहीं नाम भी न था। और सड़क परिवहन अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था।

जल परिवहन का महत्व

(1) **परिवहन का सस्ता साधन**– यह सस्ता साधन इस कारज है क्योंकि न इसमें सड़क बनानी पड़ती है न ही रेल की पटरी और न ही इन्हें कार्यशील बनाने के लिये कोई व्यय करना पड़ता है। न पहियों की आवश्यकता होती है।

(2) **कम पूँजीगत व्यय**– रेल मार्ग और सड़क मार्ग बनाने में लाखों का खर्च आता है जबकि जल परिवहन के लिये कोई मार्ग बनाने की आवश्यकता नहीं होती।

(3) **अधिक क्षमता**– जलयान की भार खीचने की क्षमता रेल या सड़क परिवहन साधनों से अधिक होती है।

(4) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की जननी**– अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास का सर्वप्रथम माध्यम जल परिवहन ही बना। क्योंकि अन्य साधनों से लागत तुलनात्मक रूप से अधिक आती है।

(5) **राष्ट्रीय सुरक्षा**– शत्रु के देश द्वारा पुलों, रेलमार्गों व सड़क मार्गों को नष्ट किया जा सकता है लेकिन जल मार्गों को नष्ट नहीं किया जा सकता।

(6) **एकमात्र साधन**– पहाड़ी, ढालों, घने वनों आदि स्थानों पर जल परिवहन के अतिरिक्त कोई और साधन नहीं है जिससे माल एवं यात्री एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सके।

(7) **थोक ढुलाई के लिये उपयुक्त**– सस्ता एवं सुविधाजनक होने के कारण यह थोक ढुलाई के लिये अति उपयुक्त है। इससे समय की बचत भी हो जाती है।

(8) **तटीय व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण**– तटीय जल परिवहन का विकास इस बात से पुष्ट होता है कि भारत का समुद्रतटीय क्षेत्र काफी विशाल है।

(9) **आर्थिक विकास**– देश से माल बाहर भेजा जा सकता है जिससे देश का आर्थिक विकास सम्भव हो जाता है।

जल परिवहन के प्रकार

आन्तरिक जल परिवहन (Inland water ways)	**सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन** (Shipping)

आन्तरिक जल परिवहन का विकास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सम्भव हो सका है। वर्तमान समय में भारत 3700 कि0मी0 के लगभग आन्तरिक जल मार्ग का उपयोग करता है। यह सस्ता साधन होने के साथ–साथ कम शक्ति का प्रयोग भी करता है। भारी माल को कम व्यय में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जा सकता है। भारी माल के साथ सामग्री भी आसानी से पहुँचाया जा सकता है। बाढ़ जैसी आपदा में यह कारगर बना रहता है। भारतीय नदियाँ चौड़ी होने के कारण बड़ी–बड़ी नावें चलायी जा सकती है। यहाँ की भूमि समतल होने के कारण नदियाँ भी समतल है।

जहाजरानी परिवहन देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में प्रमुख भूमिका निभाता है। देश का लगभग 90% व्यापार समुद्री मार्ग से होता है। जहाँ पहली पंचवर्षीय योजना में देश की जहाजरानी की क्षमता 3.7 लाख GRT थी वहीं आज वर्तमान में यह 82.9 लाख हो गयी। जहाजों की संख्या भी 94 से बढ़कर 707 हो गयी।

भारत के तटवर्ती इलाकों में 12 बन्दरगाह तथा 200 छोटे बन्दरगाह है। बड़े वाले केन्द्र सरकार के और छोटे राज्य सरकार के अंतर्गत आते है।

22.6.5. वायु परिवहन (Air Transport)–भारत के लिये वायु परिवहन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व सभी दृष्टिकोणें से महत्वपूर्ण एवं लाभकारी है। आधुनिक युग नवीनतम एवं क्रान्तिकारी भेंट है जिससे भौगोलिक कठिन परिस्थितियों में भी कई हजारों कि0मी0 का सफर कुछ ही घण्टों में तय किया जा सकता है। वायु परिवहन का आर्थिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(1) **भौगौलिक बाधाओं से मुक्ति**– चाहे समुद्र हो या रेगिस्तान, बर्फीला देश हो या नदी नाले, आज भी हजारों फुट की ऊँचाई पर भारतीय सेना अपने देश के प्रहरी का कार्य कर रही है।

(2) **कृषि के विकास में सहायक**– वायु परिवहन के माध्यम से खेतों में कीटनाशक दवाइयों को छिड़ककर टिड्डियों व अन्य कीटाणुओं का नाश करता है। 1954 से भारत इस सेवा का उपयोग कर रहा है।

(3) **सुरक्षा एवं शान्ति**– देश की सुरक्षा के लिये वायु परिवहन एक अचूक अस्त्र की तरह है। इससे विदेशी आक्रमण रोकने के साथ–साथ दुश्मन देश को सबक भी सिखाया जा सकता है। भारत पाक युद्ध में इस परिवहन ने अपना कौशल दिखा दिया है।

(4) **वाणिज्य का विस्तार**– बहुत ही अल्प समय में मूल्यवान नाशवान था कलात्मक वस्तुओं को देश से विदेशों में भेजना आसान हो गया है। इससे व्यावसायिक दृष्टि से लाभ प्राप्त होता है।

(5) **स्वास्थ्य में सुधार**– विमान परिवहन की सहायता से दवाइयों का छिड़काव व जनसाधारण के स्वास्थ्य में सुधार लाया जा सकता है।

(6) **वनों की रक्षा**– जब कभी वनों में भयंकर आग लग जाय, जिसे किसी भी माध्यम से रोकना कठिन है, ऐसे में वायु परिवहन से बचाव सम्भव हो जाता है।

(7) **पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहन**– इससे सरकार को रूप्ये में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। अतः वायु परिवहन पर्यटन के माध्यम से भी आर्थिक विकास करने में सहायक है।

फेयर और विलियम्स के अनुसार, *''मनुष्य को उपलब्ध विभिन्न साधनों में वायु परिवहन सबसे नवीनतम सबसे अधिक विकासशील, सबसे अधिक चुनौती देने वाला और हमारे आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में सबसे अधिक क्रान्ति उत्पन्न करने वाला है।''*

भारत में वायु परिवहन का विकास

भारत में प्रयोगात्मक उड़ाने **1919** में प्रारम्भ हुयी थी, लेकिन आधुनिक विमान परिवहन का वास्तविक शुभारम्भ **1927** में हुआ जबकि भारत सरकार ने नागरिक उड्डयन की स्थापना की। **1929** में ब्रिटेन, हॉलैण्ड एवं फ्रांस में प्रथम बार साम्राज्य वायुसेवा (Empire Air Services) के वायुयान भारत में उतरे। इसी समय इम्पीरियल एअरवेज नामक ब्रिटिश कम्पनी ने कराची व दिल्ली के बीच नियमित हवाई सेवा प्रारम्भ की।

1932– स्वदेशी सेवा, कराची व मद्रास के बीच टाटा बन्धुओं द्वारा शुरू की गयी।

1933– इण्डियन नेशनल ऐअरवेज लिमिटेड नामक एक भारतीय संस्था बनी जिसने करांची व लाहौर तक विमान सेवा प्रारम्भ की।

1935– टाटा ने बम्बई–त्रिवेन्द्रम की हवाई सेवा शुरू की।

1936– एअर सर्विसेज ऑफ इण्डिया लिमिटेड नामक एक तीसरी संस्था भारत में बनी जो 1939 में बन्द हो गयी। द्वितीय युद्ध के पश्चात 1946 में कम्पनियों को अपनी उड़ान भारत में करने के लिये अनुज्ञापन (Licence) लेना अनिवार्य हो गया।

वायु परिवहन लाइसेंस बोर्ड की स्थापना की गयी।

1947– वायुमान सेवा की 27 कम्पनियाँ थी।

1948– विमान चालक प्रशिक्षण केन्द्र इलाहाबाद में स्थापित किया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात वायु सेवा के राष्ट्रीकरण पर विचार किया जाने लगा। परिणामस्वरूप 1953 में इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। दो निगमों की स्थापना हुयी– भारतीय विमान निगम (Indian Airlines Corporation) अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय विमान निगम (Air India Intellectual Corporation)

26 जनवरी, 1981 से एक तीसरी सेवा वायुदूत के नाम से प्रारम्भ की गयी।

वर्तमान में वायु सेवा की स्थिति

आज इस क्षेत्र में सार्वजनिक एवं निजी कम्पनियाँ दोनों ही हैं।

(1) **सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियाँ**– इण्डियन एअरलाइन्स, एअर इण्डिया के विलय से ''दि नेशनल एवियशन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड'' बनी। मुख्यालय दिल्ली तथा निगमित कार्यालय मुम्बई में है। एअर इण्डिया का शुभंकर ''महाराजा'' ही इस विलय कम्पनी का शुभंकर है। इस क्षेत्र की अन्य कम्पनियाँ है– एअर इण्डिया चाटर्स लिमिटेड (AICL) तथा एलायंस एअर।

(2) **निजी क्षेत्र की कम्पनियाँ**– जेट एयरवेज, सहारा एयर लाइंस, कम एवियशन, स्पाइसजेट, गो एयरवेज, किंग फिशर एयर लाइंस, पैरामाउण्ड एयरवेज तथा इण्टर ग्लोब एवियेशन (इण्डिगों) आदि। 60 प्रतिशत से अधिक ट्रेफिक अब इनके हाथ में है।

उड़ान क्लब एवं ग्लाइडिंग क्लब– इनकी संख्या 25 है जो अनियमित विमान सेवाएं उपलब्ध कराती है।

भारतीय विमान पतन प्राधिकरण (AAI)– इसका गठन 1 अप्रैल, 1995 को राष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण (ANI) तथा अन्तर्राष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण (IAA) के विलय द्वारा हुआ। हवाई अड्डों के रखरखाव एवं संचालन की जिम्मेदारी इस प्राधिकरण की ही है।

पंचहंस हेलीकाप्टर्स लिमिटेड– देश के दुर्गम क्षेत्रों तथा ओ0 एन0 जी0 सी0 की सागर तटीय सेवाओं, राज्य सरकारों की सेवाओं तथा विशेष रूप से उत्तर पूर्व क्षेत्र में नियमित विमान सेवाएं उपलब्ध कराता है।

हवाई अड्डे– देश में 127 हवाई अड्डे है। 15 अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे है।

विमान निर्माण– 1940 में भारत में बालचन्द हरिचन्द ने हिन्दुस्तान एअरक्राफ्ट लिमिटेड के नाम से एक विमान निर्माण करने का कारखाने खोला जिसे बाद में भारत सरकार व

कर्नाटक सरकार ने मिलकर ले लिया। अब हवाई जहाज की यही एक कम्पनी है जो वायु सेना एवं नागरिक उड्डयन विभाग के लिये वायुयानों का निर्माण कर रही है।

वायु परिवहन की समस्याएँ एवं सुझाव

अधिक संचालन व्यय एवं पूर्णक्षमता का प्रयोग न होने के कारण वायु परिवहन का किराया अधिक होता है। कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों के बीच समय–समय पर संघर्ष होने से हड़ताल होती है। नये विमान विदेशों से क्रय करने पर विदेशी मुद्रा कोष पर दबाव पड़ता है। भारत में अन्वेषण एवं प्रशिक्षण हेतु सुविधाएँ भी सीमित है।

सुझाव के रूप में वायुयान अपनी पूरी क्षमता का प्रयोग करे और मितव्ययिता को अपनाये दुर्घटनाएं कम करने का प्रयास करे एवं अन्वेषण और प्रशिक्षण पर अधिक ध्यान दे। साथ ही साथ वायुयान निर्माण कार्य में तेजी भी लाये।

22.6.6. संचार–

भारत में पहली संचार सेवा 1837 में प्रारम्भ हुयी। 1854 में यहाँ 700 डाकखाने थे। इस समय 1,55035 डाकखाने है।

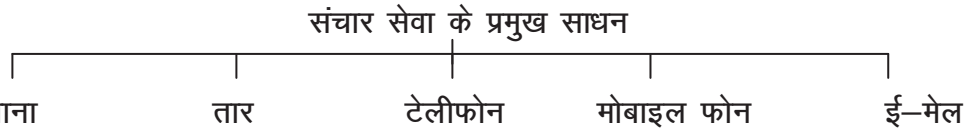

(1) <u>डाकखाना</u>–

आम जनता के लिये डाकखाना सेवा एक आधारशिला है। पोस्टकार्ड, लिफाफा, अर्न्तदेशीय रजिस्टर्ड पत्र आदि इसके माध्यम है। प्रतिवर्ष डाकखाने से 1578 करोड़ पत्र एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाता है। इसके अलावा स्पीड पोस्ट, रजिस्टर्ड डाक भी होते है।

डाकखाना पत्र पत्रिकाओं आदि को हवाई जहाज, रेल, व रोडवेज की बसों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है।

सुविधा व तुरन्त कार्यवाही के लिये बड़े शहरों के लिये विशेष सुविधा देने के उद्देश्य से डाक को निम्न प्रकार में बांटा गया है–

(1) राजधानी चैनल
(2) मेट्रो चैनल
(3) ग्रीन चैनल
(4) व्यापारिक चैनल
(5) बल्क मेल चैनल (Bulk Mail Channel)
(6) पीरिओडीकल चैनल (Periodical Channel)

डाकखाने के माध्यम से अपने पत्र व छोटे–छोटे माल व नमूने के पैकिट भी शीघ्रता से भेजे जा सकते है जिसके लिये डाकखाना सामान्य दर से कहीं अधिक दर वसूल करता है लेकिन साथ ही यह वायदा करता है कि पत्र मात्र 48 घण्टे या निर्धारित समय सीमा मे पहुँचा दिया जायेगा जिसके लिये निम्न सेवाएं प्रदान की रखी है।

- स्पीड पोस्ट
- एक्सप्रेस सेवा
- ई–पोस्ट एवं ई–बिल पोस्ट

2. **तार** (Telegraph)–भारतीय तार विभाग विश्व की सबसे पुरानी सरकारी सार्वजनिक उपयोगिता (Public Utility) है। भारत में तारघरों की संख्या जो 1951 में 8500 थी बढ़कर 30,000 हो गयी है। फोनोग्राम सेवा (Phonogram Service) टेलेक्स सेवा (Telex Service) प्रत्यक्ष ट्रंक डायर्लिंग (Direct Trunk Dialing) जैसे सुविधाएं अब सामान्य जनता को उपलब्ध है।

3. **दूरसंचार** (Telecommunication)–वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा के लिये दूरसंचार अब एक महत्वपूर्ण आदान (Input) है और इससे ही भारत अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में सफलता प्राप्त कर सकता है। इसके द्वारा देश के कोने में संचार के लाभ पहुंचाएं जा सकते है और यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने में भी लाभदायक हो सकती है।

4. **टेली संचार नीति** (Telecom Infrastructure)–टेली संचार आधार संरचना को उपलब्ध कराने और उसके प्रबन्ध के बारे में काफी अस्पष्टता थी। टेली संचार सेवा विभाग (Dept.Telecom Services) और टेलीसंचार क्रियाओं का विभाग दो सेवाएं उपलब्ध कराने वाले विभाग थे। MTNL (Mahanagar Telephone Negain Limited) और भारज संचार निगम लिमिटेड (Bharat Sanchar Negain ltd.BSNL) जो दिल्ली और मुम्बई में बुनियादी टेलीफोन सेवाएं उपलब्ध कराती थी (MTNL) और शेष देश में BSNL यह सेवा उपलब्ध कराती हैं।

BSNL– दूर संचार क्षेत्र के सेवा प्रदान करने वाले दो विभाग का निगमीकरण कर दिया गया है।

5. **फैक्स**– यह एक प्रकार से लिखित सन्देश प्राप्त करने या भेजने का साधन है। इसके लिये एक फैक्स मशीन की आवश्यकता होती है। जिसे टेलीफोन नम्बर से जोड़ देते है। यह मशीन सन्देश को कागज पर प्राप्त कर छाप देती है। साथ ही भेजने वाले का टेलीफोन नम्बर, नाम, पता व समय भी लिख देती है। इसमें टेलीफोन का व्यय लिया जाता है।

6. **ई–मेल**–कम्प्यूटर युग में ई–मेल के द्वारा संदेश को विश्व में कहीं भी भेजा जा सकता है। इसके लिये इन्टरनेट की सुविधा होनी चाहिये। संचार का यह साधन वर्तमान में अति लोकप्रिय साधन है।

7. **इण्टरनेट**–इण्टरनेशनल नेटवर्क का संक्षिप्त नाम इण्टरनेट देश विदेश के लोग के बीच संपर्क स्थापित कर सकता है। विश्व में होने वाली कोई भी घटना को देखा जा सकता है। इण्टरनेट द्वारा विश्वभर के कम्प्यूटर सूचना केन्द्रों से प्राप्त सूचनाओं व आँकड़ों को अपनी भाषा में बड़ी सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। इस विधि को इण्टरनेट प्रोटोकोल (Internet Protocol) कहा जाता है।

भारत में इण्टरनेट का प्रवेश वर्ष 1987–88 में हुआ था। इण्टरनेट का उपयोग करने वालों की संख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में पाँचवां स्थान है।

22.6.7. बैंक, बीमा एवं वित्त (Banks, Insurance & Finance)

आधारभूत संरचना के विकास के लिये बैंकों, बीमा कम्पनियों व वित्त संस्थाओं के विकास की भी आवश्यकता होती है। पहले भारत में बैंकों का कार्य सेठ, महाजन आदि के हाथ में था किन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी (East India Company) के आने पर 1809 में Bank of Bengal स्थापित की गयी। तत्पश्चात कई बैंक स्थापित की गयी जो कारखानों एवं व्यावसायों को ऋृण देती थी।

बीमा जोखिमों के दुष्परिणामों से सुरक्षा प्रदान करने की एक व्यवस्था है। भारत में इसकी शुरूआत 1710 में कोलकाता में ''सन् इन्शोरेन्स ऑफिस'' के नाम से हुयी थी। यह कम्पनी अंग्रेजों की थी। भारतीयों ने अपना प्रयास में 1850 में किया।

1885 तक भारत में लगभग 50 एजेंसी कार्यालय स्थापित हो चुके थे। बाद में भारत में 1905 में स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप अनेक भारतीय कम्पनियाँ स्थापित हुयी। 1938 में बीमा अधिनियम पारित किया गया। 1971 में इनका राष्ट्रीकरण कर दिया गया। 1972 में GIC (General Insurance Corporation) बना दिया गया। इस निगम की चार सहायक कम्पनियां है–

(1) नेशनल इन्शोरेन्स कम्पनी लि0 (National Insurance Company ltd.)

(2) न्यू इण्डिया कम्पनी लिमिटेड (New India company ltd.)

(3) ओरिएण्टल इन्शोरेन्स कम्पनी लिमिटेड (Oriental Insurance company ltd.)

(4) यूनाइटेड इंडिया इन्शोरेन्स कम्पनी लि0 (United India Insurance co. ltd.)

अब वर्तमान में नई आर्थिक नीति के तहत निजी कम्पनियों ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश कर लिया है। अब तक 13 निजी कम्पनियो को अपना साधारण बीमा करने की अनुमति दे दी गयी है।

22.7 आधार संरचना में निजी निवेशः दृष्टि और भविष्य (Private Investment in infrastructure: A focus & future)

भारत सरकार ने यह बात स्वीकार कर ली है कि आधार संरचना को सार्वजनिक क्षेत्र का एकाधिकार बनाने की जरूरत नहीं। आधार संरचना की सुविधा को उपलब्ध कराने का दायित्व सरकार पर था क्योंकि भारी पूँजी निवेश लम्बी परिपाक अवधि, उच्च जोखिम और निवेश पर निम्न प्रत्याय दर (Rate of Return) सरकार के माध्यम से सम्भव है। किन्तु सरकार के स्वामित्वार्धान आधारसंरचना अत्यन्त अकुशल और भ्रष्ट साबित हुयी।

आधार संरचना की माँग इनके संभरण से कहीं अधिक हैं। इसी कारण आधारसंरचना की क्षमता में दोष और अकुशलताएं व्यापक रूप धारण कर गयी है। सड़कों पर भीड़ पेयजल की असुविधा, पावर की विफलता रोजमर्रा का अनुभव बन गयी है। आधार

संरचना के अभाव का आने वाले वर्षों में देश के अधिक विकास पर प्रभाव पड़ना निश्चित है।

1991 के पश्चात सरकार की रणनीति कुशल आधोसंरचना के विकास को उच्च प्राथमिकता देती है और इसके लिये एक अनुकूल वातावरण तैयार करना चाहती है। इससे निजी क्षेत्रों का सहयोग अधोसंरचना विकास में बढ़ सका।

1997 में सरकार ने भारतीय कम्पनी अधिनियम के आधीन आधारसंरचना विकास वित्त कम्पनी की स्थापना की। ऐसी कम्पनियाँ जो आधार संरचना सुविधाओं के विकास एवं परिचालन का कार्य करती है, को कर अवकाश प्रदान किया गया। संलग्न कम्पनियों को आयकर में छूट भी प्रदान की गयी। सरकार ने आधार संरचना कम्पनियों को हिस्सों एवं ऋणपत्रों (Debentures) को निवेश पर कर कटौती की सीमाएं बढ़ा दी है।

आधार संरचना में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने हेतु देशीय पूँजी बाजारों (Capital Markets) का विकास अनिवार्य हैं। विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिये विदेशी हिस्से पूँजी के सहयोग के लिये 74 प्रतिशत तक स्वचालित स्वीकृति देने की इजाज़त दे दी है।

आधार संरचना के वाणिज्यीकरण पर विशेषज्ञ दल ने प्रत्येक आधार संरचना क्षेत्र के लिये स्टॉक स्क्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया की भाँति एक स्वायत्त विनियामक संस्था की स्थापना का सुझाव दिया है।

योजना आयोग ने खुले रूप में यह बात स्वीकार कर ली है कि भारत के आर्थिक विकास में आधारसंरचना का अभाव एक मुख्य सीमा बंधन है। औद्योगिक विकास के लिये पावर क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसकी वास्तविक समस्या वितरण प्रणाली है जो राज्य सरकारों के हाथों में है। सार्वजनिक निजी साझेदारी आधार संरचना के निर्माण और कार्य प्रचालन का बेहतर ढ़ंग माना जाता है। वे निजी पूँजी को सार्वजनिक आधार संरचना और सेवाओं को प्रयोक्ताओं की उपलब्धि में कुशलता प्रोन्नत करने में महत्वपूर्ण लाभ देते है।

22.8 सारांश

कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिये आधार संरचना का विस्तार करना आवश्यक है। औद्योगिक एवं कृषि क्रान्ति के कारण परिवहन एवं संचार क्रान्ति फलीभूत हुयी। जहाँ ऊर्जा का स्त्रोत पहले कोयला, बाद में तेल और विद्युत हुआ वहीं वित्त जुटाने के लिये बैंकिंग, बीमा एवं अन्य वित्त संस्थानों का भी विकास होता गया।

आधारभूत संरचना की उपलब्धता मात्र शहरों एवं नगरों में ही उपलब्ध है और गाँवों में इनका विकास तुलनात्मक दृष्टि से नहीं हो सका। इसी कारण जनसंख्या का पलायन गाँवों से शहरों की ओर हो रहा है और परिणामस्वरूप शहरों की जनसंख्या बढ़ती जा रहीं है। प्रत्येक देश अपनी आर्थिक योजनाएं बनाते समय शक्ति संसाधनों के विकास पर विशेष जोर देता है। कोयला को ईंधन का बादशाह माना जाता है। किसी भी देश का आर्थिक विकास विद्युत शक्ति के बिना सम्भव नहीं है। विकसित देशों की तीव्र विकास के पीछे विद्युत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।खनिज तेल एक अत्यंत उपयोगी संसाधन है। किसी भी देश का औद्योगिक विकास, प्रतिरक्षा, व्यवस्था व परिवहन साधनों की उन्नति इस

पर निर्भर होती है। परमाणु शक्ति के विकास की परम आवश्यकता है क्योंकि देश के आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त मात्रा में सस्ती शक्ति की जरूरत होती है।

परिवहन से कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि, विविधकरण एवं विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है। इससे व्यापार का ही विस्तार नहीं होता बल्कि मूल्यों में भी स्थिरता आती है। देश की सुरक्षा एवं रक्षा को बढ़ावा मिलता है एवं सरकारी आय भी बढ़ती है। डाकखाना पत्र पत्रिकाओं आदि को हवाई जहाज, रेल, व रोडवेज की बसों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है। इसके अलावा तार, दूरसंचार, टेली संचार नीति, फैक्स, ई–मेल, इण्टरनेट आदि भी संचार के माध्यम है। आधारभूत संरचना के विकास के लिये बैंकों, बीमा कम्पनियों व वित्त संस्थाओं के विकास की भी आवश्यकता होती है।योजना आयोग ने खुले रूप में यह बात स्वीकार कर ली है कि भारत के आर्थिक विकास में आधारसंरचना का अभाव एक मुख्य सीमा बंधन है।

22.9 शब्दावली

(1) परम्परागत साधन	–	Traditional Source
(2) निगम	–	Corporation
(3) विद्युतीकरण	–	Electrification
(4) खनिज तेल	–	Mineral Oil
(5) आवागमन	–	Movement

22.10 संदर्भ सहित ग्रन्थ

1)डॉ. जे.पी. मिश्रा संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र *साहित्य भवन पब्लिकेशन्स*, आगरा 2012

2) एल.एन. कोली भारतीय अर्थव्यवस्था *लक्ष्मी नारायन अग्रवाल*, आगरा 2007

3) कुमार सर्वेश भारतीय अर्थव्यवस्था, सार्थक प्रकाशन,दिल्ली, 2011

4) डा0 जे0सी0 पन्त एवं जे0पी0 मिश्रा – अर्थशास्त्र, *साहित्य भवन पब्लिकेशन*,आगरा 2012

5) डॉ. जे.पी. मिश्रा अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, *साहित्य भवन पब्लिकेशन्स*, आगरा 2012

22.11 सहायक उपयोगी सामग्री

- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India.
- Singh, S.P.((2010)EconomicsofDevelopment & Planing theory & practice ,S&Chand Publishing House .
- Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons.
- Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya.

22.12 लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) ICICI की स्थापना कब हुयी?
(2) IDBI एवं EXIM बैंक की स्थापना कब हुयी?
(3) ऊर्जा आयोग की स्थापनी कब हुयी?
(4) सड़क परिवहन के विभिन्न साधन क्या है?
(5) राजधानी एक्सप्रेस कब से चलनी शुरू हुयी?
(6) व्यापारिक जहाजरानी बेड़े की दृष्टि से भारत का विश्व में कौन सा स्थान है?

उत्तर

(1) 1995, (2) 1964 & 1982, (3) 1981 (5) मार्च 1969, (6) 20 वां

22.13 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) अधोसंरचना से क्या अर्थ है? इसके विकास के बारे में बताइये?
(2) भारत के परिवहन संसाधनों की व्याख्या कीजिये?
(3) निम्न पर टिप्पणी कीजिये
   (a) संचार संसाधन (b) वायु परिवहन संसाधन

इकाई–23 पर्यावरण, पारिस्थितकी एवं आर्थिक विकास

इकाई की संरचना

23.1 प्रस्तावना

23.2 उद्देश्य

23.3 पर्यावरण का अर्थ

23.4 पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिकी तन्त्र

23.5 पर्यावरण की प्रमुख विशेषताएँ

23.6 पर्यावरण की संरचना तथा प्रकार

23.7 पर्यावरण अध्ययन का विषय क्षेत्र

23.8 पर्यावरणः अर्थव्यवस्था सम्बन्ध

23.9 आर्थिक विकास के फलस्वरूप पर्यावरणीय समस्याएँ

23.10 मानव–पर्यावरण सम्बंध

23.10.1 मानव पर्यावरण के मध्य सम्बंध

23.10.2 प्राकृतिक पर्यावरण पर मानव के प्रभावों

23.11 पर्यावरण–अर्थव्यवस्था सन्तुलन

23.12 पारिस्थितिकी की अवधारणा

23.13 पर्यावरण संकट के कारण एवं परिणाम

23.14 सारांश

23.15 शब्दावली

23.16 संदर्भ सहित ग्रन्थ

23.17 सहायक उपयोगी सामग्री

23.18 लघु उत्तरीय प्रश्न

23.19 निबन्धात्मक प्रश्न

23.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में हमने पूँजी का, आधार संरचना का एवं मानव संसाधन का आर्थिक विकास से सम्बंधों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई पर्यावरण, पारिस्थितिकी का आर्थिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध को व्यक्त करती है। इस इकाई में पर्यावरण की प्रमुख विशेषताओं के साथ उसका अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

पर्यावरण उन दशाओं का योग होता है जो मानव को निश्चित समय में निश्चित स्थानों पर आवृत्त करती है। पर्यावरण में समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियां सम्मिलित होती है, अतः पर्यावरण जीवों की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग होता है।

मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रकृति पर निर्भर करते है। इन प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने के फलस्वरूप प्रकृति अपना संतुलन बनाए रखने में स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रही है। इस असन्तुलन का प्रत्यक्ष प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है।

23.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम यह जान सकेंगे कि

a) पर्यावरण क्या है
b) इसकी प्रमुख विशेषताएँ क्या है
c) पर्यावरण के विभिन्न तत्व क्या है
d) पर्यावरण का अर्थव्यवस्था से क्या सम्बन्ध है
e) पर्यावरण का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है
f) पर्यावरण अर्थव्यवस्था का क्या संतुलन है

23.3 पर्यावरण का अर्थ

पर्यावरण दो शब्दो **''परि''** तथा **''आवरण''** से मिलकर बना है जिसमें परि शब्द का अर्थ **''चारों ओर से''** तथा आवरण शब्द से आशय है **''घेरे या ढके हुये''** से होता है। पर्यावरण से आशय मानव अथवा किसी जीवधारी के चारों ओर पाये जाने वाले उस आवरण से है जिसमें रहकर वह जीव विशेष रूप से अपना जीवनयापन करता है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण से आशय उस समूची भौतिक व जैविक व्यवस्था से है, जिसमें जीवधारी निवास करते है तथा वृद्धि कर अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास करते है।

जहाँ तक पर्यावरणविद् का मत है, वे पर्यावरण के स्थान पर Milieu या Habitual शब्द का प्रयोग भी करते है। इसका आशय पारिस्थितिकी (Total set of surroundings) से है। पर्यावरणविद् फिटिंग (Fitting) का कथन है, ***''जीवों के पारिस्थितिकी कारको का योग (The total of Milieu factor of an organism) पर्यावरण है।''***

23.4 पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिकी तन्त्र

(Environment, Ecology & Ecological Mechanism)

A.G. Tansley के शब्दों में, ***''प्रभावकारी दशाओं का वह सम्पूर्ण योग जिसमें जीवधारी निवास करते है, पर्यावरण कहलाता है।''***

C.C. Park के शब्दों में, *''पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के योग से होता है जो मानव को निश्चित समय में निश्चित स्थानों पर आवृत्त करती है।''*

चूँकि पर्यावरण में समस्त भौतिक एवं जैविक परिस्थितियाँ सम्मिलित होती है, अतः पर्यावरण जीवों की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग होता है।

23.5 पर्यावरण की प्रमुख विशेषताएँ

(1) अजैविक या भौतिक व जैविक घटक पर्यावरण के महत्वपूर्ण भाग है तथा पर्यावरण के अजीव व जैव तत्व अपनी विशेषता के अनुसार पर्यावरण का निर्माण करते है।
(2) जीवों के चारों ओर की वस्तुएँ पर्यावरण का निर्माण करती है।
(3) पर्यावरण में जीवों का परस्पर सहवास अनिवार्य लक्षण है।
(4) पर्यावरण सदैव बदलता रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि पर्यावरण की प्रकृति गतिशील होती है तथा पर्यावरण की गतिशीलता का प्रमुख कारण सूर्य से प्राप्त ऊर्जा होती है।
(5) पर्यावरण परिवर्तनों के प्रति जीव अनुकूलता उत्पन्न करते रहते है।
(6) पर्यावरण स्व नियंत्रण एवं स्वपोषण पर आधारित है।
(7) पर्यावरण में विशिष्ट भौतिक क्रियाएँ कार्यरत रहती है।
(8) पर्यावरण में पार्थिव एकता विद्यमान रहने के साथ–साथ क्षेत्रीय विविधता भी मिलती है।
(9) पर्यावरण जैव जगत का निवास क्षेत्र होता है।
(10) पर्यावरण में संसाधनों का अपार भण्डार होता है।

हम जीवधारियों तथा वनस्पति के चारों ओर जो आवरण है उसे पर्यावरण कहते है। सामन्य रूप से पर्यावरण की प्रकृति (Nature) से समता की जाती है, जिसके अन्तर्गत ग्रहीय पृथवी के भौतिक घटकों (स्थल, वायु, जल, मृदा आदि) को सम्मिलित किया जाता है जो जीवमण्डल में विभिन्न जीवों को आधार प्रस्तुत करते है, उन्हें आश्रय देते है, उनके विकास तथा सम्वर्द्धन हेतु आवश्यक दशाएँ प्रस्तुत करते हैं एवं उन्हें प्रभावित भी करते है।

पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील तंत्रों से इसकी रचना होती है।

23.6 पर्यावरण की संरचना तथा प्रकार (Structure & types of Environment)

पर्यावरण भौतिक एवं जैविक संकल्पना है अतः इसमें पृथ्वी के दोनों अर्थात् अजीवित तथा जीवित संघटकों को सम्मिलित किया जाता है। पर्यावरण की इस आधारभूत संरचना के आधार पर इसको दो प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जाता है–

(A) **भौतिक पर्यावरण** (Abiotic)

(B) **जैविक पर्यावरण** (Biotic)

पर्यावरण में प्रमुख चार घटक सम्मिलित होते है–

(1) ***स्थलमण्डल (Lithosphere)***

(2) जलमण्डल (Hydrosphere)

(3) वायुमण्डल (Atmosphere)

(4) जैवमण्डल (Biosphere)

भौतिक तत्व (स्थान, स्थलरूप, जलीय भाग, जलवायु, मृदा, शैल तथा खनिज) मानव निवास्य क्षेत्र (Human habitual) को परिवर्तनशील विशेषताओं, उसके सुअवसर से तथा प्रतिबन्धक अवस्थितियों (Limitations) को निश्चित करते है।

जैविक तत्व (पौधे, जन्तु, सूक्ष्म जीव तथा मानव) जीवमण्डल की रचना करते है।

पर्यावरण के संघटकों (Components) को तीन प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जाता है–

(1) **भौतिक या अजैविका संघटक**

(2) जैविक संघटक

(3) ऊर्जा संघटक

भौतिक संघटक के अन्तर्गत स्थल, वायु तथा जल एवं उनके उपसंघटको को सम्मिलित किया जाता है जबकि *जैविक संघटक* के अन्तर्गत 3 प्रमुख उपसंघटक आते है– पादप संघटक, मानव समेत जन्तु संघटक तथा सूक्ष्म जीव घटक। *ऊर्जा संघटक* के अन्तर्गत सौर्यिक ऊर्जा एवं भूतापीय (Geothermal) ऊर्जा को सम्मिलित करते है।

उक्त चार घटकों में वायुमण्डल पर्यावरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं गतिशील घटक है, क्योकि वह वायुमण्डल ही है जिसमें निरन्तर मौसमीय परिवर्तन होते रहते है। 78% Nitrogen तथा 21% Oxygen के अलावा कार्बन डाई ऑक्साइड, हाइड्रोजन, हीलियम तथा ओजोन आदि वायुमण्डल में अल्प मात्रा में मिलने वाली अन्य गैसे हैं। क्षोभमण्डल, समतामण्डल, मध्यमण्डल तथा बाह्यमण्डल, वायुमण्डल की चार प्रमुख परते हैं।

23.7 पर्यावरण अध्ययन का विषय क्षेत्र (Scope of Environmental Studies)

पर्यावरण अध्ययन का विषय क्षेत्र इसका वर्तमान अध्ययन प्रवृत्ति है, जो अधोलिखित है–

(1) **पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिकी तंत्र** (Ecology & Eco System)

(2) **जीवमण्डल के संघटक** (Components of Biosphere)

(3) **पर्यावरण प्रकोप** (Environmental Hazards)

(4) **पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण** (Environmental degradation & Pollution)

(5) **पर्यावरण प्रबन्धन** (Environmental Management)

23.8 पर्यावरणः अर्थव्यवस्था सम्बन्ध

पर्यावरण तथा देश की अर्थव्यवस्था के बीच प्रत्यक्ष, सहजीवी एवं गहन सम्बंध होता है। पर्यावरण अनेक जैविक एवं अजैविक घटकों से मिलकर बना है। जब ये समस्त घटक निश्चित अनुपात में होते है तो एक सुन्दर एवं स्वच्छ पर्यावरण का निर्माण करते है। मनुष्य की भोगकारी प्रवृत्ति से प्रेरित तीव्र आर्थिक विकास की लालसा ने इन घटकों के अनुपात

को बिगाड़ दिया है। इसके फलस्वरूप पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी को अपूर्णीय क्षति पहुँच रही है और फलस्वरूप पर्यावरण ने विकराल रूप दिखाना शुरू कर दिया।

मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में आर्थिक विकास के फलस्वरूप भारी पर्यावरणीय ह्रास हुआ है। भारत में वर्तमान समय में लगभग 10 से 12 मिलियन अमेरिकी डालर के बराबर पर्यावरणीय क्षति का नुकसान किया गया है जो इसके सकल घरेलु उत्पाद का 4.5 से 6 प्रतिशत तक होता है।

आज के दौर में, आर्थिक विकास की प्रक्रिया और संसाधनों का दोहन रोकना उचित नहीं है। आर्थिक विकास देश की प्रगति का सूचक है। परन्तु इस प्रगति को बनाने के लिये पारिस्थितिक तंत्र की ह्रासमान गति पर नियन्त्रण करके सर्वप्रथम पारिस्थितिक विकास की अवधारण को आधार बनाया जाय जिससे आर्थिक विकासात्मक नीतियाँ बनायी जा सके। आर्थिक विकास के फलस्वरूप औद्योगिकीकरण, नगरीकरण वनो का विनाश एवं प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुंध दोहन होने से मानव एवं प्रकृति के मध्य स्थापित सन्तुलन बिगड़ गया है। इस असन्तुलन से विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं का जन्म हुआ जिनमें पर्यावरणीय प्रदूषण प्रमुख है। मनुष्य की नज़र में आर्थिक सामाजिक विकास के चलते सभ्य समाज द्वारा उठाये गये कदमों से आत्मघाती परिणाम नज़र आ रहे है जिससे पर्यावरण का ह्रास हो रहा है।

23.9 आर्थिक विकास के फलस्वरूप पर्यावरणीय समस्याएँ
(Environmental Problems due to eco dev)

(1) <u>वन विनाश का पर्यावरण पर प्रभाव</u> **(Effect of forest destruction on environment)**– भूमि की बढ़ती आवश्यकता के चलते वनों की अन्धाधुन्ध कटाई होती जा रही है। यह कहना कदापि गलत नहीं होगा कि भारत में वनों के विनाश का क्रम मानवीय क्रियाकलापों के विस्तार से प्रारम्भ हुआ है। आर्थिक विकास करने के लिये मनुष्य वनों को साफ करने में लगा है। जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि भूमि, आवास, उद्योगों की आवश्यकताएं भी बढ़ी है जिससे वनों का विनाश होने लगा है।

(2) <u>उत्खनन का पर्यावरण पर प्रभाव</u> **(Effect of mining on environment)&** आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिये औद्योगिकीकरण की आवश्यकता है और उसकी स्थापना के लिये खनिज पदार्थों का उत्खनन आवश्यक है। खनन संसाधनों को प्राप्त करने के लिये उत्खनन किया जाता है। परन्तु सघन वन क्षेत्रों में उत्खनन करने से अमूल्य वन सम्पदा नष्ट हो जाती है। न सिर्फ वनों का नाश होता है बल्कि वायु एवं ध्वनि प्रदूषण भी अत्यधिक मात्रा में होता है। खानों की जड़ाई से निकले मलबे के ढेर जहाँ डालते है, वहाँ की भूमि बेकार हो जाती है उदाहरण के तौर पर शिवालिक क्षेत्र में चूना पत्थरों की खदानों से पर्यावरण की अपार क्षति हुयी है। ऐसे ही धनबाद, हजारीबाग कोयला क्षेत्रों की भूमि भी अवशिष्ट खनिजों को जल स्त्रोतों में प्रवाह से बेकार हो गयी है।

(3) <u>औद्योगिकीकरण का पर्यावरण पर प्रभाव</u> **(Effect of industrialization on environment)**– औद्योगिक विस्तार एवं औद्योगिकीकरण जहाँ एक ओर आर्थिक विकास के

सूचक माने जाते है वहीं उनकी स्थापना से वनों का विनाश तीव्र गति से होने लगती है क्योंकि तभी विस्तृत भूखण्ड की प्राप्ति हो सकती है। वाँछित उत्पादन के अतिरिक्त हानिकारक अवशिष्ट पदार्थ, प्रदूषित जल, जहरीली गैस, रासायनिक अवशेष, धूल, राख, धुँआ आदि भी निकलते है। इन सब से वायु, जल, मिट्टी प्रदूषण बढ़ता है जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाता है।

(4) नगरीकरण का पर्यावरण पर प्रभाव (Effect of urbanisation on environment)– नगरीकरण आर्थिक विकास के प्रतीक चिह्न माने जाते है। नगरों में जनसंख्या की अधिकता होने से पर्यावरण समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। ऐसे में नगर प्रशासन पर्याप्त नागरिक सुविधायें नहीं जुटा पाता। कई प्रकार की समस्याएँ जैसे आवास की समस्या, परिवहन की समस्या, पेयजल आपूर्ति की समस्या, प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होने लगती है जिससे महानगर ग्रसित हो जाते है। आवास की पर्याप्त सुविधा न मिलने से मलिन बस्तियों की संख्या बढ़ती जा रही है अत्यधिक भीड़भाड़ से वातावरण दमघोंट होता जा रहा है। वाहनों के गतिमान होने से ध्वनि एवं वायु प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। नगरों में बढ़ते हुये कूड़े करकट, मलमूत्र व ठोस अवशिष्ट का निस्तारण बहुत बड़ी समस्या बनता जा रहा है। यही सब महामारी का कारण बन जाते है।

यह सच है कि आज विश्व का कोई भी आर्थिक विकास के साधनों को बन्द करने की स्थिति में नहीं है। आर्थिक विकास अति आवश्यक है परन्तु आवश्यकता है कि औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, विकासात्मक कार्यों, बहुउद्देशीय नदीं परियोजनाओं का क्रियान्वयन पर्यावरणीय दृष्टिकोणों को ध्यान करके किया जाय।

23.10 मानव–पर्यावरण सम्बंध (Man-Environment relationship)-

जहाँ मानव एक तरफ भौतिक पर्यावरण के जैविक संघटक का एक महत्वपूर्ण घटक है वहीं दूसरी तरफ वह पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण कारक भी है। मानव प्राकृतिक पर्यावरण को विभिन्न रूपों में प्रभावित करता है– जीवित या भौतिक मनुष्य, सामाजिक मनुष्य, आर्थिक मनुष्य तथा प्रोद्यौगिक के रूप में। चूँकि मानव अन्य प्राणियों की तुलना में शारीरिक एवं मानसिक स्तरों तथा प्रौद्योगिक स्तर पर भी सर्वाधिक विकसित प्राणी है, अतः वह प्राकृतिक पर्यावरण को बड़े स्तर पर परिवर्तित करके अपने अनुकूल बनाने की क्षमता रखता है। इस प्रकार देखा जाय तो मानव संस्कृति के विकास के प्रथम चरण में मनुष्य भौतिक पर्यावरण का अन्य कारकों के समान एक कारक मात्र था परन्तु जैसे उसकी संस्कृति के विकास के प्रथम चरण में मनुष्य भौतिक पर्यावरण का अन्य कारकों के समान एक कारक मात्र था परन्तु जैसे–जैसे उसकी संस्कृति के विकास के साथ उसकी बुद्धि, उसका कौशल तथा उसकी प्रौद्योगिकी विकसित होती गयी पर्यावरण के साथ उसकी भूमिका तथा सम्बन्ध में भी उत्तरोत्तर परिवर्तन होता गया।

पर्यावरणीय कारक ⟶ पर्यावरण का कार्यकर्ता (Challenger) ⟶तथा पर्यावरण का विध्वंसकर्ता (destroyer of the environment)

अब मानव प्राकृतिक पर्यावरण का कारक एवं पालक न रहकर उसका विध्वंसक बन गया।

23.10.1 मानव पर्यावरण के मध्य सम्बंध

काल	मानव स्वरूप	मानव पर्यावरण सम्बंध
आखेट एवं भोजन संग्रहक	जीवीय या भौतिक मनुष्य	कारक **(Factor)**
पशुपालन एवं पशुचारण **(Modifier)**	सामाजिक मनुष्य	रूपान्तरकर्ता
पौधपालन एवं कृषि **(Challenger)**	आर्थिक मनुष्य	परिवर्तनकर्ता
विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं **(Destroyer)**	प्रौद्योगिक मानव	विध्वंसकर्ता
औद्योगिकीकरण		

23.10..2 प्राकृतिक पर्यावरण पर मानव के प्रभावों–प्राकृतिक पर्यावरण पर मानव के प्रभावों को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) प्रत्यक्ष (Direct Impact)

(2) अप्रत्यक्ष (Indirect Impact)

(1) **प्रत्यक्ष प्रभाव**– भौतिक पर्यावरण को परिवर्तित या रूपान्तरित करने के लिये किसी भी कार्यक्रम से उत्पन्न होने वाले परिणामो से मनुष्य अवगत रहता है। इस तरह के परिवर्तन है:–

(a) भूमि उपयोग में परिवर्तन– कृषि में वृद्धि तथा विस्तार, खनिजों का खनन, भूमिगत जल का निष्कासन आदि।

(b) मौसम रूपान्तर कार्यक्रम (Weather Modification Programme)– वर्षण को प्रेरित करने के लिये मेघ बीजन, उपल वृष्टि (Hail Storm) को रोकना तथा नियंत्रित करना आदि।

(c) नाभिकीय कार्यक्रम (Nuclear Programmes)– प्राकृतिक पर्यावरण में इस तरह के मानव जनित परिवर्तनों के प्रभाव अल्पकाल में ही परिलक्षित हो जाते है परन्तु ये परिवर्तन भौतिक पर्यावरण को दीर्घकाल तक प्रभावित करते रहते है।

(2) **अप्रत्यक्ष प्रभाव**– ये प्रभाव न पहले से सोचे गये होते है न ही नियोजित (Planned) यह अप्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक विकास की रफ्तार को तेज करने के लिये, खासकर औद्योगिक विकास में विस्तरण, मनुष्य द्वारा किये गये प्रयासों तथा कार्यों के फलस्वरूप उत्पन्न होते है। यद्यपि आर्थिक विकास के लिये किये जाने वाले इस तरह के कार्यकलाप आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण होते है परन्तु उनके द्वारा उत्पन्न पश्चप्रभाव (After Effect) निश्चय ही सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय होते हैं।

आर्थिक क्रियाकलापों से जनित पर्यावरण पर पड़ने वाले मनुष्य के अप्रत्यक्ष प्रभाव शीघ्र परिलक्षित नहीं होते है। ये मंद गति से होने वाले परिवर्तन दीर्घकाल तक संचयित होते रहते है। यह प्रभाव उत्क्रमणीय नहीं होते है (Non Reversible) ऐसे प्रभाव पारिस्थितिक तंत्र के एक या अधिक संघटकों या सम्पूर्ण प्राकृतिक तंत्र को परिवर्तित कर

देते है जो मानव वर्ग के लिये घातक एवं जानलेवा हो जाता है। मनुष्य के द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों में से अधिकांश पर्यावरण अवनयन (Environmental Degradation) तथा प्रदूषण सम्बन्धित होते है।

अप्रत्यक्ष प्रभावों के उदाहरण–कीटनाशक, रासायनिक दवाएं, उर्वरक (D.D.T.) जिससे आहार श्रृंखला एवं आहार जाल में परिवर्तन हो जाता है।

23.11 पर्यावरण–अर्थव्यवस्था सन्तुलन

मनुष्य द्वारा बढ़ते क्रिया कलापों ने प्रकृति के विभिन्न घटकों में हस्तक्षेप कर पर्याकरण के सन्तुलन को बिगाड़ दिया है। पूँजी प्रधान औद्योगिकीकरण की क्रिया ने पर्यावरण को क्षतिग्रस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। पर्यावरण अपघटन का औद्योगिकीकरण नगरीकरण तथा विस्तृत एवं सघन कृषि से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। औद्योगिकीकरण ने वायु एवंज ल प्रदूषण तथा औद्योगिक अपशिष्ट प्रदूषण को जन्म दिया है। औद्योगिकीकरण से ही नगरीकरण का विस्तार हुआ है जिसके फलस्वरूप आवास की समस्या, परिवहन जन्य वायु एवं ध्वनि प्रदूषण की समस्या एवं मल–मल तथा कूड़ा करकट निस्तारण की समस्या उत्पन्न हो गयी है।

तकनीकी परिवर्तन ने ''उपयोग करो और फेंको'' की दशा को जन्म दिया है जिसने प्रदूषण की समस्या को और अधिक गम्भीर बना दिया है। आज यह धारणा बलवती होती जा रही है कि प्रौद्योगिकीकरण प्रगति के माध्यम से मनुष्य द्वारा प्रकृति पर विजय करने की लालसा पृथ्वी से समस्त जीव जन्तुओं को विनष्ट कर सकती हैं।

पर्यावरणीय प्रदूषण तथा आर्थिक क्रियाकलापों के बीच सम्बन्ध को पदार्थ संतुलन मॉडल **(Material Balance Mode)** द्वारा निम्नवत प्रदर्शित किया जा सकता था। पदार्थ संतुलन मॉडल में पर्यावरण को एक बड़े आवरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जो सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली के चारों ओर से घेरे हुये है। इसका अर्थव्यवस्था से वही सम्बन्ध होता है जो गर्भस्थ शिशु का उसकी माँ से होता है।

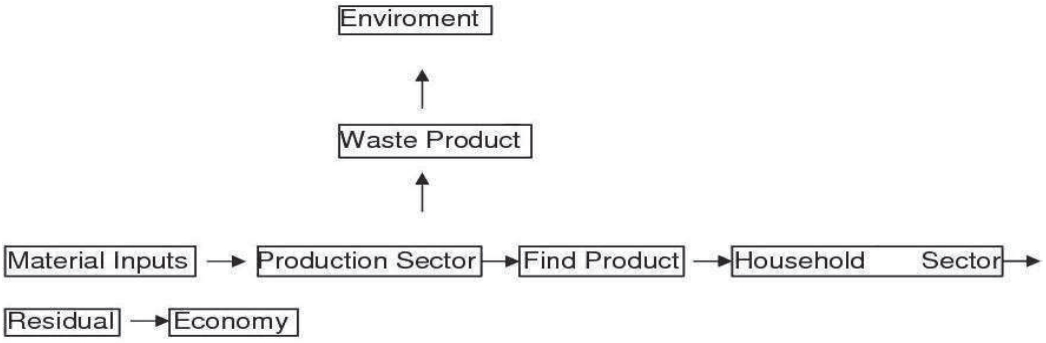

चित्र–1. प्रदूषण एवं आर्थिक क्रियाकलाप

चित्र 1. में उत्पादन क्षेत्र तथा घरेलु क्षेत्र के बीच पारम्परिक चक्रीय प्रवाह को प्रदर्शित किया गया है। पर्यावरण से प्राकृतिक संसाधनों एवं कच्चे माल का प्रवाह आगतों के रूप में उत्पादन क्षेत्र की ओर होता है। इन क्षेत्रों में इन्हें उपभोक्ता वस्तुओं में परिवर्तित किया

जाता है। औद्योगिक क्रिया से उत्पन्न हानिकारक निष्प्रयोज्य पदार्थ (Waste Material) प्रदूषित जल, जहरीली गैस, रासायनिक अवशेष, धूल, राख, धुंआ आदि का प्रवाह घरेलु क्षेत्र की ओर होता है। इसके बाद अपशिष्ट (Residual) के रूप में इसका प्रवाह पुनः पर्यावरण की ओर होता है। यह अपशिष्ट उप–उत्पादन के रूप में होते हैं जो घरेलु क्षेत्र की उपभोग क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार से उत्पादन तथा उपभोग क्षेत्र से अपशिष्ट का प्रवाह पर्यावरण की ओर आता है। इस प्रकार के भौतिक प्रवाह पर्यावरण की ओर आता है। इस प्रकार के भौतिक प्रवाह भौतिकी के आधारभूत नियम का पालन करते हैं जहाँ पदार्थों के संरक्षण की बात कही गयी है।

23.11.1 पर्यावरण अर्थव्यवस्था से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण बातें
(Important issues linked to the environmental economy)

पदार्थ संतुलन सिद्धान्त इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि पर्यावरण से अर्थव्यवस्था को प्राप्त होने वाले पदार्थों की मात्रा अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा के बराबर होनी चाहिये। आर्थिक विकास की प्रक्रिया तथा मानव निर्मित एवं प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग से सम्बन्धित पर्यावरण अर्थव्यवस्था से जुड़े निम्नलिखित मुद्दे उठाये जा सकते हैं–

(1) क्या बाजार व्यवस्था पर्यावरणीय विवाद का निपटारा कर सकती है?
(2) क्या बाजार व्यवस्था विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय प्रभाव की देखभाल कर सकती है?
(3) क्या बाजार व्यवस्था धन आय का पुर्नवितरण कर सकती है जिससे सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सके?
(4) पुनरूत्पादनीय संसाधनों का अनुकूल उपयोग किस तरह किया जाय?
(5) भावी पीढ़ियों की वरीयताओं को किस तरह सम्मिलित किया जाय?
(6) पर्यावरणीय परियोजनाओं के मूल्यांकन हेतु कौन सी समय बाह्ा दर उपयुक्त होगी?
(7) बाह्ाताओं का मूल्यांकन किस तरह किया जाय?
(8) सामाजिक, आर्थिक ढाँचे तथा सांस्कृतिक विरासत पर प्रदूषण के प्रभाव को कैसे मापा जाय?
(9) क्षतिपूर्ति दरों का निर्धारण किस प्रकार किया जाय?

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मानव को सीमित पर्यावरणीय संसाधनों का मितव्ययिता पूर्ण ढ़ंग से प्रयोग करना चाहिये। पर्यावरणीय घटकों का आबंटन विभिन्न उपयोगों में इस तरह किया जाना चाहिये जिससे उनका अपघटन एवं क्षरण कम से कम हो, अन्यथा पर्यावरणीय विघटन से उत्पन्न होने वाले दुष्प्रभावों से मानव सहित समस्त जीव जन्तुओं व वनस्पतियों का जीवन संकट में पड़ जायेगा।

23.12 पारिस्थितिकी (Ecology) की अवधारणा

सर्वप्रथम **अर्नस्ट हेकेल** नामक प्राणी विज्ञान शास्त्री ने 1869 में Ecology शब्द का प्रयोग Oekologie के रूप में किया। यह दो ग्रीक शब्दों से बना है– Cikas (House) – घर और Logos-Study अध्ययन, Ecology को हिन्दी में पारिस्थितिकी कहते है।

इसके अंतर्गत जीवधारियों (पौधों एवं जन्तुओं) के वास–स्थानों या उन पर पड़ने वाले वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

पारिस्थितिकी का विस्तृत अध्ययन करने का क्षेत्र जर्मन जीव वैज्ञानिक अर्नस्ट हेकेल को ही जाता है। उनके अनुसार ''वातावरण और जीव समुदाय के पारस्परिक सम्बंधों के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते है।

23.13 पर्यावरण संकट के कारण एवं परिणाम

पर्यावरण संकट पारिस्थितिकी असन्तुलन का परिणाम है। यह असंतुलन मानवीय क्रियाकलापों का प्रकृति के विभिन्न घटकों में हस्तक्षेप कर बिगाड़ दिया गया है। इससे मानव एवं प्रकृति में दूरी बढ़ती जा रही है और मानव की जीवन को भी खतरा होता जा रहा है। पर्यावरण से पर्याप्त लाभ न पाने की दृष्टि में मानव निर्धन होता जा रहा है।

निर्धनता का अर्थ– दो शब्द है निर्धनता (Poverty) और असमानता (Ineqality) दोनों के अर्थ भिन्न है। यह नहीं कह सकते कि निर्धनता असमानता है। अमर्त्य सेन, नोबेल पुरस्कार विजेता ने निर्धनता का अर्थ व्यक्त करते हुये कहा कि निर्धनता का अर्थ यह नहीं है कि समाज का एक वर्ग अन्य वर्गों की तुलना में सापेक्ष रूप से निर्धन है, बल्कि भौतिक कल्याण के मूल अवसरों की न होना है, न्यूनतम सामर्थ्य (Minimum capabilities) को प्राप्त करने में असफल होना है। निर्धनता न्यूनतम जीवन स्तर को प्राप्त करने की अक्षमता है। न्यूनतम भौतिक सामर्थ्य के निरपेक्ष स्तर को प्राप्त करने के लिये मानव के चतुर्दिक व्याप्त पर्यावरण शुद्ध एवं गुणवत्ता वाला होना चाहिये। पर्यावरण की शुद्धता एवं उसकी गुणवत्ता से तात्पर्य पर्यावरण के तत्व जैसे– जल, वायु, मृदा आदि अपने नैसर्गिक गुणों से युक्त हो। जैसे–जैसे पर्यावरण के तत्व अपनी नैसर्गिक गुणवत्ता को खोते जायेंगे पर्यावरण प्रदूषित होता जायेगा और पृथ्वी के समस्त जीवधारियों का जीवन संकट में पड़ जायेगा। मानव को विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ घेर लेंगी और मानव शारीरिक एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर होता जायेगा। अतः पर्यावरण संकट के कारण ही देश में निर्धनता बढ़ती जाती है।

23.13.1 पर्यावरण संकट के मुख्य कारण

(Major causes of Environmental Crisis)

(1) **तीव्र जनसंख्या वृद्धि** (Rapid Population Growth)- विश्व की बढ़ती जनसंख्या के कारण प्रकृति पर दबाव गहराता जा रहा है। मानव के भीतर भौतिक सुख का मोह प्रकृति को जर्जर बनाने का सबसे बड़ा कारण बनता जा रहा है। यदि जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश नहीं लगा तो यह पृथ्वी मानव के जीने लायक नहीं रह पायेगी।

1950 के बाद जनसंख्या वृद्धि तीव्र गति से हुयी। यह वृद्धि अविकसित और विकासशील देशों में अधिक है। ¾ जनसंख्या विकासशील देशों में तथा एक चौथाई जनसंख्या विकसित देशों में निास करती है। संसाधनों की कमी तथा जनसंख्या आधिक्या के कारण ऐसे देशों में गरीबी, अशिक्षा, असन्तोष आदि भी पर्यावरण संकट के कारण बन गये है।

निर्धन देश प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रकार से दोहन नहीं कर पाते जिसका कुप्रभाव वहाँ के वातावरण (पर्यावरण) पर पड़ता है। जनसंख्या के लिये आवश्यकताओं की

पूर्ति करने हेतु विकसित देशों के निर्देश पर संसाधनों का दोहन करना पड़ता है जिससे पर्यावरण संकट और गहराता जा रहा है। उदाहरण के लिये ब्राजील बढ़ते वनों का विनाश के लिये बाध्य है, वहीं भारत अपने व्यापार सन्तुलन को सन्तुलित बनाये रखने के लिये खनिजों का दोहन करके उसका निर्यात करता है। भूटान की आर्थिक पिछड़ेपन के कारण लकड़ी निर्यात के लिये बाध्य है। दक्षिण अमेरिकी अफ्रीका एवं एशिया की भूमि बंजर होती जा रही है।

अर्द्धविकसित देशों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। वहाँ के देशों की अज्ञानता और प्रकृति के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार से पर्यावरण अवनयन और अधिक हो गया। जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि, जल, खनिज, जल आदि प्राकृतिक संसाधनों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता निरन्तर घटती जा रही है। कुपोषण, भुखमरी, बेकारी, गरीबी, आवास की कमी आदि समस्याएँ जनसंख्या वृद्धि के कारण ही उत्पन्न हुयी है।

(2) **तीव्र नगरीकरण** (Rapid Urbanisation)- नगरीकरण एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है। औद्योगिकी क्रान्ति के पश्चात विश्व में नगरीकरण की गति तीव्र हुयी है।

तीव्र नगरीकरण के कारण कृषि क्षेत्र पर अतिक्रमण, प्रदूषण, गन्दी बस्तियों, अवशिष्ट, कूड़ा करकट का एकत्रीकरण जल संकट, जन सुविधाओं पर दबाव आदि समस्याएँ उत्पन्न हुयी है। नगरों में बढ़ता वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण और जल प्रदूषण लोगों में तपेदिक, कैंसर, दमा, पेचिस, आँख के रोग उत्पन्न कर रहा है नगरों में भीड़ भाड़ बढ़ती जा रही है। बीसवीं शताब्दी में महानगरों की जनसंख्या में भी अत्यधिक वृद्धि हुयी है। भारत में 2001 की जनगणनानुसार 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले 35 महानगर है।

(3) **तीव्र औद्योगिक विकास (Rapid industries development)**– आर्थिक सामाजिक व्यवस्था को नया आयाम देने के लिये औद्योगिक विकास में तीव्रता लाई गयी है। ये सभी जानते है कि औद्योगिक उन्नति से ही आर्थिक सामाजिक विकास सम्भव है। उद्योगों के लिये कच्चे माल की आपूर्ति के लिये प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र गति से दोहन होने लगा है। जीवन स्तर को बढ़ाने का आकर्षण पर्यावरण में विकृति उत्पन्न कर रहा है। पर्यावरण को अत्यधिक हानि होती जा रही है। वनों का विनाश, हानिकारक पदार्थों से प्रदूषण, जल संकट, अति नगरीकरण आदि समस्याएं उत्पन्न हुयी। कागज, रेयान, प्लाईवुड आदि उद्योगों में कच्चे माल की आपूर्ति के लिये बड़ी मात्रा में पेड़ों की कटाई होती जा रही है। फलस्वरूप वन क्षेत्र सिमटते जा रहे हैं।

नगर परिवहन, गृह निर्माण और कच्चे माल के लिये भी वनों का विनाश बड़े पैमाने पर होता जा रहा है। विकास की अन्धीदौड़ में यह विस्मित होता जा रहा है कि मनुष्य प्रकृति का उपादान है। उसे नैसर्गिक सुविधाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। अतः आज विश्व के अनेक मंचों से उनके द्वारा पर्यावरण सुधार पर बल दिये जाने की बात की जा रही है।

औद्योगिक विकास के सौ वर्ष पूरे होने के बाद औद्योगिक राष्ट्रों को आभास होने लगा है कि उनका पर्यावरण निरन्तर ह्रासो–मुचर होता जा रहा है। क्योंकि औद्योगिक

संस्थानों से निकलने वाला कचरा, दूषित जल, विषैली गैस, आदि हवा, जल मृदा और जीवों को प्रदूषित कर पर्यावरण को असन्तुलित बना रहे है।

यह एक विडम्बना है कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न राष्ट्र प्राकृतिक सम्पदा में निर्धन हो गये है।

(4) **तीव्र तकनीकी विकास (Rapid Technological Progress)**– मानव में तकनीकी क्षेत्र में जो प्रगति किया है उसे तकनीकी प्रगति कहते है। औद्योगिक विकास के कारण विज्ञान और तकनीकी विकास में भी तेजी हुयी। इसका लाभ उद्योग, कृषि, परिवहन, चिकित्सा, आदि विभिन्न क्षेत्रों को प्राप्त हुआ है।

दुर्भाग्य की इस नयी तकनीक से निर्मित उपभोक्ता वस्तुएँ मावन स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर बुरा प्रभाव डालते है। तकनीकी विकास के फलस्वरूप प्लास्टिक, कृत्रिम रेशा, कृत्रिम रबर, कृत्रिम उर्वरक आदि अनेक संशलिष्ट पदार्थ दैनिक जीवन में प्रयुक्त किये जाते है। हालाँकि इससे प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम हुआ है पर वहीं अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो गयी है। आज मानव के लिये प्लास्टिक कचरे का निपटान एक समस्या बन गयी है। इससे मानव के स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है। आणविक विस्फोटी व घातक हथियारों से विश्व पर्यावरण को सर्वाधिक खतरा है।

(5) **अनियोजित विकास** (Unplanned Growth)– ऐसा विकास जो नियोजित नहीं होता, पर्यावरणीय स्थिति को खतरनाक बना देता है। इससे समाज एक पारिस्थितिकीय संकट के कगार पर खड़ा है।

भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ औद्योगिकीकरण को योजना का प्रमुख अंग बनाया गया है, किन्तु उसका नियन्त्रण कैसे और कौन करे, वह किस कीमत पर उपलब्ध होता है और निकट भविष्य में उसके क्या परिणाम हो सकते है, इस पर कोई विचार नहीं किया जाता। शहरों का अनियन्त्रित विकास, शहरों में आबादी का संकेन्द्रण शहरों को बढ़ती भीड़, आदि कारकों से पारिस्थितिकीय पक्ष पर बहुत अधिक दबाव पड़ रहा है।

न केवल नगर नियोजन बल्कि नदी घाटी परियोजनाओं के निर्माण में भी पारिस्थितिकीय संकट उत्पन्न हुआ है। इन परियोजनाओं के भूगर्भिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जनांकिकीय, वनस्पति, वन्य जीव तथा अन्य पारिस्थितिकीय पक्षों का विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया। मात्र आर्थिक पक्ष पर बल दिया गया।

उत्तराखण्ड हिमालय में रामगंगा नदी पर कालागढ़ बाँध बनाने से कार्बेट नेशनल पार्क का 10% वन क्षेत्र जो कि बहुत सघन था, डूब गया। दक्षिण भारत के केरल राज्य में भी ''मूक घाटी पनबिजली परियोजना'' एक विवादास्पद परियोजना सातवें दशक में प्रारम्भ हुयी। इस परियोजना द्वारा निर्मित जलाशय से इस घाटी के दुर्लभ वन्य जीवों, जड़ी बूटियों तथा वनों आदि का विनाश होना था जिवमें 5 करोड़ वर्ष से भी अधिक पुराने वन है। यहाँ की प्राकृतिक सम्पदा संसार भर में श्रेष्ठतम है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग के अनुसार, *'' इस घाटी में 900 से भी अधिक किस्म की जड़ी बूटियाँ तथा फूलों के पौधे है।''* भारतीय जीव जन्तु सर्वेक्षण विभाग के अनुसार, *'' इस घाटी के वनों में दुर्लभ जन्तु जैसे– शेर, बन्दर, बाघ आदि मिलते वैसे दुर्लभ है।*

डॉ0 माधव गाडगिल के अनुसार, *''पश्चिमी घाट की जल विद्युत परियोजनाओं ने यहाँ की विशिष्ट वनस्पतियों को नष्ट कर दिया है।''*

हिमालय क्षेत्र में टिहरी बाँध परियोजना जिस पर कि 1960 से निर्माण कार्य चल रहा है पारिस्थितिकीय असन्तुलन के लिये एक चुनौती है। बाँध के निर्माण कार्य से यहाँ के आसपास के जंगल समाप्त हो चुके है, जिससे भूक्षरण तथा भूस्खलन हो रहा है। इस बाँध के सम्भावित जलमग्न क्षेत्र के 92 गाँवों के 32000 विस्थापितों को बसाने के लिये देहरादून तथा हरिद्वार जिले के पथरी विकास क्षेत्र में हजारों एकड़ वन भूमि को काटना पड़ा जिससे पर्यावरण का दोहरा नुकसान हुआ।

इसके साथ ही इसके शिकार व आदिवासी नदी घाटियों के किसान और पर्वतीय निवासी हो रहे है जिसका अपना जीवन उस पर्यावरण पर निर्भर कर रहा है।

मई 1991 की विश्व बैंक की रिपोर्ट में कहा गया है कि भरत में उभरते हुये पर्यावरणीय संकटों से निपटने के लिये कोई एकीकृत रणनीति अभी तक नहीं उभरी है। भारज के पर्यावरणीय नियन्त्रक ढाँचे में सबसे कमजोर पहलू यह है कि पर्यावरण स्वीकृति को परियोजना स्वीकृति की प्रक्रिया से नहीं जोड़ा गया है।

23.14 सारांश

पर्यावरण में समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियां सम्मिलित होती है, अतः पर्यावरण जीवों की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग होता है। पर्यावरण की इस आधारभूत संरचना के आधार पर इसको दो प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जाता है–भौतिक पर्यावरण,जैविक पर्यावरण। पर्यावरण में प्रमुख चार घटक सम्मिलित होते है स्थलमण्डल, जलमण्डल, वायुमण्डल, जैवमण्डल। पर्यावरण के संघटकों को तीन प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जाता है– भौतिक या अजैविका संघटक, जैविक संघटक, ऊर्जा संघटक।

पर्यावरण तथा देश की अर्थव्यवस्था के बीच प्रत्यक्ष, सहजीवी एवं गहन सम्बंध होता है। मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में आर्थिक विकास के फलस्वरूप भारी पर्यावरणीय ह्रास हुआ है। आर्थिक विकास देश की प्रगति का सूचक है। आर्थिक विकास के फलस्वरूप औद्योगिकीकरण, नगरीकरण वनो का विनाश एवं प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुंध दोहन होने से मानव एवं प्रकृति के मध्य स्थापित सन्तुलन बिगड़ गया है। जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि भूमि, आवास, उद्योगों की आवश्यकताएं भी बढ़ी है जिससे वनों का विनाश होने लगा है। कई प्रकार की समस्याएँ जैसे आवास की समस्या, परिवहन की समस्या, पेयजल आपूर्ति की समस्या, प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होने लगती है जिससे महानगर ग्रसित हो जाते है। औद्योगिक विस्तार एवं औद्योगिकीकरण जहाँ एक ओर आर्थिक विकास के सूचक माने जाते है वहीं उनकी स्थापना से वनों का विनाश तीव्र गति से होने लगती है क्योंकि तभी विस्तृत भूखण्ड की प्राप्ति हो सकती है।यद्यपि आर्थिक विकास के लिये किये जाने वाले इस तरह के कार्यकलाप आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण होते है परन्तु उनके द्वारा उत्पन्न पश्चप्रभाव निश्चय ही सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय होते हैं।

मनुष्य के द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों में से अधिकांश पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण सम्बन्धित होते है। पदार्थ संतुलन सिद्धान्त इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि पर्यावरण से अर्थव्यवस्था को प्राप्त होने वाले पदार्थों की मात्रा अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा के बराबर होनी चाहिये। पर्यावरण संकट पारिस्थितिकी असन्तुलन का परिणाम है। यह असंतुलन मानवीय क्रियाकलापों का प्रकृति के विभिन्न घटकों में हस्तक्षेप कर बिगाड़ दिया गया है। इससे मानव एवं प्रकृति में दूरी बढ़ती जा रही है और मानव की जीवन को भी खतरा होता जा रहा है। पर्यावरण से पर्याप्त लाभ न पाने की दृष्टि में मानव निर्धन होता जा रहा है। तकनीकी विकास के फलस्वरूप प्लास्टिक, कृत्रिम रेशा, कृत्रिम रबर, कृत्रिम उर्वरक आदि अनेक संशलिष्ट पदार्थ दैनिक जीवन में प्रयुक्त किये जाते है। हालाँकि इससे प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम हुआ है पर वहीं अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो गयी है।

23.15 शब्दावली

पारिस्थितिकी	–	Ecology
अपशिष्ट	–	Residual
निष्प्रयोज्य पदार्थ	–	Waste Material
नगरीकरण	–	Urbanisation
प्राकृतिक संसाधन	–	Natural Resources
विलासिता	–	Luxury

23.16 संदर्भ सहित ग्रन्थ

1) डॉ. जे.पी. मिश्रा– संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र *साहित्य भवन पब्लिकेशन्स,* आगरा 2012

2) एल.एन. कोली– भारतीय अर्थव्यवस्था *लक्ष्मी नारायन अग्रवाल,* आगरा 2007

3) कुमार सर्वेश – भारतीय अर्थव्यवस्था, *सार्थक प्रकाशन,* दिल्ली, 2011

4) डा0 जे0सी0 पन्त एवं जे0पी0 मिश्रा – अर्थशास्त्र, *साहित्य भवन पब्लिकेशन,* आगरा 2012

5) एस.के.ओझा – पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण, *बौद्धिक प्रकाशन,* इलाहाबाद 2010–11

23.17 सहायक उपयोगी सामग्री

- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India.
- Singh, S.P.((2010)EconomicsofDevelopment & Planing theory & practice ,S&Chand Publishing House .
- Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons.

- Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya.

23.18 लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) पदार्थ सन्तुलन सिद्धान्त क्या है?
(2) पर्यावरण की प्रमुख विशेषताएँ क्या है?
(3) पर्यावरण के प्रमुख चार घटक क्या है?
(4) पर्यावरण के दो समूहों के नाम बताइये?
(5) पर्यावरण और पारिस्थितिकों के बीच क्या अन्तर हैं?

23.19 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) आर्थिक विकास का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की संक्षिप्त विवेचना कीजिये?
(2) पर्यावरण एवं अर्थव्यवस्था के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिये? आर्थिक विकास पर्यावरण को किस प्रकार प्रभावित करता है?

इकाई 24: कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास

इकाई संरचना

24.1 प्रस्तावना

24.2 उद्देश्य

24.3 कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास

24.4 आर्थिक विकास

24.5 आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका

24.6 कृषि : एक पद्दलित क्षेत्र (विकासशील देशों के सन्दर्भ में)

24.7 कृषि क्षेत्र विकास बनाम औद्योगिक क्षेत्र विकास

24.8 सांराश

24.9 शब्दावली

24.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

24.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

24.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

24.13 निबन्धात्मक प्रश्न

24.1 प्रस्तावना

विकास क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित यह 24 वी इकाई है। इससे पूर्व के खण्ड के अध्ययन से आप संसाधन की आर्थिक विकास में भूमिका को जान गये है।

इस इकाई में कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास की पूर्ण जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन से आप को आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

24.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप :–

- अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की भूमिका को समझ सकेंगे।
- आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र के महत्व की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेगें।
- विकासशील देशों के सन्दर्भ में कृषि के महत्व को समझ सकेगें।
- आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास बनाम औद्योगिक विकास को प्राथमिकता

  प्रदान की जाए।

24.3 कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास

कृषि मानव सभ्यता के विकास के आरम्भ से ही लोगों की आजीविका का प्रमुख साधन रही है। आज भी कृषि विश्व की अधिकांश जनंसख्या का प्रमुख व्यवसाय तथा आय का सबसे बड़ा स्रोत है। कृषि प्रमुख व्यवसाय के साथ–साथ राष्ट्रीय आय का बड़ो स्रोत, रोजगार औद्योगिक विकास, वाणिज्य एवं विदेशी व्यापार का आधार है। कृषि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ तथा विकास की कुंजी है। कृषि विकास की पूर्णता के बाद ही विश्व के देश विकसित राष्ट्र के पथ पर अग्रसर होते है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, रूस तथा जापान जैसे अनेक देशों के विास में कृषि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा तीव्र औद्योगिक विकास के लिए सुदृढ़ व मजबूत आधार प्रदान किया। इसीलिए विकास के प्रत्येक चरण में कृषि विकास पर विचारकों ने पर्याप्त बल दिया है।

भूमि और कृषि प्राचीन आर्य संस्कृति के आधार स्तम्भ रहे है। भारतीय संस्कृति में पृथ्वी (भूमि) को माता के समान माना गया है। यहां कृषि कर्म को प्रथम, वाणिज्य को द्वितीय, सेवा कार्य को तृतीय तथा मांगने को चतुर्थ स्थान प्रदान किया गया है। प्राचीन यूनानी विचारकों ने भी कृषि व्यवसाय को विषेश महत्व प्रदान किया था। प्रसिद्ध विचारक अरस्तु कृषि व पशुपालन द्वारा ही द्रव्य उपार्जन को प्राकृतिक मानते थे। सुकरांत के प्रमुख शिष्य जीनोफन के कृषि को विशेष महत्व प्रदान किया। यूनानी विचारकों की तरह ही रोमन विचारकों ने भी कृषि को विशेष महत्व प्रदान किया। प्रसिद्ध रोमन विचारक सिसेरों, केटो, वारो तथा कोलूमेला आदि ने भी कृषि कार्य को ही महत्व प्रदान करते हुए समस्त प्राप्तियों को आधार माना है। परम्परावादी वाणिकवादी अर्थशास्त्रीयों ने भी खाद्यान्न में आत्मनिर्भर होने की बात कही और मत्स्य उद्योग के विस्तार पर बल दिया।

प्रकृतिवादियों ने भी अनेक ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिनके द्वारा कृषि की महत्ता और बढ़ गई। उनका विश्वास था कि केवल कृषि ही समाज की सम्पत्ति सृजन का आधार

है। केने के अनुसार, कृषि राज्य की समस्त सम्पत्ति तथा समस्त नागरिकों के धन की स्रोत है, अतः कृषि का लाभप्रद होना सरकार एवं राष्ट्र के लिए अनुकूल बात होगी। केने का कहना है कि उद्योग तथा वाणिज्य दोनों कृषि के ही अधीन है। क्योंकि दोनों क्षेत्र कृषि क्षेत्र से ही कच्चामाल प्राप्त करते है। प्रकृतिवादियों का मानना था कि केवल 'कृषक–राष्ट्र' की सृदृढ़ व टिकाऊ साम्राज्य स्थापित कर सकता है।

परम्परावादी अर्थशास्त्री तथा अर्थशास्त्र के जनक एडमस्थित ने प्रकृतिवादियों की इस विचारधारा का खण्डन किया कि केवल कृषि ही उत्पादक है, फिर भी उन्होंने सम्पत्ति उत्पादन क्रिया में कृषि का मुख्य स्थान दिया। उन्होंने निर्माण के दूसरा व व्यापार को तीसरे स्थान पर रखा। मार्शल और कई अनेक अर्थशास्त्रीयों ने भी कृषि के महत्व के स्वीकार किया। श्री युगो पापी के अनुसार ''कृषि आय में वृद्धि आर्थिक विकास की कुंजी है और यदि कोई राष्ट्र सर्वप्रथम उसे प्राप्त करने में असफल रहता है तो समस्त विकार–प्रक्रिया अवरूद्ध हो सकती है।'' प्रो0 लुइस, कोले, हूवर, वाईनर तथा किण्डलबर्जर जैसे अर्थशास्त्रीयों का मत है, कि विकास–प्रक्रिया में कृषि विकास को प्राथमिक स्थान दिया जाना चाहिए, क्योंकि घरेलू मांग की आपूर्ति, आत्मनिर्भरता एवं निर्यात–वृद्धि जैसे आधारभूत समस्याएं कृषिगत विकास से ही हल की जा सकती है। प्रो0 शुल्टज के अनुसार कोई भी अल्प विकसित राष्ट्र खाद्यान्नों में आत्म–निर्भरता प्राप्त किये बिना आर्थिक विकास की कल्पना नहीं कर सकता। डेविस ने इस धारणा के विपरीत मत व्यक्त करते हुए कहा है कि ''कृषि कोई असाधारण रूप से मौलिक क्रिया नहीं है तथा किसी राष्ट्र की समृद्धि मुख्य रूप से अन्य घटकों जो कि कृषि कार्य करने के अतिरिक्त है, पर निर्भर करती है।'' यद्यपि कृषि के महत्व के सन्दर्भ में विभिन्न विचारकों ने भिन्न–भिन्न मत दिये, परन्तु इस बात से सभी सहमत थे कि कृषि विकास के बिना अन्य क्षेत्रों को विकास असम्भव है। क्योंकि कृषि क्षेत्र द्वारा ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में वस्तुओं ओर सेवाओं का प्रवाह होता है। कोई राष्ट्र आर्थिक विकास के किसी भी स्तर पर पहुँच जाये कृषि की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृषि क्षेत्र पर ही निर्भरता बनी रहती है।

24.4 आर्थिक विकास

आज पूंजीवादी तथा समाजवादी समस्त अर्थव्यवस्थाओं का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था को समृद्धिशाली बनाते हुए आर्थिक विकास को गति प्रदान करना है। अल्पविकसित तथा विकासशील देश जहां अपनी सामान्य गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता तथा पिछड़ेपन से छुटकारा प्राप्त करना चाहते है और अपने उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम विदोहन कर उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने हेतु प्रयासरत है, वही विकसित देश अपने विकास को निरन्तर गतिशील बनाए रखना चाहते हैं।

आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानवीय प्रयत्नों द्वारा कोई देश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि कर अपनी वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करते हुए देश में गरीबी और आर्थिक विषमता को समाप्त कर नागरिकों के जीवन स्तर से सुधार लाने का पयास करता है। आर्थिक विकास की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :

मायर एवं बाल्डविन के अनुसार, ''आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।''

प्रो0 लुईस के शब्दों में – आर्थिक विकास का अर्थ, प्रति व्यक्ति उत्पादन के वृद्धि से लगाया जाता है।

प्रो0 यंगसन के विचारानुसार – आर्थिक प्रगति से आशय किसी समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।

विलियमसन एवं बट्रिक के अनुसार, ''आर्थिक विकास अथवा संवृद्धि से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें किसी देश अथवा क्षेत्र के निवासी उपलब्ध संसाधनों का उपयोग प्रति व्यक्ति वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि के लिए करते हैं।''

प्रो0 रोस्टोब के अनुसार, ''आर्थिक विकास एक तरफ पूंजी व कार्यशील शक्ति में वृद्धि की दरों के मध्य और दूसरी तरफ जनसंख्या वृद्धि की दर के मध्य एक ऐसा सम्बन्ध है जिससे कि प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होती है।''

क्राउज के शब्दों में, ''आर्थिक विकास किसी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया को बताता है। इस पक्रिया का केन्द्रीय उद्देश्य अर्थव्यवस्था के लिए प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का ऊँचा और बढ़ता स्तर प्राप्त करना होता है।''

डी. ब्राइट सिंह के अनुसार, ''यह (आर्थिक विकास) एक बहुआयामी घटना है जिसके अन्तर्गत केवल मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि ही शामिल नहीं होती बल्कि वास्तविक आदतें, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, अधिक आराम के साथ–साथ एक पूर्ण एवं सुखी जीवन का निर्माण करने वाले समस्त सामाजिक एवं आर्थिक सुधार भी सम्मिलित होते हैं।''

संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O) की एक रिपोर्ट के अनुसार, ''विकास, मानव की केवल भौतिक आवश्यकताओं से ही नहीं, बल्कि उसके जीवन की सामाजिक दशाओं की उन्नति से भी सम्बन्धित होना चाहिए। इस तरह, विकास में सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तन भी शामिल होने चाहिए।''

उपरोक्त परिभाषाओं की मूल धारणाओं के अनुरूप आर्थिक विकास की एक उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है – ''आर्थिक विकास वह सतत प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत देश में उपलब्ध समस्त संसाधनों का कुशलतापूर्वक विदोहन होता है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर एवं दीर्घकालीन वृद्धि होती है, आर्थिक विषमता में कमी आती है, सामान्य जनता के जीवन स्तर एंव कल्याण में बढ़ोत्तरी होती है।''

किसी भी क्षेत्र विशेष के लिए कृषि विकास के लक्ष्य निर्धारित करने तथा कृषिगत विकास की रणनीति तैयार करने के लिए अर्थव्यवस्था में कृषि महत्व तथा उसके आर्थिक विकास के साथ सम्बन्ध में समझना विशेष महत्व रखता है। इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका का अध्ययन करना उचित होगा।

24.5 आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका

कृषि सभी उद्योगों की जननी और मानव जीवन की पोषक रही है। यह सभी विज्ञानों और कलाओं की सिरमौर, सभ्यता का प्रतीक और प्रगति का सूचनांक मानी जाती है। इसे

आर्थिक विकास की कुंजी भी कहा जाता है क्योंकि औद्योगीकरण मूलरूप से कृषिगत–विकास की ही देन है। प्रमाण के रूप में इंगलैण्ड, जर्मनी, रूस तथा जापान में विकास ने तीव्र औद्योगीकरण के लिये सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। विशेष रूप से अल्प–विकास राष्ट्र, जिनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है अपने सीमित साधनों द्वारा आथिक विकास की ऊँची दर तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कि वे अपने आधारभूत कृषि उद्योग को उन्नत न कर लें।

कृषि विकास के महत्व को स्पष्ट करते हुए कोल एवं हूबर ने कहा है कि ''सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कृषि विकास पहले होना चाहिए और यदि किसी क्षेत्र के अविकसित होने से दूसरे क्षेत्र के आर्थिक विकास में बाधा पड़ती है तो वह अविकसित क्षेत्र कृषि ही होगा जो अन्य क्षेत्रों के विकास को बाधिक करेगा।'' कृषि की बढ़ती हुई उत्पादकता से औद्योगिक विकास में अनेक तरह से सफलता प्राप्त होती है।

कृषि विकास का अर्थ होता है कृषि आधारित वस्तुओं का अधिक उत्पादन, अधिक आय, अधिक रोजगार तथा कृषकों के लिए बेहतर जीवन–स्तर। जब कृषि का विकास होता है तब क्षेत्र विशेष की सम्पूर्ण आर्थिक प्रगति को त्वरित करता है।

यूरोपीय अर्थशास्त्री के अनुसार, ''कृषि–आय में वृद्धि आर्थिक विकास की कुंजी है और यदि कोई राष्ट्र सर्वप्रथम उसे प्राप्त करने में असफल रहताहै तो समस्त विकास–प्रक्रिया अवरूद्ध हो सकती है।''

प्रमुख अर्थशास्त्री किण्डलवर्जर ने छः महत्वपूर्ण कारक बताए है जिनके द्वारा कृषि क्षेत्र आर्थिक विकास में मदद पहुँचाता है – प्रथम, यह उद्योगों को श्रमिक प्रदान करता है, द्वितीय, यह औद्योगिक उत्पादन के लिए कच्चा माल उत्पन्न करता है; तृतीय, यह उ़द्योगों तथा सरकार के लिए बचत प्रदान करता है, चतुर्थ, यह क्षेत्र कर प्रदान कर सकता है; पंचम, कृषि द्वारा विदेशी विनियम प्राप्त हो सकता है; षष्टम, यह मुख्य क्षेत्रों को महत्वपूर्ण पूंजीगत उपकरण और कच्चा माल प्रदान कर सकता है।

साइमन कुजनेट्स ने आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका को तीन भागों में बांटा है :

1. खाद्यानों एवं अन्य कृषिगत उत्पादों में वृद्धि द्वारा कृषि क्षेत्र उत्पादकीय भूमिका निभाता है।
2. यह अन्य क्षेत्रों से व्यापार सम्बन्धों द्वारा बाजारीय भूमिका निभाता है।
3. अन्य क्षेत्रों को श्रम शक्ति की पूर्ति करने में कृषि क्षेत्र महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

कृषि क्षेत्र का आर्थिक विकास में मुख्य भूमिका को निम्न बातों से परिलक्षित होती है –

25.5.1 खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग को पूरा करना –

मानव की मूल आवश्यकता भोजन की है। जिसका मुख्य स्रोत कृषि है। अल्पविकसित देशों में खाद्य उत्पादन का कृषि क्षेत्र में प्रभुत्व होता है। जब बढ़ती हुई उत्पादकता के साथ उत्पादन बढ़ता है तो वह किसानों की आय में वृद्धि करता है। उनकी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से खाद्यों के लिए मांग में काफी वृद्धि होती है। ऐसे देशों मूं खा़द्यों के लिए मांग की आय लोच बहुत ऊँची होती है। यह अक्सर 0.6 तथा 0.8 प्रतिशत के बीच में होती है।

फिर, मृत्यु–दर में तीव्र कमी तथा जन्म–दर में धीमी गिरावट से जनसंख्या की वृद्धि दर में बढोत्तरी होती है। जिससे खाद्यों की माँग और बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, शहरों एवं औद्योगिक क्षेत्रों में जनसंख्या के प्रसार से खाद्यों की मांग बढ़ती है। इन सभी तत्वों को दृष्टिगोचर रखते हुए फार्म उत्पादन में बढ़ौतरी की दर खाद्य मांग से अधिक होनी चाहिए। कृषि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये पर्याप्त मात्रा में खाद्य–सामग्री उपलब्ध कराना है। विशेष रूप से अल्प–विकसित देशों में कृषि महत्व निम्न दो बातों के कारण और भी अधिक है। प्रथम, इन देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर 2.5 से 3 प्रतिशत वार्षिक होने के कारण खाद्यान्न की मांग तेजी के साथ बढ़ती है। दूसरा, उन्नत देशों की अपेक्षा इन देशों में खाद्य–सामग्री की मांग की आय–लोच काफी ऊँची होती है एक अनुमान के अनुसार मांग की यह ऊँची आय–लोच खाद्यान्नों की मांग से लगभग 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि कर देती है। जो किसी भी अल्प–विकसित देश की कृषि के लिये एक खुली चुनौती है। अतः इन देशों के आर्थिक विकास के परिवेश में जब कृषि वस्तुओं की तेजी के साथ बढ़ती हुई मांग के तदनुरूप खाद्यान सामाग्री की आपूर्ति को नही बढ़ाया जा पाता तो आर्थिक विकास का ढाँचा चर–मरा उठता है, स्फीतिक दबाव बढ़ने लगते हैं और जीवन–स्तर गिर जाता है।

25.5.2 औद्योगिक विकास का आधार –

बढ़े हुए कृषि अतिरेक के कारण ग्रामीण क्रय–शक्ति में वृद्धि होती है, जो औद्योगिक विकास के बहुत प्रोत्साहित करती है। कृषि औद्योगिक कच्चे–माल की आपूर्ति का मुख्य स्रोत है।यदि कृषि क्षेत्र पिछड़ा हुआ है तो औद्योगिक कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति न हो पाने के कारण उद्योगों का विकास मन्द होगा और आर्थिक विकास की दर नीची बनी रहेगी। प्रो0 रोस्टोव के अनुसार, ''कृषि औद्योगिक विकास की आधारशिला है और कृषि–उपादन औद्योगीकरण के लिये मूलभूत चालू पूँजी है।''

विकासशील देशों में निर्मित वस्तुओं की मार्केट बहुत छोटी होती हैं, क्योंकि कृषक, फार्म श्रमिक, तथा उनके परिवार जो ग्रामीण जनसंख्या का दो–तिहाई अथवा तीन–चौथाई होते हैं, इतने गरीब होते हैं कि वे फैक्टरी वस्तुए नहीं खरीद सकते। नर्क्से के अनुसार, वास्तविक क्रय–शक्ति का अभाव होता है जो कृषि में कम उत्पादकता को व्यक्त करती हैं। इसलिए मूल समस्या, मार्केट के छोटे आकार के कारण निवेश में कम आय प्राप्ति की हैं जब कृषि–उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ने से ग्रामीण क्रय–शक्ति (आय) में वृद्धि होगी तो निर्मित वस्तुओं की मांग बढ़ेगी जिससे मार्केट का आकार भी बढ़ेगा जिससे औद्योगिक क्षेत्र का प्रसार होगा। फिर, उर्वरक, अच्छे यंत्र, औजार, ट्रैक्टर, सिंचाई के साधन आदि आगतों की कृषि क्षेत्र में मांग बढ़ने से औद्योगिक क्षेत्र का और प्रसार होगा। इन सब के कारण औद्योगिक विकास होगा।

24.5.3 तृतीयक (सेवा) क्षेत्र का प्रसार –

जब बढ़ रहे विक्रेय अतिरेक को शहरी क्षेत्रों में बेचने हेतु मंडियों में ले जाना पड़ता है तो उससे परिवहन एवं संचार के साधनों का प्रसार होता है। इसी प्रकार, ग्रामीण क्षेत्रों की मांग पूरा करने के लिए जब निर्मित वस्तुएं शहरों से गांवों में लाई जाती हैं तो इन साधनों का

विकास होता है। साथ में बैकिंग एवं वित्तीय संस्थाओं का भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसार होता है।

द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों के प्रसार के दीर्घकालीन प्रभाव उनमें लाभ बढ़ाने की ओर होते हैं चाहे वे निजी या सार्वजनिक क्षेत्र में चल रहे हों। ये लाभ उनके पुर्ननिवेश द्वारा पूंजी निर्माण की दर बढ़ाते हैं।

24.5.4 पूंजी निर्माण में सहायक :–

अल्पविकसित देशों में पूंजी की न्यूनता रहती है। जबकि इन देशों को आधारभूत संरचना का विकास करने तथा विनिर्माणी उद्योगों की स्थापना के लिए भारी मात्रा में पूंजी निवेश कृषि उत्पादकता में वृद्धि के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र की आय बढ़ जाने से बचत करने की क्षमता का विस्तार होता है। इस तरह, ऐच्छिक तथा अनिवार्य बचतों (अर्थात् करारोपण) के रूप में आसानी में पूंजी उपलब्ध हो जाती है। दूसरा, कृषि में ''कम पूंजी प्रधान उपायों'' अथवा 'पूंजी–बचत उपायों' का प्रयोग करके उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। अतः कृषि क्षेत्र में जीवन–स्तर को कम किए बिना ही पूंजी निर्माण के लिए साधन प्राप्त किए जा सकते हैं। तीसरें, कृषि कीमतों को कम करके भी पूंजी निर्माण किया जा सकता है लेकिन कृषि कीमतों का कम करना संभव नहीं होता जबकि उनका बढ़ना आवश्यक हे। केवल दीर्घकाल में ही कृषि कीमतों को कम किया जा सकता है। इसलिए अधिक उपयुक्त नीति फार्म पदार्थों की कीमतों को इस ढंग से स्थिर करना है जिससे किसानों को उत्पादन करने में प्रोत्साहन भी मिले। चौथे, पूंजी निर्माण के लिए सबसे बढ़िया तरीका फार्म प्राप्तियों को बढ़ाने का है। ऐसा बढ़ी हुई फार्म आमदनियों को, कृषि कराधान, भूमिकरों, कृषि सेवाओं पर फीस लगाकर, जुटाया जा सकता है। इस प्रकार, उन देशों में जहां कृषि प्रधान है, सिकी भी रूप में कृषि पर कर लगाना कृषि अतिरेक को जुटाने के लिए आवश्यक है ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र की जा सकें। कुजनेट्स इसे कृषि का 'घटक योगदान' कहता है जब संसाधनों का अन्य क्षेत्रों में हस्तांतरण होता है, क्योंकि वे संसाधन उत्पादकीय घटक होते है।

24.5.5 औद्योगिक माल के लिए बाजार की व्यवस्था –

कृषि औद्योगिक क्षेत्र द्वारा निर्मित वस्तुओं के लिए बाजार प्रदान करती है। जब कृषि का विकास होता है तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है तब कृषकों की आय बढ़ती है। ग्रामीण जनंसख्या की आय बढ़ने से औद्योगिक वस्तुओं की मांग बढ़ती है जिससे फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार होता है। इस तरह, कृषि विकास, औद्योगिक क्षेत्र के विकास को गति प्रदान करते हुए आर्थिक विकास को स्फूर्ति प्रदान करता है।

24.5.6 औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम–शक्ति उपलब्ध कराना –

कृषि क्षेत्र का एक अन्य योगदान पूंजीवादी क्षेत्रों के लिये आवश्यक श्रम–शक्ति को उपलब्ध कराना है। कृषिगत विकास के कारण जब उत्पादकता बढ़ती है तो वर्तमन जनसंख्या को खाद्य–सामग्री उपलब्ध कराने के लिए कृषि–क्षेत्र से पहले ही अपेक्षा कम लोगों की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में संलग्न श्रम–शक्ति का एक बड़ा भाग अन्य व्यवसायों के लिये मुक्त हो जाता है। विशेष रूप से, विकास की प्रारम्भिक अवस्था में

गैर–कृषि क्षेत्रों के लिये श्रम–शक्ति का अधिकांश भाग कृषि–क्षेत्र द्वारा ही उपलब्ध कराया जाता है क्योंकि अन्य क्षेत्र बहुत कम–विकसित होते हैं।

24.5.7 रोजगार के योगदान –

कृषि क्षेत्र आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ–साथ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अधिकांश जनसंख्या के लिए रोजगार के अवसरों का सृजन भी करता है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में जनंसख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि क्षेत्र में कार्य करता है। जनसंख्या में वृद्धि होने के साथ–साथ तद्नुरूप औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में समानान्तर वृद्धि न होने के कारण कृषि क्षेत्र को उत्तरोत्तर अधिक जनसंख्या के लिए रोजगार के अवसर जुटाने होते हैं। उद्योग एवं सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसरों की सृजन हेतु अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है जो विकासशील अर्थव्यस्थाओं के लिए सुलभ नहीं है। इसके विपरीत, कृषि क्षेत्र में विकास कार्यो एवं रोजगार के अवसरों के सृजन हेतु कम पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार वही दूसरी ओर आगामी जनसंख्या के लिए कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों के सृजन की अधिक सम्भावना रहती है।

24.5.8 विदेशी विनियम का स्रोत –

अल्पविकसित देश अधिकतर निर्यातों के लिए कुछ कृषि पदार्थों के उत्पादन में विश्टिीकरण करते हैं। जब निर्यात योग्य वस्तुओं का उत्पादन और उत्पादकता बढ़ते हैं तो उनके निर्यातों में वृद्धि होती है जिससे वे अधिक विदेशी विनियम कमाते हैं। इस प्रकार कृषि अतिरेक से पूंजी निर्माण होता है। जब इस कमाई गई विदेशी विनिमय में पूंजी पदार्थ आयातित किए जाते हैं। ज्यों–ज्यों औद्योगीकरण से विकास की गति तेज होती है तो देश की कुल निर्यातों में कृषि निर्यातों का अनुपात कम होता जाता है क्योंकि उनकी आयात योग्य वस्तुओं के घरेलू उत्पादन के लिए अधिक मात्राओं में आवश्यकता पड़ती है। ऐसी वस्तुएं आयात स्थानापन्न होती हैं जो विदेशी विनियम को बचाती हैं। इसी प्रकार जब अर्थव्यवस्था खाद्य उत्पादन में आत्म–निर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करती है तो खाद्यान्नों के के बढ़े हुए विक्रीत अतिरेक से विदेशी विनिमय में बचत होती है। खाद्य तथा निर्यात योग्य फसलों के अधिक उत्पादन से न केवल विदेशी विनिमय की बचत तथा कमाई भी होती है बल्कि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों का विकास भी होता है। विदेशी विनिमय अर्जनों का प्रयोग दुर्लभ कच्चे माल, मशीनें, पूंजी उपकरण तथा तकनीकी ज्ञान का आयात करके, नए उद्योगों की स्थापना करने और अन्य उद्योगों की क्षमता बढ़ाने में किया जा सकता है। कुजनेट्स इसे कृषि का ''पदार्थ योगदान'' कहता है जो पहले, अर्थव्यवस्था के शुद्ध उत्पादन की वृद्धि करता है और दूसरे, प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि।

24.5.9 ग्रामीण कल्याण में सुधार –

ग्रामीण आमदनियों में वृद्धि जो विक्रेय अतिरेक के कारण होती है उससे ग्रामीण कल्याण में सुधार होता है। ग्रामीण उच्च पौष्टिकता वाले पदार्थ जैसे अण्डे, घी, दूध, मछली, फल, बढ़िया किस्म के अनाज आदि का अधिक मात्रा में उपभोग करना प्रारम्भ करते हैं। वे पक्के और अच्छे घरों को निर्माण करते हैं जिनमें वे सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाएं जैसे बिजली, फर्नीचर, पंखे, टी0वी0, फ्रिज, ट्रांजिस्टर, आदि लगाते हैं। वे स्वयं और अपने

परिवार के लिए साईकल, मोटर साईकल अथवा स्कूटर, घड़ियां, बने–बनाए वस्त्र, शूज आदि भी प्रदान करते हैं। वे गांव में अनेक प्रकार की सेवाओं एवं सुविधाओं जैसे स्कूल, स्वास्थ्य केन्द्र, सिंचाई, बैंकिंग, परिवहन, संचार आदि के लिए इंतजाम करके प्रत्यक्ष संतुष्टि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, कृषि अतिरेक के बढ़ने का प्रभाव ग्रामीणों के रहन–सहन के स्तर को ऊँचा करना होता है।

24.6 कृषि : एक पद्दलित क्षेत्र (विकासशील देशों के सन्दर्भ में)

कृषि अल्पविकसित देशों का प्रमुख व्यवसाय है फिर भी विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा यह व्यवसाय यहां अत्यन्त पिछड़ी हुई अवस्था में हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका और फ्रांस की क्रमशः 8 प्रतिशत तथा 24 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है जबकि अल्पविकसित देशों में 60–70 प्रतिशत लोग इस व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। इन देशों में जनाधिक्य के कारण प्रति व्यक्ति तथा प्रति–हेक्टेयर उत्पादन भी अपेक्षाकृत कम है। यही कारण है कि यहां कृषि जीवन–निर्वाह का साधन बनी हुई है तथा यहां के निवासी निर्धनता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि कृषि क्षेत्र में विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में प्रति हेक्टेयर उत्पादन काफी कम है। वर्ष 2004–05 में भारत में चावल की पैदावार प्रति हेक्टेअर 2,900 किग्रा थी जबकि चावल का उत्पादन कोरिया में 6,730 किग्रा प्रति हेक्टेअर, अमेरिका में 7,830 किग्रा प्रति हेक्टेअर तथा जापान में 6,420 किग्रा प्रति हेक्टेअर है। इसी तरह गेहूं की प्रति हेक्टेअर औसत उपज यू0के0 में 7,770 किग्रा, फ्रांस में 7,580 किग्रा, चीन मे 4,240 किग्रा तथा भारत में 2,710 किग्रा थी। विश्व के कुछ देशों में प्रति हेक्टेअर औसत उपज के निम्न सारणी में देखा जा सकता है।

सारणी 1, कुछ चुने हुए देशों में प्रति हेक्टेअर उत्पादन (किग्रा), 2004–05

देश	चावल	देश	गेहूं
भारत	2,900	भारत	2,710
कोरिया	6,730	चीन	4,240
मिस्र	9,800	फ्रांस	7,580
जापान	6,420	पाकिस्तान	2,370
यू0एस0ए0	7,830	यू0के0	7,770
स्रोत : आर्थिक समीक्षा, 2006–07			

कृषि में नीची उत्पादकता के कारण इन देशों में ग्रामीण जनसंख्या की आय काफी कम है जिससे लोगों का रहन–सहन निम्न–स्तरीय है। फिर, बजत करने के कम क्षमता कृषि में निवेश की दर को सीमित बनाए हुए है। कृषि कार्य पुराने और पिछड़े तरीकों द्वारा किया जाता है जो निम्न–उत्पादकता और निर्धनता के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार अल्प–विकसित देशों में निम्न कृषि–उत्पादकता एक तरफ ग्रामीण जनसंख्या को दरिद्र बनाती है तो दूसरी ओर आर्थिक विकास को सीमित करती है। अतः ऐसे देशों में विकास नीति का प्रमुख उद्देश्य कृषि–उत्पादकता में वृद्धि करके विपणन योग्य अतिरेक को बढ़ाने

का होना चाहिये। चूँकि इन देशों का प्रतिकूल सामाजिक तथा संस्थानिक ढाँचा कृषि उत्पादकता की सबसे बड़ी बाधा है इसलिये हमारा पहला प्रयास वर्तमान ग्रामीण–ढाँचे में बदलाव लाने और उसे विकासेन्नमुख बनाने का होना चाहिए।

भू–व्यवस्था, भूमि सुधार और आर्थिक विकास –

भूव्यवस्था तथा भूमि सुधारों का उद्देश्य उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों को ऐसा स्वरूप प्रदान करता है, जिसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन को अधिकतम किया जा सकें।किसी देश का कृषिगत विकास काफी हद तक भूमि सम्बन्धी व्यवस्था पर निर्भर करता है। भूमि व्यवस्था से अभिप्राय भू–धारण की पद्धति, भू–स्वामित्व सम्बन्धी कानून, काश्त का स्वरूप, जोतों का आकार, लगान सम्बन्धी नियम, कृषि साख की व्यवस्था, कृषि उत्पादन तथा विपणन आदि बातों से लगाया जाता है। इस प्रकार भू–व्यवस्था एक अत्यन्त विस्तृत शब्द है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण जीवन को प्रभावित करने वाल सभी बातें आ जाती है। भू–व्यवस्था का कृषिगत विकास से निकटतम सम्बन्ध है और इसलिये इसका प्रभाव आर्थिक विकास को बढ़ाने या अवरूद्ध करने का हो सकता है। दोषपूर्ण भूमि–व्यवस्था कृषि उत्पादकता को घटाकर आर्थिक विकास को धीमा करती है जबकि सुदृढ़ कृषि–व्यवस्था और भूमि सुधार कार्यक्रम उत्पादकता–वृद्धि और निवेश–प्रेरणा के रूप में आर्थिक विकास का बढ़ावा देते हैं।

सभी देशों में कृषि क्षेत्र में उत्पादन के सामन्ती सम्बन्ध आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध हुए है। यही कारण है कि यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के दौरान भूमि सुधारों के द्वारा सामन्ती व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया था। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, ताईवान, मैक्सिको तथा भारत में भी भूमि सुधारों के द्वारा आर्थिक विकास के लिए रास्ता खोला गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रतिवेदन के अनुसार, ''अल्पविकसित देशों की दोषपूर्ण काश्तकारी व्यवस्था इनके कृषिगत विकास की सबसे बड़ी बाधा है तथा भूमि–सुधार के प्रति जागरूकता व क्षमता की कमी निम्न उत्पादकता का कारण है। इसके परिणामस्वरूप पिछड़ी हुई कृषि–व्यवस्था, पिछड़े आर्थिक विकास का स्वरूप ग्रहण कर लेती है।''

प्रतिवेदन के अनुसार अल्पविकसित देशों की दोषपूर्ण भूमि–व्यवस्था के दुष्परिणाम इस प्रकार सामने आते हैं :

1.असुरक्षित काश्त के कारण कृषकों में उत्पादकता की प्रेरणा नहीं रहती।

2.उपज का एक बड़ा भाग अनुपर्जित आय के रूप में भू–स्वामी को प्राप्त होता है जबकि कृषक को मात्र न्यूनत जीवन–निर्वाह भर ही उपलब्ध हो पाता है। इसके परिणामस्वरूप एक तरफ भूमि पर निवेश की क्षमता व प्रेरणा घटती है तो दूसरी तरफ समाज में वर्ग–भेद का जन्म होता है जो सामाजिक तनाव को बढ़ाता है तथा सामाजिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

भूमि व्यवस्था में सुधार का कृषि विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, क्योंकि भू–व्यवस्था किसानों के हित में हो जाती है और किसान कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु सभी सकारात्मक

प्रयास करते है जो कृषि विकास में सहायक होता है मुख्य रूप से भूमि सुधार कृषि विकास पर निम्न प्रकार प्रभावित करता है।

1. भूमि सुधार कार्यक्रम काश्त की सुरक्षा प्रदान करके भूमि में विनियोग तथा स्थायी सुधार लाने की सम्भावना को बढ़ाते हैं।
2. चकबन्दी द्वारा अनार्थिक जोतों पर रोक लगाने से कृषि के यन्त्रीकरण को बढ़ावा मिलता है।
3. भूमि सुधार से खेती के तरीकों और श्रमिकों की कार्यकुशलता में सुधार होता है जिससे कृषि–उत्पादकता बढ़ जाती है।
4. भूमि सुधार कार्यक्रमों से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है और
5. सरकारी राजस्व में भी वृद्धि होती है।
6. भू–सुधार द्वारा किसानों तथा सरकार में सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जिससे सरकार द्वारा दी जानी वाली विभिन्न सहायताओं का वह आसानी से लाभ उठा सकते है।
7. भू–सुधार के दौरान प्राप्त अतिरिक्त जमीन भूमिहीन किसानों में बाँटना।

वास्तव में, इन देशों के सन्तुलित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय सहित विकास के लिए भूमि व्यवस्था में सुधार की प्रक्रिया को अपनाना आवश्यक है। विकास की ओर उन्मुख धनी आबादी वाले ये देश, जहां व्यापक बेरोजगारी, अर्ध–बेरोजगारी विद्यमान है, कृषि विकास की अवहेलना नहीं कर सकते। खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता प्राप्त करना तथा कुल उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि करके विपणन योग्य आधिक्य का सृजन करना इन देशों की आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है। सत्य तो यह है कि कृषि क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति किए बिना तीव्र आर्थिक विकास की कोई भी योजना फलीभूत नहीं हो सकती। सन्तोष का विषय है कि आज विश्व के अधिकांश अल्पविकसित देश कृषि विकास की दिशा में सकारात्मक रूख अपनाए हुए हैं तथा देश के आर्थिक विकास की आवश्यकता के अनुरूप कृषिगत विकास हेतु सतत प्रयासरत है।

25.7 कृषि क्षेत्र विकास बनाम औद्योगिक क्षेत्र विकास

अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास को प्राथमिकता प्रदान की जाए अथवा औद्योगीकरण की नीति को अपनाया जाए, यह वाद–विवाद का विषय रहा है। अन्य शब्दों में, यह जानना आवश्यक है कि कृषि विकास तथा औद्योगीकरण एक–दूसरे के पूरक हैं अथवा प्रतियोगी ? वास्तविकता में तो यह है कि कृषि विकास तथा औद्योगीकरण परस्पर विरोधी धारणा न होकर एक–दूसरे के पूरक हैं। विकासशील देशों में आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए दोनों क्षेत्रों का साथ–साथ विकास होना आवश्यक है। ये एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित तथा आर्थिक विकास की दो संयुक्त एवं प्रेरक शक्तियां हैं। इस कथन में सत्यता का पर्याप्त अंश होने के बावजूद कुछ अर्थशास्त्री केवल कृषिगत विकास के पक्षपाती हैं तो कुछ औद्योगीकरण के समर्थक हैं तो कुछ विचारक ऐसे भी हैं जो दोनों क्षेत्रों में सामंजस्य बनाए रखने के पक्षधर हैं। उपरोक्त विचारधाराओं के सन्दर्भ में इनका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

प्रथम मत : कृषि औद्योगीकरण की जननी है –

इस मत के समर्थकों का कथन है कि कृषि औद्योगीकरण का आधार तथा आर्थिक विकास की कुंजी है। यदि विकसित देशों के आर्थिक इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो यह ज्ञात होता है कि कृषि विकास के सोपान पर चढ़कर ही ये देश औद्योगिक विकास के शिखर पर पहुँचे हैं। अन्य शब्दों में, कृषि विकास के अनुसार, ''आर्थिक इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है कि लगभग प्रत्येक औद्योगिक देश की प्रारम्भिक अवस्था में उद्योगों का विकास कृषकों की शक्ति पर निर्भर रहा है।''

बावर एवं यामे के अनुसार, ''वर्तमान में औद्योगिक दृष्टि से विकसित कहे जाने वाले देश अतीत में मूलरूप से कृषि प्रधान देश रहे हैं। इतिहासकारों द्वारा की गई खोज से पता चलता है कि इन देशों में प्रगतिशील एवं विकासयुक्त कृषि ने विनिर्माणी उद्योगों की स्थापना एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।''

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रतिवेदन में भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि ''कृषि क्षेत्र में पूरक परिवर्तन किए बिना औद्योगिक क्षेत्र का असन्तुलित एवं तीव्र विकास, अर्थव्यवस्था में ऐसी दशाएं उत्पन्न कर सकता है जिससे कि आर्थिक विकास पूर्णतया अवरूद्ध हो जाए, जैसे – भुगतान सन्तुलन की कठिनाईयां, मुद्रास्फीति, अत्यधिक नगरीकरण तथा सामाजिक ढांचे का विकृत होनपा आदि।''

इस सम्बन्ध में अपने मत व्यक्त करतेम हुए **प्रो0 रोस्टोव** ने लिखा है कि ''कृषि उत्पादन औद्योगीकरण के लिए मूलभूत कार्यशील पूंजी है।''

श्री एच0 मिन्ट के मतानुसार, ''विनिर्माणी उद्योगों का निरन्तर विकास, कृषि क्षेत्र के विकास के बिना अधिक समय तक सम्भव नहीं है क्योंकि अर्थव्यवस्था के विकास की दर अंततः कृषि के विकास की दर पर निर्भर करती है।''

संक्षेप में, आर्थिक विकास की दृष्टि से कृषि के विकास को निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण समझा जा सकता है :

1. कृषि विकास से निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के खाद्य–सामग्री सुलभ होती है।
2. अनेक विनिर्माणी उद्योगों को कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होता है। सूती वस्त्र, चीनी, पटसन, चाय, कॉफी, रबड़, वनस्पति घी, तेल, आदि अनेक उद्योग अपने कच्चे माल के लिए मुख्य रू‍प से कृषि पर ही निर्भर है। इसके अतिरिक्त अन्य लघु उद्योगों को भी कच्चा माल कृषि से प्राप्त होता है।
3. कृषि क्षेत्र, उद्योगों को पूंजी प्रदान करने के साथ–साथ नई औद्योगिक वस्तुओं के लिए बाजार तैयार करता है।
4. कृषिगत उपज का निर्यात करके औद्योगीकरण के लिए आवश्यक मशीनें एवं उपकरण आयात किए जा सकता है।
5. इससे विनियम–अर्थव्यवस्था का विकास होता है, साहसिक तथा प्रशासकीय योग्यता को बल मिलता है और यह आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था के सफल संचालन को सम्भव बनाता है।

   कृषि के विकास के महत्व को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कोल एवं हूबर ने लिखा है कि ''सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए कृषि का विकास पहले होना चाहिए।''

दूसरा मत : औद्योगीकरण आर्थिक विकास की कसौटी है –

आर्थिक विकास में कृषि विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है फिर भी अर्थशास्त्रियों ने औद्योगीकरण को तीव्र आर्थिक विकास की कसौटी माना है। उनका तर्क है कि विकासशील देशों के तीव्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण परम आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। विभिन्न प्रकार के उद्योगों के अभाव में देश का समुचित विकास होना अधूरा ही रहेगा। विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाएं औद्योगीकरण के माध्यम से ही आज आर्थिक विकास के उन्नत शिखर पर पहुंच सकी हैं। अधिकांशतया कृषि की अपेक्षा उद्योगों में प्रति व्यक्ति आय एवं उत्पादन अधिक होता है। आन्तरिक व बाह्य बचतें आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं। औद्योगीकरण के फलस्वरूप तकनीकी ज्ञान, बाजार का क्षेत्र तथा आय आदि में वृद्धि की प्रवृत्ति बढ़ती है जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लक्षण परिलक्षित होने लगते हैं। कुछ लोगों का तो यहां तक कहना है कि अल्पविकसित देशों को कृषि की अपेक्षा औद्योगीक विकास पर अधिक बल देना चाहिए क्योंकि कृषि एवं आर्थिक विकास अतंतः देश के औद्योगीकरण के ढांचे पर निर्भर करता है। आर्थिक विकास हेतु औद्योगीकरण की आवश्यकता एवं महत्व को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. देश के आर्थिक विकास के लिए कुछ राष्ट्रीय उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि आवश्यक है। उद्योग–धन्धों के विकास से इस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है। उद्योगों में कृषि की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता है। अर्थात् उद्योगों में विकास की दर ऊँची होती है।
2. अल्पविकसित देशों में कृषि एक अनिश्चित व्यवसाय होता है। इसमें क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम शीघ्र ही क्रियाशील होने लगता है।
3. औद्योगीकरण से देश में पूंजी निर्माण की दर को अधिक बल मिलता है। पूंजी निर्माण में वृद्धि तभी सम्भव है जब देश में बचतें अधिक मात्रा में हों तथा उसे लाभप्रद उत्पादन में लगाने के लिए क्षेत्र और अवसर अधिक हों। औद्योगीकरण से आय में वृद्धि होती है। आय में वृद्धि के साथ–साथ सीमान्त बचत प्रवृत्ति में भी वृद्धि होती है, साथ ही उद्योग–धन्धों में पूंजी लगाने के लिए क्षेत्र और अवसर में वृद्धि होती है। इस तरह, औद्योगीकरण पूंजी निर्माण में सहायक है।
4. प्रति व्यक्ति आय एवं जीवन–स्तर में वृद्धि की सम्भावना कृषि की अपेक्षा औद्योगीकरण में अधिक होती है। ऐसा विकसित देशों के आर्थिक इतिहास से स्पष्ट होता है।
5. कृषि में उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक रासायनिक खादों, कीटनाशकों, कृषि संयन्त्रों, उपकरणों तथा बिजली आदि महत्वपूर्ण सुविधाएं औद्योगीक विकास से ही सुलभ हो सकेंगी।
6. उत्पादन एवं तकनीक प्रगति मुख्य रूप से औद्योगीकरण की ही देन है।

समन्वित दृष्टिकोण : दोनों का विकास साथ–साथ हो!

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि कृषि–विकास तथा औद्योगीकरण की नीति के बीच किसी प्रकार का चुनाव करना न्यायसंगत न होना क्योंकि ये दोनों क्षेत्र न केवल परस्पर पूरक हैं बल्कि आर्थिक विकास की दो ऐसी समानान्तर शक्तियाँ हैं जिन्हें एक ही

धरातल पर बनाये रखना आवश्यक है। **यूजीन स्टेनले** ने इन दोनों क्षेत्रों की पूरकता सिद्ध करते हुए कहा है कि ''कृषि उत्पादकता में सुधार औद्योगीकरण को प्रोन्नत करने का एक ठोस साधन है। जब तक कृषि का आधुनिकीकरण नहीं हो जाता जब तक अल्प–विकसित देशों में, जनंसख्या के एक बड़े भाग के पास निम्न क्रय–शक्ति के रूप में बाजारों का अभाव औद्योगिक विस्तार को सीमित कर देगा। इसी प्रकार कृषिगत विकास भी तब तक सम्भव नहीं है जब तक जन–शक्ति को रोजगार दिलाने और आधुनिक कृषि के लिये आवश्यक सम्भार, यन्त्र तथा सेवाओं को ठोस तकनीकी आधार प्रदान करने के लिये तीव्र औद्योगिक विकास न हो जाये।'' भारत में भी कृषि तथा औद्योगीकरण के सह–अस्तित्व अर्थात् समन्वित विकास को स्वीकार कर लिया गया है।

पी–काँग0 चाँग के मतानुसार ''कोई भी देश औद्योगीक दृष्टि से कितना ही उन्नतशील क्यों न हो, वह कृषि तथा उद्योगों के बीच एक वांछित सन्तुलन स्थापित किये बिना न तो अपनी आर्थिक क्रियाओं को जारी रख सकता है और न ही दीर्घकालीन विकास कर सकता है।'' अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की एक विज्ञप्ति के अनुसार, ''यह नहीं मान लेना चाहिए कि विकास के क्षेत्र में उद्योगों का अत्यधिक संकेन्द्रण अल्प–विकसित देशों के हित में होगा। परन्तु इसका यह अभिप्राय भी नही कि इस प्रकार के देशों में औद्योगीकरण की नितान्त उपेक्षा की जाए, वरन् कृषि तथा औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में उत्पादन को बढ़ाकर सन्तुलित विकास की नीति अपनाई जानी चाहिए।''

श्री मुर्रे का कहना है कि ''इन दोनों क्षेत्रों का विकास घनिष्ठ रूप से अन्तर्सम्बन्धित है और इनमें से प्रत्येक क्षेत्र दूसरे पर निर्भर करता है। अतः आर्थिक विकास की नीति, कृषि तथा उद्योग दोनों में उत्पादन को बढ़ाने की दृष्टि से संतुलित विकास पर आधारित होनी चाहिए ?''

इस प्रकार कृषि और औद्योगिक उत्पादन परस्पर सम्बन्धित हैं और प्रत्येक दूसरे की वृद्धि को ऊपर वर्णित तरीकों से प्रभावित करता है। इसलिए अल्पविकसित देशों को अर्थव्यवस्था की सतत वृद्धि के लिए कृषि और उद्योग का सुसंगत ढंग से विकास करना चाहिए।

25.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ गये होंगे कि कृषि और आर्थिक विकास का सम्बन्ध मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही रहा है। प्राचीन आर्य संस्कृति, यूरोपियन तथा प्रकृतिवादों ने भी कृषि के महत्व को स्वीकार किया। यद्यपि आर्थिक विकास का अभिप्राय उत्पादन, आय वृद्धि, प्रतिव्यक्ति आय वृद्धि तथा सामाजिक कल्याण से लगाया जाता है। लेकिन कृषि विकास ही किसी अर्थव्यवस्था की नींव मजबूत होती है। कृषि के द्वारा ही खाद्य पदार्थो की आपूर्ति होती है, उद्योगों के लिए कच्चेमाल की आपूर्ति होती है, पूंजी निर्माण में सहायक, रोजगार का मुख्य आधार है। विदेशी मुद्रा की प्राप्ति तथा ग्रामीण कल्याण को बढ़ावा मिलता है। आर्थिक विकास हेतु भू–व्यवस्था तथा भूमि सुधार एक महत्वपूर्ण शर्त है। क्योंकि भूमि सुधार द्वारा कृषि विकास सम्भव है और कृषि विकास द्वारा आर्थिक विकास होता है। संस्थागत स्रोत– जिनकी कार्यप्रणाली निश्चित नियमों पर आधारित होती है। अल्पविकसित

देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास को प्राथमिकता प्रदान की जाए अथवा औद्योगीकरण की नीति को अपनाया जाए । इन दोनों क्षेत्रों का विकास घनिष्ठ रूप से अन्तर्सम्बन्धित है और इनमें से प्रत्येक क्षेत्र दूसरे पर निर्भर करता है। अतः आर्थिक विकास की नीति, कृषि तथा उद्योग दोनों में उत्पादन को बढ़ाने की दृष्टि से संतुलित विकास पर आधारित होनी चाहिए

25.9 शब्दावली

- ❖ **प्राथमिक क्षेत्र** –कृषि, खनन व मत्स्य उद्योग
- ❖ **कृषि का वयवसायिकरण**– लाभ प्राप्ती के उद्देश्यों से कृषि करना।
- ❖ **वाणिज्य बैंक**– व्यापारिक बैंक जो लाभ प्राप्ति के लिए धन का लेने–देन करते हैं।
- ❖ **काश्तकार**– जो लोग किसी दूसरे की भूमि पर ठेके पर कृषि करता है।
- ❖ **अनुदान/रियायत** – सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।
- ❖ **कृषि विपणन**– कृषि उत्पादन की विक्रय/बिक्री व्यवस्था।

25.10 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरों :–

1. आज भी ..... विश्व की अधिकांश जनंसख्या का प्रमुख व्यवसाय तथा आय का सबसे बड़ा स्रोत है।
2. भारतीय संस्कृति में पृथ्वी (भूमि) को ..... के समान माना गया है।
3. प्रसिद्ध विचारक अरस्तु..... द्वारा ही द्रव्य उपार्जन को प्राकृतिक मानते थे।
4. प्रकृतिवादियों का मानना था कि केवल..... की सुदृढ़ व टिकाऊ साम्राज्य स्थापित कर सकता है।
5. विकास–प्रक्रिया में कृषि विकास को ..... स्थान दिया जाना चाहिए ।
6. प्रो0 शुल्टज के अनुसार कोई भी अल्प विकसित राष्ट्र..... में आत्म–निर्भरता प्राप्त किये बिना आर्थिक विकास की कल्पना नहीं कर सकता।
7. आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानवीय प्रयत्नों द्वारा कोई देश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में ..... में वृद्धि कर अपनी वास्तविक..... आय में वृद्धि करते है।
8. .....के शब्दों में – आर्थिक विकास का अर्थ, प्रति व्यक्ति उत्पादन के वृद्धि से लगाया जाता है।
9. आर्थिक विकास वह..... प्रक्रिया है।
10. .....सभी उद्योगों की जननी और मानव जीवन की पोषक रही है।
11. प्रमुख अर्थशास्त्री किण्डलवर्जर ने ..... महत्वपूर्ण कारक बताए है जिनके द्वारा कृषि क्षेत्र आर्थिक विकास में मदद पहुँचाता है।

12. साइमन कुजनेट्स ने आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका को ..... भागों में बांटा है।
13. नर्क्से के अनुसार, वास्तविक क्रय–शक्ति का अभाव होता है जो कृषि में .... उत्पादकता को व्यक्त करती हैं।
14. कुजनेट्स इसे कृषि का..... कहता है जो पहले, अर्थव्यवस्था के शुद्ध उत्पादन की वृद्धि करता है और दूसरे, प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि।
15. कुजनेट्स इसे कृषि का ..... कहता है जब संसाधनों का अन्य क्षेत्रों में हस्तांतरण होता है, क्योंकि वे संसाधन उत्पादकीय घटक होते है।
16. भू–व्यवस्था एक ..... शब्द है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण जीवन को प्रभावित करने वाल सभी बातें आ जाती है।

उत्तर– (1) कृषि (2) माता (3) कृषि व पशुपालन (4) 'कृषक–राष्ट्र' (5) प्राथमिक (6) खाद्यान्नों (7) उत्पादन एवं उत्पादकता ; प्रति व्यक्ति आय (8) प्रो0 लुईस (9) सतत प्रक्रिया (10)कृषि (11) छः महत्वपूर्ण कारक (12) तीन भागों (13) कम उत्पादकता (14)''पदार्थ योगदान'' (15) 'घटक योगदान' (16) अत्यन्त विस्तृत (17)

25.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- माथुर बी0 एल0; (2011) ''*कृषि अर्थशास्त्र*''; अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- गुप्त डॉ0 शिव भूषण'; (2010) '' *कृषि अर्थशास्त्र* ''; साहित्य भवन आगरा।
- Singh, S.P. (2010)Economics of Development and Planning and Practics, S and Chan Publicshing House.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K.(2007), Economics of Development and Planning Theory and Practice, Himalaya Publishing House.
- Dhingra , I. C. (2009), Development Economics, sultan Chand and Sons.

25.12 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री

- Taylor, H.C., (1949),'*Outlines of Agricultural Economic's*, MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), '*Agriculture and Economic Developmen*t'; Select books,New Delhi.
- SandhA.N.,Singh,Amarjit (2009),'*Fundamentals Agricultural Economics*', Himalaya Publishing House.
- Desai,R.G. (2009), '*Agricultural Economics*', Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M.L. et al. (1991): '*Indian Agricultural Development since Independence*',Oxford& IBH, New Delhi.

- Hayami,Yujiro,Godo,Yoshihisu,(2004),DevelopmentEconomics, Oxford University Press India.

25.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक विकास से आप क्या समझते है ? कृषि तथा आर्थिक विकास में क्या सम्बन्ध है ?
2. कृषि क्षेत्र की आर्थिक विकास में भूमिका पर प्रकाश डालिए।
3. कृषि क्षेत्र भू–व्यवस्था का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
4. अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास को अथवा औद्योगीकरण को प्राथमिकता प्रदान की जाए व्याख्या करो।

इकाई 25: औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास

इकाई संरचना

25.1 प्रस्तावना

25.2 उद्देश्य

25.3 औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास

25.4. आयात स्थानापन्नता तर्क – आयात स्थानापन्नता और आर्थिक विकास

25.5. शिशु उद्योग तर्क – शिशु उद्योग और आर्थिक विकास

25.6. सांराश

25.7. शब्दावली

25.8. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

25.9. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

25.10. सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

25.11. निबन्धात्मक प्रश्न

25.1 प्रस्तावना

'औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास' से सम्बन्धित इस इकाई से पहले आप आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके है।

इस इकाई में आर्थिक विकास में औद्योगिक क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

इस इकाई के अध्ययन से आप को औद्योगीकरण के दो महत्वपूर्ण तर्कों –आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

25.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप :–

- आर्थिक विकास में औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका को जान सकेंगे।
- तीव्र औद्योगिक विकास हेतु आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।
- औद्योगीकरण में शिशु उद्योग तर्क की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेगें।

25.3 औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास

औद्योगिक प्रगति तीव्र आर्थिक विकास की एक आवश्यक शर्त है। विकसित देश औद्योगिक विकास के उच्च स्तर के बलबूते पर ही अपना तीव्र विकास कर सके है। जबकि इसके विपरित अल्पविकसित देशों की अथाह गरीबी काफी हद तक उनके औद्योगिक पिछड़ेपन का परिणाम है। इन देशों में वैज्ञानिक ज्ञान और आधुनिक तकनीकी की ने केवल कमी है, बल्कि औद्योगिक प्रगति करने की उत्कण्ठा, तकनीकी परिवर्तन लाने की पहल और उसके लिए उपयुक्त आधारभूत ढाँचे का अभाव भी होना है। इसमें कोई सन्देह नही, कि अल्पविकसित देशों को आर्थिक विकास के लिए तीव्र औद्योगिक विकास को अपनाना होगा, जिससे वह भी विकास के पथ पर अग्रसर हो सके।

औद्योगिक विकास हेतु बड़ी मात्रा में उद्योगों की स्थापना की जाती है। उद्योगों का कार्य वस्तुओं और सेवाओं को मानव–प्रयास द्वारा वाणिज्यक उत्पादन में परिवर्तन करना है। उद्योग शब्द लैटिन भाषा के शब्द Industria से बना है, जिसका अर्थ हैं – कुछ प्रयोजन के लिए गतिविधि को निर्देशित करना। प्राचीन फ्रांसीसी Industrie शब्द का प्रयोग मूलरूप से 'कौशल', 'एक युक्ति' और 'परिश्रम' के लिए किया जाता था। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान अधिक से अधिक मानव प्रयास वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में शामिल हो गयें।किसी देश में श्रम शक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने तथा राष्ट्रीय आय में योगदान के आधार पर अर्थव्यवस्था कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है। उद्योग आधारित अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान यूरोपीय व अमेरिकी देश में विनिर्माण उद्योग वस्तु–सेवा उत्पादन व श्रम का प्रमुख क्षेत्र बन गयें है। जिससे औद्योगिक क्षेत्र में तीव्र प्रगति हुई है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद

दुनिया के आर्थिक उत्पादन का लगभग एक तिहाई विनिर्माण उद्योगों से प्राप्त होता है। कई विकसित व विकासशील देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार उद्योग ही है।

औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए उद्योगों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। प्राथमिक या कृषि उद्योग, माध्यमिक, द्वितीयक या विनिर्माण तथा तृतीय या सेवाएं। कुछ विचारक इसमें ज्ञान, संस्कृति तथा अनुसंधान को भी शामिल करते है। प्राथमिक क्षेत्र में पृथ्वी से सम्बन्धित संसाधनों–कृषि, खनन तथ मत्स्य उद्योग को शामिल किया जाता है। द्वितीयक क्षेत्र में प्राथमिक उद्योगों के प्रसंस्करण उत्पादों को शामिल किया जाता है, जिसमें निर्माण, विनिर्माण तथा प्रसंस्करण उद्योग आते है। तृतीयक क्षेत्र में सेवायें – शिक्षा, प्रबन्धन व व्यापार सम्बन्धी सेवाओं को शामिल किया जाता है। उद्योग के कई अन्य प्रकार भी होते है जैसे – बाजार आधारित उद्योग के कई अन्य प्रकार भी होते है जैसे – आजार आधारित उद्योग, ग्लोबल उद्योग, वित्तीय उद्योग व व्यापारिक सम्बन्धी उद्योग/ बाजार व सम्बन्धित उत्पादों के हिसाब से उद्योग को पहचाना जाता है, जैसे – रासायनिक उद्योग, पेट्रोलियम, मोटर वाहन, इलेक्ट्रॉनिक, खाद्य, मछली, कागज, मनोरंजन तथा संस्कृतिक उद्योग आदि।

आर्थिक विकास में उद्योग की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। अल्पविकसित देश कृषि प्रधान होतें हैं जिनमें केवल उपभोक्ता वस्तुओं से सम्बन्धित कुछ उद्योग पाए जाते हैं। ऐसे देशों में बिना औद्योगीकरण के कृषि, परिवहन, संचार, निर्यात, रोजगार आदि में वृद्धि संभव नही है। औद्योगीकरण के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं :

औद्योगीकरण उपभोक्ता वस्तुओं तथा पूँजी पदार्थों एवं सामाजिक उपरि पूंजी के निर्माण की प्रक्रिया है जिससे व्यक्तियों और व्यवसायों को वस्तुएँ एवं सेवाएं प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार औद्योगीकरण विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में निम्नलिखित कारणों से मुख्य भूमिका निभाता है :

25.3.1 कृषि में आगतों की पूर्ति :–

अधिक जनसंख्या वाले अल्पविकसित देशों में भूमि पर अत्यधिक दबाव होता है जिससे जोतें उपविभाजित और टुकड़े–टुकड़े होती हैं तथा किसान परंपरागत खेती करते हैं। वे तीव्र आर्थिक विकास के लिए कृषि तरीकों में परिवर्तन आने तक इंतजार नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें खेतों पर उत्पादकता बढ़ाने के लिए उर्वरक, मशीनरी तथा अन्य लागतों की पूर्ति हेतु औद्योगिक विकास प्रांरभ करना आवश्यक है।

25.3.2 कृषि का व्यापारीकरण :–

औद्योगीकरण से कृषि का व्यापारीकरण होता है। कृषि के व्यापारीकरण से अभिप्राय है कि कृषि को उतना लाभदायक बनाना जितना कि उद्योग, जिससे कृषि घरेलू और विदेशी मार्केट की माँग पूरी करने की क्षमता रखती

हो। ऐसा औद्योगीकरण द्वारा कृषि में मूल परिवर्तनों से होता है जब कृषि के आधुनिकीकरण से निर्वाह खेती की बजाय व्यापारिक खेती प्रारम्भ होती है। परिवहन और संचार के साधनों का विकास होता है। किसान सहायक धंधे जैसे दूध, घी मक्खन, आदि का उत्पादन, फूल, फल, सब्जी आदि उगाना; मुर्गी, मछली आदि का पालन करते हैं। इससे रोजगार का विविधीकरण होता है। कृषि–उत्पादन बढ़ता है। ग्रामीण जनसंख्या की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है।

25.3.3 शहरों और रोजगार और आय में वृद्धि :–

औद्योगीकरण से शहरों में रोजगार के साधनों में वृद्धि होती है जिससे आय बढ़ती है। औद्योगिक क्षेत्रों में नयी तकनीकों तथा नयी और विविध कुशलताओं से उद्योगों के लाभ बढ़ते हैं जिससे बचतें अधिक होती हैं तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए मांग में वृद्धि होती है और आगे निवेश प्रोत्साहित होता है।

25.3.4 रोजगार प्रदान करना :–

कृषि क्षेत्र में बेरोजगार तथा अल्परोजगार को रोजगारा प्रदान करने के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है। ऐसे व्यक्तियों का सीमांत उत्पाद शून्य या नगण्य होता है और उन्हें कृषि उत्पादन में बिना किसी कमी अथवा नुकसान के कृषि से उद्योग में स्थानांतरित किया जा सकता है। क्योंकि कृषि की अपेक्षा उद्योग में श्रम का सीमांत उत्पाद अधिक होता है, इसलिए ऐसे वर्करों को औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरण करने से कुल उत्पादन बढ़ेगा। इसलिए अतिजसंख्या वाले अल्पविकसित देशों के लिए औद्योगीकरण के अलावा और कोई विकल्प नहीं है।

25.3.5 व्यापार की शर्तें सुधारना :–

ऐसे देशों की प्राथमिक वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय मार्केट में उतार–बढ़ाव के कारण उनकी व्यापार शर्तों में ह्रास हो जाता है, जिनमें सुधार करने के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है। वे मुख्य तौर से प्राथमिक वस्तुएं निर्यात करते हैं तथ निर्मित वस्तुएं आयात करते हैं। विकसित देशों की संरक्षणात्मक नीतियों के कारण प्राथमिक वस्तुओं की कीमतें गिरती जा रही हैं जबकि निर्मित वस्तुओं की कीमतें बढ़ती जा रही हैं। इससे उनकी व्यापार की शर्तों में ह्रास होता जा रहा है। इस कारण आर्थिक विकास के लिए इन देशों को प्राथमिक वस्तुओं पर निर्भरता कम करनी चाहिए, जिसका एकमात्र उपाय औद्योगीकरण है ताकि वे आयात स्थानापन्न तथा निर्यात प्रधान उद्योग स्थापित कर सकें।

25.3.6 शहरीकण :–

औद्योगीकरण से शहरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। यह प्रक्रिया ग्रामीण लोगों और क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन लाती है।

1. शहरीकरण से ग्रामीणों का शहरों की ओर प्रस्थान होता है जहाँ उन्हें रोजगार के अनेक सुअवसर प्राप्त होते हैं। वे शहरों से गांवों में अने कुटुम्बों को पैसा भेजते हैं।
2. इससे ग्रामीणों की आय में वृद्धि होती है।
3. वे बढी हुई आय का खेती के लिए आगतें खरीदने, पशुपालन, मुर्गी पालन, मछली पालन, तथा अन्य घरेलू उद्योग धंधे चालू करने पर व्यय करते हैं।
4. औद्योगीकरण से सुधरे हुए यातायात के साधनों से मार्केट का प्रसार होता है जिससे कृषि पदार्थों जैसे फल, सब्जियाँ, अनाज तथा व्यापारिक फसलों को शहरी मण्डियों में लाभकारी कीमतों पर बेचने की सुविधा हो जाती है।
5. जो ग्रामीण शहरों के पास के गांवों से नौकरी अथवा व्यवसाय करने के लिए शहरों में जाते हैं, वे अपने घरों में अंशकालिक काम करके अपनी आय को बढ़ाते हैं।
6. शहरीकरण में ग्रामीणों का शिक्षा, यात्रा तथा नये लोगों, नये विचारों एवं नयी वस्तुओं द्वारा उनके ज्ञान में वृद्धि होती है जिससे उनका दृष्टिकोण विस्तृत होता है तथा उनकी जीवन के प्रति प्रवृत्ति में परिवर्तन होता है और वे आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर होते हैं।

25.3.7 पूँजी में वृद्धि –

अल्पविकसित देशों के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है क्योंकि इससे बढ़ते प्रतिफल तथा पैमाने की किफायतें प्राप्त होती हैं जिनसे पूंजी मे वृद्धि होती है। इससे न केवल छोटे, मध्य और बढ़े उद्योग स्थापित होते हैं बल्कि इससे कृषि का आधुनिकीकरण होता है जिससे फार्म उत्पादन में वृद्धि होती है। कृषि में अनुसंधान और तकनीकी सुधार जिनसे सभी साधनों की उत्पादकता में वृद्धि होती है, औद्योगीकरण द्वारा ही संभव है।

25.3.8 विविध वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग :–

औद्योगीकरण से लोग विविध प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं के उपभोग से आधुनिकीकरण के लाभों का आनन्द प्राप्त करते हैं। इनका प्रदर्शनकारी प्रभाव द्वारा ग्रामीणों को भी लाभ होता है। इस प्रकार, औद्योगीकरण रहन–सहन के स्तरों को बढ़ाता है तथा सामाजिक कल्याण को प्रोत्साहित करता है।

25.3.9 शीघ्र आर्थिक विकास :–

शीघ्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण एक पूर्व–शर्त है जैसा कि विकसित देशों का अनुभव बताता है। विकास के लिए, राष्ट्रीय आय में औद्योगिक क्षेत्र का भाग बढ़ाना चाहिए तथा कृषि क्षेत्र का कम होना चाहिए। ऐसा केवल, आयोजित औद्योगीकरण की नीति द्वारा ही संभव है। इसके परिणामस्वरूप, कृषि और सेवा क्षेत्रों के विकास के रूप में औद्योगीकरण के लाभ अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में धीरे–धीरें पहुँच जाते हैं।

25.3.10 सामाजिक कल्याण :–

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में औद्योगीकरण सामाजिक, रूपान्तरण, सामाजिक समानता, आय का अधिक न्यायसंगत वितरण तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास लाता है।

विकास की प्रारंभिक प्रावस्था में अल्पविकसित देशों द्वारा अपनाई गई औद्योगीकरण के नीति से उन्हें संभावित आर्थिक एवं सामाजिक लाभ नही हुए हैं। यह आय और धन की असमानताएं, बेरोजगारी, और क्षेत्रीय असंतुलन कम करने में असमर्थ रही है। अन्य क्षेत्रों जैसे कृषि के विकास की उपेक्षा होने के कारण विकास के रूप में औद्योगीकरण के लाभ अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में धीरे–धीरे पहुँच जाते हैं।

विकास की प्रारंभिक प्रावस्था में अल्पविकसित देशों द्वारा अपनाई गई औद्योगीकरण की नीति से उन्हें संभावित आर्थिक एवं सामाजिक लाभ नहीं हुए हैं। यह आय और धन की असमानताएं, बेरोजगारी, और क्षेत्रीय असंतुलन कम करने में असमर्थ रही है। अन्य क्षेत्रों जैसे कृषि के विकास की उपेक्षा होने के कारण विकास की गति समरूप नहीं हुई है। इनके अतिरिक्त, औद्योगीकरण ने ऐसी गंभीर समस्याओं को पैदा किया है जैसे कि :

(1) ग्रामीण गतिहीनता,
(2) शहरी निम्न वर्ग की आकस्मिक वृद्धि,
(3) विकास आवश्यकताओं के साथ अभावपूर्ण ढंग से जुड़ी हुई शिक्षा,
(4) सरकारी नौकारशाही में संगठनात्मक ''अधिकतर विफलताएँ'' तथा
(5) श्रम–शक्ति और जनसंख्या की अत्यधिक ऊँची वृद्धि दरें।

इसलिए, अर्थशास्त्री इस मत की ओर परिवर्तित हो गए हैं कि इस तर्क का कोई आधार नहीं कि औद्योगीकरण से विकास प्रारंभ करना चाहिए। बल्कि, विकास की प्रक्रिया कृषि और उद्योग की सुव्यवस्थित वृद्धि के साथ जुड़ी हुई है। वास्तव में, अधिकतर अल्पविकसित देशों में सफल औद्योगीकरण सतत् कृषि विकास द्वारा समर्थित किया गया है।

औद्योगीकरण के पक्ष में दो महत्वपूर्ण तर्कों की व्याख्या की जाती हैंः आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क।

25.4 आयात स्थानापन्नता तर्क – आयात स्थानापन्नता और आर्थिक विकास

विकास के आयोजित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अल्पविकसित देश भुगतान–शेष की गंभीर कठिनाईयों में फँस जाते हैं। आयातों तथा निर्यातों में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है, जो विकास के साथ–साथ बढ़ता जाता है। ऐसा आयातों में वृद्धि और निर्यातों में कमी के कारण होता है। विद्युत, सिंचाई, परिवहन आदि परियोजनाओं जैसे आर्थिक आधारिक संरचना तथा प्रत्यक्षतः उत्पादक क्रियाओं जैसे लोहा और इस्पात, सीमेंट, बिजली का सामान आदि को स्थापित करने के लिए अल्पविकसित देशों को पूँजी उपकरण, मशीनरी, कच्चे माल, पुर्जे, आदि बड़ी मात्रा में आयात करने पड़ते हैं, जिससे उनके विदेशी व्यापार का आयात अंश बढ़ जाता है। आयातों के बढ़ने का एक अन्य कारण शीघ्रता से बढ़ रही जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों की वृद्धिशील माँग होता है। अतः खुराक के आयात अल्पविकसित देशों में भुगतान–शेष में असंतुलन उत्पन्न करने का एक महत्वपूर्ण तत्व होते हैं।

खाद्यान्नों के अतिरिक्त, बहुत–सी आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की घरेलू माँग को पूरा करने के लिए उन्हें आयातित किया जाता है क्योंकि देशी उत्पादन से उस माँग को पर्याप्त रूप से पूरा नहीं किया जा सकता। ऐसी नीति अपने आप में, ऐसे उद्योगों को स्थापित और चालू करने के लिए बड़ी मात्राओं में मशीनरी, पूँजी उपकरण, पूर्जे, कच्चे माल आदि की आयातों की आयातों की आवश्यकताओं पर जोर देती है। निर्यात आयातों के पीछे रह जाते हैं। अल्पविकसित देशों के निर्यातों में विविधता और लोचशीलता का अभाव पाया जाता है। ये देश मुख्यतः कच्चे माल और कृषि पदार्थों जैसे प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इसलिए उनके सीमित और बहुत प्रतियोगी बाजार होते हैं। फिर वे, बढ़ रही आय और उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माँग की आय लोच बढ़ने से निर्यात–योग्य वस्तुओं के बढ़े हुए उपभोग के कारण अधिक निर्यात करने में असमर्थ होते हैं। एक अन्य समस्या स्फीति के दबावों के कारण उनकी ऊँची उत्पादन लागत होती है। अत्यन्त प्रतियोगी अन्तर्राष्ट्रीय मार्केटों के होते हुए ऊँची लागत निर्यातों के रास्ते में बड़ी बाधा होती है। फिर प्रशुल्क प्रतिरोध, कोटा प्रतिबन्ध और प्रादेशिक आर्थिक संगठन भी अल्पविकसित देशों के निर्यातों को निम्न रखते हैं। अन्तिम, निर्यात योग्य वस्तुओं की घटिया किस्म और विदेशों में वस्तुएं बेचने के लिए उपयुक्त साख सुविधाओं का अभाव उनकी निर्यातों को निम्न रखने का कारण है। इस प्रकार ऊपर चचिर्त तत्वों के कारण अल्पविकसित देशों के निर्यात को निम्न रखने का कारण है। इस प्रकार ऊपर चचिर्त तत्वों के कारण अल्पविकसित देशों के निर्यात कम और आयात ऊँची रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है, जिससे उनमें भुगतान शेष की समस्या चिरस्थाई बन गई है।

भुगतान–शेष की कठिनाईयों को दूर करने का अन्य महत्वपूर्ण तरीका आयात स्थानापन्नता है। इसकी कूटनीति यह है कि कि उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में कटौती करें और उन्हें देश में ही उत्पादित करें। जैसा कि मिर्डल ने संकेत किया है, ''विदेशी विनिमय के समक्ष खतरे ऐसी वस्तुओं के उत्पादन की ओर उद्योगों में निवेश को निर्देशित करने का कारण प्रदान करते हैं, जो आयतों के स्थानापन्न होते हैं।'' हर्षमैन के अनुसार, आयात स्थानापन्न औद्योगीकरण के चार आवेग होते हैं। वे है : भुगतान–शेष की कठिनाइयां, युद्ध, आय में धीरे–धीरे वृद्धि और आयोजित विकास नीति। पहला आवश्यक उद्योगों के पक्ष में झुकावा लाता है और अन्तिम पूर्णतया विपरीत झुकाव पैदा करता है। आयात स्थानापन्नता द्वार औद्योगीकरण के लिए विकासशील देशों में भुगतान शेष की कठिनाईयों और आयोजित विकास नीति दो प्रेरणात्मक शक्तियां है। औद्योगीकरण की इस नीति के पालन में जो तरीके अपनाए जाते हैं, वे कीमत–संरक्षण विधियों के रूप में आयात प्रशुल्क, कोटा, आयात या विनिमय, अधि–प्रभार और बहु विनिमय दरें हैं। जबकि आयात प्रतियोग उद्योगों में लागतें कम करने के लिए कर–छूटें और सहायिकी प्रयोग किए जाते हैं। आयात स्थानापन्नता अनिवार्यतः उत्पादन के अन्तिम चरणों में टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण में प्रारम्भ होती है। देश बहुत में परिवर्तन, एकीकरण और मिश्रित करने वाले प्लांटों की आयात करता है और पहले आयातित की जाने वाली तैयार उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन

करता है और फिर प्रायः शीघ्रता और सफलता के साथ, उत्पादन की ऊँची स्टेजों पर और पश्यवर्ती अनुबंधन प्रभावों द्वारा मध्यवर्ती वस्तुओं की ओर चला जाता है।

आयात स्थानापन्नता के पक्ष में तर्क – आयात स्थानापन्नता के पक्ष में तर्क इस तथ्य पर आधारित है कि ऐतिहासिक तौर से व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय असमानता यन्त्र के रूप में पिछड़े हुए देशों के अहित में चालित रहा है। इसलिए वह दीर्घकाल में आत्म–निर्भरता और आयात को घरेलू उत्पादन द्वारा स्थानापन्न करके विदेशी मुद्रा बचाने के उद्देश्य से आयात स्थानापन्नता द्वारा औद्योगीकरण की कूटनीति को अपनाने में उचित है।

1. **विकसित देशों का अनुभव :–**
   आयात स्थानापन्नता के पक्ष में विकसित देशों के अनुभव को भी दिया जाता है। कुछ देशों के ऐतिहासिक अध्ययनों के आधार पर चेनरी ने यह दिखाया है कि विकास के साथ केवल औद्योगिक उत्पादन का भाग ही नहीं बढ़ता बल्कि औद्योगिक उत्पादन में कुल वृद्धि का एक बड़ा अनुपात, आयात स्थानापन्नता पर आधारित उद्योगों की वृद्धि का कारण होता है।
2. **घरेलू माँग पूरा करने हेतु :–**
   एक अन्य तर्क इस आधार पर आधारित है कि एक विकासशील देश की औद्योगिक आयातों के लिए माँग इसके निर्यातों के लिए विदेशी माँग की अपेक्षा बहुत तेजी से बढ़ती है। ऐसे देश प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात करते हैं जिनकी विदेशी माँग मन्द होती है तथा इसलिए वे निर्यातों के बदले में पर्याप्त औद्योगीक वस्तुएं आयात नहीं कर पाते। अतः घरेलू माँग को पूरा करने के लिए देश में औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन की आवश्यकता पड़ती है।
3. **रोजगार बढ़ाने के लिए :–**
   औद्योगीकरण द्वारा आयात स्थानापन्नता के पक्ष में रोजगार का तर्क भी दिया जाता है। जनसंख्या वृद्धि के साथ बढ़ रही श्रम–शक्ति को काम पर लगाने के लिए, आधुनिक श्रम–बचत तकनीकों के प्रयोग द्वारा कृषि उत्पादकता से बढ़ रही अतिरेक मानव शक्ति को खपाने के लिए, और वर्तमान अल्प–रोजगार में लगे लोगों को लाभदायक रोजगार के साधन प्रदान करने के लिए आयात स्थानापन्न औद्योगीकरण आवश्यक है।
4. **घरेलू बचत और निवेश दर बढ़ानें के लिए :–**
   फिर, यह भी तर्क दिया जाता है कि आयात स्थानापन्न औद्योगीकरण घरेलू बचत और निवेश की दर को बढ़ाता है। जब राज्य विदेशी प्रतियोगिता से आयात स्थानापन्न उद्योगों की रक्षा करने के लिए प्रशुल्क, लाइसैंस, कोटा आदि प्रतिबन्धात्मक विधियां अपनाता है, तो उत्पादक अपनी वस्तुओं की कीमतें बढ़ा लेते हैं और इस प्रकार ऊँचे लाभ कमाते हैं। जब यह लाभ बचाकर पुनर्विनियोजित किए जाते हैं, तो विकास की गति तेज होती है। फिर, यह भी तर्क दिया जाता है कि आयात स्थानापन्न उद्योगों की शर्तें संरक्षण व्यापार की शर्तों को असंरक्षित क्षेत्रों के

विरूद्ध कर देंगे और आय वितरण को इस ढंग से परिवर्तित करेंगे कि बचतें और निवेश अर्थव्यवस्था में प्रोत्साहित हो जाते हैं।

5. **मार्केट ढूँढने की आवश्यकता नहीं :–**
आयात स्थानापन्नता की नीति के पक्ष में एक प्रमुख तर्क यह है कि यह आयात स्थानापन्नता उद्योगों की लिए मार्केट ढूँढने की अनिश्चितताओं और जोखिम से दूर रहती है क्योंकि जब आयातों को रोक दिया जाता है, तो नए उद्योगों को पहले से ही स्थापित मार्केट प्राप्त की जाती है।

6. **आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से :–**
आयात–स्थानापन्न औद्योगीकरण के पक्ष में एक तर्क अल्पविकसित देश में दीर्घकालीन आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से है। यदि आयात स्थानापन्नता की नीति प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों द्वारा चलाई जाती है, जैसे कि साधारणतया होता है, तो आधुनिक औद्योगी तकनीकों और ज्ञान से देश लाभ उठाता है। उन्नत देशों के प्रौद्योगिकीय ज्ञान में प्रत्यक्षतः भाग लेकर यह अपनी पूँजी–संचय की दर को तीव्र करने में समर्थ हो जाता है।

7. **उत्पादन में आत्म–निर्भरता प्राप्त करना :–**
आयात स्थानापन्नता द्वारा औद्योगीकरण का अन्तिम उद्देश्य दो तरह का है (i) तैयार उपभोक्ता वस्तुओं, मध्यवर्ती वस्तुओं और मशीनरी के उत्पादन में आत्म–निर्भरता प्राप्त करना, और उन्हें विकासशील और विकसित देशों में निर्यात करना।

आयात स्थानापन्नता के विपक्ष में तर्क

भारत, पाकिस्तान और बहुत से लेटिन अमरीकी देशों में आयात स्थानापन्नता की नीति सही ढंग से नहीं चल रही है बल्कि इसने अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं में गड़बड़ पैदा कर दी है जिससे उनकी औद्योगीकरण की प्रक्रिया महँगी हो गई है। अब हम इस नीति के गुणों के संदर्भ में आयात स्थानापन्नता के विपक्ष में तर्कों का विवेचन करते हैं।

1. **उत्पादन में वृद्धि आयातों में वृद्धि से नहीं** :–आयात स्थनापन्नता द्वारा औद्योगीकरण के पक्ष में चेनरी द्वारा दिया गया ऐतिहासिक प्रमाण सभा विकासशील देशों पर लागू नहीं हो सकता। यह दलील दी जाती है कि औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि आयातों में वृद्धि से हुई है। कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुएं और पूँजी उपकरणों का आयात, अल्पविकसित देश में घरेलू उद्योग स्थापित करने में सहायक होते हैं। वास्तव में, निर्यात अर्थव्यवस्था के भीतर उद्यमीय क्रियाओं को प्रोत्साहित करने माँग पैदा करने, और अल्प रोजगार में लगे साधनों को उत्पादकीय तौर से प्रयोग करने में सहायक होते हैं। ये आयातें ही हैं, जो अन्ततः उनके लिए आधार बनाकर, आयात स्थानापन्नता उद्योगों के लिए मार्ग दिखाती है।

2. **विदेश मुद्रा बचाने में विफल** :–आयात स्थानापन्नता की नीति का विदेशी मुद्रा बचाने का मुख्य उद्देश्य विफल रहा है। ऐसे उद्योग स्थापित नहीं किए गए जिन्होंने विदेशी मद्रा की बचत की है। वास्तव में, स्थापित उद्योग किसी प्रकार की

वास्तविक बचतें करने में असफल रहे हैं बल्कि उनसे विदेशी मुद्रा निर्वाचित हुई है। अल्पविकसित देशों में आयात स्थानापन्नता उद्योग प्रारम्भ करने के लिए कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुओं और पूँजी उपकरणों का अभाव होता है। इसलिए इस नीति में आयातों की अधिक आवश्यकता पड़ती है, अपेक्षा किसी और नीति के।

3. **रोजगार उत्पन्न करने में असफल** :–यह तर्क कि अल्पविकसित देशों में आयात स्थानापन्नता उद्योगों की स्थापना से अतिरेक श्रम खप जाता है, इससें कोई सन्देह नहीं कि आयात स्थानापन्नता निर्माणकारी क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाता है परन्तु यह ऐसे देशों में बढ़ रही श्रम–शक्ति के लिए नौकरियाँ उत्पन्न करने में असफल रहा है। ग्रिफिन और एनोज ने यह व्यक्त किया है कि निर्माणकारी उद्योगों में रोजगार की वृद्धि किसी भी तरह उत्पादन में वृद्धि के साथ तुलना योग्य नहीं है। वास्तव में, रोजगार में वृद्धि उतनी देर तक नहीं होती, जब तक कि निर्माणकारी उत्पादन 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से नहीं बढ़ता है।

4. **बचत और निवेश पर कुप्रभाव** :–जॉन पावर ने यह तर्क दिया है कि तैयार उपभोक्ता वस्तुओं की आयात स्थानापन्नता घरेलू बचतों और निवेश को बढ़ाने की अपेक्षा कम करती है। घरेलू प्रयोग के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर बल उनके उपभोग को बढ़ाने की प्रवृत्ति रखता है और इस प्रकार उनके निर्यात को आघात पहुँचाता है। ऐसी नीति आर्थिक और तकनीकी दक्षता पर बुरा प्रभाव डालती है जिससे आय, लाभ और बचत कम होते हैं। इसलिए, और विकास के लिए राष्ट्रीय आय, बचत और निवेश की दरें बढ़ाने के लिए, जॉन पावर उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र की अपेक्षा पूँजी पदार्थ और निर्यात क्षेत्रों में निवेश का पक्षपात करता है।

5. **संसाधनों का विवरण** :–फिर, औद्योगिक उत्पादन में आत्म–निर्भरता प्राप्त करने के साधन के रूप में आयात स्थानापन्नता की कटूनीति के प्रयोग से संसाधनों का कुवितरण और औद्योगिक उत्पादकता पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ है। आत्म–निर्भरता प्राप्त करने के जोश में अल्पविकसित देशों ने अदक्ष और निम्न प्राथमिकता वाले उद्योगों को अभेदपूर्ण संरक्षण प्रदान किया है। परिणामस्वरूप, ऊँची लागत पर प्राप्त किए गए कच्चे माल, मध्यवर्ती पदार्थ और पूँजी उपकरणों का दुरूपयोग हुआ है। अतः इस नीति से अति संरक्षण के अन्तर्गत ऊँची उत्पादन लागतों के साथ अदक्ष उद्योगों की स्थापना हुई है। आयात स्थानापन्नता के क्षेत्र में भारत का यही अनुभव रहा है।

6. **अति–संरक्षण को अपनाना** :–रॉल प्रैबिश के अनुसार, ऐसे देशों में अति–संरक्षण के साधार तौर से राष्ट्रीय मार्केटों को विदेशी प्रतियोगिताओं से अलग कर दिया है। इसने उसकी वस्तुओं की किस्म को सुधारने और लागतें कम करने की प्रेरणा को कमजोर नहीं किया बल्कि समाप्त भी कर दिया है। ऊँची उत्पादन लागत न अति संरक्षण को अपनाना आवश्यक बना दिया है। आगे इसने औद्योगिक ढांचे पर कुप्रभाव डाला है क्योंकि इसने छोटी अनार्थिक इकाइयों की स्थापना को प्रोत्साहित

किया है, आधुनिक तकनीकों को प्रारम्भ करने की प्रेरणा को कमजोर किया है और उत्पादकता में वृद्धि को धीमा किया है।

निष्कर्ष में, ऐसा प्रतीत होता है कि आयात स्थानापन्नता की नीति न केवल विदेशी मुद्रा को बचाने में असफल रही है बल्कि कई देशों में इसने कमी को बढ़ाया है। उपभोक्ता वस्तुओं की आयात स्थानापन्नता पर बल उत्पादन, बचत और निवेश को बढ़ाने में सफल नहीं रहा है। यह औद्योगिक उत्पादन में अर्थव्यवस्था को कहीं भी आत्म–निर्भरता के उद्देश्य के पास लाने में भी असफल रही है। ना तो यह बढ़ रही श्रम–शक्ति को खपाने के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा करने में सफल रही है और ना ही निर्यात क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

परन्तु भारत जैसे देशों ने जो व्यवहार–कुशल मशीनरी और उपकरण बनाने के लिए उद्योग स्थापित किए हैं, उन्होंने आयात स्थानापन्नता में महत्वपूर्ण प्रगति की है। इसने भावी निवेश प्रोग्रामों और सुरक्षा सामर्थ्य सम्बन्धी आत्म–निर्भरता के लिए काफी अच्छी नींव रखने में देश की सहायता की है। बाईसिकल, पंखे, सिलाई मशीनें आदि अनेक टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं–जो यह देश निर्यात करता है – के इलावा कई प्रकार की मशीनरी, लोहा और इस्पात, कच्चा पेट्रोल और पेट्रोल वस्तुओं, रासायनिक खाद, भारी रसायन आदि आधारभूत उद्योगों के बारे में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। आयात स्थानापन्नता की नीति द्वारा भारत अपने विकास प्रोग्रामों के लिए अब तीन–चौथाई पूँजी उपकरण उत्पादित करता है।

25.5 शिशु उद्योग तर्क – शिशु उद्योग और आर्थिक विकास

फ्रैडरिक लिस्ट का प्रसिद्ध ''शिशु उद्योग'' तर्क अल्पविकसित देशों को उनके औद्योगीकरण की गति बढ़ाने में काफी प्रेरणा देता है। कुछ उद्योग ऐसे हैं कि यदि उन्हें विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया जाए तो अल्पविकसित देशों में उन्हें सफलतापूर्वक विकसित किया जा सकता है। हो सकता है कि कुछ आधारभूत सुविधाओं के अभाव के कारण अभी तो उनकी उत्पादन लागतें अधिक हों, परन्तु कुछ समय बाद जब प्रारंभिक कठिनाइयाँ पार की ली जाएँ, तो उनके उत्पादनों में कम लागत पड़े।

यदि उद्योगों को उनकी प्रारम्भिक (शिशुत्व की) अवस्था में स्थापित विदेशी उत्पादकों से नहीं बचाया जाता है, तो वे विकसित नहीं कर सकेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि वे इष्टतम आकार तक विकसित हों ताकि वे अत्यधिक दक्षता तथा प्रतियोगिता पूर्वक कार्य करे और अपेक्षाकृत कम लागतों पर उत्पादन करें। शिशु उद्योगों में संसाधनों के प्रवाह को सुगम बनाने के लिए भी संरक्षण की जरूरत है, भले ही उपभोक्ताओं को अस्थायी तौर पर ऊँची कीमतों को बोझ उठाना पड़े।

दीर्घकालीन में प्रतियोगितामूलक बनने के लिए शिशु उद्योगों को कुछ समय चाहिए जिसमें वे अनुभव में सीखने की प्रक्रिया में से गुजर सकें। इसलिए उन्हें संरक्षण प्रदान करना जरूरी है। जोनसन मानता है कि शिशु उद्योग विषयक तर्क स्पष्ट रूप से अल्पकालिक विकृतियाँ दूर करने के लिए अस्थायी हस्तक्षेप के पक्ष में जानदार तर्क हैं। इसलिए शिशु उद्योगों को थोड़े समय के लिए संरक्षण की जरूरत है ताकि वे विदेशी उत्पादकों से भय

रहित होकर विकास कर सकें। जब वे बड़े हो जाएं तो संरक्षण वापिस लिया जा सकता है और तब उन्हें विदेशी उपयोगिता का सामना करने के लिए खुले छोड़ दिया जाए।

शिशु उद्योग के पक्ष में यह तर्क भी है कि जब कोई नया उद्योग शुरू होता है तो वह पैमाने की आन्तरिक मितव्ययिताओं का लाभ उठा सकता और अपने विदेशी प्रतियोगिताओं के मुकाबले उसकी उत्पादन लागत अधिक होती है। परन्तु यदि सभी प्रकार की सुविधएं, जैसे सहायिकियां, विदेशी वस्तुओं पर भारी आयात शुल्क आदि, प्रदान करके उसे संरक्षण दिया जाए तो उसका विस्तार होगा और उसे पैमाने की आन्तरिक मितव्ययिताएं प्राप्त होंगी। आगे, इसके परिणामस्वरूप उद्योग में सभी फर्मों को पैमाने की बाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त हो सकती हैं। प्रशिक्षित श्रम–शक्ति की उपलब्धता, उन्नत उत्पादन तकनीकों, अनुसंधान सुविधाओं इत्यादि के माध्यम से उत्पादन की कम लागतों के रूप में ये मितव्ययिताएं प्राप्त होंगी। यदि उनके उद्योगों को एक साथ शिशु उद्योग संरक्षण प्रदान किया जाए, तो सड़क, रेलमार्ग, शक्ति और अनुसंधान सुविधाओं, इत्यादि के रूप में अनेक बाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त होती हैं और फिर, शिशु उद्योगों को लाभ होता है जो संरक्षित उद्योग के उत्पादनों को प्रयोग करते हैं। संरक्षण सामाजिक लाभ प्रदान कर सकें, इसलिए शिशु उद्योगों का पनपना जरूरी है। यह आवश्यक है कि वे अन्त में विश्व बाजार कीमतों पर प्रतियोगिता में ठहर सकें। उन्हें उस कसौटी पर खरा उतरना होगा जिसे मिल का टैस्ट कहते हैं। जिसके अनुसार, संरक्षण देने से पहले यह देख लेना हैं कि नहीं। केवल शिशु उद्योग का पनपना ही जरूरी नहीं बल्कि यह भी आवश्यक है कि वे हानियों का पुनर्भुगतान भी कर सकें जो उन्हें संरक्षण के दौरान उठानी पड़ी थीं। उन्हें बैस्टेबल टैस्ट भी पास करना पड़ेगा। जिसके अनुसार संरक्षण उसी स्थिति में देना चाहिए जबकि संरक्षण के अतिरिक्त उस उद्योग के विकास की संभावना नहीं।

प्रोफेसर मिर्डल ने अल्पविकसित देशों में औद्योगिक संरक्षण के लिए चार विशेष कारण बताए हैंः (i) नई पूर्ति के मुकाबले माँग खोजने की कठिनाइयाँ; (ii) अतिरेक श्रम का पाया जाना; (iii) बाह्य मितव्ययिताओं के निर्माण में व्यक्तिगत निवेश बड़े पुरस्कार; और (iv) उद्योग के प्रतिकूल एक ओर झुका हुआ आन्तरिक कीमत ढांचा। ये कारण परस्पर सम्बद्ध है और अल्पविकसित देश के समक्ष शिशु उद्योग संरक्षण के पक्ष में तर्क प्रदान करते हैं।

अल्पविकसित देश के सन्दर्भ में शिशु उद्योग तर्क को चित्र द्वारा समझाया गया है। एक अल्पविकसित देश को किसी एक विशेष वस्तु के उत्पादन में संभावित तुलनात्मक लाभ हो सकता है परन्तु ज्ञान के अभाव में तथा उत्पादन का प्रारंभिक स्तर छोटा होने के कारण इसकी प्रारम्भिक उत्पादन लागतें बहुत ऊँची होती हैं। इसके परिणामस्वरूप विदेशी प्रतियोगिता के सामने यह उद्योग अल्पविकसित देश में स्थापित या विकसित नहीं हो सकता है। इस प्रकार एक अल्पविकसित देश के लिए एक उद्योग स्थापित करने और उसे शिशुत्व में संरक्षण देने हेतु आयात प्रशुल्क लगाना आवश्यक होता है। ऐसा करना कब तक उचित है जब तक कि उद्योग आकार और दक्षता में इतना विकसित नहीं हो जाता कि वह विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला कर सके। इस तर्क को चित्र 1 से समझाया गया है जहां OP_w उस वस्तु की विश्व कीमत है जिसमें अल्पविकसित देश को सम्भावित तुलनात्मक

लाभ होता है। परन्तु प्रारम्भ में अल्पविकसित देश में इस वस्तु की उत्पादन लागत OP_L है जो कि उसकी विश्व कीमत OP_w से अधिक है। यही कारण है कि विदेशी प्रतियोगिता के विरूद्ध बिना संरक्षण के यह उद्योग अल्पविकसित देश में स्थापित या विकसित नहीं हो सकता है। अतः इस उद्योग का संरक्षण देने के लिए इस वस्तु पर इतना आयात प्रशुल्क लगाया जाए जो $P_w P_L$ से अधिक हो।

चित्र 1

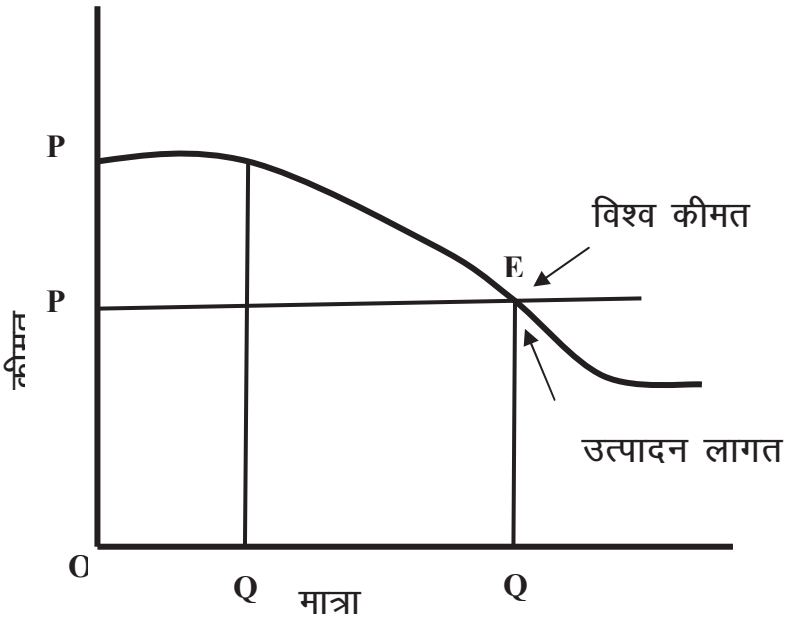

समय बीतने पर जब शिशु उद्योग फैलाता है, उत्पादन बढ़ता और पैमाने की मितव्ययिताओं के लाभ प्राप्त होते हैं तो उद्योग की उत्पादन लागत कम होनी प्रारम्भ हो जाती है जैसा कि चित्र में OQ_1 मात्रा के बाद दिखाया गया है। जब धीरे–धीरे उद्योग और प्रसार करता है तथा उत्पादन OQ_2 पर उसकी उत्पादन लागत E बिन्दु पर विश्व कीमत के बराबर हो जाती है तो इस उद्योग पर से संरक्षण हटाया ज सकता है। इस E बिन्दु के बाद उत्पादन लागत विश्व कीमत से कम होने के कारण अल्पविकसित देश इस वस्तु का निर्यात कर सकता है।

शिशु उद्योग तर्क घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए होता है। यह इस धारणा पर आधारित है कि ''शिशु का पालन करो, बालक की रक्षा करो और व्यस्क को स्वतन्त्र कर दो''। इसका अभिप्राय यह है कि जब तक एक उद्योग विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला करने की क्षमता प्राप्त नहीं कर लेता उसे संरक्षण देना चाहिए परन्तु जब वह ऐसी क्षमता प्राप्त कर लेता है तो उस पर से संरक्षण हटा लेना चाहिए। परन्तु ऐसा अनुभव है कि जब एक बार किसी उद्योग को संरक्षण प्रदान किया जाता है तो उद्योग ''शिशु'' ही रहना पसन्द करता है। फिर, एक बार जब किसी उद्योग को आयात टैरिफ द्वारा संरक्षण दिया जाता

है तो उसको हटाना कठिन हो जाता है। इसलिए अर्थशास्त्रियों का मत है कि जो कार्य एक आयात प्रशुल्क कर सकता है उससे अच्छा संरक्षण उत्पादन सहायिकी प्रदान कर सकती है।

परन्तु अल्पविकसित देश सहायिकी की अपेक्षा आयात प्रशुल्क को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि सहायिकी देने के लिए राजस्व चाहिए जिसकी इनके पास कमी होती है। दूसरी ओर, आयात प्रशुल्क ऐसे देशों को राजस्व प्रदान करते हैं। इसलिए अल्पविकसित देश शिशु उद्योग को संरक्षण प्रदान करने के लिए आयात स्थानापन्नता की नीति अपनाने के लिए तथा अपनी योजनाओं के लिए राजस्व प्राप्त करने हेतु आयात प्रशुल्क को अधिक उपयुक्त मानते हैं और उसको अपनाते है। अर्थशास्त्रायों ने संरक्षण के पक्ष में दिए गए शिशु उद्योग तर्क की बहुत कटु आलोचना की है।

1. यह निर्णय करना कठिन है कि किस उद्योग को संरक्षण की जरूरत है क्योंकि प्रारम्भ में तो प्रत्येक उद्योग शैशवावस्था में भी होता है। वास्तव में, असली शिशु उद्योगों को चयन करना ही कठिन होता है क्योंकि इसके लिए उद्योग के संभाव्य लागत ढांचे और उसकी स्थापित प्रतियोगिता का पूर्वानुमान लगाने की जरूरत होती है।
2. किसी शिशु उद्योग को संरक्षण इस आश्वासन पर दिया जाता है कि जब उद्योग बढ़ा हो जाए और विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला कर सकेगा, तो संरक्षण समाप्त कर दिया जाएगा। परन्तु किसी विश्वसनीय कसौटी के अभाव के कारण इस सम्बन्ध में निर्णय कर पाना कठिन है।
3. प्रो0 लाकड़ावाला के अनुसार, शिशु उद्योग को दिए जाने वाले संरक्षण की मात्रा तथा अविध का निर्णय करना कठिन है।
4. यदि किसी उद्योग का कोई भाग अपने पैरों पर खड़ा भी हो जाए, तो भी प्रशुल्कों की आड़ में अनेक कम दक्ष फर्म स्थापित हो जाती हैं जिनके कारण शुल्क समाप्त करना कठिन हो जाता है।
5. जब किसी उद्योग को एक बार संरक्षण दे दिया जाता है तो निहित स्वार्थ उत्पन्न हो जाते है जो यही नहीं चाहते कि शुल्क समाप्त किए जाएँ। इस प्रकार जैसा कि हैबरलर ने लक्ष्य किया है ''अस्थायी शिशु उद्योग शुल्क कुछ समय बाद स्थायी शुल्क बन जाते हैं ताकि उन उद्योगों को बनाए रखा जा सके जिन्हें वें शुल्क संरक्षण प्रदान करते हैं।''
6. हैबरलर इस बात से सहमत नहीं है कि शिशु उद्योगों के विकास के परिणामस्वरूप उत्पादन की आन्तरिक तथा बाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त होती हैं। उसने स्पष्ट किया है कि शिशु उद्योग संरक्षण के अन्तर्गत बाह्य मितव्ययिताओं की तथाकथित संभावनाएं अस्पष्ट उलझी हुई तथा सन्देहपूर्ण हैं।
7. नर्क्से के अनुसार, आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए अकेला शिशु उद्योग संरक्षण एक बे–असर साधन है क्योंकि यह पूंजी–पूर्ति की समस्या की उपेक्षा कर देता है।

8. कुछ उद्योगपति संरक्षण के अन्तर्गत एकाधिकार लाभ उठाने लगते हैं और वे नहीं चाहते कि शुल्क समाप्त किए जाएं। इसलिए वे विधायकों को रिश्वत देते हैं और देश की सामान्य राजनीति को भ्रष्ट बना देते हैं।
9. शिशु–उद्योग संरक्षण तब तक न दिया जाए, जब तक कि उद्योग वास्तव में स्थपित न हो जाए। जैसा कि नर्क्से ने कहा है, ''शिशु–'संरक्षण से पहले शिशु का जन्म तो हो।''

इन आलोचनाओं के बावजूद अल्पविकसित देशों में औद्योगीकरण के लिए शिशु उद्योग तर्क एक महत्वपूर्ण साधन है।

25.6 सारांश

औद्योगिक प्रगति तीव्र आर्थिक विकास की एक आवश्यक शर्त है। विकसित देश औद्योगिक विकास के उच्च स्तर के बलबूते पर ही अपना तीव्र विकास कर सके है। औद्योगीकरण विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में कृषि में आगतों की पूर्ति, रोजगार प्रदान करना , शहरों और रोजगार और आय में वृद्धि , विविध वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग ,पूँजी में वृद्धि , कृषि का व्यापारीकरण , यापार की शर्तें सुधारना , शहरीकण , शीघ्र आर्थिक विकास एवं शीघ्र आर्थिक विकास करके मुख्य भूमिका निभाता है। औद्योगीकरण के पक्ष में दो महत्वपूर्ण तर्क आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क। तीव्र औद्योगिक विकास हेतु आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क दिये जाते है। विकास के आयोजित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अल्पविकसित देश भुगतान–शेष की गंभीर कठिनाईयों में फँस जाते हैं। भुगतान–शेष की कठिनाईयों को दूर करने का अन्य महत्वपूर्ण तरीका आयात स्थानापन्नता है। शिशु उद्योग'' तर्क अल्पविकसित देशों को उनके औद्योगीकरण की गति बढ़ाने में काफी प्रेरणा देता है।

25.7 शब्दावली

परम्परागत	–	पुरानी परम्पराओं के अनुसार
छिपी बेरोजगारी	–	ऐसी बेरोजगारी जो दिखाई न दे अर्थात जहाँ व्यक्ति काम में लगा दिखता है, परन्तु उत्पादन में उसका योगदान लगभग शून्य होता है।
अर्द्ध बेरोजगारी	–	ऐसी बेरोजगारी जिसमें व्यक्ति को केवल कुछ दिनों या महीनों के लिए या योग्यता से कम काम मिले।
श्रम प्रतिस्थापन	–	ऐसी व्यवस्था जहाँ श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग किया जाये।
एकाधिकार	–	ऐसी व्यवस्था जहाँ किसी वस्तु की खरीदारी या बिक्री पर एक संस्था या व्यक्ति का अधिकार हो।
करारोपण	–	कर लगाना
पूर्णकालिक	–	पूरे वर्ष के लिए अर्थात् लम्बे समय के लिए
अनुदान	–	सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता जो किसी

		वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।
प्रमापीकरण	–	मानक या मापदण्ड अनुसार वस्तुओं को विभिन्न वर्गों में बांटना।
आधारभूत संरचना		विकास में सहायक आधार जैसे–सड़क, परिवहन, विद्युत, लोह इस्पात, सीमेंट उद्योग आदि।

25.8 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरें :–

17. विकसित देश ..... के उच्च स्तर के बलबूते पर ही अपना तीव्र विकास कर सके है।
18. उद्योग शब्द लैटिन भाषा के शब्द..... से बना है,
19. औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए उद्योगों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।....., ... तथा ..... है।
20. प्राथमिक क्षेत्र में पृथ्वी से सम्बन्धित संसाधनों–..... उद्योग को शामिल किया जाता है।
21. द्वितीयक क्षेत्र में प्राथमिक उद्योगों के प्रसंस्करण उत्पादों को शामिल किया जाता है, जिसमें ..... उद्योग आते है।
22. तृतीयक क्षेत्र में सेवायें – ..... सम्बन्धी सेवाओं को शामिल किया जाता है।
23. औद्योगीकरण के पक्ष में दो महत्वपूर्ण तर्कों की व्याख्या की जाती हैः ..... तर्क और ..... तर्क।
24. अल्पविकसित देश भुगतान–शेष की गंभीर कठिनाईयों में फँस जाते हैं। भुगतान–शेष की कठिनाईयों को दूर करने का अन्य महत्वपूर्ण तरीका .... है।
25. ..... तर्क इस धारणा पर आधारित है कि ''शिशु का पालन करो, बालक की रक्षा करो और व्यस्क को स्वतन्त्र कर दो''।

उत्तर–(1) औद्योगिक विकास (2) Industria (3) प्राथमिक या कृषि उद्योग, माध्यमिक, द्वितीयक या विनिर्माण तथा तृतीय या सेवाएं (4) कृषि, खनन तथ मत्स्य (5) निर्माण, विनिर्माण तथा प्रसंस्करण (6) शिक्षा, प्रबन्धन व व्यापार (7) आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग (8) आयात स्थानापन्नता (9) ''शिशु उद्योग'' ।

25.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Singh, S.P. (2010)Economics of Development and Planning and Practics, S and Chan Publicshing House.
- Jhingan, M. L. (2000) ,Economics of Development and Planning , Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.

- Seth, Ranjana (2010), Industrial Economics, Ane Books Pvt. Ltd.New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K.(2007), Economics of Development and Planning Theory and Practice, Himalaya Publishing House.
- Dhingra , I. C. (2009), Development Economics, sultan Chand and Sons.

25.10 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री

- Hayami,Yujiro,Godo,Yoshihisu,(2004),Development Economics, Oxford University Press India.
- Barthwal, R. R .(2004), Industrial Economics: An Introductory Text Book, New Age International(P)Ltd,Publishers,New Delhi.
- **Dr. Barthwal,** Industrial Economics, New Age International(P)Ltd, Publishers, New Delhi.

25.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक विकास का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
2. औद्योगीकरण में आयात स्थानापन्नता की भूमिका का वर्णन करो।
3. शिशु उद्योग और आर्थिक विकास में भूमिका पर प्रकाश डालिए।

इकाई 26: सरकारी संस्थान बाजार और आर्थिक विकास

इकाई संरचना

26.1. प्रस्तावना

26.2. उद्देश्य

26.3. सरकारी संस्थान बाजार और आर्थिक विकास

26.4. आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य

26.5. बाजार और आर्थिक विकास

26.6. बाजार के आकार के निर्धारक तत्व

26.7. आर्थिक विकास तथा बाजार की अपूर्णतायें

26.8. सांराश

26.9. शब्दावली

26.10. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

26.9. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

26.10. सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

26.11. निबन्धात्मक प्रश्न

26.1 प्रस्तावना

'सरकारी संस्थान बाजार और आर्थिक विकास ' से सम्बन्धित इस इकाई से पहले आप आर्थिक विकास में औद्योगिक क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके है।
इस इकाई में आर्थिक विकास में सरकारी संस्थान और बाजार के योगदान की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।
इस इकाई के अध्ययन से आपको आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

26.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप

- आर्थिक विकास में सरकारी संस्थान और बाजार के महत्व की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेगें।
- आर्थिक विकास की प्रक्रिया को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य को समझ सकेगें।
- आर्थिक विकास के निर्धारक में बाजार के आकार की भूमिका को जान सकेंगे।

26.3 सरकारी संस्थान बाजार और आर्थिक विकास

प्रारम्भ में आर्थिक विकास में राज्य सरकार की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती थी। सरकार का मुख्य काम केवल देश की सुरक्षा मान जात था परन्तु धीरे –धीरे इस विचारधारा में परिवर्तन आया और एक वर्ग राज्य सरकार के आर्थिक क्रियाओं में सहयोग का समर्थन करने लगा, इसलिए दो प्रकार की विचारधारायें पायी जाने लगी। **प्रथम विचारधारा** के अनुसार सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाएँ राज्य सरकार के नियन्त्रण के अन्तर्गत होनी चाहिए अर्थात् विकास की सम्पूर्ण योजनाएँ सार्वजनिक क्षेत्र के द्वारा संचालित की जानी चाहिए। ताकि निजी उपक्रम अर्थव्यवस्था के सभी दोषों का उन्मूलन करके तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य को शीघ्रतर पूरा किया जा सके। **द्वितीय विचाराधारा** के समर्थक पूर्ण सरकारी हस्तक्षेप के पक्षपाती नहीं है। इनकी दृष्टि में बाजार–यन्त्र और निजी उपक्रमों को जीवित रखना आवश्यक है क्योंकि अल्प–विकसित देशों में पूँजी के अभाव के कारण सरकारें विस्तृत पैमाने पर विनियोग नहीं कर सकतीं। संक्षेप में, यह विचारधारा 'धीरे चलने की नीति' अथवा 'राज्य हस्तक्षेप के क्रमिक विकास सिद्धान्त' में विश्वास रखनी है। आज अधिकांश अल्प–विकसित देशों में द्वितीय विचाराधारा को ही मान्यता प्रदान की गयी है। मिश्रित अर्थ व्यवस्था के रूप में कुछ आधारभूत उद्योगों का स्वामित्व व संचालन सरकार के हाथ में होता है और शेष उद्योगों पर निजी क्षेत्र का स्वामित्व बना रहता है। ध्यान रहे, निजी क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों का संचालन भी सरकार के कठोर नियन्त्रण में होता है। **प्रो0 मायर एवं बाल्डबिन** का कहना है कि आर्थिक क्षेत्र में राज्य सरकार के हस्तक्षेप की क्या सीमा हो इसका कोई सिद्धान्त नहीं है। इसके लिए सरकार को देश में विकास की गति, वांछित उद्देश्य, विशिष्ट आर्थिक परिस्थितियाँ, अपनी प्रशासनिक शक्ति व विद्यमान संस्थाओं के आधार पर ही सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में सीमांकन करना होगा।

आज के युग में विश्व के सभी राष्ट्रों का अन्तिम लक्ष्य आर्थिक सम्पन्नता को प्राप्त करना है जिसके लिये आर्थिक नियोजन की प्रणाली की स्वीकार कर लिया गया है। योजनाओं के अन्तर्गत आधारभूत उद्योगों की स्थापना और बड़े पैमाने के उत्पादन हेतु विशाल धनराशि की आवश्यकता होती है जिसे व्यक्तिगत साधनों से पूरा नहीं किया जा सकता। विशेषकर अल्प–विकसित देशों में पूंजी का अभाव, तकनीकी ज्ञान की कमी, कुशल श्रमिकों, प्रबन्धकों एवं उद्यमकर्ताओं का अभाव, विषैले वृत्त तथा बाजार अपूर्णताएँ आदि ऐसी समस्याएँ विद्यमान होती हैं जो आर्थिक विकास के मार्ग को अवरूद्ध बनाये रखती हैं। चूँकि निजी क्षेत्र के द्वारा इन समस्याओं का उपयुक्त समाधान नहीं किया जा सकता इसलिये सरकार को स्वयं आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है। इस बात का समर्थन प्रसिद्ध विकासवादी अर्थशास्त्री **प्रो0 डब्ल्यू आर्थर लुइस** ने भी किया है। उनके शब्दों में ''कोई भी देश आर्थिक क्षेत्र में अपनी बुद्धिमान सरकार के सक्रिय सहयोग और साझेदारी के बिना आज तक आर्थिक विकास नहीं कर सका है।''

26.4 आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य

अब यह सर्वथा माना जाता है कि एक अल्पविकसित देश में निहित कठोरताओं पर काबू पाने के लिए सरकार को निश्चियात्मक कार्य करना होगा। वह निष्क्रिय दर्शक बनकर नहीं रह सकता। अल्पविकसित देशों की समस्याएँ इतनी अधिक होती हैं कि उन्हें आर्थिक शक्तियों के स्वतंत्र कार्यकरण पर नहीं छोड़ा जा सकता। निजी उद्यम उन्हें हल नहीं कर सकता। इसलिए ऐसे देशों के आर्थिक विकास के लिए सरकारी कार्य अनिवार्य है। फिर, ऐसे देशों को गतिहीनता के निर्जीव केन्द्र से हटाने के लिए शीघ्र सामाजिक–आर्थिक सुधारों की जरूरत होती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में उन दिशाओं में निवेश करना पड़ेगा, जो बाह्य मितव्ययिताओं को बढ़ावा दें, अर्थात विद्युत, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यदि आर्थिक तथा सामाजिक उपरि सुविधाओं का निर्माण करें। इन क्रियाओं के लिए निजी उद्यम आगे आने का तैयार नहीं होता क्योंकि इनमें जोखिम अधिक होता है और लाभ कम। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की वृद्धि के संतुलन की जरूरत होती है ताकि पूर्ति का माँग से समायोजन किया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि वस्तुओं के उत्पादन, वितरण तथा उपभोग पर नियन्त्रण किया जाए। इसके लिए सरकार को भौतिक नियन्त्रणों और मौद्रिक तथा राजकोषीय विधियों की युक्तियाँ निकालनी पड़ती है। फिर, अल्पविकसित देशों में व्याप्त रहने वाली आर्थिक तथा सामाजिक असमानताओं को कम करने के लिए ऐसी विधियाँ अनिवार्य हैं। ''ऐसे देशों में, सामाजिक मतभेदों को तोड़ना और आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त मनोवैज्ञानिक आदर्श सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का निर्माण करना राज्य सरकार का सर्वोपरि कर्त्तव्य बन जाता है।''

प्रो0 आर्थर लुइस ने आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों को नौ वर्गों में विभाजित किया है। लेकिन मोटे तौर पर आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने और समाज के आर्थिक जीवन को बढ़ावा देने के लिए सरकारी संस्थानों व सरकार द्वारा किये जाने वाले मुख्य कार्य इस प्रकार है :–

37.4.1 संस्थानिक ढाँचे में परिवर्तन करना :–आर्थिक विकास की आवश्यक विधियों में से यह एक है कि अल्पविकसित देशों में लोगों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक वृत्तियों में परिवर्तन लाया जाए। ऐसे समाजों में धार्मिक तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ आर्थिक विकास की प्रेरक नहीं होतीं। संस्थानिक ढाँचा, विचारशील व्यक्तिवादी व्यवहार को, प्रतियोगिता तथा उद्यम की भावना को प्रोत्साहन नहीं देता। यदि आर्थिक विकास करना है तो संयुक्त परिवार, जाति या बिरादरी और धार्मिक विश्वास की खाई में घिरी सामाजिक वृत्तियों, मूल्यों और संस्थाओं को बदलना पड़ेगा। इनके लिए सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता होती है। पर, ''सामाजिक क्रान्ति'' का यह अभिप्राय नहीं कि वर्तमान संस्थाओं को एकदम उखाड़ फेंका जाए। परिवर्तन को विकास सम्बन्धी होना होगा अन्यथा तीव्र सामाजिक परिवर्तनों से असंतोष, निराशा, अशान्ति और हिंसा फैलेगी। फिर ये कारण आर्थिक वृद्धि में बाधक होंगे।

यदि सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन शुरू हो जाए, तो लोग नए अवसरों को ग्रहण कर लेंगे और वे फिर संस्थाओं में और अधिक परिवर्तन करेंगे। परन्तु ऐसी स्थिति में परिवर्तन के आधारभूत कारण का पता लगाना कठिन है। नए अवसर कई तरह से आ सकते हैं। ''नए अविष्कार नई वस्तुओं का निर्माण कर सकते हैं, अथवा पुरानी वस्तुओं की उत्पादन–लगातें घटा सकते है। नई सड़के, नए जहाज–मार्ग अथवा संचार में अन्य सुधार, व्यापार के नए सुवअसर प्रदान कर सकते है। युद्ध अथवा स्फीति नई माँगें उत्पन्न कर सकती है। देश में विदेशी आ सकते हैं, जो धंधे ला सकते हैं, नई पूँजी लगा सकते हैं या रोजगार के नए मौके दे सकते हैं।'' इस प्रकार के नए अवसर संस्थाओं में परिवर्तन लाते हैं। ऐसे परिवर्तन धीरे–धीरे होते हैं और लक्ष्य किए जा सकते हैं। इनको नवप्रवर्तक, ''नए व्यक्ति'' चालू करते हैं जो अतीत से सम्बन्ध तोड़ने का साहस करते हैं और पुराने संस्थानिक ढाँचे को नए परिवेश में ढाल देते हैं।

ये नवप्रवर्तक शहर में रहने वाले होते हैं। ये राजनैतिक तथा सामाजिक शक्तियों का मुकाबला तथा विरोध करते हैं। आर्थिक क्षेत्र में अधिक बड़े तथा नाए अवसर प्रदान करके, ये अन्ततः पुराने विश्वासों तथा संस्थाओं को बदलने में सफल होते हैं। इसी प्रकार विदेशियों में सम्पर्क समाज के संस्थानिक ढाँचे को बदलने का कारण बन सकता है। भारत में 19वीं शताब्दी में रेल–मार्गों के निर्माण, पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार और औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना ने सामाजिक तथा पारिवारिक बंधनों को शिथिल करने में सहायता दी थी। सामाजिक विवेकाशीलता की नई वृत्ति ने ही देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता से प्रमुख आन्दोलनों को जन्म दिया था। सबसे बढ़कर, संस्थानिक ढाँचे को प्रभावित करने में सरकार की महत्वपूर्ण कार्य करती है।

26.4.2 संगठनात्मक परिवर्तन करना :–अल्पविकसित देशों के विकास में संस्थानिक परिवर्तनों के साथ–साथ संगठनात्मक परिवर्तनों का भी बहुत महत्व है। इसके

अन्तर्गत बाजार में आकार का विस्तार करना तथा श्रम–बाजार को संगठित करना शामिल है। ये दोनों कार्य राज्य द्वारा ही सम्भव हो सकते है।

(क) बाजार का विस्तार –

सरकार ही बाजार के विस्तार के लिए यातायात एवं संचार के साधनों का विकास कर सकती है क्योंकि निजी उद्यम की इनको बढ़ने की समर्थ नहीं होती है। इसके अतिरिक्त उद्योगों एवं कृषि विकास के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु संस्थाओं का निर्माण एवं विकास भी सरकार ही कर सकती है जैसे, राज्य सहकारी बैंक, भूमि बन्धक बैंक, औद्योगिक बैंक, वित्तीय तथा निवेश निगम आदि।

(ख) श्रम–बाजार का संगठन –

दूसरी ओर, श्रम–बाजार को संगठित करना भी सरकार का कार्य होता है। संगठित श्रम–बाजार से उत्पादन में वृद्धि होती है। श्रम संघों को सरकार मान्यता देकर श्रम को संगठित होने में सहायता करता है। काम करने के घण्टे, मजदूरी भुगतान, औद्योगिक झगड़ों को निपटाना, सामाजिक सुरक्षा आदि से सम्बन्धित अधिनियम बनाना सरकार के कार्यभाग में ही आते हैं। ऐसे अधिनियमों के ठीक प्रकार पालन से श्रमिकों एवं मालिकों में अच्छे सम्बन्ध स्थापित होते हैं, श्रम की कार्यकुशलता बढ़ती है, उत्पादन में वृद्धि होती है तथा लागतों में कमी। जिससे आर्थिक विकास की गति तीव्र होती है। ऐसी अर्थव्यवस्था में श्रम अगतिशील होता है। अधिकतर लोग ग्रामीण होते हैं और कृषि में संलग्न होने के कारण शहरों में जाना पसन्द नहीं करते और न ही उन्हें शहरों में रोजगार सम्बन्धी सूचना प्राप्त होती है। गाँवों में रोजगार सम्बन्धी सूचना केन्द्र तथा शहरों में रोजगार दफ्तर खोलकर सरकार श्रम की गतिशीलता बढ़ाने में सहायक हो सकती है। विकास के साथ–साथ जब श्रमिक–वर्ग की गाँवों, से शहरों की ओर प्रस्थान करता है तो शहरीकरण की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जैसे निवास, जल, बिजली, गंदी बस्तियों का निर्माण, परिवहन आदि जिनका समाधान केवल सरकार ही कर सकती है। श्रमिकों के लिए भवन–निर्माण, चिकित्सा, शिक्षा, पार्क, परिवहन, जल, बिजली आदि की सुविधाओं का प्रबन्ध सरकार द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

26.4.3 कृषि का विकास करना :–अल्पविकसित देशों में प्रमुख व्यवसाय कृषि होती है और राष्ट्रीय आय के आधे से अधिक भाग का योगदान देती है। इसके बावजूद, कृषि गतिहीनता की स्थिति में रहती है। कृषि में संलग्न व्यक्तियों की संख्या के सम्बन्ध में राष्ट्रीय आय का भाग आनुपातिक रूप से कम है। अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का 70% से अधिक भाग कृषि में लगा है, जबकि वह राष्ट्रीय आय में 20%– 50% के लगभग योगदान देता है। इसका आधारभूत कारण यह है कि प्रति एकड़ कृषि उत्पादकता बहुत कम होती है। कम उत्पादन के कारण हैं : जो जोतों का अनार्थिक आकार, भूमि–जोतों का बिखरा होना, दोषपूर्ण भूमि–पट्टा व्यवस्था जिसे ऊँचे लगान विशिष्टता प्रदान करते हैं, और पट्टे की असुरक्षिता, समुचित ऋण सुविधाओं का अभाव और ऋण बोझ, सिंचाई–सुविधाओं का अभाव और वर्षा पर निर्भरता, उत्पादन

के प्राचीन तरीकों का प्रयोग तथा भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाव। अल्पविकसित देशों में कृषक दरिद्र, निरक्षर तथा अबोध होते हैं। उनमें संगठन का अभाव होता है। उनके पास भूमि में सुधार करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा नहीं होती। प्रथाएँ तथा परम्पराएँ उनके जीवन का नियमन करती है। इसलिए भूमि–सुधार करने और कृषि विकास के लिए योजनाएँ बनाने का काम सरकार के कार्य के अन्तर्गत आता है।

(क) उत्पादकता में वृद्धि –

योजना की सफलता अन्ततः इस बात पर निर्भर रहेगी कि कृषि उत्पादकता कहाँ तक बढ़ती है। कृषि उत्पादन में वृद्धि इसलिए आवश्यक है ताकि उद्योग की कच्चे माल की आवश्यकताओं को पूरा किया जाए, खाद्यान्नों में आत्म–निर्भरता प्राप्त की जाए, कीमत–वृद्धि को रोका जाए, विकास के लिए अधिक साधन जुटाए जाएँ और अर्थव्यवस्था के अप्रयुक्त तथा अल्प–प्रयुक्त मानव–शक्ति साधनों का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया जाए।

ग्राम–स्तर पर कृषि उत्पादन योजनाएँ तैयार करने में ये प्रमुख तत्व आते हैः

(i) सिंचाई सुविधाओं का पूर्ण उपयोग, जिसमें लाभ उठाने वालों के लिए खेत की नालियों को अच्छी हालत में रखना, उनकी मरम्मत, और समुदायिक सिंचाई निर्माण कार्य की देखभाल शामिल है;

(ii) अनेक फसलें उगाने के क्षेत्र में वृद्धि करना;

(iii) गाँव में सुधारे हुए बीजों को बढ़ाना और सब काश्तकारों में उनका वितरण;

(iv) उर्वरकों का वितरण;

(v) मिश्रित खाद और हरी खाद के प्रयोग के लिए प्रोग्राम;

(vi) सुधारे हुए कृषि तरीकों को अपनाना; उदाहरणर्थ, भूमि–संरक्षण, परिधि–बाँध बनाना, शुष्क खेती करना, भूमि को कृषि योग्य बनाना, पौधों का संरक्षण आदि;

(vii) गाँव में नए छोटे–छोटे सिंचाई निर्माण–कार्य प्रोग्राम शुरू करना सामुदायिक और व्यक्तिगत आधार दोनों के माध्यम से;

(viii) सुधारे हुए कृषि औजारों के लिए प्रोग्राम;

(ix) सब्जियों तथा फलों के उत्पादन बढ़ने के प्रोग्राम;

(x) अण्डों, मछली, तथा दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के प्रोग्राम;

(xi) पशु–पालन, उदाहरणार्थ, अभिजनक साँडों की पूर्ति, कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों की स्थापना और बेकार साँडों की बधिया करना; और

(xii) गाँव में ईंधन–बागानो तथा चरागाहों के विकास के प्रोग्राम।

(ख) भूमि–सुधार –

कृषि विकास प्रोग्रामों की सफलता इस बात पर निर्भर रहेगी कि सरकार किस सीमा तक भूमि–सुधार विधियाँ अपनाती है। **भारतीय योजना आयोग** के अनुसार, भूमि–सुधार विधियों के उद्देश्य दोहरे हैंः

(i) ''कृषि उत्पादन की वृद्धि में स्थित उन बाधाओं को दूर करना, जो अतीत से विरासत में प्राप्त कृषि–ढाँचे से उत्पन्न होती हैं। इसे दक्षता तथा उत्पादकता के ऊँचे स्तरों वाली कृषि–व्यवस्था के यथासम्भव शीघ्रतम विकास के लिए स्थितियाँ उत्पन्न करने में सहायक होना चाहिए।'' और

(ii) ''कृषि–व्यवस्था के भीतर शोषण तथा सामाजिक अन्याय के सब तत्वों को समाप्त करना, कृषक को सुरक्षा प्रदान करना और ग्राम जनसंख्या के सब वर्गों को प्रतिष्ठा पद तथा अवसर की समानता का विश्वास दिलाना।''

भूमि–सुधार में निम्नलिखित तत्व आते हैं :

1. मध्यवर्तियों की समाप्ति;
2. मुजारों के पटटे की सुरक्षा;
3. मुजारों को भूमि खरीदने का अधिकार देना जिसकी वे काश्त करते हैं;
4. मुजारों द्वारा भूमि पर किए गए स्थायी सुधारों के मुआवजे का प्रबन्ध;
5. भू–स्वामियों द्वारा वसूल किए जाने वाले लगान सीमित करना;
6. कृषि जोतों की सीमा निर्धारित करना; तथा
7. जोतों की चकबन्दी करना

भूमि सुधारों की गड़बड़ में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के सतत विकास के लिए हमें कृषि–कीमतों में अनुसचित उतार–चढ़ावों से बचना है और उचित मात्रा में स्थिरता बनाए रखनी है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि कृषि वस्तुओं की कीमतें नीचे स्तर पर रखी जाएँ क्योंकि नीची कीमतें उत्पादन को हतोत्साहित करती हैं। इसलिए, कृषि–वस्तुओं की उचित कीमतें नियत की जाएं जिनकी गारंटी सरकार दे।

26.4.4 प्राकृतिक संसाधनों का विकास :–अल्पविकसित देशों मे प्राकृतिक संसाधन कम विकसित या अविकसित होते हैं। जो देश उपनिवेश रहे हैं उनमें विकसित राष्ट्रों ने प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुन्ध तथा विनाशकारी उपयोग निजी स्वार्थ के लिए किया है। ऐसी हालत में प्राकृतिक संसाधनों विकास में निजी उद्यम पर छोड़ना राष्ट्रहित में नहीं है। इसलिए सरकार का यह कर्त्तव्य बन जाता है कि देश के आर्थिक विकास के लिए खनिज, वन आदि संसाधनों का सर्वेक्षण करवाएं और उनके उपयोग के लिए उचित नीति अपनाए तथा उनसे सम्बन्धित उद्योग स्थापित करे या करने में सहायता दे। सरकारी अधिकारी संरक्षण सम्बन्धी अनेक उपायों के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की गति एवं जीवन–काल को प्रभावित कर सकते हैं।

26.4.5 औद्योगिक विकास करना :–विश्व का आर्थिक इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि आज के युग में विकसित कहे जाने वाले देशों में आधारभूत उद्योगों की स्थापना की पहल वहाँ की सरकार द्वारा की गयी है। सच तो यह है कि यदि सार्वजनिक क्षेत्र का विकास न हुआ होता तो अधिकांश भारी उद्योग पृथ्वी की गोद में खनिज पदार्थों की तरह छिपे पड़े रहते है विश्व की अर्थ–व्यवस्थाओं का तब स्वरूप ही कुछ और होता।

श्री गरशनक्रोन का इस सम्बन्ध में कहना है कि ''विकास कार्यों को प्रारम्भ करते समय कोई देश जितना अधिक पिछड़ा हुआ होता है उसे उतना ही अधिक सरकारी संरक्षण तथा सरकारी उपक्रों के विस्तार की आवश्यकता होती है।'' आज विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ वाणिज्यिक एवं औद्योगीक उपक्रमों की स्थापना व संचालन में सरकार द्वारा सक्रिय भूमिका न निभाई जाती हो।

अल्पविकसित देशों में निजी उद्यम केवल उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्र में ही पाया जाता है। भारी तथा आधारभूत उद्योगों में पूँजी–निवेश बहुत अधिक मात्रा में करना पड़ता है तथा उनसे उत्पादन दीर्घ–अवधि में प्राप्त होता है। इसलिए निजी उद्यम में ऐसे उद्योग स्थापित करने की क्षमता नहीं पाई जाती। फिर, कई उपभोक्ता उद्योग (जैसे कपड़ा, चीनी, आदि) पुराने होने के कारण उनमें नवीनीकरण की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, निर्यात प्रोत्साहन तथा आयात स्थानापन्नता करने वाले उद्योगों की स्थापना आर्थिक विकास के लिए बहुत आवश्यक होती है। ऐसे देशों में उद्योग केवल कुछ बड़े नगरों में ही केन्द्रित होते हैं, जबकि देश का अधिकतर भाग उद्योगरहित और पिछड़ा होता है। ऐसा इसलिए कि उपरिसुविधाओं के अभाव के कारण निजी उद्यम उन क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने का साहस नहीं करता।

इन सभी कमियों को दूर करना और एक सुनिश्चित राष्ट्रीय औद्योगिक नीति को अपनाना सरकार का कार्यभाग होता है। छोटे, बड़े और घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित करना, उद्योगों का विकेन्द्रीकरण करना, विदेशों से उद्योगों के लिए कच्चा माल, पूँजी पदार्थ एवं तकनीकों को आयात करना, लोक उद्योग एवं संयुक्त उद्योग स्थापित करना तथा राष्ट्रीय हित में विदेशी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना, ये सभी सरकार के कार्य के अन्तर्गत आते हैं।

सरकार ही लोहा और इस्पात, भारी इन्जीनियरिंग, भारी बिजली, भारी रसायन, रासायनिक खाद आदि जैसे आधारभूत उद्योगों को स्थापित करने के क्षमता रखता है। कई प्रकार की आवश्यकता उपभोक्ता वस्तुओं से सम्बन्धित नवीन उद्योग निजी उद्यम को आकर्षित एवं प्रोत्साहित करने के लिए कई प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कर सकती है, जैसे, यातायात एवं संचार के साधन, सस्ती भूमि, जल, विद्युत, करों में छूट, आदि। अन्तिम, देश के सन्तुलित विकास के लिए सरकार प्रत्येक प्रदेश की भौतिक स्थिति एवं साधन सम्पन्नता के अनुरूप औद्योगिक नीति अपना सकती है जैसे, कृषि– प्रधान प्रदेश में कृषि से सम्बन्धित उद्योग स्थपित करने तथा लोहा प्रधान क्षेत्र में इस्पात उद्योग स्थापित करने। इस प्रकार, सरकार का देश के औद्योगीकरण में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

26.4.6 सामाजिक ढाँचों का विकास :–सरकार को चाहिये कि प्राथमिकता के आधार पर आवश्यक सेवाओं के विकास की योजना बनाए। यदि आवश्यकता यह हो कि सिंचाई–सुविधाएँ तुरन्त प्रदान की जाएं तो बड़ी नदियों पर बाँध बनाने की अपेक्षा छोटी सिंचाई सुविधाओं पर संकेन्द्रण करके उसे पूरा किया जाए। फिर, सार्वजनिक सेवाएं प्रदान करने का आवश्यक रूप में यह अर्थ नहीं है कि सरकार उनकी

मालिक हो और उनका चालन करें। सरकार एक विशिष्ट परियोजना की योजना स्वीकार कर सकती है और किसी निजी संस्था को वित्त तथा अन्य निर्माण–सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान कर सकती है, जोकि उसका निर्माण करे और उसकी मालिक हो। हाँ, उसके कार्यकरण का नियमन सरकार कर सकती है। वास्तव में, किसी योजना का स्वामित्व तथा संचालन सरकार करे या निजी उद्यम, यह उसकी प्रवृत्ति तथा महत्व पर निर्भर रहता है। भारत में, परिवहन तथ संचार साधनों का विकास सरकारी क्रियाओं के अन्तर्गत आता है। भारत जैसे विशाल देश में उनके महत्व को ध्यान में रखते हुए रेल–मार्गों, वायु–मार्गों तथा संचार के साधनों का स्वामित्व सार्वजिनक तथा निजी, दोनों ही, क्षेत्रों के हाथों में है, भले ही समस्त प्रचालनों का नियमन सरकार करती है।

(क) **शिक्षा**

शिक्षा के बिना आर्थिक विकास संभव नहीं है। जैसाकि **प्रोफेसर मिर्डल** ने कहा है, ''बहुत बड़ी जनसंख्या को निरक्षर छोड़कर राष्ट्रीय विकास प्रयोग शुरू करने की बात मुझे निरर्थक मालूम होती है'' आर्थिक विकास के लिए श्रम का गुण ही अधिक महत्वपूर्ण है। यदि अकुशल श्रमिक अधिक देर तक भी काम करें, तो भी उनकी प्रति व्यक्ति आय कम होगी। निरक्षर तथा अप्रशिक्षित व्यक्तियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे जटिल मशीनरी का चालन और देख–रेख कर लेंगे। उनमें निवेश करके ही उनकी उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। लोक शिक्षा के माध्यम से ही राज्य प्रभावशाली श्रम–पूर्ति और राष्ट्र की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। लोक शिक्षा के माध्यम से ही राज्य प्रभावशाली श्रम–पूर्ति और राष्ट्र की उत्पादन क्षमता बढ़ा सकता है। शिक्षा के माध्यम से ही राज्य प्रभावशाली श्रम–पूर्ति और राष्ट्र की उत्पादन–क्षमता बढ़ा सकता है। शिक्षा प्रोग्राम विस्तृत तथा विविध होना आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा की जरूरत है ताकि स्कूल जाने की आयु वाला प्रत्येक बालक अनिवार्य शिक्षा प्राप्त कर सके। यूनिवर्सिटियों के लिए विधार्थी प्रदान करने और अपेक्षाकृत अधिक शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ देने के लिए और अधिक माध्यमिक स्कूल खोलने की जरूरत है। इसके साथ ही बिजली, वर्करों, शिल्पियों, अध्यापकों, कृषि सहायकों इत्यादि को शिक्षा देने के लए प्रशिक्षण संस्थाओं की जरूरत है। उच्चतर शिक्षा–श्रेणीकरण में यूनिवर्सिटी शिक्षा तथा अनुसंधान संस्थाएँ आती हैं, जो डॉक्टरों, प्रशासकों, इन्जीनियरों और सब प्रकार के प्रशिक्षित व्यक्तियों की निरन्तर अधिक संख्या निकालें। अल्पविकसित देशों में, शिक्षा जैसे विस्तृत तथा अनेक रूप में निवेश केवल राज्य की छत्रछाया में ही सम्भव है।

ऐसे देशों में शिक्षा पर निवेश के महत्व पर आवश्यकता के सम्बन्ध में दो मत हैं। मानव पूँजी में निवेश अत्यधिक उत्पादक होता है। एक अल्पविकसित देश को कृषि तथा औद्योगिक वर्करों, डॉक्टरों, इन्जीनियरों, अध्यपकों, प्रशासकों आदि की जरूरत होती है, जोकि वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को अधिक बढ़ाएँ। परन्तु वित्तीय साधनों की कमी के कारण बहुसंख्यक लोगों को शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान

करने की समस्या अल्पविकसित देशों की क्षमता के बाहर की बात है। जो भी विधियाँ उपलब्ध होती हैं, उन्हें प्राथमिकताओं के आधार पर विभाजित करना पड़ता है और प्राथमिकताओं के प्रश्न पर अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। शिक्षा उपभोक्ता सेवा भी है और निवेश सेवा भी, जहाँ तक शिक्षा निवेश है, यह प्रत्यक्ष रूप से उत्पादकता बढ़ाती है।

शिक्षा और डॉक्टरों, इन्जीनियरों, अध्यापकों, प्रशासको के शिक्षण पर खर्च की गई मुद्रा भी उतना ही निवेश है, जितना कि बाँध बनाने में खर्च की गई मुद्रा। परन्तु जब कृषकों को शिक्षित करने के साक्षरता–आन्दोलन पर मुद्रा खर्च की जाती है, तो प्रोफेसर **लुईस** के अनुसार यह प्रत्यक्षतः उत्पादन नहीं होती। उनकी धारणा है कि ''शिक्षा का वह भाग, जोकि लाभदायक निवेश नहीं है, अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के –यथा वस्त्र, मकान, या ग्रामोफोन के – बिल्कुल बराबर होता है,'' क्योंकि वह कृषकों, नाईयों, घर के नौकरों को ''कुछ अधिक (पुस्तकों, समाचार पत्रों का) आनन्द लेने या कुछ अधिक समझने में'' सहायक होता है। पर, प्रोफेसर **गॉलब्रेय** जनसाधारण को शिक्षित करने में निवेश को भी उतना ही उत्पादक मानता है। उसका तर्क है कि ''कृषकों तथा श्रमिकों को निरक्षरता से बचाना अने आप में एक ध्येय हो सका है। परन्तु किसी भी प्रकार की कृषि प्रगति के लिए यह एक अनिवार्य कदम भी है। दुनिया में कहीं भी ऐसा निरक्षर कृषक वर्ग नहीं है, जो प्रगतिशील हो और कहीं भी ऐसा साक्षर कृषि वर्ग नहीं है जो प्रगतिशील न हो। इस दृष्टि से शिक्षा, निवेश का अत्यधिक उत्पादक रू‍प धारण कर लेती है।''

(ख) लोक स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन

एक अन्य क्षेत्र, जिसमें राज्य ठोस कदम उठा सकता है, लोक स्वास्थ्य का है। उत्पादकता तथा श्रम की दक्षता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि लोगों का स्वास्थ्य बराबर सुधारा जाए। लोक स्वास्थ्य विधियों के अन्तर्गत ग्राम तथा नगर, दोनों ही क्षेत्रों में वातावरण सम्बन्धी स्वच्छता में सुधार–थमे हुए गंदे पानी को हटाना, गंदी बस्तियों की स्वच्छता, अच्छे मकानों का प्रबंध, स्वच्छ जल की पूर्ति, मल प्रवाह की अच्छी सुविधाएँ, छूत रोगों का नियंत्रण, चिकित्सा तथा स्वास्थ्य–सेवाओं का प्रबन्ध करना – विशिष्ट रूप से मातृ एवं शिशु कल्याण और स्वास्थ्य शिक्षा तथा परिवार नियोजन और सबसे बढ़कर, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा– सेविवर्ग के प्रशिक्षण के लिए प्रबन्ध करना। इस सबके लिए लोक प्राधिकारियों की ओर से योजनाबद्ध प्रयत्न आवश्यक है।

अल्पविकसित देशों में लोक स्वास्थ्य विधियाँ मुख्यतः दो कारणों से बहुत महत्व धारण कर लेती हैं। प्रथम, वे श्रम की उत्पादकता तथा दक्षता बढ़ाकर विकास प्रक्रिया में सहायता होती हैं; और दूसरे, वे मृत्यु–दर घटाकर जनसंख्या वृद्धि की दर बढ़ती हैं और इस प्रकार सरकार के लिए आवश्यक बना देती हैं कि वह परिवार नियोजन तथा शीघ्र विकास प्रोग्राम अपनाए। परन्तु यदि जनसंख्या की वृद्धि नहीं रोकी जाती, तो विकास के सब प्रत्यन व्यर्थ होंगे क्योंकि अल्पविकसित देशों मे

मृत्यु–दर पहले ही घट रही है, प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने और जीवन का स्तर सुधारने के लिय यह अनिवार्य है कि जनंसख्या वृद्धि की दर रोकी जाए और परिवार नियोजन प्रोग्रामो को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाए। परिवार नियोजन का मतलब है सोच–समझ कर जन्म–दर घटाना। भारत पहला अल्पविकसित देश है जिसने सरकारी स्तर पर परिवार नियोजन प्रोग्राम अपनाया है। **परिवार नियोजन नीति** के निम्न तत्व हो सकते हैं :

परिवार नियोजन के सम्बन्ध में शिक्षित करना, जिससे सैक्स शिक्षा, विवाह सम्बन्धी परामर्श तथा बालक देख–रेख के विषय में मार्ग–दर्शन शामिल हों। सामाजिक संगठन, फिल्में, रेडियो तथा साहित्य इसके माध्यम हो सकते हैं। परिवार नियोजन सेवाएँ बहुत ही बड़े पैमाने पर प्रदान की जाएँ। परिवार नियोजन सेवा को सामान्य स्वास्थ्य तथ चिकित्सा सेवाओं के साथ जोड़ दिया जाए। ग्राम क्षेत्रों, औद्योगिक तथा अन्य संस्थाओं में परिवार नियोजन अस्तपा खोले जाएँ। परिवार नियोजन की कला जनसाधारण को शिक्षित करने के लिए चलती–फिरती यूनिटें हों। स्वेच्छाकृत संगठनों की सहायता भी ली जा सकती है। परिवार नियोजन केन्द्रों को चाहिए कि मुफ्त परामर्श दें। निरोधों का वितरण और यहाँ तक कि नसबन्दी भी मुफ्त करें।

26.4.7 आय के वितरण को न्यायपूर्ण बनाना :– अल्प विकसित देशों में राज्य का एक प्रमुख कार्य आय–वितरण की विषमताओं को कम करना है। फिर, समाजवादी समाज के आदर्श के लिये आर्थिक असमानताओं को कम करना और भी जरूरी हो जाता है। सरकार को चाहिए कि वह ऐसे कदम उठाये कि जिससे उत्पादन की प्रेरणाओं को कम किये बिना, धन एवं आय के वितरण की विषमताओं को दूर किया जा सके। यद्यपि लुइस के अनुसार ''आय का वितरण अल्प–विकसित देशों के लिये विभिन्न प्रकार की कठिनाईयाँ पैदा करता है क्योंकि ये देश समानता को, प्रोत्साहनों और बचत के उच्च स्तर के साथ मिलने की प्रवृति रखते है किन्तु सशक्त राजकोषीय नीति द्वारा इन समस्याओं का हल खोजा जा सकता है।''

26.4.8. निवेश की दर में वृद्धि करना –अल्प विकसित देशों में बचत की दर निवेश की आवश्यकता की तुलना में नीची होती है। अपर्याप्त बचत–निवेश के कारण सरकार के लिये यह जरूरी हो जाता है कि पूँजी निर्माण के कार्य को बढावा दिया जाये। इसके लिये राज्य करारोपण तथा मुद्रा–स्फीति द्वारा लोगों को अधिक बचत करने के लिये मजबूर कर सकता है। हाँ! निजी बचतों की अपर्याप्तता की दशा में सरकारी बचतों को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिये और साथ ही उपयुक्त मौद्रिक तथा राजकोषीय उपायों द्वारा निजी बचतों को गतिशील करना चाहिए।

26.4.9. उत्पत्ति के साधनों की गतिशीलता में वृद्धि करना :–अल्प विकसित देशों की मुख्य समस्या विकास के वांछित साधनों की कमी व उनकी सापेक्षिक अगतिशीलता की है जबकि विकास की इन सभी बाधाओं को दूर करना सरकार के लिए अत्यावश्क हैं इसलिये राज्य को चाहिये कि शिक्षा प्रणाली एवं प्रशिक्षण सुविधाओं द्वारा श्रमिकों को वांछित दक्षता व तकनीकी ज्ञान प्रदान कराया जाये। जहाँ तक पूंजी की कमी और

उसकी अगतिशीलता का प्रश्न है, सरकार इस सम्बन्ध में विदेशी पूंजी का आयात और घरेलू बचतों को गतिशील बनाने हेतु वित्तीय व बैकिंग संस्थाओं की स्थापना भी कर सकती है।

26.4.10.मौद्रिक नीति बनाना :–मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुख्य रूप से मुद्रा की मात्रा का नियमन, साख–सृजन, मुद्रा–स्फीति को रोकना एवं भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाये रखना आदि कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। विकास की बढ़ती हुई गति के साथ–साथ मुद्रा व साख की मात्रा को संतुलित बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। अर्थव्यवस्था में राज्य मौद्रिक नीति अपनाकर बैकिंग प्रणाली का विस्तार, साख विस्तार, साख नियंत्रण और कीमतों मे स्थिरता लाती है। ये सब कार्य राज्य का केन्द्रीय बैंक करता है। इस नीति के लोगों में बचत करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है और इस बचत को सरकार देश के विकास कार्य पर खर्च करती है।

26.4.11. **राजकोषीय नीति** :– राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकारी आय, सरकारी व्यय, सार्वजनिक ऋण तथा हीनार्थ–प्रबन्धन आदि को सम्मिलित किया जाता है। सरकार की आय–व्यय सम्बन्धी नीति आर्थिक विकास की प्रक्रिया को निम्न पाँच रूपों में प्रभावित करती है –

(अ) पूँजी संचयन में वृद्धि करने हेतु,
(ब) आय के वितरण में परिवर्तन लाने हेतु
(स) साधनों के वितरण को प्रभावित करने हेतु,
(द) मुद्रा–स्फीति पर रोक लगाने हेतु, और
(क) मन्दी तथा बेरोजगारी आदि को दूर करने के लिए।

इसके अतिरिक्त राजकोषीय नीति का उपयोग विदेशी व्यापार पर नियंत्रण रखने, निर्यातों, को प्रोत्साहित करने, विलासताओं के आयात का नियमन करने और विदेशी विनिमय कोष को बढ़ाने के लिए भी किया जा सकता है। राजकोषीय नीति द्वारा सरकार बचत, निवेश तथा पूँजी निर्माण की दर को बढ़ाकर राष्ट्रीय आय और रोजगार में वृद्धि करती है। इसके लिए सरकार उचित कर, बजट तथा सार्वजनिक व्यय एवं उधार–ग्रहण नीतियां अपनाती हैं। जो राजकोषीय नीति के अंग हैं। इस नीति के अन्तर्गत ही राज्य भुगतान शेष एवं विदेशी विनिमय की समस्याओं का समाधान करके, स्फीति को रोककर, देश में आर्थिक विकास की दर को बढ़ने में सहायक होता है।

26.4.12. मूल्य नीति :–विकास की प्रारम्भिक अवस्था में भारी मात्रा में विनियोग किये जाने के कारण वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें बढ़ने लगती है। यह कीमत–स्फीति प्रायः मुद्रा स्फीति (हीनार्थ प्रबन्धन) को परिणाम होती है। मूल्य–स्तर में होने वाली यह वृद्धि योजनाओं की विकास लागत को बढ़ा देती है जिससे आर्थिक विकास के अर्थ–प्रबन्धन में कठिनाई होने लगती है। फिर, इस मूल्य–वृद्धि का सामान्य जता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः सरकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि

वह एक उपयुक्त एवं समन्वित मूल्य–नीति द्वारा कीमत स्थायित्व रखकर विकाय कार्य को तरलता प्रदान करें।

26.4.13. विदेश व्यापार की नीति – विदेशी व्यापार की नीति का उद्देश्य विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देना और विदेशी विनिमय कोषों की सुरक्षा करना है। देश का भुगतान संतुलन अनुकूल बना रहे और विदेशी विनिमय कोषों को अपव्यय न हो सके, इस दृष्टि से सरकार प्रायः विनिमय नियन्त्रण की विभिन्न रीतियाँ अपनाती रहती है। अल्पविकसित देशों में विदेशी व्यापार का आकार बहुत सीमित होता है क्योकिं ऐसे देश कुछ प्राथमिक वस्तुओं जैसे खनिज पदार्थ, कच्चा माल, कृषि पदार्थ आदि का निर्यात करते हैं और उनके बदले अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप निर्मित उपभोक्ता वस्तुएँ तथा पूँजी पदार्थ आयात करते हैं। कच्चे माल की अपेक्षा निर्मित माल और पूँजी पदार्थों का मूल्य अधिक होने के कारण आयातें नियातों से अधिक होती हैं जिससे भुगतान सन्तुलन तथा विदेशी विनिमय की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें राज्य की हल कर सकता है।

इनके समाधान के लिए विदेशी सहायता विकसित देशों की सरकारों से तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त करना, राज्य का कार्यभाग होता है। इसके अतिरिक्त अनावश्यक अर्द्ध–विलासताओं एवं विलासताओं के आयात पर सरकार ही प्रतिबन्ध लगा सकती है। आयात–प्रतिस्थापन तथा निर्यात–प्रोत्साहन के लिए उचित नीतियाँ अपना कर सरकार भुगतान सन्तुलन एवं विदेशी विनिमय की समस्याओं को हल कर सकती है। इनके लिए, राज्य आयात प्रतिस्थापना उद्योगों को स्थापित करने हेतु वित्तीय, तकनीकी आदि सहायता प्रदान करती है। दूसरी ओर, निर्यात–प्रोत्साहन के लिए निर्यात उद्योगों को पूँजी पदार्थ, कच्चा माल, वित्त आदि अनेक सुविधाएँ देकर बढ़िया एवं सस्ता माल बनाने मे सहायक सिद्ध होती है। इसके लिए सरकार निर्यात करों में छूट द्वारा, विदेशों के साथ द्विपक्षीय समझौतों द्वारा राज्य व्यापार निगत की स्थापना करके, विदेशों में औद्योगिक मेलों एवं प्रदर्शनियों में भाग लेकर भी सहायता करती है। इस प्रकार राज्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा बाजार का विस्तार करके साधनों के उचित प्रयोग द्वारा आय, निवेश तथा रोजगार को बढ़ाने में सहायत होता है।

अल्पविकसित देशों में सरकार के कार्य में स्वच्छ प्रशासन स्थापित करना, निर्धन–वर्ग को सामाजिक न्याय दिलाना, प्रदूषण को रोकना, स्वच्छ जल की व्यवस्था करना, और बेरोजगारी दूर करना इत्यादि सम्मिलित हैं। **प्रो. हरमन फाइनर** ने राज्य के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि ''यदि अल्पविकसित देश आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना चाहते हैं तो इन देशों की सरकारों को चाहिए कि समाज को निम्न सेवायें प्रदान करें – व्यवस्था, सामाजिक, न्याय, पुलिस, प्रशासन, प्रतिरक्षा, उत्पादन में योग्यता, निवेश के लिए अनुकूल वातावरण, सम्पत्ति सम्बन्धी उचित व परिभाषित कानून व अधिकार, स्थिर सुदृढ़ मुद्रा व्यवस्था तथा मुड़ा के उचित प्रताप तथा राजनैतिक स्थिरता व शान्ति।''

26.5 बाजार और आर्थिक विकास

आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र बहुत बड़ा होता है। इसमे जो कुछ निर्णय लिए जाते हैं और उनके आधार पर जो क्रियाकलाप होते हैं उनका बाजार से सीधा सम्बन्ध होता है। बाजार दरअसल वस्तु विशेष के विक्रेताओं और क्रेताओं का संगठन होता है। जो आपस में प्रतियोगिता करते हुए व्यवहार करते हैं। इन्हीं के व्यवहारों से या हम कह सकते हैं कि मांग और पूर्ति की दशाओं के आधार पर कीमतें निर्धारित होती है।

किसी भी देश के बाजार जितने अच्छे संगठित होते है वहां पर कीमतें सही निर्णय लेने में उतनी ही अधक सहायक होती है। लाभ की प्रेरणा से काम करने वाले उत्पादक उन्हें उद्योगों में साधनो में लगाते हैं जहां मांग की प्रबलता के कारण कीमतें आकर्षक होती है। बाजार संगठन अच्छा होने पर देश के सभी भागों में एक–सी कीमतें होती है और फिर इनके आधार पर साधनों का जो आंवटन होता है। वह विवकेपूर्ण होता है। परन्तु जब आय असमानताएं अधिक होती है तो बाजार संगठन अच्छा होते हुए भी साधनों का उचित आवंटन नहीं होता। इन परिस्थितियों में गैर–जरूरी वस्तुओं का उत्पादन अधिक होता है जबकि जरूरी वस्तुओं की भारी कमी बनी रहती है। विकसित देशों में प्रायः बाजार संगठन अच्छा होता है और उसके द्वारा साधनों का जो आवंटन होता है वह विवेकपूर्ण और कुशल होने के साथ–साथ विकास में सहायक भी होता है।

एडम स्मिथ ने Wealth of Nation में लिखा था कि ''श्रम–विभाजन बाजार के आकार के द्वारा सीमित होता है।'' **आलिन ए. यंग** ने एडम स्मिथ के उपरोक्त कथन की अपने ढंग से व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि निवेश–प्रेरणा बाजार के आकार द्वारा सीमित होती है। **रेग्नर नर्क्स** इस विचार को न केवल स्वीकार करते हैं, बल्कि वे इसके आधार पर अल्प–विकसित देशों के **गरीबी के दुष्चक्र** की व्याख्या भी करते है। अल्प–विकसित देशों में क्रय–शक्ति का अभाव होता है और घरेलू बाजार बहुत छोटा होता है। उपभोग की वस्तुओं और सेवाओं की मांग थोड़ी होती है। इसलिए उनके उत्पादन के लिए पूंजी की मांग भी थोड़ी होनी स्वाभाविक है।

बाजार का आकार पूंजी के निवेश से सम्बन्धित प्रेरणा को सभी तरह की अर्थव्यवस्था में प्रभावित करता है। विनिमय पर आधारित अर्थव्यवस्था में बाजार का छोटा आकार पूंजी के अधिक प्रयोग को हतोत्साहित करता है। उद्यमकर्ता हमेशा ही बाजार में वस्तु की मांग को ध्यान में रखकर प्लांट का आकार तय करते है। उदाहरण के लिए यदि कार बनाने वाले प्लांट तीन आकार के है जिनमें वार्षिक क्षमताएँ 1 लाख, 5 लाख और 10 लाख कार उत्पादन कर सकने की हैं तो स्पष्ट है कि मॉरीशस, नेपाल, सूडान, मोरक्को, कीनिया आदि जैसे छोटे देशों में मोटर कार उत्पादित करने वाला कारखाना स्थापित ही नहीं किया जाएगा, क्योंकि इन देशों में कारों का बाजार सीमित है। आज वस्तुस्थिति यह है कि अल्प–विकसित देशों में राष्ट्रीय आय के स्तर बहुत नीचे होने के कारण उपभोग की वस्तुओं पर कुल व्यय बहुत कम होता है और इसलिए किभी भी उद्योग में भारी पूंजी लगाकर बड़े पैमाने पर कारखाने की स्थापना के लिए निवेशकों को प्रेरणा नहीं मिलती।

विनिमय प्रणाली पर आधारित अर्थव्यवस्था में उद्यमकर्ता जब वस्तु विशेष के बाजार को छोटा देखता है, तो वह उस उद्योग में प्रवेश नहीं करता। उसको लगता है कि यदि वह पूंजी–प्रधान ढंग से उत्पादन करने वाले बड़े कारखाने की स्थापना करेगा तो वह तकनीकी दृष्टि से कुशल होने पर भी आर्थिक दृष्टि से लाभदायक सिद्ध नहीं होगा। कभी–कभी इस विश्वास के साथ कुछ उद्यमकर्त्ता निवेश करते हैं कि वे विज्ञापन द्वारा अपनी वस्तु के प्रति लोगों को आकर्षित कर लेंगे और इस प्रकार उनकी वस्तु का बाजार वर्तमान में सीमित होते हुए भी भविष्य में बढ़ जायेगा लेकिन इस प्रकार कुल प्रभावक मांग को बढ़ा पाना आसान नहीं होता। अल्प–विकसित देशों में जहां बहुत सारे लोग जीवन–निर्वाह के स्तर पर ही होते है, कुल प्रभावक मांग को बढ़ा पाना तो दूर रहा, किसी भी वस्तु के बाजार को फैला पाना भी कठिन होता है। अतः **नर्क्स** इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ''कम आय वाले देश में घरेलू बाजार का छोटा आकार उस बाजार के लिए माल पैदा करने वाली फर्मों तथा उद्योग में पूंजी निवेश में बाधक होता है और इस अर्थ में सामान्य रूप से विकास कार्य में भी रूकावट होता है।''

26.6 बाजार के आकार के निर्धारक तत्व

अल्प–विकसित देशों में बाजार का आकार छोटा होता है। इसलिए वहां पर निवेश प्रेरणा का अभाव होता है जो पूंजी–निर्माण की दर को नीचा रखता है। यह स्थिति इस बात को स्पष्ट करती है कि बाजार के विस्तार द्वारा निवेश–प्रेरणा को बढ़ा पाना सम्भव होता है जिससे गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ा जा सकता है।

कुछ लोग समझते है कि अल्प–विकसित देशों में मौद्रिक विस्तार द्वारा बाजार को बढ़ाया जा सकता है। **नर्क्स** के अनुसार यह विचाराधारा गलत है। इस गलत धारणा का कारण **केंस** के सिद्धान्त को अल्प–विकसित देश की परिस्थितियों में लागू करने की कोशिश है। **नर्क्स** का विचार है कि अल्प–विकसित देशों में **केंसवादी** अर्थशास्त्र के अर्थ में प्रभावक मांग की कमी नहीं होती। सभी अल्प–विकसित देशों में परम्परागत अर्थशास्त्र के अर्थ में क्रय–शक्ति का अभाव होता है। मतलब यह है कि इन देशों में उत्पादिता कम होने के कारण वास्तविक क्रय–शक्ति कम होती है और इसे मुद्रा के विस्तार द्वारा बढ़ा पाना सम्भव नहीं होता। देश की जनसंख्या का उसका भौगोलिक क्षेत्र भी घरेलू बाजार का आकार निश्चित नहीं करते। किसी देश की जनसंख्या अधिक है परन्तु उत्पादिता का स्तर नीचा होने के कारण प्रति व्यक्ति आय कम है तो वहां बाजार का आकार छोटो होगा। इसी तरह किसी अत्यन्त गरीब देश का भौगोलिक क्षेत्र बड़ा होने पर भी वहां बाजार का आकार छोटा ही रहेगा। निस्संदेह परिवहन लागत तथा व्यापार अवरोध बाजार के विस्तार में बाधक होते हैं। सीमाशुल्क आयात कोटा प्रणाली, विनिमय–नियन्त्रण आदि व्यापार में बाधा उत्पन्न करते हैं। इससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार छोटा हो जाता है। परिवहन लागत अधिक होने पर बहुत सारी वस्तुओं के बाजार स्थानीय रह जाते हैं। अतः निवेशकों को निवेश के लिए पर्याप्त प्रेरणा नहीं मिलती और पूँजी निर्माण का स्तर नीचा रहता है। 1951 में **संयुक्त राष्ट्र संघ** के विशेषज्ञों ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि कुछ अल्प–विकसित देश इतने छोटे हैं कि

वहां के घरेलू बाजारों के आधार पर बड़े उद्योगों की स्थापना नहीं हो सकती। इत्यादि रीतियों के द्वारा अपने बाजारों का विस्तार करना चाहिए।

इसमें सन्देह नही है कि उपरोक्त रीतियों से बाजार का थोड़ा विस्तार होगा। सीमा–शुल्क हट जाने पर वस्तुओं के मूल्य कम होने पर उनकी मांग बढ़ेगी। लेकिन नीची उत्पादिता और थोड़ी राष्ट्रीय आय वाले देशों में इस प्रकार बाजार का विस्तार बहुत अधिक नहीं हो सकेगा। जहां तक परिवहन लागत में कमी द्वारा बाजार को फैलाने का प्रश्न है, इससे कुछ सफलता मिल सकती है। लेकिन परिवहन लागत में कमी का बाजार के विस्तार पर ठीक वही असर होता है जो दूसरी लागतों में कमी का होता है। इसलिए बाजार का विस्तार पर ठीक वही असर होता है जो दूसरी लागतों में कमी का होता है। इसलिए बाजार का विस्तार बढ़ने के लिए परिवहन लागत में कमी पर जोर देना ठीक नहीं है। चूँकि व्यक्तिगत उत्पादक विज्ञापन तथा विक्रय–कला द्वारा अपनी वस्तु की बिक्री बढ़ा पाने में सफल हो जाते हैं, इसलिए कुछ लोगों की यह धारणा बन जाती है कि इस प्रकार बाजार का विस्तार हो सकता है, जो बाद में पूंजी निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। लेकिन जो बात किसी एक फर्म के विषय में सही है, वह संपूर्ण देश के विषय में ठीक नहीं है।

नर्क्स के अनुसार बाजार का आकार मुख्य रूप से उत्पादिता के स्तर पर निर्भर होता है। कुल मिलाकर समस्या पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादन की मात्रा द्वारा न केवल बाजार का आकार निर्धारित होता है, बल्कि बाजार के विस्तार की सीमा भी निश्चित होती है। किसी भी देश में जनंसख्या स्थित रहने पर भी न तो वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन स्थिर रहता और न ही उपभोग की मात्रा का का स्थिर रहना आवष्यक है। उत्पादिता के स्तर में सुधार द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह में वृद्धि होती है और उपभोग का स्तर भी ऊपर उठाता है। ध्यान दिया जाना चाहिए। कृषि में भूमि सुधारों और तकनीकी परिवर्तनों से उत्पादिता के स्तर में सुधार होता है जिससे किसनों की क्रय–शक्ति बढ़ती है। उनका जीवन–स्तर ऊपर उठता है और वे कई प्रकार की औद्योगिक वस्तुओं, जैसे रेडियो, साइकिल, घड़ी, जूते, वस्त्र, इत्यादि की अधिक मांग करने लगते है। इस प्रकार बाजार के विस्तार से निवेशकों को निवेश करने के लिए प्रेरणा मिलती है। यूरोप में औद्योगिक क्रांति के समय फ्रांस, इग्लैंड आदि देशों में भूमि सुधारों पर उद्योगपतियों ने इसलिए जोर दिया था क्योंकि वे जानते थे कि इससे कृषि क्षेत्र में उत्पादिता में वृद्धि होगी और फिर उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के बाजार का भी विस्तार होगा।

उत्पादन की प्रक्रिया जितनी अधिक घुमावदार होती है, अन्य साधनों की तुलना में पूंजी का अनुपात उतना ही अधिक होता है और उत्पादिता का स्तर भी उतना ही अधिक होती है। इस प्रकार पूँजी–प्रधान रीतियों और मशीनों तथा अन्य उपकरणों के प्रयोग द्वारा उत्पादिता को बढ़ा पाना सम्भव होता है। पश्चिमी देशों के अनुभवों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि उत्पादिता को बढ़ाने में तकनीकी नवप्रवर्तनों की भूमिका पूँजी के भारी प्रयोग से कम महत्वपूर्ण नहीं है। परन्तु साथ ही यह भी सच है कि पूँजी की मात्रा नव–प्रवर्तनों की सीमा निर्धारित करती है। संयुक्त राज्य अमेरिका, स्वीडन, फ्रांस, जर्मनी आदि में उत्पादिता के स्तर ऊचे हैं। कारण यह है कि इन सभी देशों में पूँजी–प्रधान रीतियों द्वारा उत्पादन किया

जाता है। साथ ही नव–प्रवर्तन की प्रक्रिया नियमित रूप से चलती रहती है। फलतः वहां के सामान्य व्यक्ति के पास भी इतनी क्रय–शक्ति होती है कि वह सुविधा की सभी वस्तुएं, जैसे टेलीविजन, स्कूटर, धुलाई की मशीन, भोजन बनाने की मशीन, रेफ्रिजरेटर इत्यादि खरीद सकता है। उसका मांस, मक्खन, शराब, पुस्तकों आदि का उपभोग भी अधिक होता है। इस तरह उत्पादिता का ऊँचा स्तर बाजार के विस्तार को बढ़ाकर उत्पादकों को पूंजी निवेश करने के लिए प्रेरित करता है।

बाजार के आकार का विश्लेषण करते हुए अक्सर यह कहा जाता है कि यदि लोगों की मौद्रिक आय स्थिर रहे तो बस कीमतों में कमी करके ही बाजार के विस्तार को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन यह उसी समय सम्भव होगा जबकि लोगों की उत्पादिता और वास्तविक आय में वृद्धि हो। बाजार का आकार एक अन्य प्रकार से भी बढ़ सकता है। यदि स्थिर कीमतों की दशा में लोगों की मौद्रिक आय अधिक हो जाती है तो भी बाजार का विस्तार फैल जाता है परन्तु यह भी उसी स्थिति में संभव हो पायेगा जबकि लोगों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि से उनकी वास्तविक आय में वृद्धि हो। **नर्क्स** का विचार है कि अल्प–विकसित देशों में **जे0बी0 से** का बाजार का नियम लागू होता है। वहां पर उत्पादन अपनी मांग स्वयं उत्पन्न कर लेता है और बाजार का आकार उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है। अंतिम विश्लेषण में उत्पादिता में बहुमुखी वृद्धि द्वारा ही बाजार का विस्तार हो सकता है। खरीदने की क्षमता का अर्थ उत्पादन करने की क्षमता होता है।

उत्पादिता और बाजार के आकार के बीच संबंध के विषय में यह जान लेना आवश्यक है कि किसी उद्योग विशेष में पूंजी के निवेश द्वारा उत्पादिता के स्तर में सुधार का उत्पादन बढ़ा लेने से ही उसके बाजार का क्षेत्र नहीं बढ़ सकेगा। उदाहरण के लिए, ऊनी स्वेटर बनाने वाली मिल में नई मशीनें लगाई जाती है। इससे मिल के श्रमिकों की उत्पादिता और उनकी वास्तविक आय अधिक हो जाती है। लेकिन दूसरे उद्योगों में उत्पादिता का स्तर ऊँचा नही उठता और लोगों की वास्तविक आय पहले की भांति रहती है। इस स्थिति में स्वेटर की मिल में उत्पादन अधिक होने पर पर्याप्त मांग उत्पन्न नहीं हो सकेगी। इसका कारण यह है कि स्वेटर की मिल में काम करने वाले व्यक्तियों की आय में जो भी वृद्धि होगी उस सम्पूर्ण आय को वे स्वेटर पर व्यय नहीं करेंगे और दूसरे क्षेत्रों में उत्पादिता स्थिर रहने के कारण स्वेटर की मांग स्थिर रहेगी। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि बाजार के आकार में विस्तार के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन के सभी क्षेत्रों में उत्पादिता में सुधार हो।

26.7 आर्थिक विकास तथा बाजार की अपूर्णताय

प्रो0 मायर एवं बाल्डविन ने अल्प–विकसित देशों के आर्थिक पिछडेपन के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों को मुख्य कारण बाजार की अपूर्णतायें को माना है। अल्प–विकसित देशों में बाजार की अपूर्णतायें, अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणार्थ, उत्पत्ति के साधनों की अगतिशीलता, कीमत दृढ़ता, बाजार दशाओं का कम ज्ञान, दृढ़ सामाजिक ढाँचा, विशिष्टीकरण एवं प्रमापीकरण का अभाव तथा अविकसित तकनीक। बाजार अपूर्णताओं के विद्यमान होने पर सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि उत्पत्ति के साधनों का समुचित

वितरण तथा सर्वोत्तम ढंग से उपयोग नहीं हो पाता है जिससे इन देशों में वास्तविक उत्पादन सम्भाव्य उत्पादन से नीचा बना रहता है।

श्रम–शक्ति की अगतिशीलता और उसका कुशलता के साथ उपयोग न होने के कारण बेरोजगारी बढ़ने लगती है। श्रमिकों की उत्पादकता में कमी होती है। सामाजिक व सांस्कृतिक बाधाओं के कारण, श्रम व पूंजी का कुशलता के साथ वितरण नहीं हो पाता, जिसके फलस्वरूप एक तरफ पूंजी की सीमान्त–क्षमता गिरने लगती है तो दूसरी ओर आर्थिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। इन सब घटकों का एक सम्मिलित प्रभाव यह भी होता है कि इन देशों में बाजार अत्यन्त सीमित बने रहते है और यह देश अपनी उत्पादन–सीमाओं पर पहुँच नहीं पाते।

आर्थिक विकास के लिए पिछेड़ हुए देशों की अर्थ–व्यवस्था की बाजार सम्बन्धी अपूर्णताएं समाप्त की जानी चाहिये जिससे कि साधनों का सर्वोत्तम ढंग से उपयोग सम्भव हो सके। चूँकि बाजार अपूर्णतायें, साधनों की अगतिशीलता एवं क्षेत्रीय असुंतलन को उत्पन्न करती हैं इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि –

(i) सामाजिक व आर्थिक संगठनों के वैकल्पिक स्वरूपों का निर्माण किया जाये,

(ii) विद्यमान साधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाये,

(iii) एकाधिकार, प्रवृत्तियों पर रोक लगाई जाये,

(iv) पूँजी व साख संस्थाओं का विस्तार किया जाये तथा

(v) छोटे व्यापारियों को उत्पादन की नई तकनीक व क्षेत्रों का ज्ञान कराया जाए।

लेकिन स्मरण रहे, बाजार की अपूर्णताओं को दूर करना आर्थिक विकास को केवल आंशिक रूप से प्रभावित करता है। **मायर एवं बाल्डबिन** का कहना है कि ''पिछड़े देशों में साधनों के अनुकूलतम आवंटन के लिए बाजार अपूर्णताओं को दूर करना ही केवल पर्याप्त नही है, अपितु मुख्य समस्या साधनों के सर्वोपयुक्त उपयोग एवं संरचनात्मक परिवर्तनों की है, न कि विद्यमान साधनों की करीने से व्यवस्थित करने की। दूसरे शब्दों में, मुख्य आवश्यकता उत्पादन सीमाओं (लक्ष्यों) को आगे बढ़ाने की न कि केवल उन सीमाओं पर पहुँचने की।''

संरचनात्मक परिवर्तनों से आशय, कृषि पर जनसंख्या के भार को कम करना तथा सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आदि लाने से है। **प्रो0 सिंगर** ने इस सम्बन्ध में सुझाव देते हुए कहा है कि अल्प–विकसित देशों में कृषि पर निर्भर 70 प्रतिशत जनसंख्या को घटाकर 20 प्रतिशत कर दिया जाये तथा गैर–कृषि क्षेत्रों में लगी जनसंख्या के वर्तमान 30 प्रतिशत अनुपात को बढ़ाकर 80 प्रतिशत कर देना चाहिये। परन्तु यह सब कुछ तभी सम्भव हो सकता है जबकि समाज में व्यापक भूमि सुधार, गतिशील बाजार व्यवस्था, नूतन साख संस्थायें, जन–जागृति तथा मानवीय मूल्यों में नई प्रेरणायें उदित हो सकें। **मायर एवं वाल्डविन** ने इसी तथ्य का समर्थन करते हुए लिखा है ''यदि राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि करनी है तो इसके लिये नूतन आवाश्यकताएँ, नयी अभिरूचियाँ, नवीन उत्प्रेरणाएँ, उत्पादन के नये ढंग व नयी संस्थाओं का नव–निर्माण करना जरूरी होगा।''

26.8 सारांश

प्रारम्भ में राज्य सरकार का मुख्य काम केवल देश की सुरक्षा मान जात था परन्तु धीरे – धीरे इस विचारधारा में परिवर्तन आया और एक वर्ग राज्य सरकार के आर्थिक क्रियाओं में सहयोग का समर्थन करने लगा, इस दो प्रकार की विचारधारायें पायी जाने लगी। प्रथम विचारधारा के अनुसार सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाएँ राज्य के नियन्त्रण के अन्तर्गत होनी चाहिए । द्वितीय विचाराधारा के समर्थक पूर्ण राजकीय हस्तक्षेप के पक्षपाती नहीं है। अब यह सर्वथा माना जाता है कि एक अल्पविकसित देश में निहित कठोरताओं पर काबू पाने के लिए राज्य को निश्चियात्मक कार्य करना होगा।प्रो0 आर्थर लुइस ने आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों को नौ वर्गों में विभाजित किया है। लेकिन मोटे तौर पर आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने और समाज के आर्थिक जीवन को बढ़ावा देने के लिए सरकारी संस्थानों व सरकार द्वारा किये जाने वाले मुख्य कार्य इस प्रकार है कृषि का विकास करना, उत्पादकता में वृद्धि भूमि–सुधार, प्राकृतिक संसाधनों का विकास ,औद्योगिक विकास करना, सामाजिक ढाँचों का विकास, शिक्षा, लोक स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन, आय के वितरण को न्यायपूर्ण बनाना, निवेश की दर में वृद्धि करना, उत्पत्ति के साधनों की गतिशीलता में वृद्धि करना ,मौद्रिक नीति , राजकोषीय नीति ,मूल्य नीति और विदेश व्यापार की नीति बनाना ।

आर्थिक विकास के निर्धारक में बाजार के आकार की भूमिका का महत्व है। आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र बहुत बड़ा होता है। इसमे ंजो कुछ निर्णय लिए जाते हैं और उनके आधार पर जो क्रियाकलाप होते हैं उनका बाजार से सीधा सम्बन्ध होता है। बाजार का आकार पूंजी के निवेश से सम्बन्धित प्रेरणा को सभी तरह की अर्थव्यवस्था में प्रभावित करता है। अल्प–विकसित देशों में बाजार का आकार छोटा होता है। इसलिए वहां पर निवेश प्रेरणा का अभाव होता है । प्रो0 मायर एवं बाल्डविन ने अल्प–विकसित देशों के आर्थिक पिछडेपन के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों को मुख्य कारण बाजार की अपूर्णतायें को माना है। पिछड़े देशों में साधनों के अनुकूलतम आवंटन के लिए बाजार अपूर्णताओं को दूर करना ही केवल प्र्याप्त नही है, अपितु मुख्य समस्या साधनों के सर्वोपयुक्त उपयोग एवं संरचनात्मक परिवर्तनों की है ।

26.9 शब्दावली

पलायन	काम की तलाश में अपने गांव या शहर को छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाना।
आधारभूत संरचना	विकास में सहायक आधार जैसे–सड़क, परिवहन, विद्युत, लोह इस्पात, सीमेंट उद्योग आदि।
वृहद्	बड़ा या बड़े उद्योग
उद्यम	उद्योग लगाने का जोखिम उठाना
रियायते	छूट देना
पुनगर्ठन	ऐसा उद्योग जो संगठन में दोष के कारण हानि में चल

	रहे हो उनका संगठन व्यवस्था में सुधार
श्रम प्रतिस्थापन	ऐसी व्यवस्था जहाँ श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग किया जाये।
गतिशील उद्यमीयों	ऐसे उद्यमी जिनकी विचार धारा आधुनिक हो और जो नवीन तकनीक को बढ़ावा दें।
संवर्धन	वृद्धि या विकास करना

26.10 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरों :–

1. प्रारम्भ में आर्थिक विकास में ..... की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती थी।
2. प्रो0 मायर एवं बाल्डबिन का कहना है कि आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप की क्या सीमा हो इसका ..... है।
3. ..... के शब्दों में ''कोई भी देश आर्थिक क्षेत्र में अपनी बुद्धिमान सरकार के सक्रिय सहयोग और साझेदारी के बिना आज तक आर्थिक विकास नहीं कर सका है।''
4. प्रो0 आर्थर लुइस ने आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों को ..... वर्गों में विभाजित किया है।
5. अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का .....से अधिक भाग कृषि में लगा है।
6. अल्पविकसित देशों में निजी उद्यम केवल ..... के क्षेत्र में ही पाया जाता है।
7. परिवार नियोजन का मतलब है सोच–समझ कर .....घटाना।
8. ..... नीति के अन्तर्गत मुख्य रूप से मुद्रा की मात्रा का नियमन, साख–सृजन, मुद्रा–स्फीति को रोकना एवं भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाये रखना आदि कार्यों को सम्मिलित किया जाता है।
9. ..... नीति के अन्तर्गत सरकारी आय, सरकारी व्यय, सार्वजनिक ऋण तथा हीनार्थ–प्रबन्धन आदि को सम्मिलित किया जाता है।
10. आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था में ..... क्षेत्र बहुत बड़ा होता है।
11. अल्प–विकसित देशों में बाजार का आकार ..... होता है।
12. नर्क्स के अनुसार बाजार का आकार मुख्य रूप से ..... के स्तर पर निर्भर होता है।
13. प्रो0 मायर एवं बाल्डविन ने अल्प–विकसित देशों के आर्थिक पिछडेपन के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों को मुख्य कारण ..... को माना है।

उत्तर– (1) राज्य अर्थात सरकार (2) कोई सिद्धान्त नहीं (3) प्रो0 डब्ल्यू आर्थर लुइस (4) नौ वर्गों (5) 70% (6) उपभोक्ता वस्तुओं (7) जन्म–दर (8) मौद्रिक नीति (9) राजकोषीय नीति (10) निजी क्षेत्र (11) छोटा (12) उत्पादिता (13) बाजार की अपूर्णतायें (14)

26.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dhingra, I. C. (2009), "*Development Economics*", ", S and Chan Publicshing House Delhi.
2. Jhingan, M. L. (2000),"*Economics of Development and Planning*", Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.
3. Mishra, S.K. and Puri, V.K.(2007), "*Economics of Development and Planning Theory and Practice*", Himalaya Publishing House.
4. Singh, S.P. (2010),"*Economics of Development and Planning and Practics*", S and Chan Publicshing House Delhi.

26.12 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री

1. Allan C. Reddy, David P. Campbell (1994), "*Marketing's Role in Economic Development*", Greenwood Press
2. Brace, Paul (1994). "*State Government and Economic Performance*", The Johns Hopkins University Press Ltd. London.
3. Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), "*Development Economics*", Oxford University Press India.
4. Jhingan, M. L. (2000),"*Economics of Development and Planning*" , Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.

26.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सरकारी संस्थान का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
2. आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य पर प्रकाश डालिए।
3. आर्थिक विकास के निर्धारक में बाजार के आकार की भूमिका का वर्णन करो।

इकाई 27: गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप

इकाई संरचना

27.1 प्रस्तावना

27.2 उद्देश्य

27.2 गरीबी

27.3 गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप

27.4 भारतीय गरीबी के माध्यम से गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप का वर्णन

27.3.1 वैश्विक भूखमरी सूचकांक

27.3.2 मानव गरीबी सूचकांक

27.3.3 बहुआयामी गरीबी सूचकांक

27.5. सांराश

27.6. शब्दावली

27.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

27.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

27.9. सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

27.10. निबन्धात्मक प्रश्न

27.1 प्रस्तावना

'गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप' से सम्बन्धित इस इकाई से पहले आप सरकारी संस्थान और बाजार का आर्थिक विकास में योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके है। इस इकाई में निरपेक्ष गरीबी तथा सापेक्ष गरीबी की जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन से आपको गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

27.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप :–

- गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप को समझ सकेगें।
- निरपेक्ष गरीबी तथा सापेक्ष गरीबी की जानकारी प्राप्त कर लेगें।
- भारतीय गरीबी के माध्यम से गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप को जान सकेंगे।

27.3 गरीबी

आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय में एक कार्यात्मक सम्बन्ध है। यदि आर्थिक विकास सामाजिक न्याय को प्रोन्नत नहीं करता, तो वह व्यर्थ है। आर्थिक विकास का अर्थ या लक्ष्य केवल सकल राष्ट्रीय आय (GNP) को बढ़ाना नहीं, बल्कि इसका उद्देश्य तो समाज के बहुसंख्यक लोगों के कल्याण में वृद्धि करना है। परन्तु दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि प्रारम्भिक विकासवादियों ने आर्थिक विकास के प्रश्न को केवल GNP में वृद्धि करने तक सीमित रखा और सामाजिक न्याय अथवा सामाजिक कल्याण के प्रति कभी चिन्ता प्रकट नहीं की। फलस्वरूप विकासशील देशों में नीति–निर्माताओं ने सदैव उन्हीं विकास–कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी, जिनसे उच्च वृद्धि–दर प्राप्त की जा सकती है। इनकी यह मान्यता थी कि एक बार आर्थिक विकास का कार्य पूरा हो जाने पर गरीबी, बेरोजगारी और आय–विषमताएँ जैसे सभी उद्देश्य स्वतः पूरे हो जायेंगे। इन लोगों को आर्थिक–संवृद्धि के ''रिसते अधोगामी प्रभाव'' (Trickle down effects) पर इतना अधिक विश्वास था कि इन्होंने इस बात पर कभी सन्देह नहीं किया कि आर्थिक वृद्धि और रोजगार या गरीबी उन्मूलन के उद्देश्यों के बीच कहीं कोई टकराव हो सकता है।

परन्तु **तृतीय विश्व** के अधिकांश विकासशील देशों में आज विकास और गरीबी के बीच टकराव की यह स्थिति उत्पन्न हो चुकी है। आर्थिक–वृद्धि की उच्च–दर के बावजूद इन देशों में बेरोजगारी और गरीबी बढ़ी है, विषमताओं का काल–चक्र अधिक गहरा हुआ है और जनसंख्या का एक बड़ा भाग अभावों से ग्रसित है। इसकी पुष्टि **विश्व बैंक रिपोर्ट 2000** से भी होती है कि, ''विकासशील देशों की एक–तिहाई जनसंख्या गरीबी–रेखा से नीचे है और 18 प्रतिशत जनसंख्या अति–निर्धन है अर्थात् गरीबी–रेखा के निम्नतम धरातल पर है।'' **डैनिस गाउलेट** का भी कहना है कि ''विकासशील देशों में विकास की निरन्तर दौड़ के बावजूद चिर–निर्धनता व्याप्त है। यह निर्धनता एक नरक के समान है और यह नरक बेहद भयावना है।''

प्रसन्नता की बात यह है कि आधुनिक विकासवादियों ने अब नई दिशा में सोचना शुरू कर दिया है। उनका मानना है कि आर्थिक कल्याण और सामाजिक न्याय वास्तव में आर्थिक विकास के मूलभूत उद्देश्य हैं। ये लोग अब केवल GNP में वृद्धि के पक्षधर नहीं रहे, बल्कि विकास की प्रक्रिया और GNP की संरचना व वितरण पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने लगे हैं। यह सच भी है क्योंकि सकल राष्ट्रीय उत्पाद को अधिकतम करना यदि आवश्यक है तो उससे भी ज्यादा जरूरी है गरीबी, भूख, बेरोजगारी, विषमता और अन्याय पर चोट करना। हमें अब सामाजिक पहलू से, आवश्यक वृद्धि–दर के रूप में सोचना होगा क्योंकि वृद्धि कौशलता वास्तव में एक बदनाम धारणा सिद्ध हो चुकी है। अब ये देखना जरूरी नहीं कि सकल उत्पाद या उपभोग कितना है ? बल्कि यह सोचना होगा कि कितने लोग, कितनी मात्रा में और कितना उपभोग करते हैं।

सुप्रसिद्ध पाकिस्तानी अर्थशास्त्री **प्रो0 महबूब–उल–हक** ने ठीक ही कहा है कि ''ऊँची संवृद्धि–दर बढ़ती हुई गरीबी और आर्थिक विस्फोटों के विरूद्ध कोई गारण्टी नहीं है। विकास की समस्या को अब, गरीबी के घिनौने रूप पर सोचे–समझे ढंग से प्रहार करने के अर्थ में परिभाषित किया जाना चाहिए। फिर, विकास के लक्ष्य को अल्प–पोषण, बीमारी, गन्दगी, निरक्षरता, बेकारी और विषमताओं के उत्तरोदर दमन के रूप में सोचना होगा। हमको यह पढ़ाया गया था कि पहले अपने GNP पर ध्यान दो क्योंकि इससे गरीबी घटेगी। लेकिन हमें इस शिक्षा को उलटना होगा। पहले अब गरीबी के बारे में सोचना होगा, तब इससे GNP स्वतः बढ़ने लगेगा।''

अल्पविकसित देश गरीबी का मारा होता है। उसकी गरीबी प्रति व्यक्ति आय में झलकती है। 1997 की World Development Report के अनुसार 1995 में विश्व की 56.0 प्रतिशत जनसंख्या की औसत GNP प्रति व्यक्ति 430 डॉलर थी। दूसरी ओर, औद्योगीकृत देशों में रह रही विश्व की 15.8 प्रतिशत जनसंख्या की औसत GNP व्यक्ति 32039 डॉलर थी, तथा मध्यम आय अर्थव्यवस्थाओं में विश्व की 27.5 प्रतिशत जनसंख्या की औसत GNP व्यक्ति 2390 डॉलर थी। ये आंकड़े विकासशील देशों में गरीबी की सीमा को दर्शातें हैं।

सन् 1995 के आकंड़े देते हुए World Development Report राष्ट्रों के बीच विस्तृत आय असमानताएं भी बताती है। 1995 में 23 बहुत धनी विकसित देश थे। इनमें से, जापान की GNP प्रति व्यक्ति 39640 डॉलर, यू0एस0एस0 की 26980 डॉलर तथा स्विट्जरलैंड की 40630 डॉलर थी। परन्तु कुछ विकासशील छोटे पूँजी आधिक्य तेल निर्यातक देश भी इनमें सम्मिलित हैं, जैसे संयुक्त राष्ट्र अमीरात जिसकी जी0एन0पी0 प्रति व्यक्ति 17400 डॉलर तथा कुवैत 17300 डॉलर। दूसरी ओर, GNP प्रति व्यक्ति 730 डॉलर या उससे कम 49 निम्न आय वाले सबसे गरीब देश थे। इनमें औरों के अलावा श्रीलंका 700 डॉलर, चीन 620 डॉलर, पाकिस्तान 460 डॉलर, भारत 340 डॉलर, केन्या 280 डॉलर, बंगलादेश 240 डॉलर और नेपाल की GNP प्रति व्यक्ति 200 डॉलर थी।

विश्व बैंक रिपोर्ट 2000 के अनुसार, 1998 में विकासशील देशों की कुल जनसंख्या का एक तिहाई भाग निर्धनता–रेखा से नीचे था और इनकी लगभग 18 प्रतिशत जनसंख्या

अति–निर्धन थी। निर्धनता–रेखा का आधार गरीबों के लिये 370 डॉलर प्रति व्यक्ति वार्षिक, और अति–गरीबों के लिये 275 डॉलर माना गया। पाँच वर्ष से कम शिशु मृत्यु–दर प्रति हजार 97 थी और जीवन–प्रत्याशा 62 वर्ष अनुमानित की गयी। फिर, इन देशों में निरपेक्ष निर्धनता भी देखने में आती है। दो समय का भोजन इनके लिये विलासिता है। अपने स्वामियों के उतरे हुए कपड़े और बचा–खुचा भोजन इनकी खुशकिस्मती है, मिट्टी के टूटे बर्तन इनकी सम्पत्तियाँ हैं, आवास के अभाव में यह प्रकृति की गोद में जन्म लेते हैं और इनकी निकली हड्डियाँ, पीली आँखे, सूखी खाल, फोड़े युक्त और मुरझाए चेहरे, इनके आर्थिक दृष्टि से अपाहिज होने की कहानी प्रस्तुत करते हैं।

विश्व बैंक रिपोर्ट 2000 के अनुसार अल्प–विकसित देशों में कुल जनसंख्या के निम्नतम 40 प्रतिशत परिवारों को GNP का औसत 14 प्रतिशत भाग, और उच्चतम 20 प्रतिशत परिवारों को GNP का 47 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। विकसित देशों के लिए यह अनुपात क्रमशः 18 तथा 41 है। इससे एक बात जाहिर है कि गरीबी और आय–विषमताएँ विश्व के लगभग सभी देशों में विद्यमान है। हाँ! उसकी गहनता विकासशील देशों में अपेक्षाकृत अधिक है। उल्लेखनीय बात यह है कि धनी तथा निर्धन देशों की प्रति–व्यक्ति आय में निरपेक्ष अन्तर अधिक तेजी से बढ़ा है और यह लगातार बढ़ने की प्रवृत्ति बनाए हुए है। उदाहरणार्थ, निम्न– आय देशों में प्रति–व्यक्ति औसत आय 1981 में 270 डालर से बढ़कर 1998 में 520 डालर हो गयी जबकि उच्च–आय देशों में यह 11120 डॉलर से बढ़कर 25510 डालर हो गयी। जबकि इन दोनों के प्रकार के देशों की आय में 1981 में 41 गुना अन्तर था, 1998 में यह बढ़कर 49 गुना हो गया। अतः स्पष्ट है कि पिछले पाँच दशकों की विकास–यात्रा के बावजूद गरीबी का भूत और वर्तमान एक ही धरातल पर खड़ा है अर्थात् उसमें कोई सुधार नहीं आ सका। सच तो यह है कि गरीबी के पंख पिछले काल में और भी अधिक फैल गए हैं।

गरीबी के मुख्य रूप से दो अर्थ लगाये जाते है – **प्रथम** – निरपेक्ष गरीबी तथा **द्वितीय**–सापेक्ष गरीबी।

निरपेक्ष गरीबी – सर्वप्रथम 1990 में निरपेक्ष गरीबी को नापने का प्रमाप प्रस्तुत किया गया, जब विश्व बैंक ने 1 अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन (लगभग 45 भारतीय रूपये) को गरीबी सीमा का पैमाना माना। 2005 में इसे बदल कर 1.2 अमेरिकी डॉलर (लगभग 60 भारतीय रूपये) प्रतिदिन कर दिया गया। लेकिन हाल ही में इसे बढ़ाकर 2.50 अमेरिकी डॉलर प्रति दिन कर दिया गया है।

एक व्यक्ति की निरपेक्ष गरीबी से अर्थ है कि उसकी आय का उपभोग व्यय इतना कम है कि वह न्यूनतम भरण–पोषण स्तर के नीचे स्तर पर रह रहा है। निरपेक्ष गरीबी का केवल, निम्न आय से ही नहीं मापा जाता बाकि कुपोषण, खराब स्वास्थ्य, कपड़ा, आवास और शिक्षा के अभाव से भी मापा जाता है। इसी बता को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते है कि ''गरीबी से अर्थ मानव की आधारभूत आवश्यकताओं खाना, कपड़ा, स्वास्थ्य सहायता, आदि की पूर्ति हेतु पर्याप्त वस्तुओं व सेवाओं को जुटा पाने में असमर्थता से है।'' यदि ये न्यूनतम वस्तुए एवं सेवायें किसी व्यक्ति को नही मिलती है तो कहते है कि वह गरीबी रेखा से नीचे स्तर पर रह रहा है। यदि उसे यह न्यूनतम वस्तुए व सेवायें मिल जाती है तो

कहते है कि वह गरीबी की रेखा के बराबर है। जब किसी व्यक्ति को इस न्यूनतम स्तर से अधिक वस्तुए व सेवायें मिलती है तो उसे गरीबी की रेखा के ऊपर कहा जाता है।

निरपेक्ष गरीबी को केवल निम्न आय से ही नहीं मापा जाता है बल्कि कुपोषण, खराब स्वास्थ्य, कपड़ा, आवास और शिक्षा के अभाव में भी मापा जाता है। अतः निरपेक्ष गरीबी लोगों के निम्न रहन–सहन के स्तर में झलकती है। ऐसे देशों में, अन्न उपभोग की मुख्य मद होती है और इस पर आय का लगभग 80 प्रतिशत व्यय किया जाता है जबकि विकसित देशों में आय का 20 प्रतिशत व्यय होता है। लोग अधिकतर अनाज खाते हैं और उनकी खुराक में मांस, मछली, और दुग्ध पदार्थों आदि पौष्टिक आहारों का नितान्त अभाव होता है। उदारणार्थ, भारत में प्रति व्यक्ति प्रति दिन, अनाज का उपभोग 430 ग्राम है जबकि विकसित देशों में 200 ग्राम से भी कम। भारत में प्रोटीन का प्रति व्यक्ति उपभोग 45 ग्राम है जबकि अमरीका में 100 ग्राम है। परिणामस्वरूप, अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसत कैलोरी खुराक 2000 से अधिक नहीं होती जबकि उन्नत देशों के लोगों की खुराक में यह 3000 कैलोरी से भी अधिक पाई जाती है।

ऐसे देशों में बाकी उपभोग मुख्य रूप से घास–फूंस की झोंपड़ी तथा नाममात्र के वस्त्र होते हैं। लोक अत्यन्त अस्वास्थयकारी परिस्थितियों में रहते हैं। विकासशील देशों में 120 करोड़ से अधिक लोगों को सुरक्षित पेयजल प्राप्त नहीं है तथा 140 करोड़ से भी अधिक लोगों के लिए साफ शौचालयों का प्रबन्ध नही है। प्रत्येक 10 शिशु जो जन्म लेते हैं, दो एक वर्ष के भीतर मर जाते है, एक और 5 वर्ष की आयु से पहले ही मर जाता है तथा केवल पांच 40 की आयु तक बचते है। इसके कारण कुपोषण, असुरक्षित जल, सफाई न पाया जाना, अज्ञानी माता–पिता, तथा रोगों से प्रतिरक्षा का अभाव है। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सेवाएं नाममात्र की पाई जाती है। नवीन आंकड़े बताते हैं कि भारत में 2520 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर है, बंगलादेश में 6730 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर, नेपाल में 32710 व्यक्तियों के लिए एक डॉक्टर तथा चीन में 1000 व्यक्तियों के लिए एक डॉक्टर है। इसके विपरीत विकसित देशों में 470 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर होता है। अधिकतर विकासशील देश शैक्षिक सुविधाओं को तीव्र गति से प्रसार कर रहे हैं। फिर भी, ऐसे प्रयत्न उनकी मानवशक्ति की आवश्यकताओं से कम रहते है। बहुत से निम्न आय देशों में प्राथमिक स्कूल आयु के लगभग 70 प्रतिशत शिशु पाठशाला जाते हैं। माध्यमिक स्तर पर, ऐसे देशों में स्कूल भर्ती दरें 20 प्रतिशत से कम होती हैं, जबकि उच्च शिक्षा में भर्ती 3 प्रतिशत तक ही पहुँचती है। फिर अधिकतर स्कूल तथा कॉलेज जाने वालों को दी जा रही शिक्षा उन देशों की विकास आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं होती है। इस प्रकार, अल्पविकसित देशों में बहुत अधिक लोग भूखे, नंगे, आवास–रहित तथा अशिक्षित होते हैं।

एक अनुमान के अनुसार, अल्पविकसित देशों में निरपेक्ष गरीबी में रह रहे लोगों की संख्या, चीन को छोड़कर लगभग 100 करोड़ है। इनमें से आधे दक्षिण एशिया अधिकतर भारत और बंगलादेश में निवासी करते है; 1/6 पूर्व और दक्षिण–पूर्व, अधिकतर इंडोनेशिया में; अन्य और 1/6 उप–सहारा अफ्रीका; तथा बाकी लेटिन अमरीका, उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य–पूर्व में रहते है। इस प्रकार गरीबी एक अल्पविकसित देश की आधारभूत बीमारी है जिसकी

विपत्ति के चक्र में वह फंसा हुआ है। **प्रो0 केर्नक्रास** ने ठीक कहा है कि अल्पविकसित देश विश्व अर्थव्यवस्था की गंदी बस्तियां है।

सापेक्ष गरीबी – सापेक्ष गरीबी से अर्थ आय की असमानताओं से होता है। जब दो देशों की प्रति व्यक्ति आय की तुलना करते है कि उनमे भारी अन्तर पाते है, इस अन्तर के आधार पर हम गरीबी की तुलना कर सकते है। यह गरीबी सापेक्षित होती है।

विश्व के देशो का आय स्तर (2012)

देश	प्रति व्यक्ति **GNP** (डॉलर)	देश	प्रति व्यक्ति **GNP**(डॉलर)
स्विट्जरलैंड	79033	चीन	6076
यू0एस0एस0	49922	इंडोनेशिया	3910
जापान	46736	श्रीलंका	2873
कुवैत	45824	भारत	1492
जर्मनी	41513	पाकिस्तान	1296
यू0 के0	38589	बंगलादेश	850

स्रोत– IMF(2012)

27.4 गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप

ऑक्सफोर्ड पॉपर्टी एण्ड ह्यूमन डेवलपमेंट इनिशिएटिव तथा **संयुक्त राष्ट्र विकास** कार्यक्रम द्वारा 2010 में बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) विकसित किया गया है। जिसमें गरीबी निर्धारण करने के लिए आय के अतिरिक्त विभिन्न कारकों का प्रयोग किया गया है। जिसने पिछले मानव गरीबी सूचकांक को बदल दिया है। MPI में बहुआयामी आधार पर गरीबी की सूची तैयार की जाती है। जिसके आधार पर उन लोगों को जो भारित संकेतक के 33. 33% के नीचे होते है उन्हें MPI आधार पर गरीब माना जाता है। मानव विकास सूचकांक (HDI) में स्वास्थ्य शिक्षा तथा जीवन स्तर तीन आयामों का उपयोग किया जाता है। जबकि MPI में दस संकेतक प्रयोग में लाये जाते है जो इस प्रकार है।

मापक / कारक	संकेतक
स्वास्थ्य	▪ शिशु मृत्यु–दर ▪ पोषण
शिक्षा	▪ विद्यालय में पूरे किये पूर्ण ▪ छात्र नामांकन संख्या
जीवन स्तर	▪ ईधन ▪ शौचालय ▪ पानी ▪ बिजली ▪ मकान की मंजिल ▪ सम्पत्ति

स्वास्थ्य – प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/6 पर भारित है।

- **शिशु मृत्यु–दर**
- **पोषण**

शिक्षा – प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/6 पर भारित है।

- **विद्यालय में पूरे किये पूर्ण**
- **छात्र नामांकन संख्या**

जीवन स्तर – प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/18 पर भारित है।

- **ईधन**
- **शौचालय**
- **पानी**
- **बिजली**
- **मकान की मंजिल**
- **सम्पत्ति**

27.5 भारतीय गरीबी के माध्यम से गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप का वर्णन

भारत के 1.21 विलियन जनसंख्या में से केवल 38% अशिक्षित तथा 420 मिलियन गरीब आठ राज्यों में रहते है। देश के 250 मिलियन लोगों के पास बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं तथा लगभग 350 मिलियन लोगों के पास स्वच्छ पेयजल नहीं है। अधिकांश विद्यालयों में छात्र शिक्षक अनुपात सही नहीं है। साथ ही विद्यालय भवनों की स्थित भी सही नहीं है। भारत में गरीबी के मापक (प्रमाप) के लिए कैलोरी को आधार माना गया है। ग्रामीण क्षेत्र के लिए 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र के लिए 2100 कैलोरी निर्धारित की गई है। हाल ही में सरकार ने केलकर समिति की परिभाषा को स्वीकार कर स्वास्थ्य और शिक्षा को भी इनमें शामिल करने की बात कहीं है। इस आधार पर 2010 के आकंड़ों के आधार पर 32.7% लोग गरीब थे, जबकि 2005 में 37% लोग गरीब थे। जबकि विश्व बैं के 1.25 डॉलर प्रतिदिन के मापक (प्रमाप) के आधार पर 2005 में 42% लोग गरीब थे। (यदि 2 डॉलर प्रतिदिन को आधार माना जाये तो भारत में 75% लोग गरीब है)। आय आधारित प्रमाप गरीबी को पूर्णरूप से परिभाषित नहीं कर सकता। इसलिए स्वास्थ्य सुविधायें, स्वच्छ पेयजल, पौष्टिक भोजन, शिक्षा व आवास आदि को गरीबी के प्रमाप तथा संकेतकों के रूप में शामिल किया गया है मानव विकास सूचकांक, वैश्विक हंगर सूचकांक, मानव गरीबी सूचकांक तथा बहुआयामी गरीबी सूचकांकों का निर्माण किया गया जिससे वास्तविक गरीबी का उचित अनुमान लगाकर उसे दूर किया जा सकें।

27.5.1 वैश्विक भूखमरी सूचकांक Global Hunger Index (GHI) :– अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान ने विश्व भुखमरी सूचकांक निकाले के लिए बच्चों के कुपोषण, बाल मृत्यु दर और समुचित कैलोरी के वंचित लोगों की संख्या को आधारा बनाया जाता है। हाल के वैश्विक भुखमरी सूचकांक 2010 में 29 भूख के उच्चतम् स्तर देश में भारत भी रहा जहां भूखमरी का ऊँचा स्तर था, कुपोषित बच्चे भारत का 84 विकासशील देशों में 67वां स्थान था जबकि पाकिस्तान 52वें तथा चीन 9वें स्थान पर था। भारत में महिलाओं कें निम्न स्वास्थ्य तथा कुपोषित बच्चों के कारण

भारत में भुखमरी थी। भारत में 5 वष कम उम्र के 46% बच्चे कुपोषित थे जबकि पाकिस्तान में मात्र 5% श्रीलंका में 39% तथा नेपाल में 56% बच्चे कुपोषित थे।

27.5.2 मानव गरीबी सूचकांक Human Poverty Index (HPI) :—संयुक्त राष्ट्र संघ का मानव गरीबी सूचकांक एक ओर व्यापकरूप से प्रयोग होने वाला गरीबी का संकेतांक है। जिसकी भावना करने के लिए विकसित व विकासशील देशों के अलग—अलग सूचकांक है। इसलिए यह तुलनीय नहीं है। यह गरीबी के गणना में तीन आयामों पर केन्द्रित है। जीवन प्रत्याशा (दीर्घायु) ज्ञान (शिक्षा) तथा जीवन स्तर। 2009 में 182 देशों में भारत का स्थान 134 था जबकि चीन 92 वे स्थान पर था। नार्वे प्रथम स्थान पर तथा आस्ट्रेलिया तथा आइसलैण्ड द्वितीय तथा तृतीय स्थान पर थे। 2010 में मानव गरीबी सूचकांक को बहुआयामी गरीबी सूचकांक से प्रतिस्थापित कर दिया गया।

27-5-3 बहुआयामी गरीबी सूचकांक Mulitidimensional Poverty Index (MPI) :- ऑक्सफोर्ड पॉपर्टी एण्ड ह्यूमन डेवलपमेंट इनिशिएटिव तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 2010 में बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) विकसित किया गया है। जिसमें गरीबी निर्धारण करने के लिए आय के अतिरिक्त विभिन्न कारकों का प्रयोग किया गया है। जिसने पिछले मानव गरीबी सूचकांक को बदल दिया है। मानव विकास सूचकांक (HDI) में स्वास्थ्य शिक्षा तथा जीवन स्तर तीन आयामों का उपयोग किया जाता है। जबकि MPI में दस संकेतक प्रयोग में लाये जाते है जो इस प्रकार है।

संकेतक	मापक / कारक
1. शिशु मृत्यु—दर 2. पोषण	**स्वास्थ्य** — प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/6 पर भारित है।
3. विद्यालय में पूरे किये पूर्ण 4. छात्र नामांकन संख्या	**शिक्षा** — प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/6 पर भारित है।
5. ईधन 6. शौचालय 7. पानी 8. बिजली 9. मकान की मंजिल 10. सम्पत्ति	**जीवन स्तर** — प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/18 पर भारित है।

MPI में बहुआयामी आधार पर गरीबी की सूची तैयार की जाती है। जिसके आधार पर उन लोगों को जो भारित संकेतक के 33.33% के नीचे होते है उन्हें MPI आधार पर गरीब माना जाता है। यह गरीबी की दृढ तथा तीव्रता दोनों को दर्शाता है और भारतीय गरीबी पर गहराई से रोशनी डालता है। अगर कोई व्यक्ति भारित संकेतकों में 33.33% से कम भारत प्राप्त करता है। तो वह गरीब है। इस परिभाषा के अनुसार भारत में 55%

लोग गरीब है और लगभग 20% भारतीय 10 संकेतकों में से 6 से वंचित है। मैक्सिकों में सरकारी गणना में इस उपयोग कोलम्बिया इस पर विचार कर रहे हैं। उम्मीद है कि भारतीय योजनाकार भी इस पर ध्यान देंगे।

आय के एकल आयामी संकेतांक की तुलना में बहुआयामी सूचकांक गरीबी की प्रकृति, विस्तार और गहनता को सही रूप से समझने में सक्षम है। इसलिए नीतिकारों को इस पर ध्यान देना चाहिए, जिससे विश्व के विभिन्न देशो में गरीबों की पहचान हो सके और उनकी स्थिति सुधारने को नीतियाँ बनाई जा सके।

27.6 सारांश

प्रारम्भिक विकासवादियों ने आर्थिक विकास के प्रश्न को केवल GNP में वृद्धि करने तक सीमित रखा और सामाजिक न्याय अथवा सामाजिक कल्याण के प्रति कभी चिन्ता प्रकट नहीं की। अधिकांश विकासशील देशों में आज विकास और गरीबी के बीच टकराव की यह स्थिति उत्पन्न हो चुकी है। आधुनिक विकासवादियों ने अब नई दिशा में सोचना शुरू कर दिया है। उनका मानना है कि आर्थिक कल्याण और सामाजिक न्याय वास्तव में आर्थिक विकास के मूलभूत उद्देश्य हैं। अल्पविकसित देश गरीबी का मारा होता है। उसकी गरीबी प्रति व्यक्ति आय में झलकती है। सन् 1995 के World Development Report के आकंड़े राष्ट्रों के बीच विस्तृत आय असमानताएं बताता है। गरीबी के मुख्य रूप से दो अर्थ लगाये जाते है – प्रथम – निरपेक्ष गरीबी तथा द्वितीय–सापेक्ष गरीबी।एक व्यक्ति की निरपेक्ष गरीबी से अर्थ है कि उसकी आय का उपभोग व्यय इतना कम है कि वह न्यूनतम भरण–पोषण स्तर के नीचे स्तर पर रह रहा है। सापेक्ष गरीबी से अर्थ आय की असमानताओं से होता है। भारत में गरीबी के मापक (प्रमाप) के लिए कैलोरी को आधार माना गया है। ग्रामीण क्षेत्र के लिए 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र के लिए 2100 कैलोरी निर्धारित की गई है। जब विश्व बैंक ने 1 अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन (लगभग 45 भारतीय रूपये) को गरीबी सीमा का पैमाना माना। लेकिन हाल ही में इसे बढ़ाकर 2.50 अमेरिकी डॉलर प्रति दिन कर दिया गया है। ऑक्सफोर्ड पॉपर्टी एण्ड ह्यूमन डेवलपमेंट इनिशिएटिव तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 2010 में बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) विकसित किया गया है। जिसमें गरीबी निर्धारण करने के लिए आय के अतिरिक्त विभिन्न कारकों का प्रयोग किया गया है। जिसने पिछले मानव गरीबी सूचकांक को बदल दिया है। जिसके आधार पर उन लोगों को जो भारित संकेतक के 33.33% के नीचे होते है उन्हें MPI आधार पर गरीब माना जाता है। MPI में दस संकेतक प्रयोग में लाये जाते है। आय के एकल आयामी संकेतांक की तुलना में बहुआयामी सूचकांक गरीबी की प्रकृति, विस्तार और गहनता को सही रूप से समझने में सक्षम है।

27.7 शब्दावली

दोहन	–	उत्पादन हेतु अत्यधिक उपयोग
आधारभूत संरचना		विकास में सहायक आधार जैसे–सड़क, परिवहन, विद्युत, लोह इस्पात, सीमेंट उद्योग आदि।
जी.एस.डी.पी.	–	राज्य का सकल घरेलू उत्पादन अर्थात् राज्य द्वारा एक वर्ष

		में उत्पादित वस्तुएँ व सेवायें
एकीकृत औद्योगिक क्षेत्र	–	ऐसा औद्योगिक क्षेत्र जहाँ उद्योगो की स्थापना हेतु सम्पूर्ण सुविधाएँ हो।
पुनगर्ठन	–	ऐसा उद्योग जो संगठन में दोष के कारण हानि में चल रहे हो उनका संगठन व्यवस्था में सुधार
शीर्षस्थ	–	सबसे उच्च स्तर या प्रमुख
गतिशील उद्यमीयों	–	ऐसे उद्यमी जिनकी विचार धारा आधुनिक हो और जो नवीन तकनीक को बढ़ावा दें।
समन्वय	–	तालमेल
कार्यान्वयन	–	लागू करना
संवर्धन	–	वृद्धि या विकास करना

27.8 अभ्यास प्रश्न

निम्न का पूरा नाम लिखो :–

1. **GHI**
2. **HPI**
3. **MPI**

उत्तर (1) वैश्विक भूखमरी सूचकांक Global Hunger Index (2) मानव गरीबी सूचकांक Human Poverty Index (3) बहुआयामी गरीबी सूचकांक Mulitidimensional Poverty Index.

रिक्त स्थान भरों :–

1. प्रारम्भिक विकासवादियों ने आर्थिक विकास के प्रश्न को केवल ..... में वृद्धि करने तक सीमित रखा।
2. आर्थिक–संवृद्धि के ..... पर इतना अधिक विश्वास था।
3. विश्व बैंक रिपोर्ट 2000 से पुष्टि होती है कि, ''विकासशील देशों की ..... जनसंख्या गरीबी–रेखा से नीचे है।''
4. सुप्रसिद्ध पाकिस्तानी अर्थशास्त्री ..... ने ठीक ही कहा है कि ''ऊँची संवृद्धि–दर बढ़ती हुई गरीबी और आर्थिक विस्फोटों के विरूद्ध कोई गारण्टी नहीं है।
5. 1997 की World Development Report के अनुसार 1995 में विश्व की .... प्रतिशत जनसंख्या की औसत GNP प्रति व्यक्ति 430 डॉलर थी।
6. 1995 (World Development Report) में ..... बहुत धनी विकसित देश थे।
7. विश्व बैंक रिपोर्ट 2000 के अनुसार, 1998 में विकासशील देशों की कुल जनसंख्या का ..... भाग निर्धनता–रेखा से नीचे था।
8. विश्व बैंक रिपोर्ट 2000 के अनुसार निर्धनता–रेखा का आधार गरीबों के लिये ..... डॉलर प्रति व्यक्ति वार्षिक ।

9. गरीबी के मुख्य रूप से दो अर्थ लगाये जाते है – प्रथम .....द्वितीय– ..... गरीबी।
10. सर्वप्रथम .....में निरपेक्ष गरीबी को नापने का प्रमाप प्रस्तुत किया गया।
11. 2005 में विश्व बैंक ने ..... अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन को गरीबी सीमा का पैमाना माना।
12. अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसत कैलोरी ..... से अधिक नहीं होती जबकि उन्नत देशों के लोगों की में ..... कैलोरी से भी अधिक पाई जाती है।
13. भारत में ..... व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर है।
14. विकसित देशों में..... व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर होता है।
15. ऑक्सफोर्ड पॉपर्टी एण्ड ह्यूमन डेवलपमेंट इनिशिएटिव तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 2010 में ..... विकसित किया गया है।
16. उन लोगों को जो भारित संकेतक के .....के नीचे होते है उन्हें MPI आधार पर गरीब माना जाता है।
17. MPI में ..... संकेतक प्रयोग में लाये जाते है।
18. स्वास्थ्य में प्रत्येक सूंचक समान रूप से ..... पर भारित है।
19. शिक्षा में प्रत्येक सूंचक समान रूप से ..... पर भारित है।
20. जीवन स्तर में प्रत्येक सूंचक समान रूप से .....पर भारित है।
21. भारत में गरीबी के मापक (प्रमाप) के लिए ..... को आधार माना गया है।
22. ग्रामीण क्षेत्र के लिए ..... कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र के लिए ..... कैलोरी निर्धारित की गई है।
23. गरीबी के मापक आधार पर 2010 के आकंड़ों के आधार पर ..... लोग गरीब थे।
24. गरीबी का मापक 2 डॉलर प्रतिदिन को आधार माना जाये तो भारत में .....लोग गरीब है।
25. अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान ने ..... सूचकांक निकाला।
26. संयुक्त राष्ट्र संघ का ..... सूचकांक व्यापक रूप से प्रयोग होने वाला गरीबी का संकेतांक है।

<u>उत्तर</u>–(1) GNP (2)''रिसते अधोगामी प्रभाव'' (trickle down effects) (3) एक–तिहाई (4) प्रो0 महबूब–उल–हक (5) 56 प्रतिशत (6) 23 (7) एक तिहाई (8). 370 (9) प्रथम – निरपेक्ष गरीबी तथा द्वितीय– सापेक्ष गरीबी। (10)1990 (11) 1. 2 अमेरिकी डॉलर (12) 2000 कैलोरी, 3000 (13) 2520 (14) 470(15) बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) (16) 33.33% (17) दस (18) 1/6 (19)1/6 (20) 1/18 (21) कैलोरी (22) 2400 कैलोरी, 2100 कैलोरी (23) 32.7% (24) 75% (25) विश्व भुखमरी सूचकांक (26) मानव गरीबी सूचकांक ।

27.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Singh, S.P. (2010),"*Economics of Development and Planning and Practics*", S and Chan Publicshing House.
2. Jhingan, M. L. (2000) ,"*Economics of Development and Planning*" , Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.

3. Seth, Ranjana (2010), "*Industrial Economics*", Ane Books Pvt. Ltd.New Delhi.
4. Mishra, S.K. and Puri, V.K.(2007), "*Economics of Development and Planning Theory and Practice"*, Himalaya Publishing House.
5. Dhingra , I. C. (2009), "*Development Economics*", sultan Chand and Sons.

27.10 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री

- Ravallion, Martin (1998), "Poverty Lines in Theory and Practice," Living Standards Measurement Study Working Paper 133, World Bank, Washington DC.
- Measures of Poverty and Inequality Measures, Chapters 4 and 6 of WBI's Basic Poverty Measurement and Diagnostics course, review poverty and inequality indicators.
- Bourguignon, Francois and Satya R. Chakravarty. "The Measurement of Multidimensional Poverty." Journal of Economic Inequality 1:25-49, 2003.
- www.Wikipediaencyclopedia.com
- http:/socialissuesindia.wordpress.com
- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), "*Development Economics*", Oxford University Press India.
- Data refer mostly to the year 2012. World Economic Outlook Database-April 2013, International Monetary Fund. Accessed on 16 April 2013.

27.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4. गरीबी आप से आप क्या समझते है ? निरपेक्ष गरीबी तथा सापेक्ष गरीबी पर प्रकाश डालिए।
5. गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप की संक्षिप्त व्याख्या करो।
6. भारतीय गरीबी के माध्यम से गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप का वर्णन करो।

इकाई 28 नियोजन की तकनीकी का चुनाव तथा उपयुक्त तकनीकी विनियोग कसौटी लागत और लाभ विश्लेषण

इकाई संरचना

28.1 प्रस्तावना
28.2 उद्देश्य
28.3 नियोजन की तकनीकी का चुनाव
28.3.1 नियोजन की तकनीकी का अर्थ
28.3.2 तकनीकी चुनाव की समस्या
28.4 नियोजन की तकनीकी के प्रकार
28.4.1 श्रम प्रधान तकनीकी
28.4.2 श्रम प्रधान तकनीकी की विशेषताऐं
28.4.3 श्रम प्रधान तकनीकी की सीमाऐं
28.4.4 पूँजी प्रधान तकनीकी
28.4.5 पूँजी प्रधान तकनीकी की विशेषताऐं
28.4.6 पूँजी प्रधान तकनीकी की सीमाऐं
28.5 उपयुक्त तकनीकी तथा अर्थव्यवस्था की प्रगति
28.6 नियोजन तकनीकी के क्रियान्वयन सम्बन्धित समस्यायें
28.7 विनियोग कसौटी
28.7.1 विनियोग कसौटी के प्रकार
28.7.2 लागत लाभ विश्लेषण
28.7.3 लागत लाभ विश्लेषण की आलोचना
28.8 सारांश
28.9 शब्दावली
28.10 अभ्यास प्रश्न
28.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
28.12 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ
28.13 निबन्धात्मक प्रश्न

28.1 प्रस्तावना

'भारत में नियोजन' खण्ड से सम्बन्धित यह उनतीसवीं इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आप अर्थव्यवस्था की प्रकृति तथा उनके विकास से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को भली–भाँति समझ गये होंगे। प्रकृति इकाई में नियोजन की तकनीकी से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जायेगा जिसके अन्तर्गत तकनीकी के चुनाव तथा अर्थव्यवस्था के विकास के लिए उपयुक्त तकनीकी की आवश्यकता को बताया जायेगा। इसके साथ विनियोग कसौटी के अन्तर्गत लागत और लाभ विश्लेषण का आलोचनात्मक अध्ययन किया जायेगा।

अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं आकार के आधार पर विकास प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान करने के लिए सत्ताओं या अर्थव्यवस्थाओं के नियन्त्रकों द्वारा अलग–अलग प्रकार से नियोजन की प्रक्रिया प्रयोग में लायी जाती है। वर्तमान में सभी देशों की अर्थव्यवस्थाऐं कुछ समान विशेषताओं को समाहित करती हैं जिसके आधार पर नियोजन की तकनीकी में भी भिन्नताऐं पायी जाती हैं। आर्थिक सुधारों के दौरान एक देश की नियोजन तकनीकी का प्रभाव दूसरे देश की नियोजन तकनीकी पर पड़ना स्वाभाविक है। इस आधार पर अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिए अपनायी गयी नियोजन तकनीकी में समयानुसार परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद अर्थव्यवस्था के लिए अपनायी गयी नियोजन तकनीकी सम्बन्धी जानकारी का गहराई से अध्ययन कर सकेंगे तथा नियोजन की तकनीकी सम्बन्धी सीमाओं का भी अध्ययन आप कर सकेगें।

28.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि–

1. नियोजन की तकनीकी से क्या अभिप्राय है तथा अर्थव्यवस्था के लिए तकनीकी के चुनाव की समस्या किस प्रकार पैदा होती है।
2. नियोजन की तकनीकी कितने प्रकार की होती हैं तथा अर्थव्यवस्थाओं के लिए तकनीकी की क्या प्रासंगिकता है।
3. अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति तथा आकार के आधार पर तकनीकी की आवश्यकता क्यों बदलती रहती है।
4. तकनीकी के मूल्यांकन की भी अत्यन्त आवश्यकता है जिसके लिए अनेक कसौटियों का निर्धारण किया गया है जिसके सम्बन्ध में लागत–लाभ विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है जिसके बारे में आप सरलता से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

28.3 नियोजन की तकनीकी का चुनाव

नियोजन की तकनीकी के चुनाव का अभिप्राय उस वैकल्पिक प्रक्रिया से लगाया जाता है जिसके द्वारा किसी देश में उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग अनुकूलतम तथा सर्वोत्तम ढंग से हो सके तथा आर्थिक विकास की दर में वृद्धि हो। सभी देशों में उपलब्ध संसाधनों को उत्पादन कार्य में इस प्रकार से लगाने की आवश्यकता रहती है कि इन संसाधनों के मध्य विभिन्न संयोगों को किस रूप में अपनाया जाय कुछ देशों में श्रम संसाधनों की अधिकता है तो कुछ में पूँजीगत संसाधनों की। देशों के अन्दर निजी संसाधनों के सर्वोत्त्म

ढंग से प्रयोग करने के साथ–साथ विदेशी संसाधनों के प्रयोग करने के लिए तकनीकी का एक उचित रूप चुनाव करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

28.3.1 नियोजन की तकनीकी का अर्थ

ए.के. सेन के अनुसार– ''विभिन्न तकनीकों का, प्रायः अभिप्राय होता है, अर्थव्यवस्था के निष्पादन के बहुत विभिन्न प्रयत्नों के साथ आर्थिक विकास की बिल्कुल विभिन्न कूटनीतियां''नियोजन की तकनीकी के अन्तर्गत इस प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है कि एक अर्थव्यवस्था उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग उत्पादन कार्य करने के लिए करती है। अर्थव्यवस्थाऐं उत्पादन कार्य को देश की आवश्यकता के अनुसार सम्पन्न कराती हैं तथा यह उत्पादन प्रक्रिया किसी भी स्तर की हो सकती है, पिछड़े देशों की तकनीकी निम्न कोटि की तथा विकसित देशों की नियोजन तकनीकी उच्च कोटि की।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि नियोजन की तकनीकी एक निरपेक्ष प्रक्रिया है जो केवल उपलब्ध संसाधनों के केवल किसी भी स्तर पर प्रयोग करने से सम्बन्ध रखती है। जबकि तकनीकी का विकास एक सापेक्ष प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत संसाधनों का पूर्व की अपेक्षा कुशलतम रूप में प्रयोग करने के प्रयासों एवं उपायों को शामिल किया जाता है।

उदाहरण के लिए भारत के कुछ राज्यों में वर्तमान में भी कृषि कार्य में पुरानी तथा नवीन तकनीकी का एक साथ प्रयोग देखा जा सकता है। यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि नियोजन की तकनीकी का सम्बन्ध वृहद स्तर की तकनीकी से है न कि व्यक्तिगत स्तर की तकनीकी से। क्योंकि नियोजन शब्द का प्रयोग अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में किया जाता है।

28.3.2 तकनीकी चुनाव की समस्या

किसी देश के आर्थिक विकास के लिए उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग के लिए अनेक रूप में योजनाऐं तैयार की जा सकती हैं जिसके द्वारा अलग–अलग स्तर पर प्रतिफलों को प्राप्त किया जा सकता है। देश के सम्मुख उपस्थित सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग को इस प्रकार से किया जाय ताकि निम्न उद्देश्यों के नजदीक पहुँचा जा सके।

- उपलब्ध संसाधनों को वितरण उचित रूप में हो सके।
- संसाधनों के वितरण में अधिकतम कुशलता प्राप्त की जा सके।
- उत्पादन अधिकतम तथा लागत को न्यूनतम किया जा सके।
- अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

प्रायः देश के सामने यह समस्या पायी जाती है कि संसाधनों का प्रयोग गहन रूप में किया जाय या विस्तृत रूप में। नियोजन तकनीकी के चुनाव की दृष्टि से देश में उलब्धता संसाधनों को दो रूपों में देखा जाता रहा है– पूँजीगत संसाधन तथा श्रमगत संसाधन।

28.4 नियोजन की तकनीकी के प्रकार

देश में उपलब्ध संसाधनों की प्रचुरता तथा अल्पता के आधार पर दो प्रकार की नियोजन की तकनीकी का अध्ययन किया जायेगा।

(क) श्रम प्रधान तकनीकी (Labour Intensive Techniques)

(ख) पूँजी प्रधान तकनीकी (Capital Intensive Techniques)

28.4.1 श्रम प्रधान तकनीकी

श्रम प्रधान तकनीकी से तात्पर्य ऐसी नियोजन की तकनीकी से है जिसके अन्तर्गत पूँजी की प्रति इकाई पर श्रम की अधिक इकाईयों का प्रयोग किया जाता है अर्थात् श्रम प्रधान तकनीकी में श्रम का सापेक्षिक रूप से अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है। उत्पादन बढ़ाने या विकास की वृद्धि दर बढ़ाने के लिए श्रम की अधिकाधिक मात्रा में सापेक्ष रूप में वृद्धि की जाती है। सामान्य रूप में, नियोजन की जिस तकनीकी में श्रम का प्रधानता के साथ प्रयोग किया जाता है उसे श्रम प्रधान तकनीकी कहा जाता है।

चित्र 28.1 द्वारा प्रधान तकनीकी को भलीभाँति स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में OX अक्ष पर श्रम की इकाईयों को तथा OY अक्ष पर पूँजी की इकाईयों को दर्शाया गया है। O बिन्दु से 45^0 अंश के कोण पर रेखा oh, खींची गयी है जो श्रम प्रधान तथा पूँजी प्रधान तकनीकी की निर्धारण रेखा है।

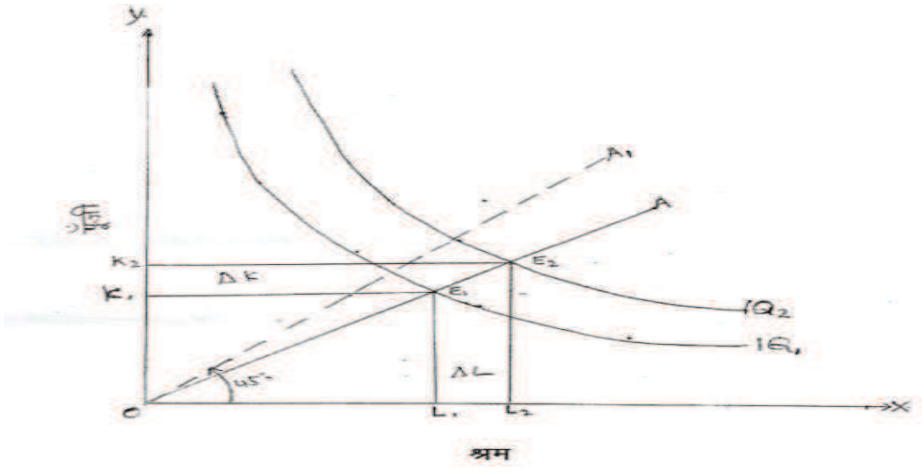

चित्र 29.1

समोत्पाद वक्र IQ_1 तथा IQ_2 उत्पादन के स्तर को दर्शाती है तथा रेखा का OA ढाल श्रम की प्रधानता को स्पष्ट करता है। समोत्पादक वक्र IQ_1 अक्ष के E_1 बिन्दु पर श्रम की L_1 तथा पूँजी की OK_1 मात्रा प्रयोग में लायी जा रही है E_1 बिन्दु पर उत्पादन के लिए पूँजी की अपेक्षा श्रम की अधिक इकाईयों / मात्रा का प्रयोग किया जा रहा है। उत्पादन की मात्रा को IQ_1 से IQ_2 तक बढ़ाने पर श्रम की मात्रा OL_1 से बढ़ाकर OL_2 तक प्रयोग में लायी जा रही तथा पूँजी की मात्रा OK_1 से बढ़ाकर OK_2 तक प्रयोग में लायी जा रही है। उत्पादन में E_1 से E_2 तक की वृद्धि के लिए श्रम तथा पूँजी दोनों साधनों की मात्रा बढ़ायी गयी है लेकिन श्रम की इकाईयों में वृद्धि (ΔL), पूँजी की इकाईयों में वृद्धि (ΔK) की अपेक्षा अधिक है। अतः उत्पादन की प्रक्रिया में श्रम का प्रयोग प्रधान रूप में किया जा रहा है।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि रेखा OA_1 से OX अक्ष की ओर समोत्पाद वक्रों के किसी भी बिन्दु पर उत्पादन के लिए अपनायी जाने वाली नियोजन की तकनीकी श्रम प्रधान होगा।

28.4.2 श्रम प्रधान तकनीकी की विशेषताऐं

किसी देश में अपनायी जाने वाली नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी की विशेषताओं को निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

- श्रम प्रधान तकनीकी बेराजगारी दूर करने में सहायक होती है जो आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक समझी जाती है। इस तकनीक के अन्तर्गत प्रति पूँजी इकाई पर श्रम की खपत अधिक होती है। जो भारत जैसी श्रम की प्रधानता वाली अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त ही लाभप्रद समझी गयी है।
- विकास के प्रारम्भ में पिछड़े तथा अल्पविकसित देशों के लिए श्रम प्रधान तकनीकी उपयुक्त समझी जाती है क्योंकि इस तकनीकी में कम पूँजी की आवश्यकता होती है। इन देशों में सामान्यतः पूँजी की कमी पायी ही जाती है। किसी भी अर्थव्यवस्था में श्रम का पूर्ण प्रयोग किये बिना पूँजी का निर्माण करना सम्भव नहीं है। विकसित देशों में भी श्रम की न्यूनता के कारण श्रम का पूर्ण प्रयोग अल्प काल में सम्भव हुआ। इसी श्रम के पूर्ण प्रयोग के कारण पूँजी का अधिक निर्माण सम्भव हुआ है।
- श्रम प्रधान तकनीकी के अन्तर्गत उच्च स्तर की कुशलता की आवश्यकता नहीं होती है। विकास का सम्बन्ध केवल भौतिक पूँजी निर्माण से नही है। बल्कि मानवीय संसाधनों का भी संस्थागत विकास शामिल है। पूँजी प्रदान देशों में पूँजी के प्रयोग के लिये उच्च स्तर तकनीकी कुशलता अत्यन्त आवश्यक है जिसे श्रम का पूर्ण प्रयोग करके ही प्राप्त किया जा सकता है।
- ऐसे देशों में इस तकनीकी से नियोजन तथा उत्पादन के मध्य समयन्तराल बहुत कम पाया जाता है। विकासशील देशों के सामने भी उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के दौर में व्यापार चक्रों का दौर अल्पकाल में प्रायः पाया जाता रहा है। जिसके लिये यथाशीघ्र उपायों की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में श्रम प्रधान नियोजकों की तकनीकी यथाशीघ्र परिणाम देने वाली होती है।
- श्रम प्रधान तकनीकी के द्वारा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तथा आय के वितरण के मध्य असमानताऐं कम पायी जाती हैं। श्रम के प्रयोग से निम्न तथा मध्यम वर्ग की आजीवका में वृद्धि होती है। जो किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये आवश्यक समझी गयी है। यह तकनीकी अपेक्षाकृत अधिक लागत वाली पायी गयी है। उत्पादन की तकनीकी की दिशा में होने वाले परिवर्तन लागतों को न्यूनतम् करने पर अत्यधिक केन्द्र है। श्रम प्रधान तकीनकी के अन्तर्गत लागतों की अधिकता पायी गयी है।

28.4.3 श्रम प्रधान तकनीकी की सीमाऐं

नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी के अन्तर्गत अनेक प्रकार की सीमाओं का सामना करना पड़ता है।

जिन अर्थव्यवथाओं में जनसंख्या के जीवन निर्वाह का स्तर निम्न स्तर का है वहाँ पर श्रम नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी को अपना आवश्यक तो हो जाता है लेकिन पूर्ण रूप से सफल नहीं कहा जा सकता है। नियोजन की इस तकनीकी के अन्तर्गत कार्यकुशलता, निष्ठा तथा सकारात्मक सोच का पाया जाना अत्यन्त आवश्यक समझा गया है। श्रम की निम्न कार्यकुशलता तथा नकारात्मक सोच अर्थव्यवस्था के लिये अपनायी गयी नियोजन प्रक्रिया के उद्देश्य को अवरोधित करती है। विशेष कर श्रम कल्याण तथा श्रम सामाजिक सुरक्षा का अनावश्यक लाभ लेने के कारण अर्थव्यवस्था के विकास में अनेक प्रकार की बाधायें उत्पन्न हो जाती हैं। आपको यह ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक हैं कि भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का निष्पादन आशाओं के अनुकूल प्राप्त नहीं किया जा सका परिणाम स्वरूप नियोजन की तकनीकी में आवश्यक परिवर्तनों का सहारा लेना पड़ा है। वर्तमान में भी नियोजन की तकनीकी के लिये मानवीय श्रम संसाधनों के विकास पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है।

इसी क्रम में यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि नियोजन की इस श्रम प्रधान तकनीकी एक अन्य सीमा अन्य दूसरी अर्थव्यवस्थाओं से प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरण पैदा होना भी रहा है। कोई भी अर्थव्यवस्था केवल अपनी आन्तरिक व्यवस्थाओं एवं नियोजन प्रक्रिया द्वारा अपने को सुरक्षित या अप्रभावित नहीं रख सकती है। किसी भी देश की श्रम प्रधान तकनीकी अन्य सम्बन्धित अर्थव्यवस्थाओं की नियोजन की तकनीकी का भी योजना निर्माण में ध्यान रखना होता है। वर्तमान में देशों के सामने एक ओर आर्थिक विकास की दर को तीव्र करना है तो वहीं दूसरी और बेरोजगारी तथा गरीबी जैसी समस्याओं का भी समाधान करना जैसी कठिनाईयाँ पाई गई हैं। नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी को अपनाने के साथ अर्थव्यवस्था के लिये सुरक्षात्मक वातावरण बनाना अत्यन्त आवश्यक समझा गया है।

यहाँ यह भी स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि अर्थव्यवस्थाओं के लिये सभी क्षेत्रों के विकास को एक समान नियोजन की तकनीकी को नहीं अपनाया जा सकता है। जिन अर्थव्यवस्थाओं के सभी क्षेत्रों का समान विकास हुआ है या समान विकास की आवश्यकता है। उन देशों में नियोजन की इस श्रम प्रधान तकनीकी को अपनाया जा सकता है। विकासशील तथा पिछड़े देशों की अर्थव्यवस्था अनेक क्षेत्रों में विभक्त होती है। जिनका समान या उच्च गति से विकास करना श्रम प्रधान नियोजन की तकनीकी से सम्भव नहीं है। अर्थव्यवस्थाओं का विकसित क्षेत्र पूँजी प्रधान तकनीकी के लिये ही उपयुक्त है। जबकि पिछड़ा हुआ क्षेत्र श्रम प्रधान तकनीकी के लिये उपयुक्त कहा जा सकता है। क्योंकि इस क्षेत्रों के पास पर्याप्त पूँजी नहीं पायी जाती है। नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी को अपनाने के लिये अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के लिये विकास की आवश्यकता समान रूप से होनी चाहिये अन्यथा नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी के क्षेत्र में कार्य निष्पादन का स्तर अपेक्षाकृत कम रहेगा तथा यह तकनीकी अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ नहीं रहेगी।

28.4.4 पूँजी प्रधान तकनीकी

पूँजी प्रधान तकनीकी से तात्पर्य नियोजन की उस तकनीकी से लगाया जाता है जिसके अन्तर्गत देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पूँजी का प्रयोग प्रधानता के रूप में किया

जाता है सामान्य रूप में श्रम की मात्रा पर पूँजी की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है। उत्पादन में वृद्धि के स्तर पर भी श्रम की अपेक्षा पूँजी की मात्रा में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि की जाती है। चित्र 28.2 के द्वारा पूँजी प्रधान तकनीकी को आसानी से समझाया जा सकता है।

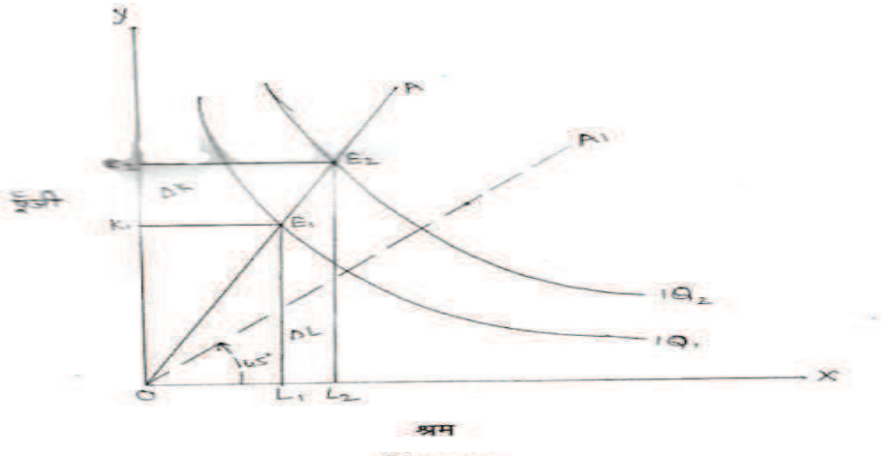

दिये गये चित्र मे ox अक्ष पर श्रम की इकाईयां तथा oy अक्ष पर पूँजी की इकाईयों को दर्शाया गया है। रेखा OA_1 से oy अक्ष की ओर समोत्पादवक्र के किसी भी बिन्दु पर उत्पादन की तकनीकी पूँजी प्रधान तकनीकी होगी क्योंकि OA_1 रेखा के इस मांग में उत्पादन के लिए पूँजी की इकाईयां, श्रम की अपेक्षा अधिक मात्रा में प्रयोग में लायी जा रही हैं। OA रेखा के OE_1 बिन्दु पर श्रम की OL_1 तथा पूँजी की OK_1 इकाईयों का प्रयोग किया जा रहा है। पूँजी की OK_1 इकाईयां की OK_1 इकाई से अपेक्षाकृत अधिक हैं। इसी रेखा पर समोत्पाद वक्र IQ_1 के बिन्दु E_2 पर उत्पादन के लिए श्रम की L_1L_2 इकाईयों में वृद्धि की गयी है। पूँजी की इकाई वृद्धि ΔK, श्रम की इकाई वृद्धि ΔL, से अपेक्षाकृत अधिक है। उत्पादन वृद्धि के लिए भी श्रम की अपेक्षा पूँजी की इकाईयों / मात्रा में अधिक वृद्धि की गयी है। अतः यह नियोजन की पूँजी प्रधान तकनीकी कहलायेगी।

28.4.5 पूँजी प्रधान तकनीकी की विशेषताऐं

अर्थव्यवस्था में नियोजक की पूँजी प्रधान तकनीकी की मुख्य विशेषताऐं निम्नवत् रूप में दर्शायी जा सकती हैं।

- श्रम की अल्पता वाले देशों में आर्थिक विकास के लिए तकनीकी अत्यन्त उपयुक्त है। इसके कारण पूँजी की निश्चित मात्रा पर श्रम का पूर्ण क्षमता के साथ प्रयोग किया जा सकता है जिससे देश में प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय में तीव्रता के साथ वृद्धि होती है जो आर्थिक विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक समझी जाती है।
- उत्पादन की वृद्धि दर का स्तर ऊँचा पाया जाता है। जिससे देश में उपभोग तथा वितरण के स्तर में सुधार होता है।
- उत्पादन को कम लागत पर गुणवत्तापूर्ण रूप में प्राप्त किया जा सकता है। जो किसी भी देश के औद्योगीकरण के लिये अत्यन्त आवश्यक तथा सैधान्तिक मानी गयी है।

- उपलब्ध संसाधनों का अधिक कुशलता के साथ प्रयोग किया जा सकता है। वैश्वि अर्थव्यवस्था में उपयुक्त संसाधनों का प्रयोग आर्थिक विकास के लिये बड़े पैमाने पर किया जाता है।
- औद्योगीकरण के लिए अत्यन्त उपयुक्त तकनीकी पायी गयी है। औद्योगीकरण का आधार ही पूँजीकरण तथा नवीन आविष्कार रहा है। जो नियोजन की इस तकनीकी के द्वारा ही सम्भव है।
- वैश्वीकरण के दौर में इस तकनीकी की अधिक प्रतिस्पर्द्धात्मकता पायी गयी है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में जो विशेषताऐं एक देश के अन्दर अत्यन्त आवश्यक हैं। वे नियोजन की इस तकनीकी को अपनाकर पैदा किया जा सकता है। वर्तमान में विकसित अर्थव्यवस्थाऐं इसी तकनीकी के सहारे आगे बढ़ रही है।

28.4.6 पूँजी प्रधान तकनीकी की सीमाऐं

आपको यह भी जानना अत्यन्त आवश्यक है कि नियोजन की पूँजी प्रधान तकनीकी अत्यन्त लोकप्रिय है तथा आवश्यक होने बाद भी अनेक प्रकार के सीमाओं के अन्दर ही अधिक उपयुक्त समझी जा सकती है। विकासशील तथा पिछड़ी अर्थव्यवस्थाऐं नियोजन की तकनीकी को अपनाने में पूर्ण समर्थ नहीं है क्योंकि उनके सामने एक ओर तो पर्याप्त पूँजी की उपलब्धता की समस्या पायी जाती है वहीं दूसरी ओर अनेक ऐसी समस्याऐं विद्यमान है जो पूँजी प्रधान तकनीकी को अपनाने से कम होने के वजाय और अत्यधिक गम्भीर हो जाती है। इसके साथ नियोजन की इस तकनीकी की इन अर्थव्यवस्थाओं के लिये अत्यन्त आवश्यकता है।

नियोजन की इस तकनीकी के माध्यम से आय और सम्पत्ति की असमानताऐं काफी बढ़ने लगती हैं जो उत्पादन के ढांचे में विकृतियाँ पैदा करती है। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि नियोजन की पूँजी प्रदान तकनीकी एक उच्च वर्ग के हितों की पूर्ति करने में अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है वहीं दूसरी और तकनीकी पूँजी का केन्द्रीयकरण करने में सहायक पायी गयी है। जो किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये सदैव लाभादायक नहीं समझी जा सकती है। आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण देश की राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के लिये अत्यधिक घातक माना गया है। काले धन की अधिकता के साथ–साथ सामाजिक उद्देदश्य को यह तकनीकी प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकती है। श्रम वर्ग का शोषण होना नियोजन की इस तकनीकी समान आम बात कही जा सकती है। भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में एक बड़ा ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है जिसका विकास पूर्ण रूप से पूँजी प्रदान नियोजन की तकनीकी की सहारा लेकर नहीं किया जा सकता।

28.5 उपयुक्त तकनीकी तथा अर्थव्यवस्था की प्रकृति

उपयुक्त तकनीकी का चुनाव देशों की अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति पर पूर्ण रूप से निर्भर करता है। अल्पविकसित देशों में पूँजी की कमी, वित्तीय तथा भौतिक संसाधनों की सीमितता तथा दूसरी ओर विकसित देशों में पूँजी की प्रचुरता एवं अन्य संसाधनों की अल्पता द्वारा भी तकनीकी के स्तर में भिन्नता पायी जाती है। प्राथमिक क्षेत्र पर आधारित

अर्थव्यवस्था के लिए पूँजी प्रधान तकनीकी की ओर अग्रसर होने की आवश्यकता तथा श्रम की अधिकता से बेरोजगारी की समस्या का समाधान खोजना, उपयुक्त तकनीकी के चुनाव को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण सीमाएं उपस्थित होती है। विकसित देशों के सम्मुख उपलब्ध पर्याप्त तथा प्रचुर पूँजी को विनियोजित करने वाली पूँजी प्रधान तकनीकी ने अल्पविकसित देशों की श्रम प्रधान तकनीकी के स्थान पर प्रतिस्थापन करने के लिए आवश्यक दशाऐं पैदा की है। सामान्य रूप से विकास की वर्तमान स्थिति तथा संसाधनों की वैश्विक गतिशीलता के आधार पर पूँजी प्रधान तकनीकी के चुनाव को उपयुक्त अधिमान दिया गया है।

28.6 नियोजन की तकनीकी के क्रियान्वयन सम्बन्धित समस्यायें

देशों की अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिये अपनाये जाने वाले नियोजन की विभिन्न प्रकार की तकनीकीयों के क्रियान्वयन के मार्ग में भी अनेक प्रकार की समस्याऐं पायी जाती है।

आपको यह जानना अत्यन्त आवश्यक है देश के विकास के लिये निर्धारित लक्ष्यों एवं लक्ष्य पूर्ति के मध्य एक बड़ी सीमा तक अन्तर पाया जाता है। विज्ञान और तकनीकी विकास के युग में अर्थव्यवस्थाओं की मानव शक्तियों का भी इस तकनीकी के योग्य बनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। प्रायः देखा जाता है कि विकसित देशों के पास उच्च स्तर की पूँजी प्रधान नियोजन तकनीकी उपलब्ध है। लेकिन इन देशों में पर्याप्त मात्रा में इस तकनीकी को अमल में लाने के लिये मानवीय संसाधनों की कमी है जिसे दूसरे अन्य देशों से आयात करके पूरा किया जा रहा है। दूसरी और पिछड़े तथा अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास के लिये अपनाये जाने वाली तकनीकी के लिए पहले से ही कुशल तथा प्रशिक्षित श्रम की कमी पायी गयी है। ऐसी स्थिति में ये अर्थव्यवस्थाऐं दूसरी विकसित या पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं में विद्यमान श्रम का प्रयोग अपने हित में करने में समर्थ नहीं पायी गयी है। इन देशों में श्रमिकों में साक्षरता और कुशलता के निम्न स्तर के कारण नियोजन की तकनीकी का अधिक प्रचार एवं प्रसार नही किया जा सकता परिणाम स्वरूप श्रम के आधिक्य और पूँजी की कमी के कारण नवीन तकनीकों को अपनाने में बाधयें पैदा होती है। भले ही अन्य देशों से तकनीकी का आयात कर लिया जाये तो भी उसे अर्थव्यवस्थाओं के हितों के अनुकूल बनाने में अनेक प्रकार की क्रियात्मक कठिनाईयाँ पैदा होती है। अल्पविकसित देशों के पास अपनाऐं जाने वाली नियोजन की तकनीकी को कियान्वित करने में समुचित आर्थिक संगठन के अभाव के कारण समस्या पैदा होती है। अर्थव्यवस्थाओं में निजी क्षेत्रों का सहअस्तित्व होने कारण सरकार का पूर्ण रूप से प्रभुत्व एवं नियन्त्रण नही पाया जाता। इन क्षेत्रों में वित्तीय तथा अन्य सामाजिक सेवाओं के संचालन में भी नियोजन की तकनीकी को अल्प काल में आर्थिक उद्देदश्य के अनुकूल आसानी से परिवर्तित नहीं किया ता सकता।

आप इस तथ्य से भली–भाँति परिचित होगें के एक देश की सरकार द्वारा आर्थिक विकास के लिये अपनाये जाने वाली नियोजन की तकनीकी का उचित क्रियान्वयन करने के लिए वहाँ की जनता का पूर्ण सहयोग मिलना अत्यन्त आवश्यक है। प्रायः देखा गया है कि पिछड़े तथा अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं के सामने जनता द्वारा आर्थिक नियोजन में सहयोग न मिलने की समस्या बनी रहती है। इन देशों में शिक्षा की गुणवत्ता तथा

विस्तार का स्तर नीचा होने के कारण जनता नियोजन के लिये अपनायें जाने वाले तकनीकी के क्रियान्वयन एवं तकनीकी से प्राप्त होने वाले लाभों के प्रति अनभिज्ञ रहती है और नियोजन की तकनीकी के प्रति जनता में अलग–अलग तरह के भ्रम पैदा हो जाते है। परिणाम स्वरूप जन सहयोग की भावना का स्तर निम्न पाया जाता है। कभी–कभी राजनैतिक भ्रम के कारण जनता में आर्थिक नियोजन की तकनीकी के विरोध की भावना पैदा कर दी जाती है।

अर्द्धविकसित देशों में प्रशासन की कार्य अकुशलता तथा वित्तीय प्रशासन सम्बन्धि शिथिलताओं के कारण नियोजन की तकनीकी को अपनाने में अनेक प्रकार की समस्याऐं पैदा होती है। नियोजन कार्यक्रमों के संचालन के मार्ग में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के हितों में आपसी टकराव के कारण भी देश की अर्थव्यवस्था के लिये आवश्यक नियोजन की तकनीकी का क्रियान्वयन उचति रूप में नहीं हो पाता। पिछले दशकों में अल्पविकसित तथा पिछड़ी अर्थव्यवस्था में के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र नियोजन की उचित तकनीकी को क्रियान्वित करने में सफल नही सके परिणाम स्वरूप निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा अपनायी जाने वाली नियोजन की तकनीकी को अलग–अलग रूपों में अपने हितों के लिये क्रियान्वित किया गया। भौगोलिक दृष्टि से बड़े आकार वाले देशों की अर्थव्यवस्थाओं में श्रम की गतिशीलता की कमी के कारण विकास के लिये अपनाये जाने वाली नियोजन की तकनीकी का क्रियान्वयन उचित रूप से नही किया जा सकता। इन देशों में घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्ध, अपरिवर्तित सामाजिक व्यवस्था, क्षेत्रवाद, भाषा सम्बन्धी समस्यों के कारण भी नियोजन की तकनीकी को उचित रूप में क्रियान्वित नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसी स्थिति में आवश्यकता के अनुसार कुशल तथा अनुभवी एवं प्रशिक्षित मानव शक्ति की उपलब्धता सम्बन्धित समस्याऐं उपलब्ध होती रहती है।

28.7 विनियोग कसौटी

विनियोग कसौटी से तात्पर्य उस विधि से है जिसके द्वारा विनियोग सम्बन्धी तकनीकी का मूल्यांकन किया जाता है। इस मूल्यांकन के द्वारा विनियोग सम्बन्धी कार्यक्रमों की गुणवत्ता, उपयोगिता, तकनी दक्षता, वित्तीय तथा प्रबन्धकीय कुशलता आदि को इंगित किया जाता है।

28.7.1 विनियोग कसौटी के प्रकार

विनियोग मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित कसौटियों का प्रयोग किया जाता है।

1. लागत–लाभ विश्लेषण
2. क्षतिपूर्ति अवधि कसौटी
3. शुद्ध वर्तमान मूल्य कसौटी
4. प्रतिफल की आन्तरिक दर कसौटी
5. बट्टा काटा नकदी प्रवाह कसौटी
6. संवेदिता विश्लेषण कसौटी

28.7.2 लागत और लाभ–विश्लेषण

लागत–लाभ विश्लेषण, विनियोग कसौटी का एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। इस विश्लेषण के अन्तर्गत इस तथ्य पर सर्वाधिक रूप से ध्यान दिया जाता है कि नियोजित विनियोग पर लागत का स्तर क्या पाया गया तथा लाभ की मात्रा को किस स्तर पर आंकलित किया गया। इस विश्लेषण में विनियोग की प्रत्यक्ष लागत तथा प्रत्यक्ष लाभों के मध्य संगणना एवं तुलना की जाती है। प्रत्यक्ष लाभों के मूल्यों को बाजार कीमतों तथा अवसर लागतों के आधार पर परिगणित किया जाता है।

प्रत्यक्ष लागतों से तात्पर्य परियोजना के निर्माण, रख–रखाव तथा कार्यकरण में उचित रूप मे उठायी जाने वाली लागतों से लगाया जाता है। प्रत्यक्ष लागतें, प्रत्यक्ष लाभों की अपेक्षा अधिक आंकलित होने पर विनियोग को अर्थव्यवस्था के हित में माना जायेगा। लागतों एवं लाभों के मध्य अन्तर जितना कम होगा विनियोग का मूल्यांकन उतने ही निम्न स्तर पर किया जायेगा। प्रत्यक्ष लागतों तथा लाभों का आंकलन मुद्रा–मूल्य के रूप में अगणित किया जाता है।

अतः सार रूप में लागत–लाभ विश्लेषण के अन्तर्गत मुख्य उद्देश्य शुद्ध सामाजिक लाभों को स्थापित करना होता है।

28.7.3 लागत–लाभ विश्लेषण की आलोचना

लागत–लाभ विश्लेषण की आलोचना निम्न बिन्दुओं के आधार पर की गयी है–

1. अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं में लागत तथा लाभों की वास्तविक गणना में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।
2. पूर्व कल्पित सामाजिक बट्टा पर मनमानी हो सकती है जो लागत–लाभ विश्लेषण के लिए कठिनाई पैदा करती है।
3. वैकल्पिक लागतों की भी गणना सरल नहीं है।
4. जोखिम तथा अनिश्चितताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

28.8 सारांश

अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं आकार के आधार पर देशों में अलग–अलग नियोजन की तकनीकी प्रयोग में लायी गयी है। नियोजन की तकनीकी के चुनाव के अन्तर्गत देश में उपलब्ध संसाधनों के अनुकूलतम तथा कुशलतम रूप में प्रयोग करने वाली तकनीकी को अधिक महत्व दिया गया है। सामानयतः विकसित तथा विकासशील देशों में नियोजन की तकनीकी के चुनाव की समस्या पायी जाती है। नियोजन की तकनीकी दो प्रकार की होती है– श्रम प्रधान तकनीकी तथा पूँजी प्रधान तकनीकी। श्रम प्रधान तकनीकी में श्रम की मात्रा का पूँजी की अपेक्षा अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है तथा पूँजी प्रधान तकनीकी विकास की प्रारम्भिक अवस्था में आवश्यक है तो विकसित अवस्था में पूँजी प्रधान तकनीकी का चयन अत्यन्त उपयोगी हो जाता है।

वैश्वीकरण के दौर में औद्योगीकरण के लिए पूँजी प्रधान तकनीकी चयन विकसित तथा विकासशील दोनों देशों के विकास के लिए किया जा रहा है। पूँजी प्रधान तकनीकी अधिक तथा गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए उपयोगी है। उपयुक्त तकनीकी का चयन अर्थव्यवस्था

की प्रकृति पर आधारित है जो अर्थव्यवस्था को स्पर्द्धात्मक बना सके। विनियोग कसौटियो में लागत–लाभ विश्लेषण अत्यन्त महत्वपूर्ण उपकरण है। लागत तथा लाभ के मध्य अधिक अन्तर को विनियोग की उपयोगिता का मापक माना जाता है। फिर भी लागतों तथा लाभों की गणना में विकासशील देशों में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

28.9 शब्दावली

नियोजन :– उत्पादन हेतु संसाधनों के प्रयोग सम्बन्धी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम।

तकनीकी :– उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग हेतु अपनायी जाने वाली प्रक्रिया।

कसौटी :– उचित तथा अनुचित का निर्धारण करने वाली दशाऐं।

श्रम :– श्रमिक द्वारा आर्थिक उद्देश्य से किये जाने वाला शारीरिक तथा मानसिक प्रयास।

पूँजी :– धन का वह भाग जो उत्पादन कार्य में लगा हो।

विकसित अर्थव्यवस्था :– एक ऐसी अर्थव्यवस्था, जिसके अन्तर्गत उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण तथा सर्वोत्तम ढंग से प्रयोग किया जा चुका हो।

विकासशील अर्थव्यवस्था :– एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग पूर्ण कुशलता के साथ करने का प्रयास करती है।

लाभ :– उद्यमी को प्राप्त होने वाला वह भाग जो उत्पत्ति के अन्य साधनों को वितरित करने के बाद शेष बचता है।

अर्थव्यवस्था :– एक ऐसी व्यवस्था जिसके अन्तर्गत आजीविका कमाने तथा व्यय करने को व्यवस्थित किया जाता है।

विनियोग :– पूँजी भण्डार में वृद्धि के लिए लगाया गया धन विनियोग कहलाता है।

विकास :– अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साथ संस्थागत तत्त्वों में परिवर्तन करना विकास कहलाता है।

समोत्पाद वक्र :– उत्पत्ति के दो साधनों के विभिन्न संयोगों का बिन्दु पथ जिसके प्रत्येक बिन्दु पर समान मात्रा में उत्पादन किया जाता है।

उत्पादन :– किसी वस्तु या सेवा की उपयोगिता में वृद्धि करना उत्पादन कहलाता है।

28.10 अभ्यास प्रश्न

प्र०1 नियोजन की तकनीकी क्या है?

प्र०2 श्रम प्रधान तकनीकी की विशेषताऐं बताओ?

प्र०3 पूँजी प्रधान तकनीकी क्या है?

प्र०4 बेरोजगारी दूर करने में कौन सी तकनीकी उपयुक्त है?

प्र०5 विकसित देशों की तकनीकी किस प्रकार की हैं?

प्र०6 नियोजन की तकनीकी का चुनाव है?

(1) समस्या (2) व्यवस्था

(3) विशेषता (4) कोई नहीं

प्र०7 नियोजन की तकनीकी प्रभावित है।

1. अर्थव्यवस्था की आवश्यकता से
2. अर्थव्यवस्था की प्रकृति से

3. अर्थव्यवस्था की आकार से
4. उक्त सभी से

प्र० 8 नियोजन की तकनीकी एक प्रक्रिया है (सत्य / असत्य)

प्र० 9 पिछड़े देशों में पूँजी की कमी पायी जाती है (सत्य / असत्य)

प्र० 10 लागत–लाभ विश्लेषण विनियोग की कसौटी नहीं है (सत्य /असत्य)

हल प्र०1 के हल के लिए बिन्दु 28.3.1 का अवलोकन करें।

प्रश्न 2 के हल के लिए बिन्दु 28.4.2 का अवलोकन करें।

प्रश्न 3 के हल के लिए बिन्दु 28.4.3 को देखें

प्रश्न 4 के हल के लिए बिन्दु 28.4.2 को देखें

प्रश्न 5 के हल के लिए बिन्दु 28.4.4 को देखें

प्रश्न 6 के हल के लिए बिन्दु 28.3.2 का अवलोकन करें।

प्रश्न 7 के हल के लिए बिन्दु 28.1 को देखें

प्रश्न 8 के हल के लिए बिन्दु 28.3.1 को देखें

प्रश्न 9 के हल के लिए बिन्दु 28.5. का अवलोकन करें

प्रश्न 10 के हल के लिए बिन्दु 28.7.1 को देखें

28.11 संदर्भ गंथ सूची

1. मिश्रा एण्ड पुरी (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था,हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
2. दत्त एवं सुन्दरम् (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था एस० चंद एण्ड क०लि०, नई दिल्ली
3. एम०एल० झिंगन (2009) विकास की अर्थव्यवस्था एवं आयोजन,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा०लि०
4. मयूर विहार, नई दिल्ली–91
5. एस०पी० सिंह (2010) आर्थिक विकास एवं नियोजनएस० चन्द एण्ड क०लि० नई दिल्ली
6. सक्सैना तथा गुप्ता (2000)भारतीय अर्थव्यवस्था(विकास समस्यायें एवं नियोजन) नवयुग साहित्य सदन–लोहा मण्डी– आगरा–2

28.12 उपयोगी / सहायक ग्रंथ

1. एम०एल०सेठ (2007)अर्थशास्त्र के सिद्धान्त लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता आगरा– 282002
2. एम०एल०झिंगन (2002)समष्टि अर्थशास्त्र कोणार्क पब्लिर्श प्रा० लि० मेन विकास मार्ग, दिल्ली– 110092
3. एच०एल० आहूजा (2002)व्यष्टि अर्थशास्त्र एस. चन्द एण्ड क०लि० नई दिल्ली

4. जे०सी० पंत (2002)तुलनात्मक आर्थिक प्रणालियां लक्ष्मी नरायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता– आगरा– 282002

5- R.C Agarwal (2002)Economics of Development & Planning Lakshmi Narayan Agarwal Agra- 202002

28.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नियोजन की तकनीकी से क्या तात्पर्य है? तकनीकी चुनाव की समस्या को स्पष्ट कीजिए?
2. नियोजन की तकनीकी के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट करते हुए उनके गुण–दोषों की विवेचना कीजिए?
3. विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए आवश्यक नियोजन तकनीकी का विस्तृत व्याख्या कीजिए?
4. विनियोग कसौटी के अन्तर्गत लागत– और लाभ विश्लेषण की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए?
5. नियोजन की श्रम प्रधान व पूँजी प्रधान तकनीकी की सीमाओं का विश्लेषण कीजिए?

हल– प्रश्न संख्या 1 के हल के लिए बिन्दु 28.3 का अवलोकन कीजिए।
प्रश्न संख्या 2 के हल के लिए बिन्दु 28.4.1 से 28.4.5 तक अध्ययन कीजिए।
प्रश्न संख्या 03 के हल के लिए बिन्दु 28.5 का अवलोकन करे।
प्रश्न संख्या 04 के हल के लिए बिन्दु 28.7.1, 28.7.2 तथा 28.7.3 का अवलोकन करें।
प्रश्न संख्या 05 के हल के लिए बिन्दु 28.4.3 तथा 28.4.6 का अध्ययन करें।

इकाई–29 भारत में नियोजन की तकनीकी, भारत के नियोजन मॉडल, बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन

इकाई संरचना

29.1 प्रस्तावना

29.2 उद्देश्य

29.3 भारत में नियोजन तकनीकी

29.3.1 नियोजन तकनीकी की आवश्यकता

29.3.2 नियोजन तकनीकी की उपलब्धियाँ

29.3.3 नियोजन तकनीकी असफलतायें

29.4 भारत में नियोजन मॉडल

29.5 बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन

29.5.1 बाजारोन्मुख अर्थव्यस्था की प्रकृति

29.5.2 मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं नियोजन

29.6 सारांश

29.7 शब्दावली

29.8 अभ्यास प्रश्न

29.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

29.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

29.11 निबन्धात्मक प्रश्न

29.1 प्रस्तावना

भारत में नियोजन खण्ड की यह तीसवीं इकाई भारत में नियोजन की तकनीकी, भारत के नियोजन मॉडल, बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन है। इससे पूर्व की इकाई में आप समझ गये होंगे कि नियोजन की तकनीकी का क्या अभिप्राय है तथा तकनीकी चुनाव की क्या समस्या है? आप भली भांति समझ गये होंगे कि तकनीकी कितने प्रकारों को अपनाया जा रहा है, अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक उपयुक्त तकनीकी से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों से आप अवगत भी हुये होगें। विनियोग कसौटी के अभिप्राय के साथ इसके प्रकारों में लागत लाभ विश्लेषण से भली भांति परिचित हुए होंगे।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप भारत में नियोजन की तकनीकी के बारे में विभिन्न तथ्यों से अवगत होने के साथ भारत के विकास के लिए नियोजन की तकनीकी की आवश्यकताओं को समझेंगे। नियोजन तकनीकी की उपलब्धियों एवं असफलताओं का अध्ययन करेंगे। इसके साथ भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाये गये विभिन्न नियोजन मॉडलों से आप भली भांति परिचित होंगे। बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था की प्रकृति को समझने के साथ भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक नियोजन से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों का आप अध्ययन कर सकेंगे।

भारत में नियोजन तकनीकी के निर्धारण के पीछे मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था के किसी एक क्षेत्र विशेष का तीव्र विकास रकना नहीं रहा है इसीलिए भारतीय नियोजन की तकनीकी को वहुउद्देशीय कहा जाये तो कोई विरोधाभास की स्थिति नहीं मानी जा सकती है। भारत में नियोजन सम्बन्धी मुख्य संस्था 'योजना आयोग' कार्यशील है जो भारत सरकार के अधीन कार्य करता है। भारत में सामान्य रूप से 5 वर्षीय नियोजन काल को निर्धारित किया गया लेकिन विशेष परिस्थितियो में परिवर्तन संभव है जो प्रायः भारत में योजना काल में देखने को मिला है।

नियोजन सम्बन्धी निर्धारित समयावधि के कारण समय–समय पर नियोजन की तकनीकी में भी परिवर्तन करना अत्यन्त सरल तथा आवश्यक भी हो जाता है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त प्रासंगिक रहा है।

प्रस्तुत इकाई में नियोजन के प्रारम्भ में अपनायी गयी नियोजन की तकनीकी तथा वर्तमान में अपनायी जाने वाली नियोजन तकनीकी तथा उसकी आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है। नियोजन तकनीकी का निर्धारण नियोजन के आधार विकास मॉडल रहे हैं जिनकी विवेचना भी इस इकाई में की गयी है। नियोजन की तकनीकी की तरह नियोजन के आधार बनाये जाते रहे हैं। नियोजन के मार्ग में भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं तथा वैश्वीकरण के दौर में स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था ने भी नियोजन के आकार, प्रकृति तथा तकनीकी को अन्तर्सम्बन्धित किया है।

29.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि–

1. भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाये जाने वाली नियोजन तकनीकी किस प्रकार तथा किस दिशा में परिवर्तित हुई हैं?

2. केवल नियोजन की तकनीकी ही विकास के लिए आवश्यक नहीं है बल्कि नियोजन के मार्ग में आने वाली समस्याऐं किस दिशा में क्रियाशील रही हैं।
3. भारत में आर्कियक नियोजन की तकनीकी किन–किन मॉडलों पर आधारित रही है?
4. बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन की प्रकृति किस प्रकार की है तथा नियोजन की तकनीकी के कौन से रूप की आवश्यकता पायी गयी है।
5. वर्तमान भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं की क्या स्थिति है यह किस प्रकार गत वर्षों की तकनीकी से प्रासंगिकता रखती है।
6. आप यह भी समझ सकेंगे कि एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में नियोजन की क्या भूमिका पायी जाती है।

29.3 भारत में नियोजन तकनीकी

भारत के आर्थिक विकास के लिए 1 अप्रैल 1951 से नियोजन प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी प्रारम्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए नियोजन तकनीकी के निर्धारण की समस्या अर्थव्यवस्था को धक्का देने के लिए अत्यन्त आवश्यक थी लेकिन अब भारत की अर्थव्यवस्था की समस्याऐं तथा नियन्त्रण व्यवस्था के लिए नियोजन की तकनीकी में परिवर्तन करना भी जरूरी हो गया है।

भारती अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति का आंकलन करते हुए उपलब्ध संसाधनों का अनुमान लगाया जाता रहा है तथा संसाधनों के कुशलतम् प्रयोग अधिकतम उत्पादन करने के लिए किया गया इसके साथ सामाजिक तथा आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वित्तीय तथा भौतिक दृष्टिकोण पर ध्यान दिया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करने के लिए नियोजन की तकनीकी को यथासंभव परिवर्तन भी किया गया है। भारत में केन्द्र सरकार की योजना नीति के साथ–साथ राज्य स्तर पर भी नियोजन की प्रक्रिया को जारी रखा गया है। नियोजित अर्थव्यवस्था से खुली तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर होने पर नियोजन की तकनीकी में आवश्यक सुधार भी किया गया है। आप आगे के विन्दुओं के अध्ययन से नियोजन की तकनीकी को आसानी से समझ सकते हैं।

ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों तथा शासन पद्धति के कारण नियोजन के प्रारम्भ में उन सभी समस्याओं का सामना करना पड़ा जो नियोजन से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था गरीबी तथा वेरोजगारी का सामना कर रही थी। नियोजन के प्रारम्भ में कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए संस्थागत परिवर्तनों वाली नियोजन की तकनीकी अपनायी गयी जिसका कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ वेरोजगारी तथा गरीबी से छुटकारा पाने में सहायता मिल सकी। कृषि उत्पादन के लिए सामान्यतः श्रम का अधिक प्रयोग करने वाली तकनीकी के साथ कृषि की उत्पादकता तथा गुणवत्ता में सुधार करना भी नियोजन की तकनीकी के लिए आधार बनाया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था को तीव्र गतिशील बनाने के लिए और कृषि को अधिक श्रम का प्रयोग करने के योग्य बनाया गया वही नवीन तकनीकी का प्रयोग करके देश में उद्योगों का विकास करना भी नियोजन की प्रक्रिया में शामिल किया गया तथा कृषि तथा उद्योग की अन्तर्निर्भरता के द्वारा देश का आर्थिक विकास तेज गति से हो सके।

भारतीय अर्थव्यवस्था की मिश्रित प्रकृति होने के कारण सरकार द्वारा निजी तथा सार्वजनिक यन्त्र की विनियोग प्रवृत्ति को भी पूर्ण रूप से नियंत्रित नहीं कर सकी परिणाम स्वरूप देश के विनियोजन की तकनीकी में परिवर्तन माना अत्यन्त आवश्यक था। वेरोजगारी तथा गरीबी दूर करने के लक्ष्य के साथ निजी क्षेत्र श्रम प्रधान तकनीकी का प्रयोग करने के समर्थ नहीं हो सकता। वही विदेशी व्यापार में सुधार के लिए भी सार्वजनिक क्षेत्र में नियोजन की प्रकृति में बदलाव लाना अत्यन्त आवश्यक रहा

औद्योगिक आधार कायम करने के लिए विकास की प्रक्रिया चालू करने और औद्योगिक राष्ट्रों पर हमारी निर्भरता कम करने के लिए यह उचित ही पाया गया कि सरकार स्वयं पूँजी वस्तु क्षेत्र के लिए नियोजन में स्थान दिया जाय ताकि उपेक्षित क्षेत्रों का भी विकास हो सके। लोहा–इस्पात, भारी रसायन, भारी इंजीनियरिंग परमाणु संयन्त्र, उर्वरक, जहाज, निर्माण, मशीन उपकरण, वायुयान निर्माण आदि के क्षेत्रों का विकास करने के लिए नियोजन की तकनीकी में भी परिवर्तन लाया गया। सामाजिक तथा अधिक जोखिक वाले क्षेत्रों में भी सार्वजनिक क्षेत्र की सहभागिता को नकारा नहीं जा सकता। इन भारी उद्योग तथा विदेशी व्यापार के विकास एवं विस्तार के लिए भी निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए नियोजन में बदलाव लाया गया।

29.1 नियोजन तकनीकी की आवश्यकता

भारत की नियोजन प्रणाली के अन्तर्गत एक उयुक्त नियोजन तकनीकी की आवश्यकता समय–समय पर महसूस की गयी है जिसे निम्नवत् रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। आपको ज्ञात होना आवश्यक हे कि भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक विषमताओं की विसंगतियों का सामना करती रही है यह विषमता सम्बन्धी विसंगतियां सरकार की उयुक्त नियोजन तकनीकी को अपनाकर ही दूर की जा सकती हैं। इस आर्थिक विषमताओं को दूर करने का प्रयास किया जाना अत्यन्त आवश्यक होगा। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था में एक ओर संसाधनों का शोषणात्मक प्रयोग हो रहा है तो दूसरी ओर उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण कुशलता के साथ प्रयोग किया जाना अभी बाकी है जिसे आर्थिक नियोजन की उपयुक्त तकनीकी द्वारा ही सम्भव बनाया जा सकता है। आर्थिक नियोजन के एक लम्बे समय के बाद भी भारत में गरीबी, बेरोजगारी, सामाजिक, आर्थिक न्याय की कमी, अशिक्षा, श्रमिकों में अकुशलता जैसी अनेक समस्याऐं विद्यमान है जिसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि एक समन्वयकारी नियोजन की तकनीकी अपनायी जाय जो भारतीय अर्थव्यवस्था में व्याक्त उक्त समस्याओं का यथाशीघ्र निराकरण किया जा सके।

29.3.2 नियोजन तकनीकी की उपलब्धियां

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से अब तक दस पंचवर्षीय योजनाऐं पूर्ण हो चुकी है तथा ग्यारहवीं योजना पूर्ण होन के कगार पर है। भारत में अपनायी गयी नियोजन की तकनीकी के माध्यम से जो उपलब्धियां अर्जित की गयी उनका विश्लेषण निम्नवत किया गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय देश खाद्यान तथा अन्य आधारभूत सुविधाओं के लिए आत्मनिर्भर नहीं था, आर्थिक नियोजन को अपनाकर वर्तमान में देश खाद्यान तथा अन्य आधारभूत आवश्यकताओं के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो चुका है। कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि से सम्बन्धित उद्योगों का भी तीव्र विकास सम्भव हुआ है। आपको यह भी स्पष्ट करना

आवश्यक है कि भारत में बढ़ती जनसंख्या के बाद भी प्रतिव्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय में लगातार तीव्र गति से वृद्धि हुई है। योजनाकाल में देश में औद्योगीकरण का तीव्र प्रसार हुआ है आधारभूत उद्योगों की स्थापना के साथ–साथ औद्योगिक उत्पादन तथा उत्पादकता होने में उल्लेखनीय वृव्द्धि दर्ज की गयी तथा भारत की औद्योगिक आत्मनिर्भरता से काफी वृद्धि हुई है। देश में कोयला, इस्पात, कागज, सीमेण्ट, साइकिल, नाइट्रोजन खाद, मशीन तथा औजारों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई तथा इन अंगो में आत्म निर्भरता की दिशा में सार्थक प्रयास किये गये हैं।

योजनाकाल में भारत में शिक्षा तथा गुणवत्ता एवं विस्तार के साथ–साथ तकनीकी शिक्षा के विकास एवं विस्तार पर विशेष ध्यान दिया गया तथा उल्लेखनीय सफलताऐं प्राप्त की गयीं। आर्थिक सुधारों के समय तक देश में सार्वजनिक अंग का विस्तार किया गया जिसमें विनियोजित पूंजी में भी अत्यधिक वृद्धि की गयी। 1991 के बाद से निजी अंग के विस्तार एवं विकास की दिशा में अत्यधिक कार्य किया गया। देश में आर्थिक स्थिरता के साथ विकास किया गया विदेशी व्यापार तथा ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये गये है। कल्याणकारी योजनाओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित की गयी है। देश में सामाजिक तथा आर्थिक सेवाओं का विस्तार किया गया है।

29.3 नियोजन तकनीकी असफलताऐं

नियोजन काल में योजना निर्माताओं ने नियोजन की जिस तकनीकी को प्रयोग में लाया गया उससे भारतीय अर्थव्यवस्था की अनेक समस्याओं एवं कठिनाईयों का समाधान हो सका। इसके बावजूद भी समयान्तराल के आधार पर अर्थव्यवस्था के लिए निर्धारित अनेक लक्ष्यों को पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिए नियोजन की तकनीकी पूर्ण रूप से सफल नही हो सकी।

भारत में योजना निर्माताओं ने समयानुकूल श्रम प्रधान तथा पूँजी प्रधान तकनीकों का सहारा लिया गया ताकि आवश्यकतानुसार अर्थव्यवस्था में रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा किये जा सके तथा बेरोजगारों को कार्य करने के अधिकतम अवसर उपलब्ध हो सके इसके बाद भी योजना की लम्बी समायावधि में भारतीय अर्थव्यवस्था बेरोजगारी की समस्या से छुटकारा नही पा सकी। वर्तमान में शिक्षित बेरोजगारी की समस्या के चलते गरीबी जैसी समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं हो सका है।

भारत के आर्थिक नियोजन के लिए अपनायी गयी तकनीकी प्रतिव्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर को तीव्रता प्रदान नहीं कर सकी। प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर बहुत धीमी रही 1993–94 की कीमतों पर प्रतिव्यक्ति आय 11798 रुपये के स्तर पर ही पहुँच सकी जो अन्य देशों से तुलनात्मक रूप में काफी कम पायी गयी है। भारत में नियोजन काल में नियंत्रण की नीति दोषपूर्ण एवं एकांगी रही है जिससे वांछित सफलताऐं प्राप्त नहीं की जा सकी हैं। भारत में अपनायी गयी नियोजन की तकनीकी योजनाओं में निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप तय नही की गयीं।

पर्याप्त जनसहयोग का अभाव, प्रशासकीय अकुशलता एवं प्रबन्धकीय योजना का लचीलापन, निजी क्षेत्र पर सामाजिक हितों की अनदेखी जैसी समस्याओं के कारण नियोजन की तकनीकी पूर्ण रूप से लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकी।

आर्थिक विकास की अग्रसरता एवं नियोजन की समयानुकूल परिवर्तनशीलत के बाद भी भारतीय अर्थव्यवस्था की विदेशों पर निर्भरता कम नहीं हो सकी है। विदेशी ऋणों पर भारत की निर्भरता बढ़ती जा रही है। दूसरा मुख्य कारण विदेशी ऋण का कुशलता के साथ प्रयोग न करना पाया गया है। इसके साथ भारत में क्षेत्रीय असमनाऐं भी बढ़ रही हैं। विहार, असाम, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा जैसे राज्य लम्बे नियोजन काल के बाद भी वर्तमान में अन्य प्रदेशों की तुलना में पिछड़े हुए है। विकासित प्रदेशों का लगातार तीव्र विकास हो रहा हैं। इस क्षेत्रीय असमनताओं के लिए नियोजन की तकनीकी को ही जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सामाजिक हितों की अनदेखी करके अर्थव्यवस्था को पूँजीवाद की ओर अग्रसरित करने के पूर्ण प्रयास किये गये हैं जिससे सार्वजनिक क्षेत्र के उप्रक्रमों का निष्पादन निम्न स्तर तक ही सीमित रह गया है।

भारत में शिक्षा के विकास एवं विस्तार के चलते अनेक ऐसे उपाय किये गये जिनका भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति से सकारात्मक सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सका भारतीय शिक्षा का क्षेत्र अत्यधिक उदार बना दिया गया जिससे शिक्षा की गुणवत्ता का हास होने लगा। शिक्षा का व्यावसायीकरण होने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था कुशलता के साथ कार्य करने के योग्य श्रम तथा क्षमताओं का विकास नहीं कर सकी। परिणाम स्वरूप 12 वीं योजना के अन्तर्गत शिक्षा की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान देने की बात प्राथमिकता के स्तर पर लायी गयी है।

29.4 भारत में नियोजन मॉडल

प्रक्रिया विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अलग–अलग विकास प्रारूपों पर आधारित की गयी हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना हैरोड डोमर के विकास मॉडल पर निर्मित नियोजन पर आधारित रही जो देश की तत्कालीन अर्थव्यवस्था की बिगड़ी स्थिति के पुनरूत्थान में अत्यन्त ही सहायक सिद्ध हुआ। स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न भारतीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न आर्थिक असंतुलनों को दूर करना अत्यन्त आवश्यक था जिसके लिए एक ऐसी विकास प्रक्रिया की आवश्यकता महसूस की गई जो देश का बहुमुखी विकास सम्भव करा सके। अर्थव्यवस्था का पुर्ननिर्माण एवं आधार संरचना निर्माण के साथ जनसंख्या के जीवन के लिए आवश्यक कृषि का विकास इस नियोजन प्रारूप द्वारा संभव हो सका।

द्वितीय योजना में नियोजन का महालनोविस मॉडल को आधार वनाया गया जिसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को अलग–अलग क्षेत्रों में बांट कर विकास की प्रक्रिया को तीव्र किया गया। महालनोबिस विकास मॉडल पर आधारित इस योजना के अंतर्गत देश के औद्योगिक विकास की गति को तीव्र किया गया तथा इसे अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी बनाया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना यद्यपि महालनोविस मॉडल पर आधारित की गयी

लेकिन जॉन सैण्डी तथा एस.चक्रवर्ती मॉडल के साथ समायोजन किया गया जिसमें कृषि क्षेत्र के विकास के साथ आधारभूत उद्योगों के विस्तार को ध्यान में रखा गया।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाये गये नियोजन के मॉडल

क्र.सं.	पंचवर्षीय योजना	आधार मॉडल
1.	प्रथम	हैरड–डोमर वृद्धि मॉडल
2.	द्वितीय	मललनोविस मॉडल
3.	तृतीय मॉडल	महालनोविस मॉडल/सेण्डी एण्ड चक्रवर्ती
4.	चतुर्थ	एलन स.मान, अशोग रूद्र का संगति मॉडल
5.	पंचम	66 क्षेत्रीय आगत–निर्गत मॉडल
6.	छठी	89 क्षेत्रीय आगत–निर्गत मॉडल
7.	सातवीं	89 क्षेत्रीय आगत–निर्गत मॉडल
8.	आठवीं मॉडल	समष्टि आर्थिक मॉडल/जॉन डब्ल्यू, मिलर
9.	नवीं	समष्टि आर्थिक मॉडल/मधु दण्डवते मॉडल
10.	दशवीं	सोमसमिति–मॉडल
11.	ग्यारहवीं	योजना आयोग द्वारा निर्धारित प्रारूप
12.	बारहवीं	प्रस्तावित

चौथी पंचवर्षीय योजना में नियोजन ए.एस.मान तथा अशोक रूद्र मॉडल पर आधारित किया गया। इस मॉडल में विकास के बड़े धक्के के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया, इस चौथी पंचवर्षीय योजना में अर्थव्यवस्था को आन्तरिक रूप से कृषि, उद्योग को सुदृढ़ करते हुए विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में भारतीय अर्थव्यवस्था को अधिक अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया। इसके साथ अर्थव्यवस्था की संचालन प्रक्रिया में सुधारात्मक प्रयास किये गये। पांचवी योजना में नियोजन की प्रक्रिया में 66 क्षेत्रीय आगत–निर्गत मॉडल को आधार बनाया गया जिसे योजना आयोग के दृष्ट विभाग द्वारा निर्मित प्रारूप में समाहित किया गया। गरीबी उन्मूलन एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर विशेष ध्यान दिया गया। अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक शक्तियों का पूर्ण क्षमता के साथ प्रयोग करने के सार्थक प्रयास किये गये। सामाजिक न्याय की ओर भी योजना आयोग द्वारा ध्यान दिया गया। छठी योजना 89 क्षेत्रीय आगत–निर्गत मॉडल पर आधारित रही। इस योजना में भी नियोजन की प्रकृति दीर्घकालीन पायी गयी। सातवी योजना में भी छठी योजना के मॉडल को अपनाया गया। इस नियोजन में सार्वजनक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के लिए नियोजन में वरीयता प्रदान की गयी। देश के विकेन्द्रीयकृत विकास का लक्ष्य इस मॉडल द्वारा तय किया गया। गरीबी उन्मूलन के लिए आवश्यक रोजगार सृजन क्षमता का विकास किया गया तथा खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के रूप में प्रयास किये गये। आठवीं योजना का नियोजन उदारीकृत

अर्थव्यवस्था के लिए परिणित जॉन डब्ल्यू मिलर मॉडल पर आधारित किया गया। नवीं पंचवर्षीय योजना का नियोजन भी दीर्घकालीन, परिप्रेक्ष्य के आधार पर तैयार किया गया तथा इसके लिए समष्टि आर्थिक मॉडल मधुदण्डवते मॉडल को आधार बनाया गया जिसके अन्तर्गत बाजार शक्तियो ंको महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। दशवीं योजना का प्रारूप सोम समिति मॉडल पर आधारित किया गया था। ग्यारहवीं योजना का निर्माण योजना आयोग द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास करने के लिए किया गया। जिसके अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी उन्मूलन, आधारभूत ढांचे का विकास के साथ कृषि एवं सिंचाई विकास पर प्राथमिकताओं को तय किया गया।

29.5 बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन

आपको यह मालूम होगा कि भारत में उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग कुशलतम तरीके से आवश्यक है जो बाजार व्यवस्था के माध्यम से सम्भव है लेकिन बाजारोन्मुख भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए नियोजन समस्या भी अपना अगल महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आर्थिक सुधारों के प्रारम्भिक समय में प्रारम्भ होने वाली आठवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार ''यद्यपि बाजार व्यवस्था मांग (क्रयशक्ति द्वारा समर्थित) और पूर्ति के बीच सन्तुलन लाने में समर्थ है परन्तु यह आवश्यकता और पूर्ति के बीच सन्तुलन लाने में असमर्थ है। इस लिए इस क्षेत्र में आयोजन का महत्व बना रहेगा।

29.5.1 बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था की प्रकृति

बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति बढ़ाने के लिए नियोजन की प्रक्रिया में परिवर्तन लाना अत्यन्त आवश्यक समझा गया। औद्योगीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करते हुये तकनीकी का चुनाव इस प्रकार से किया गया कि उत्पादकता घटाये विना श्रम का प्रयोग अधिक से अधिक किया गया तथा अर्थव्यवस्था को रोजगार सृजित करने वाली बनाया गया।

योजना आयोग के अनुसार–''उच्च विकास दर का होना आवश्यक तो है परन्तु रोजगार वृद्धि के लिए यह आवश्यक नहीं है। अधिक रोजगार क्षमता वाले क्षेत्रों के योगदान से प्राप्त विकास ढांचा और श्रम का अधिक प्रयोग करने वाली उत्पादन तकनीकी से रोजगार पैदा करने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है। यद्यपि दक्षता, उत्पादकता स्तर और प्रतिस्पर्द्धा कम किये विना, तकनीकों को बदलने का कार्य सरल नहीं है। तथापि यह स्वीकार करना होगा कि अर्थव्यवस्था के बड़े भाग कृषि क्षेत्र, असंगठित विनिर्माण क्षेत्र सहित सभी उत्पादन क्षेत्रों में उत्पादकता–स्तर में सुधार लाने आवश्यकता है।''

बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए नियोजन की प्रक्रिया में काफी उदारता बरती गयी। अर्थव्यवस्था से राज्य की नियन्त्रणकारी शक्तियों को काफी ढीला किया गया तथा नियोजन की प्रक्रिया में निजी क्षेत्रों की सहभागिता को शामिल किया गया। नियोजन प्रक्रिया में घरेलू संसाधनों का अनुकूलतम निजी क्षेत्र द्वारा करने पर जोर दिया गया।

बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन की प्रक्रिया के लक्ष्य अल्पकालीन न होकर दीर्घकालीन निर्धारित किये गये तथा उसी प्रकार वित्तीय तथा भौतिक संसाधनों का आवंटन इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के आधार पर किया गया है। खुली अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय आयोजन को

महत्वपूर्ण बनाया गया है। राज्य द्वारा सामाजिक सेवाओं का विस्तार करने वाली नियोजन को अपनाया गया है। वर्तमान समय में अर्थव्यवस्था को रोजगार सृजित करने के लिए श्रम की गुणवत्ता को विकसित करने वाली नीतियों को आधार बनाया गया है।

यहाँ पर यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक होगा बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका में कमी करके तथा बाजार तन्त्र व्यवस्था की कुशलता के साथ नियोजन द्वारा समानता के साथ विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत आयोजन का महत्व उन क्षेत्रों तक ही सीमित रह गया है जहाँ पर निजी क्षेत्र के अन्तर्गत आयोजन लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकता। अर्थव्यवस्था में आर्थिक कुशलता बढ़ाने तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता विकसित करने के लिए निजी क्षेत्र की सहभागिता बढ़ायी गयी है लेकिन भारत में गरीबी, बेरोजगारी तथा स्वास्थ्य तथा शिक्षा सम्बन्धी अनेक समस्याओं को देखते हुए जियोजन की तकनीकी तथा आयोजन की प्रकृति को केवल निजी क्षेत्र के हित में ही नहीं देखा जा सकता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ निजी क्षेत्र के संदर्भ में आयोजन पूर्णरूप से कारगार सिद्ध नहीं हो सकता है। बाजार व्यवस्था पर्यावरण वन, पारिस्थितिकी संरक्षण के लिए कभी भी महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हो सकती जबकि यह क्षेत्र भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए अत्यन्त ही महत्व का माना गया है। मानव विकास रिपोर्ट 1991 में भी निजीकरण को अर्थव्यवस्था की समस्याओं का समाधान मानने से इंकार किया है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं नियेाजन

भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसे बिना नियोजित व्यवस्था के संचालित करने की कल्पना नहीं की जा सकती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में एक क्षेत्र लाभ–हानि की संकल्पना से दूर सामाजिक हित पर आधारित है तो दूसरा क्षेत्र लाभ–हानि की संकल्पना से बिल्कुल दूर नहीं रखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सहअस्तित्व वाला विकास नियोजन की एक उपयुक्त तकनीकी के अभाव में संभव नहीं है। भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्र तीन रूपों में कार्यरत पाये गये हैं, पहला क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र के रुप में कार्यशील है। पूर्ण स्वामित्व एवं नियंत्रण राज्य के हाथ में है, इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र का हस्तक्षेप किसी भी सीमा तक स्वीकार नहीं है, दूसरा क्षेत्र पूर्णतः निजी क्षेत्र के स्वामित्व के अधीन है लेकिन इस पर राज्य का सामान्य नियन्त्रण क्रियाशील रहता है। तीसरा क्षेत्र निजी तथा सार्वजनिक रुप में सहअस्तित्व के रुप में कार्य करता है।

अर्थव्यवस्था के इन तीनों क्षेत्रों के नियन्त्रण एवं विकास के लिए एक व्यवस्थित सुसंगठित नियोजन की तकनीकी अपनाया जाना अत्यन्त ही आवश्यक समझा गया है। आपको यहाँ पर यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक होगा कि निजी अंग को सरकार के नियन्त्रण से बाहर नहीं छोड़ा जा सकता है क्योंकि ऐसा करने से सामाजिक हितों को सुरक्षित रख पाना अत्यन्त ही मुश्किल होगा जो भारतीय अर्थव्यवस्था में एक गंभीर समस्या पैदा करेगा। पूर्ण रुप से सार्वजनिक अंग के अन्तर्गत वैश्विक अर्थव्यवस्था के लाभों से दूर ही रखा जा सकता है, जो आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था के मिश्रण को समान रुप से संचालित करना एक कोई सरल कार्य नहीं है। भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था में एक उपयुक्त नियोजन की तकनीकी को अपनाने से पूर्व निम्न तथ्यों पर ध्यान देना अत्यन्त ही आवश्यक समझा जा सकता है –

1. सरकार द्वारा सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों द्वारा किस सीमा तक सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए क्रियाशील कर सकती है ताकि दोनों क्षेत्रों में उचित समन्वय बना रहे तथा आर्थिक विरोधाभास की स्थिति नहीं बन सके।
2. सरकार द्वारा आर्थिक विकास को तीव्र करने तथा विनियोग सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णय किस प्रकार लिये जायें ताकि सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों का हित भी सुरक्षित रह सके।
3. किसी भी एक क्षेत्र के विकास को दूसरे क्षेत्र की हित हानि के आधार पर न करने के लिए बाध्य किया जाये।

मिश्रित अर्थव्यवस्था में वित्तीय संस्थाओं पर राज्य सरकार का प्रभावी नियन्त्रण है ताकि वित्तीय व्यवस्था का किसी एक विशेष क्षेत्र के हित में नहीं हो सके। वित्तीय व्यवस्था किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास का आधार होती है। सरकार द्वारा एकाधिकार विकास पर रोक लगाने के लिए अर्थव्यवस्था को प्रतियोगात्मक बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास किया गया है ताकि पूंजीपतियों द्वारा जनता का किसी भी सीमा तक शोषण नहीं हो सके। लेकिन यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि पूंजीवादी ताकतों का विस्तार लाभ ही उच्च दर पर निर्भर है जो जनता के शोषण का ही परिणाम कहा जा सकता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र को सुरक्षा के लिए उचित मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों का निर्धारण सरकार द्वारा किया गया है जो आर्थिक अस्थिरता को रोकने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण कहे जाते हैं, जिसका अर्न्तविरोधी अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित किया गया है। सार्वजनिक विनियोग का एक बड़ा भाग ऐसे क्षेत्र में किया गया है जहाँ पर निजी क्षेत्र द्वारा विनियोग किया जाना सक्षमता से बाहर है। कमजोर वर्गों के कल्याण के लिए उचित तथा सस्ते मूल्य पर सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित की गई है, इसके साथ जो अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा नियोजन की तकनीकी से अर्न्तसम्बन्धित है। श्रम के विकास के लिए शिक्षा एवं तकनीकी प्राविधि को विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण उपाय किये गये हैं जो सार्वजनिक तथा निजी दोनों ही अंगों के विकास के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। श्रम की गुणवत्ता का विकास एवं विस्तार के लिए सार्वजनिक संस्थाओं के साथ–साथ निजी अंग की संस्थाओं की भी सहयोगिता सुनिश्चित की गई है ताकि नियोजन की बदलती तकनीकी के साथ पूर्ण रुप से समन्वय स्थापित किया जा सके। मिश्रित अर्थव्यवस्था की संस्थाओं के आधार पर यह भी सुनिश्चित किया गया है कि आवश्यकता वाले क्षेत्रों में नियोजन की श्रम प्रधान या पूंजी प्रधान तकनीकी को अपनाया जाये ताकि अर्थव्यवस्था की समस्याओं का समाधान किया जा सके।

जान ड्रेज और अमर्त्यसेन ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट किया है कि ''जबकि बाजार के प्रयोग के मार्ग में अवरोधकों को हटाने से कई प्रकार के अवसरों के विस्तार में महत्वपूर्ण लाभ होगा, इन अवसरों के व्यवहारिक प्रयोग के लिए कुछ प्रकार की मूल योग्यताऐं जरूरी हैं जिनमें साक्षरता और शिक्षा, मूल स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा लिंग रूपी समानता, भू–अधिकार और स्थानीय लोकतन्त्र शामिल हैं। इन योग्यताओं का तीव्र विस्तार महत्वपूर्ण रूप में ऐसे सार्वजनिक कार्य पर निर्भर करता है, जिसकी भारत में अत्यधिक उपेक्षा की गयी है और यह परिस्थिति हाल के सुधारों से पूर्व और बाद के काल में बनी हुई है। वास्तविक मुद्दा शेर को पिंजरे से बाहर निकालने का है और इसके लिए उदारीकरण की हदें पार करने की आवश्यकता है।

आपको उक्त विश्लेषण से यह भली भांति स्पष्ट हो गया होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था की निर्धनता, अशिक्षित, निम्न स्वास्थ्य, सामाजिक अन्याय, आर्थिक विषमता, वेरोजगारी जैसी समस्याओं से बाहर निकालने के लिए बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था पर पूर्ण निर्भरता के साथ आयोजन को बदलना होगा।

29.6 सारांश

भारत में योजना आयोग द्वारा अपनायी जाने वाली नियोजन की पाँच वर्षीय नियोजन प्रक्रिया में समय–समय पर अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले हैं जो भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास की अवस्थाओं के कारण आवश्यक भी समझे गये। इसके साथ नियोजन की तकनीकी में भी समय–समय पर होने वाले बदलाव भी अत्यन्त प्रासंगिक रहे हैं। प्रारम्भ में अपनायी नियोजन की तकनीकी तथा वर्तमान में अपनायी जाने वाली नियोजन की तकनीकी में काफी अन्तर देखने को पाया गया है। प्रस्तुत इकाई से आकपे अर्थव्यवस्था की वास्तविक नियोजन सम्बन्धी स्थिति भली भांति समझ में आ जायेगी। सन पचास तथा साठ के दशक में श्रम प्रधान नियोजन की तकनीकी को अपनाया गया इसके साथ औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए कुछ सीमा तक पूंजीप्रधान नियोजन की तकनीकी को भी महत्व दिया गया। अर्थव्यवस्था के विकास की स्थितियों के अनुसार नियोजन की तकनीकी पूंजी गहनता की ओर अधिक तेज गति से अग्रसर हुई परिणामस्वरूप देश में गरीबी तथा वेरोजगारी की समस्या वर्तमान में भी विद्यमान है। नियन्त्रित अर्थव्यवस्था से खुली अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसारित होने पर केवल राजकीय नीतियों को ही थोपा नहीं जा सकता बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की नीतियों द्वारा भी भारतीय आयोजन की दिशा एवं प्रकृति परिवर्तित हुई। बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में पूंजीगहन तकनीकी वाले नियोजन ने विकास की दर को बढ़ा दिया हो लेकिन सामाजिक क्षेत्र की समस्याओं को दूर नहीं किया जा सका।

भारत के नियोजन समय में अलग–अलग विकास के मॉडल अपनाये गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना हैरोड डॉमर मॉडल पर आधारित थी तो आठवीं योजना समष्टि आर्थिक जॉन डब्ल्यू मिलर मॉडल पर आधारित की गयी ग्यारहवीं योजना आयोग के दृष्टिकोण पर ही आधारित रही। बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की सहभागिता को बढ़ाने के साथ–साथ कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में राज्य की नियोजन भूमिका को अलग नहीं किया जा सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था को केवल निजी क्षेत्र द्वारा कुशलतम अर्थव्यवस्था बनाने

वाली नियोजन बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में राज्य के लिए नियोजन की एक ऐसी तकनीकी अपनानी होगी जो अर्थव्यवस्था का समानता के साथ विकास कर सके।

29.8 शब्दावली

नियोजन तकनीकी – अर्थव्यवस्था के कुशलतम संचालन के लिये कार्ययोजना को लागू करने या क्रियान्वित करने के लिए अपनाया जाने वाला तरीका।

मॉडल – अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पूर्व में कल्पित या निर्धारित एक प्रारूप या नमूना।

बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था – एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसका संचालन बाजार शाक्तियों अर्थात मांग तथा पूर्ति द्वारा जाने का प्रयास करना।

वैश्वीकरण – किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व के अन्य देशों के अर्थव्यवस्था के साथ सहभागिता के आधार पर कार्य करना।

पूँजीवाद – ऐसी अर्थव्यवस्था जिस पर निजी क्षेत्र का स्वामित्व तथा नियन्त्रण हो।

मिश्रित अर्थव्यवस्था – ऐसी अर्थव्यवस्था जिस पर निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सह अस्तित्व हो या दोनों का अलग–अलग प्रबन्धतन्त्र हो।

अन्तर्सम्बन्धित – एक दूसरे के साथ आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित होना।

पुररूत्थान – देश की बिगड़ती अर्थव्यवस्था को पुनः ठीक रूप में बनाने का कार्य करना।

29.9 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न–1. प्रथम पंचवर्षीय योजना कब प्रारम्भ की गयी?

(क) 1950–51 से (ख) 1951–52 से

(ग) 1954–55 से (घ) 1955–56 से

प्रश्न–2. भारत में सामान्यतः एक योजना की समयावधि है –

(क) 10 वर्ष (ख) 2 वर्ष

(ग) 5 वर्ष (घ) 8 वर्ष

प्रश्न–3. भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकति है –

(क) समाजवादी (ख) पूँजीवादी

(ग) मिश्रित (घ) कोई नहीं

प्रश्न–4. प्रथम पंचवर्षीय योजना किस मॉडल पर आधारित है?

(क) महानयोविस मॉडल (ख) हैडर–डॉमर मॉडल

(ग) लीविस (घ) सभी पर

प्रश्न–5. चौथी पंचवर्षीय योजना किस मॉडल पर आधारित है?

(क) मान तथा अशोक रूड मॉडल पर

(ख) हैरॉड डॉमर मॉडल पर

(ग) मिलर मॉडल पर

(घ) सोमसमिति मॉडल पर

प्रश्न–6. सही विकल्प पर निशान लगाओ –

वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था है –

(क) बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था

(ख) साम्यवादी अर्थव्यवस्था

(ग) बन्द अर्थव्यवस्था

(घ) उक्त सभी प्रकार की

29.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- मिश्र ए.के. एण्ड पुरी वी.के. (2007):Economics of Development & Planing theory & practices Himalay Publishing House, New Delhi.

2. झिंगन.एम.एल. (2009) :विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा०लि०, मयूर विहार, फेज–1, दिल्ली–91

3. दत्त एवं सुन्दरम (2010):भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द्र एण्ड क०लि०, नई दिल्ली

4. मिश्र, जगदीश नरायन (2009):भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल पब्लिशर्स, 8 हरिसदन, दरियागंज, नई दिल्ली

5. जालान, विमल (2004):इक्कीसवीं सदी में भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

29.11उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

1. सिंह एस.पी. (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन (भारतीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में) एस.चन्द एण्ड कम्पनी लि०, रामनगर, नई दिल्ली

2. सक्सेना के.सहाय, गुप्ता (2000)भारत की आर्थिक संमस्याऐं, नवयुग साहित्य सदन, लोहा मण्डी, आगरा (उ.प्र.)

3- R.C. Agarwal (2002)Economics of Development and planning, Laxmi Narayan Publication, Agra (U.P.)

29.12 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न–1. भारत में अपनायी गयी नियोजन तकनीकी का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए?

प्रश्न–2. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में बदलती नियोजन तकनीकी को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न–3. भारत में नियोजन के आधारभूत मॉडलों की विवेचना कीजिए?

प्रश्न–4. बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न–5. भारत में नियोजन सम्बन्धी सीमाओं तथा कठिनाईयों की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न–6. मिश्रित अर्थव्यवस्था के संदर्भ में नियोजन की भूमिका को स्पष्ट कीजिए?

इकाई 30 महालनोबिस विकास प्रारूप

इकाई संरचना

30.1 प्रस्तावना

30.2 उद्देश्य

30.3 महालनोबिस मॉडल का क्षेत्र

30.4 मॉडल की मान्यताऐं

30.5 मॉडल का मुख्य रूप

30.5.1 द्विक्षेत्रीय मॉडल

30.5.2 चार क्षेत्रीय मॉडल

30.6 महालनोबिस मॉडल तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना की वित्तीय व्यवस्था

30.7 महलनोबिस मॉडल तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास

30.8 मॉडल का महत्त्व

30.9 महालनोबिस मॉडल की आलोचनाऐं

30.10 महालनोबिस मॉडल में निहितार्थ

30.11 सारांश

30.12 शब्दावली

30.13 अभ्यास प्रश्न

30.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

30.15 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

30.16 निबन्धात्मक प्रश्न

30.1 प्रस्तावना

भारत में नियोजन खण्ड की यह इकत्तीसवीं इकाई है जो आर्थिक विकास के महालनोबिस विकास प्रारूप से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से बात बता सकेंगे कि भारत में नियोजन की अपनाई गई तकनीकी तथा नियोजन मॉडलों की क्या स्थिति रही है? बाजारोन्मुख होती भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों को भी आप समझ गये होंगे।

प्रो० प्रशान्त चन्द्र महालनोबिस ने भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक समझे जाने वाले नियोजन व्यवस्था की क्षेत्रीय विधि की नींव रखी। यहाँ पर आपको यह भी अवगत होना अत्यन्त आवश्यक है कि महालनोबिस के विकास प्रारूप को सामान्यतः महालनोबिस मॉडल के रूप में जाना जाता है। 1953 का द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल को परमिार्जित करते हुए प्रो० महालनोबिस ने चार क्षेत्रीय विकास मॉडल को संस्थापित किया। यह क्षेत्रीय मॉडल हैरोड–डॉमर के विकास मॉडल से व्युत्पत्तित किया गया है यह क्षेत्रीय मॉडल विकास के अन्य मॉडलों से समानता रखते हुए भी अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अपना अलग महत्त्व रखता है। महालनोबिस मॉडल वास्तव में विकास मॉडल न होकर वितरण मॉडल के रूप में देखा जा सकता है।

प्रस्तुत इकाई में आप समझ सकेंगे कि महालनोबिस के विकास मॉडल के द्विक्षेत्रीय तथा चारक्षेत्रीय मॉडल में क्या मूलभूत अन्तर है? इसके साथ महालनोबिस मॉडल पर आधारित दूसरी योजना की वित्त व्यवस्था से भी आप भली भांति परिचित हो सकेंगे। इस मॉडल के प्रयोग को लाने के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में हुये सुधारों से विकास किस रूप में परिलक्षित हुआ, आप इसको भली भांति समझ सकेंगे।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के साथ योजना की समयावधि में 11 मिलियन व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने के साथ यह अत्यन्त आवश्यक था कि अर्थव्यवस्था का तीव्र तथा पूँजी का संस्थागत विकास सम्भव हो सके। इसके लिए महालनोबिस का चार क्षेत्रीय मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा देने में समर्थ रहा है। योजना आयोग से सम्बद्ध होने के कारण महालनोबिस अर्थव्यवस्था की बारीकी प्रवृत्तियों से भली–भाँति परिचित थे। अतः यह मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थायित्त्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

30.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि –

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास मॉडलों की क्या उपयोगिता तथा प्रांसगिकता रही है।
2. महालनोबिस का विकास मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था को किस प्रकार की दिशा प्रदान करता है।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था के घटकों में क्या अन्तर्सम्बन्ध रहा है। जिसके आधार पर विकास सम्भव हुआ है।

4. विकास मॉडलों की आवश्यकता के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति किस प्रकार परिवर्तित हुई है।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्रवार विकास के लिए आवश्यक रणनीति की आवश्यकता क्या है?
6. महालनोबिस मॉडल पर आधारित योजना की वित्तीय व्यवस्था किस प्रकार की रही?

30.3 महालनोबिस मॉडल का क्षेत्र

महालनोबिस विकास मॉडल का क्षेत्र एक ऐसी अर्थव्यवस्था तक सीमित रहा जिसके साथ किसी अन्य अर्थव्यवस्था से व्यापार नहीं होता है। इसके साथ यह मॉडल पिछड़ी अर्थव्यवस्था के विकास के सन्दर्भ में क्रियान्वित किया जा सकता है। इस मॉडल के क्षेत्र में ऐसी अर्थव्यवस्थाओं को भी शामिल किया जा सकता है जहाँ आय तथा रोजगार का निम्न स्तर हो तथा मुख्य समस्या संस्थागत तत्त्वों के विकास की हो तथा उन अर्थव्यवस्थाओं में कार्य क्षमता तथा उत्पादन को बढ़ाने की कार्यकुशलताऐं विकसित की जा सकें एवं उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग करने सम्बन्धी समस्याऐं विद्यमान हो। तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में इस मॉडल को क्रियान्वित किया गया था।

30.4 मॉडल की मान्यताऐं

आपको यह भी समझना आवश्यक है जिन मान्यताओं पर महालनोबिस द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल आधारित किया गया।

1. महालनोबिस विकास मॉडल केवल बन्द अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में ही लागू किया जा सकता है। उस देश का अन्य देशों की अर्थव्यवस्था के साथ सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।
2. अर्थव्यवस्था उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र तथा पूँजी वस्तु में विभक्त होती है। मध्यवर्ती क्षेत्र के लिए कोई निश्चित स्थान नहीं पाया जाता है।
3. एक क्षेत्र में एक बार संस्थापित पूँजी उपस्करों में विचलन नहीं पाया जाता है।
4. अर्थव्यवस्था में पूर्ण क्षमता के साथ उत्पादन किया जाता है। किसी भी क्षेत्र में अप्रयुक्त क्षमता नहीं पायी जाती है।
5. अर्थव्यवस्था में स्थिरता की स्थिरता पायी जाती है। अर्थात् मुद्रा स्फीति या विस्फीति की स्थिति नहीं पायी जाती है।
6. पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति द्वारा निवेश का आकार निर्धारित होता है।

यहाँ पर आपको यह भी स्पष्ट कराना होगा कि चार क्षेत्रीय मॉडल के अन्तर्गत –
अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादकता गुणांक स्वतन्त्र होता है पूँजी श्रम अनुपातों से नियोजन की समयावधि में सापेक्षिक रूप से कीमत स्थिरता की स्थिति पायी जाती है। राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर रेखीय प्रवृत्ति की पायी जाती है।उत्पादन फलन कॉब डगलस प्रकार का है।अर्थव्यवस्था में पैमाने के प्रतिफल स्थिर प्रकृति के होते हैं।

30.5 मॉडल का मुख्य रूप

महालनोबिस के विकास मॉडल को दो रूपों में विभाजित किया गया है। 1. द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल, 2. चार क्षेत्रीय विकास मॉडल

30.5.1 द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल

महालनोबिस का द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल 1953 में प्रस्तुत किया गया जिसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को दो क्षेत्रों–विनियोग वस्तु क्षेत्र तथा उपभोग वस्तु क्षेत्र में विभाजित किया। मॉडल के महत्त्वपूर्ण संघटक

K – विनियोग वस्तु क्षेत्र
c – उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र
β_k – विनियोग वस्तु क्षेत्र का उत्पादन पूँजी अनुपात
β_c – उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र का उत्पादन पूँजी अनुपात
λ_k – पूँजी वस्तु क्षेत्र की ओर होने वाला शुद्ध विनियोग का अनुपात
λ_c – उपभोग वस्तु क्षेत्र की ओर होने वाला शुद्ध विनियोग का अनुपात
I – शुद्ध विनियोग
t – समयावधि
y – राष्ट्रीय आय
a_0 – आय से बचत विनियोग अनुपात
C – उपभोग

किसी समय विशेष (+) पर राष्ट्रीय आय के एक भाग को बचा लिया जाता है तथा दूसरे भाग को उपभोग कर लिया जाता है। आपको ज्ञात होगा कि –

$$y_t = s_t + c_t \quad \text{_____(1)}$$

जब राष्ट्रीय आय के एक भाग (s_+) को बचाय जाता है तो उसे अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी बनाने के लिए उत्पादन कार्य में लगा दिया जाता है तब –

$$y_t = i_t + c_t \quad \text{_____(2)}$$

यहाँ यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि उत्पादन कार्य में लगाया गया धन (निवेश) को पुनः पूँजीगत उत्पादन तथा उपभोगगत् उत्पादन के क्षेत्र में बांटा जाता है। कुल निवेश से मूल्यह्रास तथा मशीनों की टूट–फूट को घटाने के बाद ही शुद्ध निवेश उत्पादन वृद्धि का कार्य करता है।

इस प्रकार शुद्ध निवेश का एक अनुपात (λ_k) पूँजीगत वस्तु क्षेत्र के लिए तथा दूसरा शेष भाग ($I- \lambda_k$) उपभोगगत् वस्तु क्षेत्र के लिए निर्धारित किया गया है जिसे λ_c के रूप में दर्शाया जाता है। इन दोनों का योग निवेश के कुल इकाई भाग के बराबर होता है।

$$\lambda_k + (i_t + \lambda_k) = 1 \quad \text{_____(3)}$$

या $\lambda_k + \lambda_c = 1$

यहाँ यह समझना आसाना होगा कि शुद्ध निवेश के दोनों क्षेत्र (पूँजी वस्तु क्षेत्र तथा उपभोग वस्तु क्षेत्र) में प्रयुक्त निवेश अनुपातों (λ_k तथा λ_c) को उत्पादन पूँजी अनुपात से गुणा किया जाय तथा दोनों क्षेत्रों के निवेश अनुपात से भाग दिया जाय तो दोनों क्षेत्रों का उत्पादकता गुणांक को ज्ञात किया जा सकता है।

$$\text{अतः } \beta = \frac{\beta k\ \lambda k + \beta c\ \lambda c}{\lambda k + \lambda c} \quad \text{———— (4)}$$

दोनों क्षेत्रों का निवेश अनुपात ($\lambda_k + \lambda_c$) का योग कुल निवेश इकाई (1) के बराबर होता है।

अतः $\beta = \beta_k\ \lambda_k + \beta_c\ \lambda c$ _____ (5)

किसी समय विशेष पर निवेश तथा उपभोग में परिवर्तन पिछले वर्षों के निवेश तथा उपभोग पर आधारित या प्रभावित होते हैं।

$\Delta y_t = \Delta I_t + \Delta c_t$ _____(6)

महालनोबिस के अनुसार निवेश वृद्धि पथ निम्न प्रकार निर्धारित होता है –

$$I_t = (I + \lambda_k \beta_k)\ I_{t-1}$$

$$I_1 = (I + \lambda_k \beta_k)\ I_0$$

$$I_2 = (I + \lambda_k \beta_k)^2\ I_0$$

अतः $I_t - I_0 = I_0\ (I + \lambda_k \beta_k)\ t_{-1}$ ————————(7)

इसी प्रकार उपभोग वृद्धि पथ निम्नवत निर्धारित होता है।

$$C_1 - C_0 = \lambda_c \beta_c\ (I_0 + I_1 + I_2 + I_3 \text{ -----It})$$ _____(8)

इस प्रकार आय का वृद्धि पथ इस प्रकार निर्धारित होता है।

$$y_t - y_0 = [(I_t + I_0) + (C_1 + C_0)]$$ _____(9)

अन्त में किसी समय विशेष (एक वर्ष) पर राष्ट्रीय आय का निर्धारण इस प्रकार होगा।

$$y_t = y_0 \left[1 + \alpha 0\ \frac{\lambda k\ \beta k + \lambda c \beta c}{\lambda k\ \beta k}\ (C1 + \lambda k\ \beta k)t - 1\right.$$ _____(10)

उक्त समीकरण में α_0 का मान आधार वर्ष में निवेष की दर के समान है। महालनोबिस के मॉडल के सार रूप में– एक निश्चित अल्पकाल में पूँजीगत क्षेत्र में निवेश की अधिक दर उपभोग की वृद्धि पर कम होगी लेकिन दीर्घकाल में यह दर निवेश की दर के साथ बढ़ती जाती है।

आरम्भ में पूँजी क्षेत्र की ओर आंवटित शुद्ध निवेश का भाग अधिक होता है। समय बीतने पर उपभोग क्षेत्र में उत्पादन पूँजी अनुपात (β_c), पूँजी वस्तु के उत्पादन पूँजी अनुपात से अधिक होगा। अतः दीर्घकाल में आय की वृद्धि दर बढ़ती जायेगी।

30.5.2 चार क्षेत्रीय मॉडल

महालनोबिस का चार क्षेत्रीय मॉडल उनके द्विक्षेत्रीय मॉडल का संसोधित रूप है। इस मॉडल में अर्थव्यवस्था को चार क्षेत्रों में विभाजित किया लेकिन अर्थव्यवस्था के शेष तीन क्षेत्रों की उत्पत्ति उपभोग वस्तु क्षेत्र से की गयी। इस प्रकार –

प्रथम क्षेत्र – पूँजी वस्तु क्षेत्र (k)

द्वितीय क्षेत्र – फैक्टरी उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र (C_1)

तृतीय क्षेत्र – लघु एवं कुटीर उद्योगों में उत्पादित उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र जिसमें कृषि से प्राप्त उत्पादन को भी शामिल किया गया है (C_2)

चतुर्थ क्षेत्र – सेवा उत्पादन करने वाला क्षेत्र (C_3), जिसमें स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा सेवाऐं शामिल हैं।

प्रथम द्वितीय तथा तृतीय क्षेत्रों को संयुक्त रूप से उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र की श्रेणी में रखा जा सकता है।

दूसरी योजना में भारतीय अर्थव्यवस्था में निवेश के लिए निर्धारित पूँजी तथा वृद्धि दर 5 प्रतिशत तथा 11 मिलियन लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए इस मॉडल का प्रयोग किया गया। इस मॉडल में निम्न प्रमापों का प्रयोग किया गया।

β = पूँजी–उत्पादन अनुपात जो प्रत्येक क्षेत्र के लिए अलग–अलग होगा ($\beta_k\ \beta_1\ \beta_2\ \beta_3$) इसके अन्तर्गत निवेशित पूँजी का उत्पादन की मात्रा से अनुपात को इंगित किया जाता है।

Q = पूँजी श्रम अनुपात – ($Q_k\ Q_1\ Q_2\ Q_3$) इसके अन्तर्गत पूँजी की प्रति इकाई के लिए आवश्यक श्रमिकों की मात्रा को दर्शाया जाता है।

λ = निवेश का विभिन्न क्षेत्रों में आनुपातिक विवरण ($\lambda_k\ \lambda_1\ \lambda_2\ \lambda_3$) योजना की अवधि 5 वर्षों के लिए निवेश राशि की (A) के निर्धारित होने पर 5 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त कर मिलियन व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त कराने के लिए निवेश का चारों क्षेत्रों में विवरण निम्न मॉडल समीकरण के आधार पर किया जा सकता है।

कुल आय E = चारों क्षेत्रों की आय का योग

कुल रोजगार N = चारों क्षेत्रों में रोजगार की मात्रा

कुल निवेश i = चारों क्षेत्रों में आवंटित निवेश की मात्रा

अब अर्थव्यवस्था के चारों क्षेत्रों में रोजगार की वृद्धि निम्नवत होगी –

प्रथम क्षेत्र में रोजगार वृद्धि –

$$n_k = \frac{\lambda k\ I}{Qk}$$

द्वितीय क्षेत्र में रोजगार वृद्धि –

$$n_1 = \frac{\lambda 1\ I}{Q1}$$

तृतीय क्षेत्र में रोजगार वृद्धि –

$$n_2 = \frac{\lambda 2\ I}{Q2}$$

चतुर्थ क्षेत्र में रोजगार वृद्धि –

$$n_3 = \frac{\lambda 3\ I}{Q3}$$

इसी प्रकार अर्थव्यववस्था के आय में वृद्धि का आकलन निम्न समीकरणों के आधार पर लगाया जा सकता है।

प्रथम क्षेत्र में आय में वृद्धि –

$$E_k = \frac{\lambda k I}{\beta k}$$

द्वितीय क्षेत्र में आय में वृद्धि –

$$E_1 = \frac{\lambda 1\ I}{\beta 1}$$

तृतीय क्षेत्र में आय में वृद्धि –

$$E_2 = \frac{\lambda 2\ I}{\beta 2}$$

चतुर्थ क्षेत्र में आय में वृद्धि –

$$E_3 = \frac{\lambda 3\ I}{\beta 3}$$

इसी प्रकार अर्थव्यवस्था के चारो क्षेत्रों में निवेश की मात्रा के वितरण को ज्ञात किया जा सकता है –

प्रथम क्षेत्र में निवेश वितरण $(i_k) = \lambda_k \times i$

द्वितीय क्षेत्र में निवेश वितरण $(i_1) = \lambda_1 \times i$

तृतीय क्षेत्र में निवेश वितरण $(i_2) = \lambda_2 \times i$

चतुर्थ क्षेत्र में निवेश वितरण $(i_3) = \lambda_3 \times i$

इस प्रकार प्रारूप में क्षेत्रीय संरचना निम्नवत् दर्शायी जा सकती है –

$y = y_k + y_1 + y_2 + y_3$

30.6 महालनोबिस मॉडल तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना की वित्तीय व्यवस्था

दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कुल उपलब्ध वित्तीय संसाधनों का विभिन्न क्षेत्रों में आवंटन महालनोबिस मॉडल के आधार पर किया गया। दूसरी योजना में कुल योजनाराशि का 56 प्रतिभाग देशीय बजटीय स्त्रोत से उपलब्ध कराया गया जिसकी कुल धनराशि 2560 करोड़ रूपये के बराबर थी। 24 प्रतिधन राशि विदेशी सहायता के रूप में उपलब्ध करायी गयी जो 1090 करोड़ रूपये थी। कुल योजना धनराशि का 20 प्रतिशत भाग न्यून वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत जुटाया गया जो 950 करोड़ रूपये रहा। इस प्रकार दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान कुल 100 प्रतिशत धनराशि के अन्तर्गत 4500 करोड़ रूपये की धनराशि व्यवस्थित की गयी। प्रथम तथा तृतीय योजना की वित्त व्यवस्था का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि दूसरी योजना में देशीय बजटीय संसाधनों का न्यूनतम अनुपात ही उपलब्ध कराया जा सका। इस योजना में न्यून वित्त व्यवस्था सर्वोच्च स्तर 20 प्रतिशत पर पायी गयी जबकि यह प्रथम योजना में 17 प्रतिशत (330 करोड़ रूपये) तथा तृतीय योजना में 13 प्रतिशत (1150 करोड़ रूपये) थी। परिणाम स्वरूप इस योजना के अन्तर्गत सरकार को स्फीतिकारी स्थितियों का भी सामना करना पड़ा था जिसके कारण ही तृतीय योजना में न्यून–वित्त व्यवस्था के अनुपात को कम रखा गया।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में देशीय बजटीय स्रोतों के अन्तर्गत चालू राजस्व के अधिशेष, सरकारी उद्यमों का योगदान, गैर सरकारी देशीय बजट तथा अतिरिक्त गतिमान संसाधनों का भी सहारा लिया गया।

आपको यहाँ यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक होगा कि चालू राजस्व का प्रयोग चालू व्यय को पूरा करने के लिए किया जाना चाहिए इसके साथ चालू राजस्व से अतिरेक का प्रयोग विकास कार्यों के लिए किया जाना भी अत्यन्त आवश्यक समझा गया है। सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में चालू राजस्व से अधिशेष का प्रयोग किया गया तथा 25 प्रतिशत वित्तीय साधन इस मद से जुटाये।

महालनोबिस मॉडल पर आधारित इसकी योजना में भारी उद्योग पर बल देने के कारण सरकार ने चालू खाते में अतिरेक बनाये रखने की बजाय शुद्ध घाटे के बजट बनाने का कार्य किया। कीमतों में स्फीतिकारी वृद्धि, मंहगाई भत्तों तथा अन्य भुगतानों में वृद्धि, प्रतिरक्षा एवं काज भुगतानों आदि के कारण चालू व्यय को सीमित नहीं रखा जा सका और परिणामस्वरूप दूसरी पंचवर्षीय योजना में चालू राजस्व के अन्तर्गत 1 प्रतिशत की नकारात्मक उपलब्धि प्राप्त की गयी। दूसरी योजना में सरकारी उद्यमों का योगदान 3 प्रतिशत के स्तर पर दर्ज किया गया। इस योजना के अन्तर्गत गैर–सरकारी देशीय बचत के माध्यम से वित्तीय संसाधन जुटाये गये। पहली योजना में इस मद से कुल संसाधनों का एक तिहाई भाग उपलब्ध कराया गया लेकिन महालनोबिस मॉडल पर आधारित दूसरी योजना में इस मद से प्राप्त संसाधनों में कुल कमी पायी गयी तथा इस मद से 30 प्रतिशत संसाधनों को जुटाया गया। इस योजना में अतिरिक्त साधनों से भी 23 प्रतिशत वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराये गये।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कुल विनियोग 6750 करोड़ रूपये का था जिसमें निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में किया गया विनियोग शामिल किया गया। दूसरी योजना में विनियोग प्रारूप को निम्नलिखित द्वारा आसानी से समझाया जा सकता है।

दूसरी योजना में विनियोग

क्र.सं.	मद	राशि (करोड़ रू०)	प्रतिशत
1.	कृषि एवं सामुदायिक विकास	549	12
2.	सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण	430	9
3.	विद्युत	452	10
4.	उद्योग एवं खनिज	938	20
5.	परिवहन एवं संचार	1261	27
6.	कुटीर एवं लघु उद्योग	187	4
7.	विविध	855	18
	योग –	**4672**	**100**

उपरोक्त तालिका को अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उद्योग एवं खनिज पर 938 करोड़ रूपये की धनराशि व्यय की गयी जो कुल का 20 प्रतिशत है। इसके लिए औद्योगीकरण के आवश्यक साधन–परिवहन एवं संचार सुविधाओं के विस्तार एवं विकास पर 1261 करोड़ रूपये का परिव्यय किया गया जो कुल परिव्यय का 27 प्रतिशत पाया गया है।

30.7 महालनोबिस मॉडल तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास

दूसरी पंचवर्षीय योजना का निर्माण प्रो० महालनोबिस द्वारा रूसी अनुभव के आधार पर अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास के लिए किया था। इस योजना में ऐसी स्थितियाँ अर्थव्यवस्था में पैदा करने की आवश्यकता पर महत्त्व दिया जो देश के तीव्र विकास में सहायक सिद्ध हो सकें। महालनोबिस का मुख्य उद्देश्य भारी उद्योगों में भारी विनियोग करके देश का औद्योगीकरण था। यद्यपि दूसरी योजना तथा महालनोबिस मॉडल की कृषि की उपेक्षा को लेकर काफी आलोचनाऐं की गयीं किन्तु योजना निर्माताओं एवं आयोजकों ने देश के तीव्र औद्योगीकरण का कई तथ्यों के आधार पर जोरदार समर्थन किया। कृषि उद्योगों का विकास कृषि विकास के लिए एक नई दिशा देगा तथा कृषि के विकास को अधिक संभव बनायेगा इसके साथ उद्योगों की विकास दर तथा कृषि की विकास तर में काफी अन्तर देखा गया है तथा भारतीय अर्थव्यवस्था की विदेशी निर्भरता कम करने के लिए भी देश का तीव्र औद्योगीकरण अत्यन्त आवश्यक समझा गया है। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के लौह एवं इस्पात के कारखानों की स्थापना की गयी जिसमें दुर्गापुर, भिलाई एवं राउरकेला में तीव्र विशाल कारखानों को भी स्थापित किया गया, बिजली एवं भारी मशीनरी उपकरण, दवाईयों एवं रसायनों के उत्पादन करने वाले उद्योगों की भी स्थापना की गयी। कोयला, धुलाई के कारखाने, डी.डी.टी. कारखाना, नांगल की स्थापना दूसरी योजना के अन्तर्गत की गयी इसके साथ चीनी, सूतीवस्त्र, जूट के कारखानों की भी स्थापना की गयी जिससे न केवल उद्योगों का बल्कि अन्य क्षेत्रों का भी विकास सम्भव हो सका।

आपको यह अवगत कराना भी अत्यन्त आवश्कय होगा कि महालनोबिस के मॉडल पर आधारित दूसरी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक ऐसी औद्योगिक नीति का निर्माण करना भी आवश्यक समझा गया परिणामस्वरूप 30 मई, 1956 को तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू द्वारा औद्योगिक नीति–1956 की घोषणा की गयी जो महालनोबिस मॉडल की प्रासंगिकता को स्पष्ट करती हैं इसके साथ ही एक लम्बे समय तक यह औद्योगिक नीति भारत के विकास का आधार बनी रही तथा भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था के कुशल संचालन के लिए बनायी गयी। औद्योगिक नीति–1956 की मुख्य विशेषताऐं निम्नवत् स्पष्ट की जा सकती हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था की मिश्रित अर्थव्यवस्था होने के कारण उद्योगों को तीव्र वर्गों में विभाजित किया गया। प्रथम वर्ग सार्वजनिक क्षेत्र के लिए, द्वितीय वर्ग सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के सहअस्तित्व के लिए तथा तीसरा वर्ग निजी क्षेत्र के अधीन छोड़ा गया। प्रथम वर्ग में 17 उद्योगों को शामिल किया गया तथा द्वितीय वर्ग में 12 उद्योगों को रखा गया तथा अन्य उद्योगों को तीसरे वर्ग के लिए छोड़ दिया गया। यह औद्योगिक नीति निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के दिनों को ध्यान में रखकर बनायी गयी ताकि बिना विरोधाभास के देश की अर्थव्यवस्था विकास के मार्ग पर तीव्रता से दौड़ सके। इसके साथ निजी क्षेत्र के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव पूर्ण व्यवहार नहीं किया गया। औद्योगिक विकास का आधार माना जाने वाले श्रमिक वर्ग को भी इस नीति में आवश्यक सुविधाऐं एवं प्रोत्साहनों की व्यवस्था की गयी ताकि देश के विकास में उनकी सहभागिता का प्रोत्साहित किया जा

सके। इस नीति में देश के सन्तुलित विकास को ध्यान में रखा गया। देश के पिछड़े क्षेत्रों में भी औद्योगिक इकाईयाँ स्थापित करने का निर्णय लिया गया।

औद्यागिक नीति–1956 में बड़े स्तर के उद्योगों की स्थापना के साथ लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के हितों को भी सुरक्षित करने की व्यवस्था की गयी ताकि निजी क्षेत्र इस उद्योगों के माध्यम से देश के आर्थिक विकास में अपनी सहभागिता प्रदान कर सके। इस नीति के अन्तर्गत औद्योगिक रूप से विदेशी निर्भरता को कम करने के प्रयासों को भी अपनाया गया। इसके साथ देश के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक वित्त व्यवस्था के लिए अनेक प्रकार की औद्योगिक वित्तीय संस्थाओं के विकास के लिए प्रयास किये गये।

सरकार द्वारा देश के तीव्र औद्योगीकरण के लिए विदेशी पूँजी का प्रयोग औद्योगीकरण की गति को बढ़ाने के लिए किया गया तथा विदेशी उद्यमिता के सहयोग को भी आवश्यक समझा गया।

30.8 मॉडल का महत्त्व

आपको यह बताया जाना भी अत्यन्त उपयोगी होगा कि महालनोबिस का यह विकास मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कितना महत्त्वपूर्ण सार्थक सिद्ध हुआ।

1. महालनोबिस योजना आयोग से सम्बन्ध रखने के कारण दूसरी पंचवर्षीय योजना को एक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत 5 वर्षों में 11 मिलियन व्यक्तियों को रोजगार दिलाना तथा 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि को बनाये रखने के उद्देश्य के साथ निवेश को अर्थव्यवस्था के चारों क्षेत्रों में कुशलतम रूप में विभाजित किया।
2. द्वितीय योजना के प्रारम्भ में देश को कृषि तथा सामाजिक विकास के साथ भारी उद्योगोंके विकास की भी अत्यन्त आवश्यकता थी ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था का सर्वांगीण विकास हो तथा इस योजना का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर दीर्घकाल तक जारी रह सके। द्वितीय योजना के प्रलेखों को पांचवी योजना तक अर्न्तसम्बन्धित किया जा सका।
3. वही दूसरी ओर भारी उद्योगों की स्थापना के साथ लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास के लिए लोगों की आय में वृद्धि करके रोजगार सृजन की क्षमता को बढ़ाने का कार्य इस मॉडल पर योजना को आधारित करके किया गया। भारी उद्योगों के विकास से अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि को साथ–साथ मजबूत पूँजी का आधार विकसित हो सका।

30.9 महालनोबिस मॉडल की आलोचनाऐं

महालनोबिस मॉडल की प्रमुख आलोचनाओं को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है –

1. यह मॉडल पूँजी क्षेत्र को वरीयता देने के कारण उद्योगों के लिए कच्चे माल तथा खाद्यान्न आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं देता है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त आवश्यक था।
2. इस मॉडल में λ_k को 1/3 माना गया है जो महालनोबिस द्वारा मनमाने तरीके से तय किया गया जो आर्थिक क्षेत्र के लिए उचित नहीं कहा जा सकता है।

3. महालनोबिस मॉडल की समीकरण की प्रकृति स्थैतिक है जो समय के अनुसार समायोजित नहीं की जा सकती है। अतः इस मॉडल में समयावधि की उपेक्षा की गयी।
4. महालनोबिस मॉडल में सापेक्षिक कीमतों को स्थिर माना गया है जबकि अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिए सापेक्षिक कीमतों का स्थिर रह पाना सम्भव नहीं है। क्योंकि भारतीय योजनाओं की समयावधि 5 वर्ष निर्धारित की गयी।
5. यह मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था पर ही लागू होता है जो एक विकासमान तथा गतिशील अर्थव्यवस्था के लिए युक्तिसंगत नहीं हो सकता। भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रारम्भ से ही विदेशी अर्थव्यवस्थाओं से सम्बन्ध रहा है।
6. महालनोबिस का योजना आयोग से सम्बन्ध होने के कारण संसाधनों का अनुमान लगाकर ही इसे प्रस्तावित किया गया। वास्तव में यह विकास का मॉडल न होकर एक वितरण का मॉडल माना गया है।

30.10 महालनोबिस मॉडल में निहितार्थ

भारतीय आयोजन की दूसरी पंचवर्षीय योजना का आधार महालनोबिस द्वारा तैयार किया गया योजना मॉडल रहा। आपको यह समझना भी अत्यन्त आवश्यक होगा कि– महालनोबिस मॉडल तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना के निहितार्थ तत्व कौन–कौन से रहे जिसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए इस मॉडल की प्रासंगिकता महसूस की गयी। महालनोबिस मॉडल के निहितार्थों की प्रासंगिकता के कारण ही तृतीय योजना में भी नेहरु महालनोबिस की कूटनीति का सहारा लिया गया। महालनोबिस ने प्रतिव्यक्ति जी.एन.पी. (G.N.P.) की वृद्धि को आर्थिक विकास के साथ जोड़ते हुये इसमें तीव्र वृद्धि लाने के उपायों को शामिल किया गया तथा इस मॉडल में प्रतिव्यक्ति जी.एन.पी. में वृद्धि के लिए भारी उद्योगों में निवेश और सेवा क्षेत्र में, व्यय में वृद्धि करके क्रय शक्ति को बढ़ाते हुये अधिक मांग उत्पन्न करने के साथ जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये लघु तथा कुटीर उद्योगों का विकास करके उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने का खाका तैयार किया गया।

महालनोबिस का मानना था कि अर्थव्यवस्था में भारी उद्योगों का विकास करके रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने के साथ आय में होने वाली वृद्धि का गरीब वर्ग पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा और अर्थव्यवस्था के विकास को और गति प्राप्त होगी। तत्कालीन अर्थव्यवस्था की समस्याओं को देखते हुये रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा गरीब वर्ग के लिये आय में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक था। भारी उद्योगों में रोजगार की दीर्घकालीन तथा सतत् वृद्धि की प्रवृत्ति को बनाये रखना देश की आधारभूत संरचना के विकास के लिए भी आवश्यक समझा गया।

भारी उद्योगों में अत्यधिक निवेश तथा उत्पादन में अधिक समय अन्तराल के कारण उत्पन्न होने वाली स्फीतिकारी समस्याओं का समाधान भी महालनोबिस ने खोज निकाला था। इसके लिए अल्पावधि में उत्पादन की पूर्ति के लिए कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगों द्वारा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर जोर दिया कुटीर तथा बड़े उद्योगों के विकास से एक ओर पारस्परिक सम्बन्धता के द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि को बढ़ाने का कार्य किया गया वहीं दूसरी ओर उच्च तथा गरीब वर्ग के मध्य आर्थिक विषमताओं को दूर करने का भी

लक्ष्य तय किया गया। भारी उद्योगों में मशीन निर्माण, इस्पात, लौह धातुओं तथा ऊर्जा के विकास को महत्त्व दिया गया वहीं उपभोग के स्तर को बढ़ाने के लिए समाचार, कागज, मोटरसाईकिल, स्कूटर, सिलाई की मशीनें, बिजली का सामान, औषधियाँ, रंग, बिजली के पंखे तथा रेडियो आदि के उत्पादन को बढ़ाने का कार्य किया गया। इसके साथ कृषि विकास के लिए ट्रैक्टर तथा नवीन उपकरणों के उत्पादन को महत्त्व दिया गया।

महालनोबिस मॉडल का मुख्य निहितार्थ उस समय बेरोजगार श्रमशक्ति को रोज़गार उपलब्ध कराने के साथ राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना रहा। महालनोबिस मॉडल पर आधारित दूसरी योजना ने तीसरी पंचवर्षीय योजना के लिए एक आधार प्रदान किया परिणामस्वरूप तीसरी पंचवर्षीय योजना को इसी मॉडल का सहारा दिया गया तथा सन्तुलित विकास की कूटनीति को अपनाया गया।

30.11 सारांश

प्रो० प्रशान्त चन्द्र महालनोबिस ने नियोजन व्यवस्था की क्षेत्रीय विधि की नींव रखी। द्विक्षेत्रीय मॉडल में अर्थव्यवस्था को विनियोग वस्तु क्षेत्र तथा उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र में विभक्त किया। इस विकास मॉडल में पूँजीगत वस्तु क्षेत्र में विनियोग करने पर अल्पकाल में उपभोग की वृद्धि दर कम होगी लेकिन समय के साथ–साथ यह वृद्धिदर बढ़ती जाती है परिणाम स्वरूप उपभोग क्षेत्र में उत्पादन पूँजी अनुपात (β_c), पूँजी वस्तु क्षेत्र के उत्पादन पूँजी अनुपात से अधिक हो जाता है। अतः दीर्घकाल में आय की वृद्धि दर बढ़ती जाती है। महालनोबिस का चार क्षेत्रीय मॉडल के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को चार क्षेत्रों में बांटा गया है। प्रथम क्षेत्र द्विक्षेत्रीय मॉडल के समान है शेष तीन क्षेत्रों को, द्विक्षेत्रीय मॉडल के उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र से ही निकाला गया है। जिसमें फैक्टरी, लघु कुटीर उद्योग तथा सेवा क्षेत्र को शामिल किया गया है। इस चार क्षेत्रीय मॉडल को विकास का मॉडल न मानकर शुद्ध निवेश को अर्थव्यवस्था के चारों क्षेत्रों में विवरण करने का मॉडल माना गया है इस मॉडल में चारों भागों के लिए अलग–अलग रोजगार की वृद्धि तथा आय की वृद्धि दरों को ज्ञात किया गया है। इसी प्रकार सभी क्षेत्रों के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना में निर्धारित 5 प्रतिशत वृद्धि दर तथा 110 लाख लोगों को रोजगार की उपलब्धता के साथ उपलब्ध निवेश को चारों क्षेत्रों में एक गोपनीय रूप के आधार पर विभाजित किया गया है। चार क्षेत्रीय विकास मॉडल में आय की क्षेत्रीय तथा समग्र संरचना निम्नवत निर्धारित की गयी।

$$y = y_k + y_1 + y_2 + y_3$$

महालनोबिस मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण सार्थक सिद्ध हुआ है। दूसरी योजना की वित्त व्यवस्था इस मॉडल के आधार पर की गयी जिसकी सफलताऐं तीसरी योजना के विकास का आधार बनीं। इस मॉडल में अर्थव्यवस्था के लिए संरचनात्मक ढांचा दिया गया तथा देश में राष्ट्रीय आय की तीव्र वृद्धि के साथ कुल मांग व पूर्ति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। इस मॉडल में पूँजीगत औद्योगिक विकास के साथ उपभोक्ता वस्तुओं के स्तर को सुधारने का प्रयास किया गया।

30.12 शब्दावली

1. **क्षेत्रीय विधि** – इस विधि के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को एक से अधिक क्षेत्रों में विभाजित कर नियोजन की रूपरेखा तैयार की जाती है।

2. **पूँजी–उत्पाद अनुपात** – उपक्रम में संलग्न पूँजी का प्राप्त उत्पादन के साथ आनुपातिक सम्बन्ध पूँजी उत्पादन अनुपात कहलाता है अर्थात् निश्चित उत्पादन के लिए आवश्यक अनुपात कहा जाता है।
3. **विनियोग** – उत्पादन कार्य में वृद्धि के लिए लगायी गयी धनराशि को विनियोग कहा जाता है।
4. **रेखीय प्रवृत्ति** – जब किसी क्षेत्र में एक सरल तथा निश्चित अनुपात में परिवर्तन होता है तब उसे रेखीय प्रवृत्ति कहा जाता है।
5. **पैमाने के स्थिर प्रतिफल** – उत्पादन कार्य में प्रयुक्त साधनों तथा उत्पादन के मध्य अनुपात स्थिर बना रहता है।
6. **मुद्रा–स्फीति** – उत्पादन वृद्धि दर की अपेक्षा मुद्रा की वृद्धि दर या पूर्ति दर अधिक हो जाना मुद्रा स्फीति कहलाता है।
7. **बन्द अर्थव्यवस्था** – ऐसी अर्थव्यवस्था जो अपनी ही भौगोलिक सीमाओं के अन्दर कार्यशील रहती है तथा विदेशी प्रत्यक्ष प्रभाव नगण्य रहते हैं, बन्द अर्थव्यवस्था कहलाती है।
8. **खुली अर्थव्यवस्था** – एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो विश्व के अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ कार्यात्मक सम्बन्ध रखती है खुली अर्थव्यवस्था कहलाती है।
9. **सापेक्षिक कीमत** – एक समय तथा अन्य वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों की तुलना दूसरे समय तथा दूसरी वस्तुओं एवं सेवाओं की अपेक्षा कीमतों का अनुपात सापेक्षिक कीमत कहलाता है।

30.13 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न–1. नियोजन की क्षेत्रीय विधि सम्बन्धित है
(i) हैरोड डॉमर मॉडल से (ii) महालनोबिस मॉडल से
(iii) कॉबडगलस मॉडल से (iv) कालडार मॉडल से

प्रश्न–2. महालनोबिस मॉडल पर भारतीय पंचवर्षीय योजना आधारित की गयी –
(i) प्रथम पंचवर्षीय योजना
(ii) द्वितीय पंचवर्षीय योजना
(iii) पाँचवी पंचवर्षीय योजना
(iv) ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना

प्रश्न–3. महालनोबिस मॉडल लागू होता है
(i) वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में
(ii) खुली अर्थव्यवस्था में
(iii) आंशिक खुली अर्थव्यवस्था में
(iv) बन्द अर्थव्यवस्था में

प्रश्न–3. द्विक्षेत्रीय मॉडल में अर्थव्यवस्था विभाजित की गयी
(i) वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में (ii) खुली अर्थव्यवस्था में

(iii) आंशिक खुली अर्थव्यवस्था में (iv) बन्द अर्थव्यवस्था में

प्रश्न–4. द्विक्षेत्रीय मॉडल में अर्थव्यवस्था विभाजित की गयी

(i) K क्षेत्र में (ii) C क्षेत्र में

(iii) K तथा C क्षेत्र में (iv) उक्त कोई नहीं

प्रश्न–5. महालनोबिस मॉडल में सेवा क्षेत्र को इंगित किया गया है

(i) C_1 द्वारा (ii) C_2 द्वारा

(iii) C_3 द्वारा (iv) C द्वारा

प्रश्न–6. सापेक्षिक कीमत परिवर्तन नहीं पाये जाते हैं

(i) एक क्षेत्रीय मॉडल में (ii) द्विक्षेत्रीय मॉडल में

(iii) चार क्षेत्रीय मॉडल में (iv) किसी में भी नहीं

प्रश्न–7. सत्य तथा असत्य को चुनो –

(क) महालनोबिस के विकास मॉडल का सम्बन्ध हैरोड–डॉमर मॉडल से पाया जाता है।

(ख) महालनोबिस का विकास मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए प्रासंगिक रहा है।

प्रश्न–8. सत्य तथा असत्य चुनो –

(i) $E_3 = \frac{\lambda 3 \; I}{\beta 3}$

(ii) $y = y_c + y_1 + y_2 + y_3$

(iii) $n_2 = \frac{\lambda 2 \; I}{Q2}$

प्रश्न–9. दूसरी योजना के वित्तीय संसाधनों के स्रोतों का उल्लेख कीजिए?

प्रश्न–10. महालनोबिस मॉडल निहितार्थ क्या है?

प्रश्न–11. महालनोबिस मॉडल में अर्थव्यवस्था में किस स्तर के उद्योगों को प्राथमिकता दी गयी?

प्रश्न–12. महालनोबिस मॉडल के क्षेत्र को संक्षेप में बताओ?

30.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय मृगेश (2010)–आर्थिक वृद्धि एवं विकास–सिद्धान्त, नीति एवं समस्याऐं, मीनाक्षी प्रकाशन, बेगम ब्रिज, मेरठ (उत्तर प्रदेश)
2. झिंगन एम.एल. (2009)–विकास एवं अर्थशास्त्र एवं आयोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., मयूर बिहार फेज–1, नई दिल्ली–91
3. मिश्रा एण्ड पुरी (2009)–भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
4. मिश्र जगदीश नारायण (2011)–भारतीय अर्थव्यवस्था, (तेइसवां संस्करण) किताब महल पब्लिशर्स, 8–हरिसदन, दरियागंज, नई दिल्ली

30.15 सहायक / उपयोग ग्रन्थ

1. दत्त एवं सुन्दरम (2009)–भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द एण्ड क.लि०, नई दिल्ली

2. सिंह एस.पी. (2001)–आर्थिक विकास एवं नियोजन, (भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में) एस.चन्द कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली
3. सक्सेना के.सहाय गुप्ता (2000)–भारत की आर्थिक समस्याऐं, नवयुग साहित्य सदन, लोहा मण्डी, आगरा (उ.प्र.)

30.16 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न संख्या–1 महालनोबिस के द्विक्षेतीय विकास मॉडल का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए?

प्रश्न संख्या–2 भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में महालनोबिस के चार क्षेत्रीय मॉडल को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न संख्या–3 भारत के आर्थिक नियोजन में महलनोबिस के योगदान की समीक्षा कीजिए?

प्रश्न संख्या–4 महालनोबिस विकास मॉडल को दूसरी पंचवर्षीय योजना से सम्बन्ध स्थापित कीजिए?

प्रश्न संख्या–5 दूसरी पंचवर्षीय योजना की वित्तीय व्यवस्था का विश्लेषण कीजिए?

प्रश्न संख्या–6 महालनोबिस मॉडल के निहितार्थों की व्याख्या कीजिए?